In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

महाकविजयदेवविरचितं

प्रसन्नराघवम्

डॉ॰ आर. एस. त्रिपाठी

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

THE PRASANNARĀGHAVA OF JAYADEVA

Edited
with the Sanskrit Commentary, Hindī translation,
Critical and Explanatory Notes and
Literary Introduction

by

Dr. R. S. Tripathi
Department of Sanskrit and Pali
Banaras Hindu University
Varanasi-5

MOTILAL BANARSIDASS
DELHI :: VARANASI :: PATNA

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

महाकविजयदेवविरचितं

प्रसन्नराघवम्

रमानाम्न्या संस्कृतटीकया राष्ट्रभाषानुवादेन
टिप्पण्या भावभरितया विस्तृत-
भूमिकया च सनाथीकृतम् ।

टीकाद्विप्रणेता सम्पादकश्च

डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी

व्याकरणाचार्यः, एम० ए०, पी-एच० डी०,
संस्कृतपालिविभागः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः
वाराणसी–५

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली : वाराणसी : पटना

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

समर्पण

जिसके हृदयामृत का पान कर

सोचने और समझने की

चेतना प्राप्त हुई

उन्हीं

स्वर्गगता

माँ

'अञ्जना'

को

श्रद्धासहित

समर्पण

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्राक्कथन

बात प्रायः १३-१४ वर्ष पहले की है। मैं शास्त्री प्रथम वर्ष का विद्यार्थी था। उस वर्ष जाड़े के ऋतु में विद्यालय का वार्षिकोत्सव होने वाला था। वार्षिकोत्सव की अध्यक्षता का भार उत्तर प्रदेश के तात्कालिक मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने स्वीकार किया था। उस उत्सव में प्रसन्नराघव के चतुर्थ अङ्क का अभिनय भी होना निश्चित था। यतः उसमें परशुराम का पाठ वीरता और महत्ता से पूर्ण है, अतः उसका भार मुझे सौंपा गया। यह तो संयोग की बात थी कि बाबू सम्पूर्णानन्द, एक दिन पूर्व अस्वस्थ हो जाने से अथवा किसी अन्य अनिवार्य कारणवश, उत्सव की अध्यक्षता न कर सके और उसे उस समय स्थगित करना पड़ा। किन्तु उसके बाद बड़े से बड़े कतिपय अवसरों पर मुझे परशुराम का अभिनय करने का अवसर मिला। तभी से जयदेव की कविता ने मुझे अपनी ओर इस तरह आकृष्ट किया कि उस पर मैंने कुछ लिखने का पूर्ण निश्चय कर लिया था। और आज उस निश्चय को कार्यान्वित कर विद्वानों के हाथों में समर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। अपने उद्देश्य में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, इसका आकलन मेरा कार्य नहीं है। कवि के भावों की गहराई तक पहुँच कर उसे सामान्य भी संस्कृतज्ञ के समक्ष रख उसकी पूरी भलाई करने का प्रयास किया गया है। किन्तु इस प्रयास में भी किस सीमा तक मैं सफल रहा, यह तो वे ही जानें।

किसी महाकवि की कविता के भावों को सरल शब्दों में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने में जो कठिनाइयाँ होती हैं उन्हें कोई भुक्तभोगी विद्वान् ही जान सकता है। इस तरह के कार्य के लिए सारस्वत ज्ञान के साथ ही बाह्य सुविधाओं का होना भी नितान्त आवश्यक है। अन्यथा व्यक्ति को महती कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मेरे लिए तो ये कठिनाइयाँ और बढ़ जाती हैं। यतः मैं विश्वविद्यालय का वेतनभोगी सेवक हूँ। अपने परिवार का अभिभावक हूँ। डेढ़ वर्षीय बालक 'बालकृष्ण' का क्रीडा-साथी हूँ। अपनी आयु के प्रायः पाँच मास व्यतीत करने वाले बालक 'आनन्दकृष्ण' का धातृकर्मसहाय हूँ। घर का सार्वकालिक अवैतनिक सेवक हूँ। कहाँ तक कहूँ ? बस, यही समझ लिया जाय कि मैं एक गृहस्थ हूँ। इस तरह के व्यक्ति को वैचारिक मन्थन में कितनी कठिनाइयाँ होती हैं ? इसे तो कोई गृहस्थ लेखक या विचारक ही समझ सकता है। फिर भी मैंने इस कार्य को पूर्ण किया है। एतदर्थ ईश्वर और गुरुचरणों के आशीष का विशेष आभार मानता हूँ।

'प्रसन्नराघव' के इस संस्करण को वर्तमान रूप देने में यथासमय प्राप्त कतिपय संस्करणों से सहायता उपलब्ध हुई है। पाठ की दृष्टि से निर्णयसागर के पाठ को निर्णा-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यक माना गया है। किन्तु फिर भी आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र संशोधन किया ही गया है। संस्कृत की पूर्ववर्तिनी टीकाओं में गङ्गानाथ शर्मा की टीका अधिक प्रेरणा-प्रद रही। बाद के प्रसिद्ध टीकाकारों ने इससे पर्याप्त सहायता ली है। इसके अतिरिक्त भूमिका लिखने में भी कतिपय विद्वानों की कृतियों से सहायता ली गई है। इन सभी ग्रन्थों के विद्वान् लेखकों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

मोतीलाल बनारसीदास की वाराणसी शाखा के व्यवस्थापक श्री सुन्दरलाल जैन तथा उनके तरुण सहयोगी कुमारजी जैन भी अपने सहयोगात्मक कृत्यों के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

मकरसंक्रान्ति   —रमाशङ्कर त्रिपाठी

वि० सं० २०२६

१४–१–१९७०

———

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रस्तावना

संस्कृत के रूपकाकाश में महाकवि जयदेव कब प्रादुर्भूत तथा सुप्रसन्न हो आलोकित हुए इसका निर्देश उन्होंने स्वयं कहीं नहीं किया है। संस्कृत भाषा के महाकवियों के लिए यह कोई नवीन बात नहीं है। कविताकामिनी-विलास महाकवि कालिदास, संस्कृत-विभूति भवभूति तथा संस्कृत के क्रान्तिकारी कवि शूद्रक प्रभृति महाकवियों ने भी अपने सत्ताकाल एवं आश्रयदाता आदि के विषय में कुछ भी निर्देश नहीं किया है। अपनी प्रतिभा के प्रकाश से विश्व को आलोकित करनेवाले इन महाकवियों ने अपनी दैशिक तथा कालिक परिधि के उल्लेख की कोई आवश्यकता ही न समझी। इस अकिञ्चित्कर बात की ओर उनका ध्यान ही न गया। वे सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक कवि थे। उनकी महत्ता का इयत्ता देश तथा काल से घेरी नहीं जा सकती। अपने स्थान और काल की बात को लिखना वे अधिक महत्त्वपूर्ण न समझते थे।

इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि कुछ सदियों पूर्व इस तरह की बात लिखने की परम्परा भारत में प्रचलित न थी। उनकी कृतियों को लेकर कभी इतिहास के भव्य भवन का निर्माण होगा—कदाचित् यह बात उनके सामने न थी। वे केवल वर्तमानकालिक अपनी कीर्ति से ही सन्तुष्ट थे। यही कारण है कि अन्य महाकवियों की तरह जयदेव ने भी अपने निवास और समय के विवरण को नहीं दिया। फिर भी बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रमाणों के आधार पर जयदेव के स्थान एवं काल के विषय में तथ्य को प्रत्यक्ष करने का प्रयास करेंगे।

जयदेव का समय

इस महाकवि के समय निर्धारण के पूर्व यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि प्रसन्नराघव नाटक के रचयिता जयदेव और चन्द्रालोक के निर्माता जयदेव एक ही हैं। प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में ही यह सूचित किया गया है कि—इस नाटक के रचयिता सुमित्रा की कोख से जन्म लेनेवाले महादेव के पुत्र कविश्रेष्ठ जयदेव हैं[1]। इसी तरह चन्द्रालोक के प्रत्येक मयूख के अन्त में इसके रचयिता जयदेव ने अपनी

---

१. "कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो-
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः।"
"लक्ष्मणस्येव यस्यास्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृङ्गायते मनः॥"
(प्रसन्न० १—१४, १५)

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

माता का नाम सुमित्रा और पिता का नाम महादेव बतलाया है।[1] इन्हीं जयदेव का नाम 'पीयूषवर्ष' था इस बात को स्वयं उन्होंने चन्द्रालोक के प्रथम मयूख में ही कहा है।[2] इसके लिए चन्द्रालोक पर गागाभट्ट की राकागम नामक टीका की दुहाई देना अनावश्यक है, द्राविड प्राणायाम है, अपुष्ट प्रमाण है। माता पिता एवं कर्ता के नाम-साम्य से यह पूर्ण निश्चय हो जाता है कि ये दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की प्रतिभा के विलास हैं। इन नामों की समानता के अतिरिक्त चन्द्रालोक एवं प्रसन्नराघव के एक व्यक्ति की रचना होने में दूसरा प्रबल प्रमाण है—शैली, भावों एवं कतिपय शब्दों की एकरूपता। यदि चन्द्रालोक के कर्ता कृती पीयूषवर्ष जयदेव हैं तो प्रसन्नराघव के रचयिता अनुपमरस (पीयूष = अमृत) के प्रवाह से मधुर वचन-विलासवाले कवीन्द्र जयदेव हैं।[3] निश्चय ही प्रसन्नराघव में बहनेवाले असमरस (अमृत) के इसी निरन्तर प्रवाह की मधुरता का ही परिणाम रहा कि बाद में चन्द्रालोक के निर्माण काल तक पहुँचते-पहुँचते जयदेव को पीयूषवर्ष इस महती उपाधि से विभूषित किया गया होगा।

इस तरह चन्द्रालोक तथा प्रसन्नराघव के एक कवि की कृतियाँ सिद्ध हो जाने पर महाकवि जयदेव के काल-निर्धारण में महती और सुनिश्चित सहायता प्राप्त होगी। अतः अब यहाँ उनके स्थिति-काल के विषय में विचार किया जायगा।

अलङ्कार सम्प्रदाय के महान् हिमायती (समर्थक) जयदेव ने अपने अलङ्कार ग्रंथ चन्द्रालोक के प्रारम्भ में ही ध्वनिसम्प्रदाय के परमाचार्य काव्यप्रकाशकार मम्मट की काव्य-परिभाषा का सोपहास खण्डन किया है।[4] काश्मीर-तिलक मम्मट का समय ११ वीं शतीका उत्तरार्द्ध है। इससे जयदेव का स्थितिकाल ११ वीं शताब्दी के बाद ही किसी समय होना चाहिये। जयदेव ने अलङ्कार-परिभाषाओं में अलङ्कारसर्वस्व के रचयिता रुय्यक का अनुकरण किया है। "विकल्प" और "विचित्र" अलङ्कारों के प्रथम उद्भावक आचार्य रुय्यक माने जाते हैं।[5] इन दोनों अलङ्कारों की परिभाषाओं की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जयदेव ने रुय्यक का अनुकरण किया है—

---

१. महादेवः सत्रप्रमुखमखविद्यैकचतुरः,
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ।
अनेनासावाद्यः सुकविजयदेवेन रचिते
चिरं चन्द्रालोके सुखयतु मयूखः सुमनसः॥ (चन्द्रा० १—१६)

२. चन्द्रालोकममयं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कृती॥ (चन्द्रा० १—२)
अनेनासावाद्यः सुकविविजयदेवेन रचिते
चिरं चन्द्रालोके सुखयतु मयूखः सुमनसः॥ (वही० १—१६)

३. 'विलासो यद्वाचामसमरसनिष्यन्दमधुरः' इत्यादि (प्रसन्न० १—१४)

४. अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥ (चन्द्रा० १—८)

५. अनेनास्य ग्रन्थकृदुपज्ञत्वमेव दर्शितम्। (अलंकारसर्वस्व की जयरथकृत विमर्शिनी टीका)

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

"तुल्यबलविरोधो विकल्पः" (अलङ्कारसर्वस्व ६४)
"विकल्पस्तुल्यबलयोर्विरोधश्चातुरीयुतः" (चन्द्रालोक ५।९६)
"स्वविपरीतफलनिष्पत्तये प्रयत्नो विचित्रम्" (अलङ्कारसर्वस्व ४७)
"विचित्रं चेत्प्रयत्नः स्याद् विपरीतफलप्रदः" (चन्द्रालोक ५।८२)

इसके अतिरिक्त अलङ्कारों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या भी यही सिद्ध करती है कि जयदेव रुय्यक के बाद के आलङ्कारिक हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य ने ६१ तथा रुय्यक ने ७५ और जयदेव ने १०० अलङ्कारों को माना है। रुय्यक का सत्ताकाल द्वादश शताब्दी का पूर्वार्द्ध है! ये काश्मीर के राजा जयसिंह (११२८–४९ ई०) की राजसभा में उपस्थित महाकवि मङ्खक के गुरु थे। अतः जयदेव का काल १२ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बाद ही होना चाहिये।

जयदेव ने अपने चन्द्रालोक के प्रत्येक मयूख का अन्तिम श्लोक श्री हर्ष के नैषधचरित के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक की अनुकृति पर लिखा है। अपने कवित्व शक्ति के साथ-साथ पाण्डित्य के धनी और मानी कवि हर्ष जयदेव की नकल करेंगे यह उपहासास्पद प्रतीत होता है। अतः यह निश्चय है कि जयदेव ने ही श्री हर्ष का अनुकरण किया है। इसके अतिरिक्त यदि यह मान लिया जाय कि जयदेव ने प्रसन्नराघव की प्रस्तावना के २२ वें श्लोक में अन्य कवियों के साथ जिस हर्ष का उल्लेख किया है[1] वे नागानन्द तथा रत्नावली आदि नाटक-नाटिकाओं के रचयिता महाराज हर्ष न होकर 'नैषधीयचरित' के प्रणेता महाकवि श्री हर्ष ही हैं तो नकल करने के विषय की शङ्का ही पूर्णतया निर्मूल हो जाती है। तब तो यह सूर्य की भाँति स्पष्ट हो जाता है कि जयदेव ने ही श्री हर्ष का अनुकरण किया है। वस्तुतः यही बात तथ्य और पूर्ण सत्य भी है। श्री हर्ष का काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्र का राज्यकाल है। अतः जयदेव का समय १२ वीं शताब्दी के बाद ही किसी समय होना चाहिये।

इस तरह १२ वीं शताब्दी के पूर्व सीमा निश्चित हो जाने पर आइये अब जयदेव की उत्तर सीमा पर भी विचार कर लिया जाय।

अलङ्कारशेखर के निर्माता केशव मिश्र १६ वीं शताब्दी में उपस्थित थे। इन्होंने उत्कलदेश के भूपति के आश्रित जिस जयदेव कवि का निर्देश किया है[2] वे प्रसन्नराघव तथा चन्द्रालोक के रचयिता जयदेव से भिन्न थे अथवा अभिन्न यह पूर्ण निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता। किन्तु उन्होंने ही अपने ग्रन्थ में प्रसन्नराघव नाटक का

---

१. हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः (प्रसन्न० १—२२)।

२. ये केऽप्युत्कलभूपते तव सभासम्भाविताः पण्डिता।
पत्रं श्रीजयदेवपण्डितकविस्तन्मूर्ध्नि विन्यस्यति ॥ (अलंकारशेखर)

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

"कदली कदली"[1] इत्यादि पद्य उद्धृत किया है। अतः यह निश्चय है कि जयदेव १६ वीं शताब्दी के पहले ही उत्पन्न हुए थे।

चन्द्रालोक की सम्भवतः सबसे प्राचीन 'शरदागमा' नामक टीका प्रद्योतन भट्टाचार्य के द्वारा लिखी गई थी। टीका के प्रारम्भ से ही यह पता चलता है कि यह टीकाकार रींवानरेश बघेलवंश शिरोमणि श्री वीरभद्रदेव के आश्रित थे। वीरभद्रदेव ने 'कन्दर्पचूडामणि' नामक ग्रन्थ १५७७ ई० में लिखा था[2]। अतः जयदेव का काल १५७७ ई० के पूर्व ही निश्चित किया जाना चाहिये।

विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में प्रसन्नराघव का एक श्लोक उद्धृत किया है—

कदली कदली करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः॥
(प्रसन्नराघव १–३७ तथा साहित्यदर्पण ४–३)।

विश्वनाथ ने अलाउद्दीन खिलजी को एक श्लोक में उद्धृत किया है।[3] खिलजी का शासनकाल १२९६ से १३१६ ई० तक रहा। इधर विद्वानों ने साहित्यदर्पण की एक हस्तलिखित प्रति जम्मू के पुस्तकालय में ढूँढ़ निकाली है। उसका लेखनकाल सन् १३८३ ई० (सं० १४४०) है। अतः विश्वनाथ का काल १४ वीं शताब्दी का मध्य भाग होना चाहिये।

शार्ङ्गधर पद्धति में प्रसन्नराघव के कतिपय श्लोक उद्धृत हैं।[4] शार्ङ्गधर ने इस पद्धति का निर्माण १३६३ ई० में किया था। अतः जयदेव को १३६३ ई० के पूर्व ही होना चाहिये।

शिङ्गभूपाल ने अपने रसार्णवसुधाकर के तृतीय विलास में प्रसन्नराघव के दो प्रसङ्गों को उद्धृत किया है।[5] शिङ्गभूपाल का काल १३३० ई० है। अतः जयदेव

---

१. कदली कदली करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः।
भुवनत्रियतेऽपि बिभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः॥ (प्रसन्न० १—३७)

२. हरलोचनहरलोचनरसशशिभिर्विश्रुते समये।
फाल्गुनशुक्लप्रातपदि पूर्णो ग्रन्थः स्मरस्मेरः॥ (कन्दर्प० ७।२।४९)।

३. सन्धौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणिनिग्रहः।
अलावुद्दीननृपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः॥ (सा० द०, पृ० २६० कलकत्ता)

४. अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः।
निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः॥ (प्रसन्न० १।१९ तथा शार्ङ्गधरपद्धति १६४)
और भी—शार्ङ्गधरपद्धति ३५२०, ३५५७, ३६२६ तथा ३६३१ और प्रसन्नराघव १।३३, २।२२, ७।५९ तथा ७।६० भी देखें॥

५. 'यथा प्रसन्नराघवे—रावणः—कथय क्व तावत् कर्णान्तनिवेशनीयगुणं कन्यारत्नं कार्मुकञ्च।'
प्रत्यक्मंकुरितसर्वरसावतारं नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम्।
घर्मेतरांशुमिव वक्रतयातिरम्यं नाट्यप्रबन्धमतिमञ्जुलसंविधानम्॥ (प्रसन्न० १।७)

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

को १३३० ई० से पूर्ववर्ती होना चाहिये। यदि हम प्रसन्नराघव की प्रसिद्धि के लिए ३० वर्ष की भी अवधि प्रदान करें तो जयदेव का काल १२०० ई० के बाद तथा १३०० ई० के पूर्व बीच में किसी समय होना चाहिये। यदि हम जयदेव की कम से कम ५० वर्ष की आयु का भी अनुमान करें तो इतना निश्चय है कि ये १२५० के आस-पास अवश्य ही भारत-वसुधा को अलंकृत कर रहे थे।

पीयूषवर्षी जयदेव और गीतगोविन्द

क्या गीतगोविन्द, चन्द्रालोक एवं प्रसन्नराघव के निर्माता पीयूषवर्षी जयदेव की रचना है अथवा दूसरे किसी जयदेव की? इस विषय पर अभी तक सभी विचारक एकमत नहीं हो सके हैं। किन्तु यह विषय इतना स्पष्ट है कि थोड़ा भी गम्भीर विचार करने पर इस तरह के प्रश्न के उठने का कोई अवसर ही नहीं उपस्थित होता। गीतगोविन्द के कर्ता जयदेव, भोजदेव तथा राधादेवी (अथवा रामादेवी) के पुत्र थे।[1] इनकी स्त्री का नाम पद्मावती था। यह अद्भुत सुन्दरी थी। महाकवि जयदेव अपनी पूरी कविता शक्ति के साथ उनका अनुवर्तन करते थे।[2] यदि यह कामिनी जयदेव को न मिली होती तो कदाचित् जयदेव गीतगोविन्द जैसे सरस शृङ्गारिक काव्य की रचना में समर्थ न होते। यह बात कटु भले ही हो किन्तु सत्य है।

कुछ लोग कुम्भनृपतिकृत रसिकप्रिया टीका के सहित निर्णयसागर से प्रकाशित गीतगोविन्द में 'श्रीभोजदेवप्रभवस्य' इत्यादि (१२-५) श्लोक की टीका को न देखकर तथा सम्पादक महोदय के द्वारा कोष्ठक में 'अत्र श्रीभोजदेवेति श्लोकस्य टीका नोपलब्धा टीकादर्शपुस्तके' इस तरह की टिप्पणी देखकर विचार करते हैं कि कवि के माता-पिता का परिचायक यह श्लोक प्रक्षिप्त है। अतः प्रामाणिक नहीं है। किन्तु यह अनुमान हास्यास्पद; बालकोचित अतः उपेक्षणीय है। टीकादर्शपुस्तक में उक्त श्लोक के न रहने पर तथा अन्य बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थों में इसके रहने पर भी क्यों ऐसा अनुमान कर लिया गया यह बात समझ में नहीं आती इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि प्राचीन काल के विद्वान् वंशादि परिचायक तथा अत्यन्त सरल श्लोकों पर टीका नहीं लिखते थे वे उसे इसी तरह छोड़ देते थे, अथवा बहुत हुआ तो उस तरह के श्लोक के नीचे 'सुगमम्' लिख देते थे। तीसरी बात यह भी है कि हस्तलेखों में कभी-कभी लगातार चार-छः श्लोकों की जगह खाली छोड दी जाती थी और उन श्लोकों की टीकाएँ—जो अपेक्षाकृत महीन अक्षरों में होती थी—लिख दी जाती थीं। कभी-कभी श्लोक होते थे और उनकी टीकाओं की जगह खाली छोड़ दी जाती थी। ऐसा क्यों किया जाता था यह बात समझ में नहीं आती। यदि उन स्थलों में

---

१. श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु॥ (गीतगोविन्द १२—५)

२. पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती। गीतगोविन्द १—२॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कलम टूटने या खराब होने की बात सोची जाय तो भी बात जमती नहीं है। लेखक के पुनः लिखना शुरू करने पर उसे लिखकर ही आगे बढ़ना चाहिये था। जो भी कुछ हो किन्तु किसी एक हस्तलेख में किसी श्लोक की टीका के न रहने पर वह श्लोक—जब कि वह वहाँ है भी—अप्रामाणिक मान लिया जाय यह बात तर्कसंगत नहीं बैठती। अतः जल्दी की सूझ-बूझ होने के कारण यह विचार उपेक्षणीय है। इसके बल पर प्रसन्नराघव तथा चन्द्रालोक के कर्ता जयदेव तथा गीतगोविन्द के कर्ता जयदेव की अभिन्नता सिद्ध नहीं की जा सकती। निश्चय ही ये दोनों कवि भिन्न हैं। इनकी भिन्नता आगे के प्रमाणों से और भी पुष्ट हो जाती है।

इनकी भिन्नता को सिद्ध करने के लिए चन्द्रदत्त कवि के 'भक्तमाल' की दुहाई कुछ भी कारगर नहीं होती। यदि भक्तमाल और भोजप्रबन्ध जैसे ग्रन्थों के आधार पर इतिहास के भव्य भवन की भित्ति खड़ी करने का प्रयास किया गया तो शायद इतिहास यथार्थ इतिहास न होकर बच्चों की मनोरञ्जक कहानियों की रँगीली पुस्तकमात्र बन जायगा।

बङ्गदेश में बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन ११ वीं शताब्दी में राज्य करते थे। यह बात गया के पास से प्राप्त एक शिलालेख से प्रमाणित हो चुकी है। इन लक्ष्मणसेन की राजसभा में (१) आर्यासप्तशतीकार गोवर्धनाचार्य, (२) शरण कवि, (३) जयदेव, (४) उमापति और (५) कविराज ये पाँच प्रमुख सभापण्डित थे। राजा लक्ष्मणसेन के सभा भवन के द्वार पर इन सभारत्नों के नाम शिलापट्ट पर एक श्लोक के रूप में निम्नलिखित रूप से अङ्कित थे—

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य तु॥

इनमें गोवर्धनाचार्य 'आर्यासप्तशती' के रचयिता के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जयदेव गीतगोविन्द के कर्ता के रूप में विश्वविश्रुत हैं। 'कविराज' पद कदाचित धोयी कवि के लिए प्रयुक्त हुआ है। जयदेव कवि ने 'गीतगोविन्द' में अपने इन साथी कवियों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरः धोयीकविक्ष्मापतिः॥
(गीतगोविन्द १-४)

इस तरह शिलालेख की बात गीतगोविन्द से और पुष्ट हो जाती है। महाराज लक्ष्मणसेन का समय एकादश शताब्दी का अन्त तथा द्वादश शताब्दी का आरम्भ है। यही काल गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव का भी है। अतः १२५० ई० के आस-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पास स्थित प्रसन्नराघव तथा चन्द्रालोक के कर्ता जयदेव से इनकी एकता कैसे सिद्ध की जा सकती है ? जब कि दोनों के समय में प्रायः १५० वर्ष का अन्तर सिद्ध है।

गीतगोविन्द के रचयिता का जन्म बंगाल के वीरभूमि जनपद के किन्दुबिल्व ग्राम में हुआ था[१]। आज भी 'केंदुली' में हजारों वैष्णव साधुजन एकत्रित हो इस महान् वैष्णव कवि के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा की अभिव्यक्ति करते हैं। चन्द्रालोक एवं प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव की जन्मभूमि विदर्भ का कुण्डिनपुर स्थान है।[२] प्रसन्नराघव में आये 'कौण्डिन्य' शब्द की गोत्रपरक व्याख्या को भी स्थानपरक व्याख्या के परिसर में ही देखना समीचीन होगा।

प्रसन्नराघव के कर्ता जयदेव एकमात्र रामोपासक हैं। उनका चित्तचकोर रामचन्द्र में ही पूर्ण निमग्न है।[३] उनका मन-भ्रमर रामचन्द्र के ही चरण-कमल का उपासक है।[४] उनकी दृष्टि में कविता की सार्थकता रामचन्द्र के ही गुणगान में है। इसके बिना वह वन्ध्या है, निष्फल है।[५] जब कि गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव कृष्णैकतान हैं, एकमात्र कृष्ण में ही लीन हैं।[६] उन्होंने एकमात्र हरि (कृष्ण) के ही चरणों में शरण ले रक्खी है। ऐसी अवस्था में दोनों के कर्ता कवि कैसे एक हो सकते हैं। आज के युग के प्राणी को भले ही राम और कृष्ण में भेद न दिखलाई पड़े किन्तु आज से कई सौ वर्ष पूर्व इस बात को सोचना सम्प्रदाय के साथ धोखा, इष्टदेव के प्रति विश्वास की कमी मानी जाती थी।

अब तक के विवेचन से इतना तो बहुत स्पष्ट हो चुका है कि गीतगोविन्द के कर्ता जयदेव कवि तथा प्रसन्नराघव एवं चन्द्रालोक के कर्ता जयदेव कवि पूर्णतः भिन्न हैं। इनकी एकता कथमपि सम्भव नहीं।

पक्षधर मिश्र और पीयूषवर्षी जयदेव

प्रसन्नराघव के कर्ता ने प्रस्तावना में ही अपने आपको 'प्रमाण-प्रवीण' (तर्क-शास्त्र में निष्णात) बतलाया है।[८] उनका कहना है कि काव्यनिर्माण की कोमल कला तथा कर्कश तर्क वचन बोलने की क्षमता—दोनों ही एक साथ रह सकती हैं। इससे

---

१. वर्णित जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन।
किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन ॥ गीतगोविन्द ३—८ ॥

२. कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो-
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः ॥ प्रसन्नराघव १—१४ ॥

३. 'मम तु रामचन्द्र एव निर्भरमानन्दितोऽयं चित्तचकोरः।' (प्रसन्नराघव, प्रस्तावना, पृ० १४)

४. रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृङ्गायते मनः ॥ प्रसन्न० १—१५ ॥

५. किं वन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम् ॥ (प्रसन्न० १—१३)

६. तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः ॥ गीतगोविन्द १२—३ ॥

७. हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ॥ गीतगोविन्द ७—८ ॥

८. नन्वयं प्रमाणप्रवीणोऽपि श्रूयते। (पृ० २२)

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

काव्य की कोमलता में कमी नहीं आ सकती।[1] बस, इसी एक स्थल को देखकर कुछ लोगों की धारणा है कि मिथिला के तार्किक-प्रवर जयदेव मिश्र, न्याय के क्षेत्र में जिन्हें 'पक्षधर' इस उपनाम से जाना जाता था तथा प्रसन्नराघव एवं चन्द्रालोक के रचयिता जयदेव, साहित्य के क्षेत्र में जो 'पीयूषवर्ष' इस उपनाम से जाने जाते थे—एक हैं। किन्तु यह धारणा मिथ्या एवं भ्रामक है।

लोगों की यह मान्यता है कि पक्षधर मिथिलानरेश भैरवसिंह के राज्य-काल में उपस्थित थे। ऐतिहासिक विद्वान् भैरव सिंह का समय १५ वीं शताब्दी मानते हैं। विद्वानों ने पक्षधर मिश्र के हाथ से लिखा हुआ एक विष्णुपुराण खोज निकाला है। इसका लिपि-काल ३४५ लक्ष्मण संवत्सर है—

'बाणैर्वेदयुतैः सशम्भुनयनैः संख्यां गते हायने।
श्रीमद्गौडमहीभृतो गुरुदिने मार्गे च पक्षे सिते॥'

लक्ष्मण संवत्सर का प्रारम्भ १११९ ई० में हुआ है। इस प्रकार १११९ + ३४५ = १४६४ ई० में पक्षधर की स्थिति युक्तियुक्त प्रतीत होती है। इस तरह पक्षधर जयदेव तथा पीयूषवर्षी जयदेव की अभिन्नता कभी नहीं सिद्ध की जा सकती।

पक्षधर मिश्र ने गङ्गेशोपाध्याय विरचित 'तत्त्वचिन्तामणि' ग्रन्थ के ऊपर 'तत्त्व-चिन्तामण्यालोक' नामक टीका-ग्रन्थ लिखा है। इनके एक दूसरे ग्रन्थ का नाम 'द्रव्यपदार्थालोक' भी है। इनमें आलोक शब्द को देखकर तथा चन्द्रालोक में भी आलोक शब्द देखकर कुछ विद्वानों की धारणा है कि काव्यकार जयदेव तथा नैयायिक जयदेव एक ही हैं। इन लोगों के मत से 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनन्दवर्धन न होकर जयदेव ही होंगे, क्योंकि इसमें भी आलोक शब्द अन्त में लगा हुआ है। ऐसी स्थिति में प्रसन्नराघव के अतिरिक्त अनङ्गहर्ष का उदात्तराघव तथा मुरारि का अनर्घ-राघव तथा भास्कर का उन्मत्तराघव भी जयदेव का ही नाटक होना चाहिये, क्योंकि इन सबके अन्त में भी राघव शब्द लगा हुआ है। किन्तु जहाँ तक मैं सोचता हूँ मेरी समझ में यही बात आती है कि स्थिर-मति विचारक कदाचित् इस प्रकार के अस्थिर विचार को मान्यता नहीं प्रदान करेंगे।

इसके अतिरिक्त सबसे मजे की बात तो इस प्रसङ्ग में यह है कि लोगों ने पक्षधर मिश्र के ग्रन्थ का उल्लेख 'मण्यालोक' नाम से किया है। जब कि इस नाम का उनका कोई ग्रन्थ ही नहीं है। उन्होंने तो 'तत्त्वचिन्तामणि' पर आलोक लिखकर उसका पूरा नाम 'तत्त्वचिन्तामण्यालोक' रखा है। यदि उनके ग्रन्थ का नाम 'मण्यालोक' रखा जायगा तो मूलग्रंथ का क्या नाम होगा? तत्त्वचिन्ता! चिन्तामणि के आलोक की बात उत्पन्न हो सकती है न कि तत्त्वचिन्ता के मण्यालोक की बात। कुछ विचारक बन्धु तो इससे भी एक कदम आगे निकल गये और उन्होंने पक्षधर मिश्र के ग्रन्थ का

१. देखिये—प्रसन्नराघव—१—१८॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नाम 'मान्यालोक' लिख मारा। शायद उन लोगों ने अंग्रेजी से अनुवाद करने के कारण ऐसी गलती कर दी है।

जर्मन विद्वान् औफ्रेक्ट ने अपने 'केटलागोरस केटलागोरम' नामक कैटलाग (ग्रंथसूची) में कुल १५ जयदेव नामक लेखकों का उल्लेख किया है। विद्वानों ने इन जयदेवों में से किन्हीं दो-दो को लेकर एक सिद्ध करने का प्रयास किया है। किन्तु उनका आधार प्रामाणिक नहीं है।[1]

आज से कुछ वर्षों पूर्व किसी भी व्यक्ति को संस्कृत क्षेत्र में मान्य विद्वान् होने के लिए न्यायशास्त्र का पण्डित होना दुर्निवार था। जिस समय जयदेव विद्यमान थे उस समय यह भावना अत्यन्त प्रबल थी। बस, इसी एकमात्र कारण से अपने आपको पण्डित घोषित करनेवाले जयदेव ने स्वयं को प्रमाण-प्रवीण बतलाया है। इसके अतिरिक्त इस कथन के बल पर तार्किक जयदेव के साथ साहित्यिक जयदेव की अभिन्नता सिद्ध करने का प्रयास वितण्डामात्र है।

प्रसन्नराघव का वैशिष्ट्य

पाञ्चालीरीतिप्रधान प्रसन्नराघव कोमल-कान्त पदावली का भव्य निदर्शन है। सुकुमार शब्दों की चित्ताकर्षं लड़ी है। मालती की मनोहर माला है। सुन्दर सूक्तियों का आकार है। निःसन्देह महाकवि जयदेव की सूक्तियाँ सरल, सरस अथ च कोमल हुआ करती हैं। मोतियों की माला के बीच-बीच में मूँगे के दाने के समान प्रसन्नराघव में यत्र-तत्र शब्दों की वक्रता और कठिनता भी कम चित्ताकर्षक नहीं है। प्रसाद, माधुर्य, सुकुमारता और कान्ति गुण प्रसन्नराघव में कूट-कूट कर भरे पड़े हैं। यह पूर्ण सत्य है कि समूचे संस्कृत साहित्य में ऐसा कोई भी कवि नहीं है जो जयदेव के समान कोमल शब्दों के भण्डार पर पूर्ण अधिकार रखता हो। कोमलकान्तपदावली तो मानो इनके वाक्यों में आ-आकर स्वयं जुटती जाती है। इनके काव्य में कहीं ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ये शब्दों को जबर्दस्ती ठूँसकर बैठा रहे हैं। आइये जरा इनकी सरस कविता की क्षमता को तो देखिये कि इन्होंने कविता-दूल्हन को किस तरह से सजा-सँवार कर रखा है—

> यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
> भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
> हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः
> केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥ १।२२॥

है कोई कविता-कामिनी का ऐसा लम्पट प्रेमी जो उसे इस तरह दिलोजान से प्यार करते हुए सजाने की चेष्टा करे!

---

१. बटुकनाथ शर्मा (पीयूषवर्षी जयदेवः)
सुशीलकुमार दे (संस्कृत पोइटिक्स)

In Public domain. Digitization-Muthulakshmi Research Academy

बाह्याभ्यन्तर ऐसी साज-सज्जा बहुत कम देखने को मिलेगी। इनकी इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि—यदि मेघ अमृत सागर के रस को पीकर उसे ओले के रूप में स्फटिकमणि की तरह पर वर्षावे तो उसे चूसनेवाले को प्रारम्भ में कठिनता और बाद में जिस सरसता का अनुभव होता है ठीक उसी तरह की पूर्व में कठिनता और बाद में सरसता की अनुभूति जयदेव के प्रसन्नराघव को पढ़ने से होती है—

अमृतजलधेः पायम्पायं पयांसि पयोधरः
किरति करकास्ताराकारा यदि स्फटिकाघनौ।
तदिह तुलनामानीयन्ते क्षणं कठिनाः पुनः
सततममृतस्यन्दोद्गारा गिरः प्रतिभावताम् ॥ १–२१ ॥

जयदेव की प्रतिभा चतुर्मुखी है। यदि वह कविता कामिनी को सँवारने की आदी है तो परशुराम जैसे उद्धत योद्धा को धनुष-बाण और परशु से सजाकर जनकपुरी में एकत्रित राजाओं को धमकी दिलाने में सक्षम है। यदि जनक की वाटिका में सीता-राम का मिलन कराकर शृङ्गार की कली खिलाने में प्रतिभासम्पन्न है तो राम-रावण के संग्राम की विभीषिका भी फैलाने में दक्ष है। कालिदास के बाद वीर और शृङ्गार—दोनों रसों को समान भाव से प्रस्फुटित करने की पूरी क्षमता यदि संस्कृत के किसी कवि में है तो वह है महाकवि जयदेव में। प्रसन्नराघव का चतुर्थ अङ्क वीररस एवं कथोपकथन की दृष्टि से संस्कृत नाटक-साहित्य में बेजोड़ है। वैसे तो पूरा चतुर्थ अङ्क ही वीररस की खान है किन्तु—"कथं मामपि प्रणतिपात्रं ब्राह्मणमात्रमिव मन्यसे" (पुनः सामर्षम्)

जानीषे नहि जामदग्न्यमपि रे ! यद्दीर्घदोःकन्दल-
द्वन्द्वास्कन्दितबाहुना रणभुवि स्कन्देन मन्दौजसा।
नास्लाक्षीद् भुजसम्पदं मम कथं वक्त्रानुसारादिति
क्रुद्धेनोद्धतमैक्षि शङ्करकरन्यस्तं विधातुः शिरः ॥ ४–२४ ॥

(पुनः सामर्षम्) किमात्थ रे किमात्थ ! 'न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः' इति। कथं क्षत्रियजातिगर्वितो ब्राह्मणजातिं तृणाय मन्यसे ? तदिदानीमावयोः का गरीयसीति संग्रामतुलैव निर्णेष्यते।" (पृ० २०४) परशुराम की यह ललकार किसके हृदय में वीरता का सञ्चार नहीं करती ?

इस प्रकार कविता की दृष्टि से प्रसन्नराघव बहुत ही कोमल, प्रसाद गुण से सम्पन्न एवं ललित है। किन्तु नाटकीय दृष्टि से, चतुर्थ अङ्क को छोड़कर, इसका मूल्याङ्कन कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसमें प्रसिद्ध घटनाओं का वर्णनमात्र मिलता है। व्यापार की प्रगति तो इसमें है ही नहीं। सत्य तो यह है कि जयदेव में नाटक निर्माण की प्रतिभा ही नहीं है। नाटक की जगह इन्होंने यदि महाकाव्य का सृजन किया होता तो कदाचित् इन्हें अधिक सफलता मिली होती। प्रसन्नराघव सारी अवास्तविक-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

ताओं, अस्वाभाविकताओं का ऊबड़-खाबड़ सङ्कलन जैसा लगता है। कहीं भौंरों के एवं नदियों के परस्पर वार्तालाप से कथानक को आगे ढकेला गया है तो कहीं पक्षियों की बातचीत से। इसके बाद भी जब जयदेव को कथा-व्यापार आगे बढ़ाने का कोई रास्ता न रह गया तो उन्होंने इन्द्रजाल का आश्रयण लिया। अतः एक विद्याधर को आभिचारिक शक्ति से लंका की घटनाओं को दिखलाना पड़ा है। फिर भी जब गुजर होते न दिखलाई पड़ा तो उन्होंने सप्तम अङ्क में एक विशाल कवि सम्मेलन का आयोजन कर दिया, जिसमें अनावश्यक रूप से सन्ध्या, चन्द्रोदय एवं सूर्योदय का दैत्याकार वर्णन प्रस्तुत किया गया। अभिनय की दृष्टि से केवल चतुर्थ अङ्क को छोड़ कर समूचा नाटक अनुपयुक्त एवं अयोग्य है।

जयदेव की कृतियों का उत्तर-साहित्य पर प्रभाव

महाकवि जयदेव के अलङ्कार ग्रन्थ चन्द्रालोक एवं प्रसन्नराघव नाटक का उत्तरवर्ती साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अप्पय दीक्षित (१५४९–१६१३ ई० के मध्य में) ने चन्द्रालोक के अलङ्कार प्रकरण को लेकर अपने कुवलयानन्द ग्रंथ की रचना की है—

'चन्द्रालोको विजयतां शरदागमसम्भवः।
हृद्यः कुवलयानन्दो यत्प्रसादादभूदयम्॥

इसी कुवलयानन्द के आधार पर जोधपुरनरेश जसवन्त सिंह (१६८३–१७३५ ई०) ने 'भाषाभूषण' नामक हिन्दी में अलङ्कार ग्रन्थ की रचना की है। कुवलयानन्द से मिलने के कारण यह ग्रन्थ कुछ अंशों में चन्द्रालोक से भी मिल जाता है जिसके कारण कुछ लोगों को भ्रम है कि यह (भाषा-भूषण) चन्द्रालोक के आधार पर लिखा गया है। 'भाषाभूषण' का प्रभाव हिन्दी के आलङ्कारिकों पर आगे भी दृष्टिगोचर होता है।

चन्द्रालोक के समान ही प्रसन्नराघव का उत्तरवर्ती साहित्य पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है। गोस्वामी तुलसीदास ने प्रसन्नराघव के अनेक प्रसङ्गों तथा पद्यों का अक्षरशः अनुकरण किया है। पुष्पवाटिका में सीता-राम का मिलन, लक्ष्मण-परशुराम विवाद तथा विरही राम का विलाप आदि ऐसे प्रसङ्ग हैं जिन्हें गोस्वामीजी ने ज्यों का त्यों ले लिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रसन्नराघव के पद्यों को भी दोहा और चौपाइयों में अनूदित किया है। उदाहरण के रूप में दो पद्य प्रस्तुत हैं—

"चन्द्रहास हर मे परितापं रामचन्द्रविरहानलजातम्।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्ण धारया वहसि शीतलमम्भः॥"
(प्रसन्नराघव ६।३३)

'चन्द्रहास हरु मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातम्।
सीत निशा तव असिबर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥"
(रामचरितमानस)

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

"उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका॥"
(प्रसन्नराघव ७—१)

"सो परनारि लिलारगोसाईं।
तजहु चौथ चन्दा की नाईं॥"
(रामचरितमानस)

तुलसीदास के अतिरिक्त आचार्य केशव ने अपनी पूरी 'रामचन्द्रिका' की रचना प्रसन्नराघव के ही सहारे की है। उदाहरणार्थ दो पद्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

"अङ्गैरङ्गीकृता यत्र षड्भिः सप्तभिरष्टभिः।
त्रयी च राजलक्ष्मीश्च योगविद्या च दीव्यति॥"
(प्रसन्नराघव ३—७)

"अङ्ग छ सातक आठक सौ भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रई अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोग मई है॥"
(रामचन्द्रिका)

छत्रच्छाया तिरयति न यद्यन्न स्प्रष्टुमीष्टे,
दृप्यद्गन्धद्विपमदमसीपङ्कनामा कलङ्कः।
लीलालोलः शमयति न यच्चामराणां समीरः,
स्फीतं ज्योतिः किमपि तदमी भूभुजः शीलयन्ति॥
(प्रसन्नराघव ३—१२)

"विजय सब छत्रिन आदि दै काहू छुई न छुए विजनादिक बात उठौ,
न घटै न बटै निसिवासर केशव लोकनि को तमतेज भठौ।
भव भूषन भूषित होत नहीं मदमत्त गजादिमसी न लगै,
जलहूँ थलहूँ परिपूरनश्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै॥"
(रामचन्द्रचन्द्रिका)

यह सब महाकवि जयदेव की कविता की पीयूषवर्षा का ही परिणाम है कि बहुत दिनों तक कविगण उनके ग्रन्थों को अपनी रचनाओं का उपजीव्य बनाते रहे।

———

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

रामचन्द्र

विष्णु के अवतार श्री राम प्रसन्नराघव के धीरोदात्त नायक हैं। शील, सौजन्य तथा नम्रता की मूर्ति रामचन्द्र को विश्वामित्र रामभद्र कहते हैं। यह उनकी (राम की) भद्रता का ही परिणाम है। वे गुणों के आकर हैं। यही कारण है कि यदि सरस्वती भी रामचन्द्र के गुणों के समूह की प्रशंसा रूप अमृतमय बावली में स्नान न करें तो स्वर्ग से आने की उनकी थकान ही न मिटे[1]। अधिकांश कविगण अपनी कविता का वर्ण्य-विषय राम को ही बनाते हैं। यह राम के गुणगणों का अवगुण है—

'कवीनां को दोषः ? स तु गुणगणानामवगुणः ।' १—१२

यह अवगुण ऐसा है जिसकी ओर सारी दुनिया विरक्त न होकर अनुरक्त होती है। जिसे शिर-माथे रखती है। ऐसी जगहों में अवगुण शब्द गुणों के बोधक हुआ करते हैं। आखिर जयदेव कवि की सूक्तियों की यही तो वक्रता और कठिनता है, जिसके वे स्वयं दावेदार हैं—'क्वचिद्वक्रता कठिनता च' (पृ० २४)।

राम का सर्वप्रथम दर्शन द्वितीय अङ्क में होता है। वहाँ वे एक सरस युवक कवि की भाँति मधुमास की लक्ष्मी तथा सीता के यौवन का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत करते हैं। यौवन की अवस्था में भी उच्छृङ्खलता न होकर शील और सुजनता ही राम के चरित को सुशीतल बना रही है। उन्हें विभीषण का यह वचन पूर्ण याद है कि—'भविष्य में कल्याण की कामना करनेवाले सज्जनों के द्वारा, चौथ के चाँद के समान, दूसरे की स्त्री का ललाट नहीं देखा जाता—

उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ॥ ७।१ ॥

यही कारण है कि द्वितीय अङ्क की पुष्पवाटिका में जब सीता के नूपुरों की मधुर झंकार उनके कानों में पड़ती है तो सोचते हैं—'अतः हम लोगों को इस ओर नहीं देखना चाहिये। यह पराई स्त्री है—ऐसी आशङ्का भी रघुवंशियों के लिए सङ्कोच का कारण बनती है'—'तदलमस्माकमितोऽवलोकनेन। परस्त्रीति शङ्कापि सङ्कोचाय रघूणाम्' (पृ० ९४)। किन्तु जब उन्हें यह विदित हो जाता है कि यह वही जनकपुत्री है जिसके लिए हम लोग आये हैं तब उनका सङ्कोच समाप्त हो जाता है। वे रसिक भ्रमर की भाँति सीता के सौन्दर्य का पान छुक-छिप कर करने लगते हैं।

राम के उदात्त-चरित का विकासक प्रसन्नराघव का चतुर्थ अङ्क है। गुरु के

---

१. देखिये—१—११।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

आदेश से उन्होंने धनुष चढ़ाने का प्रयास अभी किया ही था कि धनुष ही टूट गया। इस पर उनके ऊपर परशुराम बिगड़ रहे हैं। जली-कटी सुना रहे हैं। मार डालने की धमकी दे रहे हैं। परशु को राम की गर्दन के पास तक पहुँचा-पहुँचा कर लौटा ले रहे हैं। किन्तु राम हाथ जोड़ते जा रहे हैं। विनती करते जा रहे हैं। वे कह रहे हैं—'आप ब्राह्मण हैं, पूज्य हैं। आपके साथ हम रघुवंशियों के युद्ध की बात भी सङ्गत नहीं बैठती युद्ध करना तो दूर रहा। हम सभी हीन बलवाले हैं। आप बलवानों के मूर्धन्य हैं[1]। पर परशुराम बिगड़ते जा रहे हैं। राम की विनती को वे कमजोर की कमी और नपुंसक की प्रार्थना मान रहे हैं। जब तक वे राम को और क्षत्रियों को बुरा-भला कह रहे थे तब तक तो कोई बात न थी। किन्तु जब उन्होंने विश्वामित्र को अनाप-शनाप कहना शुरू किया तो राम की सहनशीलता पराकाष्ठा पर पहुँच गई। उन्होंने सोचा—'क्या पूज्य विश्वामित्र की निन्दा कर रहे हैं? तो इससे अधिक नहीं सहन करूँगा[2]।' उन्होंने परशुराम को साफ-साफ बतला दिया—'धनुष मैंने तोड़ा है। आपको बुरा लगा है तो लगा रहे। मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है[3]।' फिर भी ब्राह्मण परशुराम के साथ युद्ध करने के स्थान पर उन्होंने नारायण के धनुष को चढ़ाने रूप महान् कार्य के विकल्प को ही स्वीकार किया। अन्त में पराभूत परशुराम जब राम की प्रशंसा करते हैं तो वे उनका (परशुराम का) पैर पकड़कर क्षमा माँगते हैं। यह है राम की शालीनता और सज्जनता की पराकाष्ठा।

कैकेयी ने दशरथ से वरदान माँगा है—राम वन जायँ। भरत युवराज बनें—'वनं कौशल्येयो विशतु, युवराजोऽस्तु भरतः (५-४)।' दशरथ छटपटा रहे थे। वे किङ्कर्तव्यविमूढ़ थे। राम ने परिस्थिति को भीषण देखा। प्रसन्न मन से उन्होंने पिता के चरणों में प्रणाम किया और वन को चल पड़े[4]। यह रही राम की पितृ-भक्ति।

राम का बन्धुप्रेम भी उच्च श्रेणी का है। यदि लक्ष्मण ने राज्य-सुख के स्थान में राम के साथ जङ्गल के दुःख का वरण किया है तो राम भी लङ्का के युद्ध में उनके मूर्च्छित हो जाने पर अपने जीवन को ही समाप्त कर देने का निश्चय व्यक्त करते हैं[5]। वे लक्ष्मण के बिना पुनः अयोध्या में प्रवेश करना पाप समझते हैं[6]। बलिदान का प्रतिकार कैसे किया जाता है, यह उन्हें भली-भाँति मालूम है। यदि सीता ने भी अयोध्या को छोड़कर राम के साथ रहना स्वीकार किया है तो राम भी उनके हरण कर लिये जाने पर पागल-से हो जाते हैं। अपने शरीर को भी जला डालते हैं। यह उनका स्त्री-लम्पट स्वभाव नहीं अपितु कर्तव्य की भावना से ओत-प्रोत उदात्त

---

१. देखिये—४—२५ ॥
२. देखिये—पृ० २१८ ॥
३. देखिये—पृ० २१८ ॥
४. देखिये—५—४ ॥
५. देखिये—७—३० ॥
६. देखिये—७—३२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

चरित है। संक्षेप में प्रसन्नराघव के राम मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। आदर्श पुरुष, बन्धु, पुत्र एवं पति हैं॥

रावण

प्रसन्नराघवकार जयदेव ने प्रतिनायक रावण को राक्षस के रूप में अङ्कित किया है। उसे राक्षस के रूप में घोषित करने के लिए उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ ही जिम्मेदार हैं। वह विश्वविख्यात, उत्युन्नत, पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न अवश्य है, किन्तु छल-कपट, अभिमान और दुराचरण का तो वह आकर है। आत्मश्लाघा तो उसमें कूट-कूटकर भरी हुई है। नाटक के प्रथम अङ्क में ही वह धनुर्यज्ञ के प्रसङ्ग में दर्शकों के समक्ष चोर की भाँति प्रविष्ट होता है। चोर की भाँति इसलिए कि वह अपने असली रूप में नहीं है। वह शङ्कर के धनुष को उठाने की लाख-लाख कोशिशें करता है। पूरी ताकत के साथ इसी कार्य में जुट जाता है। पर सब निष्फल। सब बेकार। रावण की भुजाओं से शिव धनुष उसी तरह नहीं डिग रहा है जैसे सती का मन कामी पुरुष के चाटु वचनों से नहीं डिगता, नहीं पथ-भ्रष्ट होता। आखिर वह हार मानकर वहाँ से चला जाता है। किन्तु सीता को अपनाने की उसकी भावना शायद अब भी समाप्त नहीं होती।

इसके बाद रावण पञ्चम अङ्क में पुनः चोर की ही भाँति दर्शकों के सामने आता है। अब कि बार उसने अपने असली क्रूर रूप को मुनिवेश से छिपा रखा है। उसका इरादा कुछ जघन्य कृत्य करने का है। अपने इस कृत्य की सफलता के लिए उसने पहले से ही मारीच को कपट-कुरङ्ग के रूप में भेज दिया है। उसे इस बात की जरा भी परवाह नहीं है कि आज वह अपने ही बन्धु मारीच की लाश पर अपने दूषित भाव-भवन को खड़ा करने जा रहा है। समूची दुनिया को भी धोखा देकर वह अपनी अभीप्सा की पूर्ति चाहता है, जानकी को बलात् लङ्का ले जाना चाहता है। यह है उसका असली राक्षस-रूप। अन्त में उसे अपने इस षड्यन्त्र में सफलता मिल भी जाती है। आखिर विधि के विधान को किसने टाला है ?

छठे अङ्क में रावण सीता को मनाने का प्रयास करता है। उसने राक्षसियों की सेना सीता के पीछे लगा रक्खी है। सीता को उद्देश्य करके उसका मन काम से व्याकुल हो रहा है। सीता उसे स्वीकार करने के लिए नहीं तैयार हैं—यह बात उसे बहुत ही खलती है। वह उन्हें मारने की भी धमकी देता है। अपनी चन्द्रहास से भी धमकाता है। एक अबला के सामने अपनी नंगी तलवार नचाने में उसे लज्जा नहीं लगती। यह है उसका राक्षसी रूप।

रावण के राक्षसी रूप के साथ ही उसका एक और रूप है और वह है योद्धा का रूप। वह त्रिलोकी का जाना-माना अद्भुत योद्धा है। उसकी वीरता के आगे देव-मण्डली भी कुछ नहीं है। न जाने कितनी बार देवों को उसने परास्त किया है। उनकी स्त्रियों को बन्दी बनाकर अपने कारागार में रख छोड़ा है। देवमण्डली उसके

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यहाँ भृत्य का काम करती है। उसे अपनी चन्द्रहास पर, भुजाओं पर पूरा-पूरा भरोसा है। कुम्भकर्ण एवं मेघनाद जैसे योद्धा भाई और पुत्र के मारे जाने पर भी उसे भय नहीं है राम के साथ उसने अपने पराक्रम के बल पर युद्ध ठाना है।

राम-रावण का भीषण संग्राम चल रहा है। अन्त में किसकी विजय होगी इसे जान पाना कठिन है, क्योंकि यह जो राम-रावण का समर है—'तुलाधिरोहः खल्वयं वीरलक्ष्याः। यन्नाम रामरावणयोः समर इति (पृ० ३६२)।' यह रावण की वीरता का ही प्रताप है कि राम भी उसे त्रिलोकी का अनुपम योद्धा मानते हैं—'अये, तदिदं विमानरत्नं यत्किल त्रिभुवनैकवीरः कुबेरानुजः कुबेरादाजहार (पृ०३९४)।'

रावण त्रिलोकी का अनुपम योद्धा अवश्य था। किन्तु उसकी वीरता पापकर्म में ही संलग्न थी। उसने अपने जीवन में कभी पुण्य तो किया ही नहीं। भगवान् शङ्कर की पूजा के पीछे भी उसकी पापभावना ही छिपी थी। वह आशुतोष को प्रसन्न कर, उनसे वरदान पाकर त्रिलोकी को आतङ्कित करना चाहता था और किया भी। अन्त में उसे अपने इन सारे पापों का प्रायश्चित्त राम के बाण-सागर में डूबकर करना ही पड़ा। उसका सारा बल, सम्पूर्ण बन्धुवर्ग और ऐश्वर्य भी उसे न बचा सका। वह सर्वदा के लिए उसी भूमि पर सो गया, जो कभी उसके तेज से दहला करती थी। आखिर पाप का परिणाम ऐसा ही होता है॥

परशुराम

प्रसन्नराघव के अन्दर परशुराम का आगमन झंझावात के समान है। अभिमानी तथा दुष्ट राजाओं के तो वे सहज शत्रु हैं। इनका विनाश परशुराम के परशु की स्वाभाविक क्रीडा है। भूतल पर से २८ बार दुर्वृत्त राजाओं का सफाया करना इसी त्रिलोकजेता योद्धा का उज्ज्वल कार्य है।[१]। जगत् में ऐसा कोई योद्धा नहीं जो क्रुद्ध परशुराम के सामने क्षण भर भी ठहरने का साहस कर सके। उन्होंने भगवान् शङ्कर से धनुर्विद्या सीखी है। महान् गुरु का महान् विद्यार्थी होना भी स्वाभाविक है। गुरुभक्त तो इतने महान् कि विश्व में अपना शानी नहीं रखते। उनके कानों तक जब यह समाचार पहुँचता है कि जनक ने शिवधनुष तोड़ने वाले या चढ़ानेवाले को अपनी कन्या सीता को देने का सङ्कल्प किया है तो उनका सोया हुआ भी कोपानल भड़क उठता है। वे जनक के पास तुरत सन्देश भेजते हैं—'जनक, शङ्कर के धनुष को चढ़ाने की बात से विरत हो जाओ, अन्यथा मेरे परशु से तुम्हारी गर्दन कटने के अलावा कोई दूसरा मार्ग तुम्हारे प्रायश्चित्त के लिए नहीं होगा[२]।' जनक नहीं माने। उन्होंने अपने पूर्वनिश्चय के अनुसार धनुषयज्ञ का आयोजन जारी रक्खा। फिर क्या था, क्रोध की साक्षात् मूर्ति परशुराम जनकपुरी में पहुँच ही गये। उन्होंने इसकी कुछ भी परवाह न

१—देखिये—४-३४।
२—देखिये—३-३८।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

की कि आज वहाँ क्षत्रिय वीरों का जमघट लगा हुआ है। वहाँ पहुँच कर उन्होंने राम के साथ बात करते हुए समूची क्षत्रिय मण्डली को ललकार दिया—

'बाणान् रिपुप्राणहरान् मदीयान् सर्वेऽपि यूयं सहिताः सहध्वम्' ॥४।३६॥

परशुराम का कोपानल भड़क रहा है। लक्ष्मण के तीखे व्यंग्य भरे वचन घी का काम कर रहे हैं। राम ब्राह्मण अतः पूज्य कह कर उन्हें प्रणाम करके मना रहे हैं। एक भाई व्यंग्य बोल रहा है और दूसरा प्रणाम कर रहा है। ब्राह्मण के नाते पूज्य कह रहा है। यह बात परशुराम को अच्छी नहीं लगती। अतः वे बिगड़ कर राम से पूछ बैठते हैं। 'कथं क्षत्रियजातिगर्वितो ब्राह्मणजातिं तृणाय मन्यसे ? तदिदानीमावयोः का गरीयसीति संग्रामतुलैव निर्णेष्यते ॥' (पृ० २०४)। 'कथमन्यमिव मामपि प्रणतिपात्रं मुनिमात्रं मन्यसे ? स एष जामदग्न्यः खल्वहम्' (पृ० २१४)।

अन्त में जब उन्हें विश्वास हो जाता है कि राम कोई साधारण बालक नहीं। यह तो नारायण के अवतार हैं। तब वे प्रसन्न हो उठते हैं और राम को बहुत-बहुत आशीर्वाद देकर पुनः तपस्यार्थ चले जाते हैं। तभी तो पहली दृष्टि में लक्ष्मण ने उन्हें वीर और शान्तरस का विकार बतलाया है—'तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः ?' (४-१५)। वस्तुतः परशुराम का चरित निकाल देने से प्रसन्नराघव छूछे नारियल के समान प्रतीत होता है। वस्तुतः कवि ने वीररस का चूडान्त निदर्शन प्रस्तुत करने के लिए ही अपने नाटक के पूरे एक अङ्क में परशुराम के धधकते अङ्गारे के समान चरित को प्रस्तुत किया है।

लक्ष्मण

इस नाटक में लक्ष्मण का चरित एक सच्चे और बलिदानी भाई तथा वीरता से लबालब भरे हुए युवक के निर्मल चरित के रूप में अङ्कित है। सर्वप्रथम नाटक के द्वितीय अङ्क में राम के साथ वे दर्शकों के समक्ष रङ्गमञ्च पर आते हैं, किन्तु इस अङ्क में तथा आगे के तीसरे अङ्क में भी ऐसी कोई बात नहीं है जो उनके चरित को उभार कर सामने ला सके। हाँ चौथे अङ्क में परशुराम के साथ वार्तालाप के समय उनके चरित का वीरस्वरूप अवश्य विकसित रूप में सबके सामने आता है। जिस समय परशुराम के तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने बड़े-बड़े क्षत्रिय योद्धा सहमे हुए एक किनारे दुबके बैठे थे, उस समय लक्ष्मण पूरी निर्भीकता के साथ परशुराम को चिढ़ाने पर तुले हुए थे। अपनी चुटीली व्यंग्य भरी बातों से वे परशुराम को मर्माहत कर रहे थे। वे इस बात को जानते थे कि बड़े भैया राम का विनयभरा व्यवहार प्रचण्डकोपन परशुराम को नहीं मना सकेगा। विष की औषध विष ही होती है। फलतः वे परशुराम को अपने व्यंग्यभरे वचनों से यह सूचित करने लगते हैं कि हमें आपके बाणों एवं परशु की कोई भी चिन्ता नहीं है। उनके दुर्विनय का यह प्रदर्शन भी विदग्धतापूर्ण है—'अलमिह माननीये मुनौ दुर्विनयवैदग्ध्येन' (पृ० २०६)। बात करने की उनकी चतुरता को देखकर वस्तुतः परशुराम भी भीतर ही भीतर आश्चर्यचकित एवं प्रसन्न हैं—'अहो, अस्य क्षत्रियबटोर्वाक्परिपाटीपाटवम्' (पृ० २०८)।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामचन्द्र वन जाने की तैयारी में हैं। उन्होंने लक्ष्मण को सलाह दी है—'वत्स लक्ष्मण, आँखें मूँद कर कुछ वर्षों को इसी अयोध्या में रहकर बिताओ तथा मेरे समान ही भरत की शुश्रूषा करो [१]।' किन्तु लक्ष्मण वह भाई नहीं हैं जो ऐसी परीक्षाओं से कर्तव्य-च्युत हो जायँ। सच्चाई आखिर सच्चाई है। उन्होंने राम से साफ-साफ कह दिया—'आपके साथ रहने पर मेरे लिए चार युग भी चार पहर के बराबर हैं। आपसे बिछुड़ कर रहने पर मेरे लिए चौदह वर्ष भी चौदह मन्वन्तर के बराबर हैं[२]। धन्य है लक्ष्मण का बन्धुप्रेम जो हिमालय जैसी कठिनाइयों को तिल के बराबर भी नहीं समझ रहा है।

सीता के वियोग में रामचन्द्र विक्षिप्त हो रहे हैं। वे वृक्षों और लताओं से अपनी प्रेयसी सीता को पूछते हैं। इन्द्रजाल को देखकर यथार्थ समझ बैठते हैं। किन्तु उनका लघु भ्राता लक्ष्मण भाई के ही समान दुःखी होते हुए उन्हें सँभाल रहा है। आश्वासन दे रहा है। वह जानता है कि यदि हम भी विवेक खो बैठेंगे तो भैया राम की क्या दशा होगी ? वस्तुतः उनका धैर्य अतुलनीय है, प्रशंसनीय है और है साथ ही साथ अनुकरणीय भी।

लङ्का के पास भीषण संग्राम छिड़ा है। त्रिलोकीजेता रावण भयङ्कर आक्रमण कर रहा है। वह सोचता है कि शक्तिप्रहार कर सर्वप्रथम बन्धुद्रोही विभीषण का ही काम समाप्त कर दें। उसे बन्धुद्रोह का मजा चखा दें। लपलपाती हुई शक्ति विभीषण की ओर बढ़ रही है। लक्ष्मण ने सोचा—यदि विभीषण संग्राम में मारा जाता है तो दुनियाँ क्या सोचेगी ? हम लोगों की वीरता किस दिन काम आवेगी। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि राम के द्वारा शरणागत विभीषण को अभयदान के ही साथ दिये गये लङ्का के आधिपत्य की बात का क्या मूल्य होगा ? बस, क्या था ! वे तुरत आगे बढ़े और रावण की शक्ति को अपनी छाती पर हँसते-हँसते ओज लिया—'लक्ष्मणेन गृहीतेयं प्रियेव निजवक्षसा (७–२८)।' इसके बाद परिणाम वही हुआ जो होना था। लक्ष्मण चेतनाशून्य हो गिर पड़े। धन्य है लक्ष्मण की वीरता। धन्य है उनकी शरणागतरक्षा की भावना।

———

१—देखिये—५—७।
२—देखिये—५—८।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

सूत्रधार	प्रधान नट
नट	सूत्रधार का सहायक
राम	अयोध्यापति दशरथ के पुत्र, नाटक के नायक
लक्ष्मण	दशरथ के पुत्र, राम के लघुभ्राता
विश्वामित्र	महर्षि, राम और लक्ष्मण के गुरु
जनक	मिथिला के अधिपति, राम के श्वसुर
शतानन्द	जनकपुरोहित
दाल्भ्यायन	याज्ञवल्क्य के शिष्य
ताण्ड्यायन	शतानन्द के शिष्य
परशुराम	महर्षि, जमदग्निपुत्र
मञ्जीरक, नूपुरक	स्तुतिपाठक
रावण	लङ्काधिपति, नाटक का प्रतिनायक
बाणासुर	बलि का पुत्र
सागर	समुद्र, नदीपति
रत्नशेखर	इन्द्रजाल दिखलानेवाला
सुग्रीव	वानरेश्वर, राम का मित्र
हनूमान्	सुग्रीव के मन्त्री
माल्यवान्	रावण का मन्त्री
विभीषण	रावण का छोटा भाई
करालक	माल्यवान का सेवक
प्रहस्त	रावण का सचिव
विद्याधर	एक देवयोनि का व्यक्ति
तापस और भिक्षु	राक्षस, रावण के सेवक, कपटवेषधारी
कुब्जक और वामन	जनक के रनिवास के सेवक

स्त्री-पात्र

सीता	जनक की पुत्री, नाटक की नायिका
गङ्गा	भागीरथी, नदी
यमुना	नदी, सूर्य की पुत्री

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयू	नदी
गोदावरी	नदी
तुङ्गभद्रा	नदी
त्रिजटा	राक्षसी, सीता की सखी
मन्दोदरी	रावण की पत्नी
विद्याधरी	विद्याधर की पत्नी
सखी, चेटी आदि	

———

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

॥ श्रीः ॥

प्रसन्नराघवम् ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रथमोऽङ्कः

चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः
श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचस्ते शार्ङ्गिणः पाणयः।
भालेष्वब्जभुवो लिखन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णावलीः
कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः॥ १ ॥

अपि च—

आकल्पं मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरी-
धीरोदात्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः।
लीलालङ्घितमेघनादविभवो यः कुम्भकर्णव्यथा-
दायी दानवदन्तिनां दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति ॥ २ ॥

प्रणम्य सिद्धमीश्वरं गुरुं सुधीवराञ्चितं
विधीयते जगत्प्रसिद्धनाटकं मनोहरम्।
प्रसन्नराघवं रमाख्यव्याख्यया समन्वितं
त्रिपाठिभी रमादिशङ्कराभिधैः शिवप्रियैः॥

अन्वयः—विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः, शोणसरोजकोरकरुचः, शार्ङ्गिणः, ते, चत्वारः, पाणयः, श्रेयः, प्रथयन्तु; ये अब्जभुवः, भालेषु, पुण्यवर्णावलीः, (तथा), श्रियः, पयोधरयुगे, गण्डद्वये, च, कस्तूरीमकरीः, युगपत्, लिखन्ति ॥ १ ॥

टीका—निर्विघ्नेन प्रारिप्सितग्रन्थपरिसमाप्तिकामः महाकविर्जयदेवः नान्दीरूपं मङ्गलं ग्रन्थादौ समाचरति—चत्वार इति। विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः—विद्रुमस्य = प्रवालस्य ('विद्रुमः पुंसि प्रवालम्' इत्यमरः) लता इव = वल्ली इव ('वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः) रक्ताः = रक्ताभाः या अङ्गुल्यः = करशाखाः ('अङ्गुल्यः करशाखाः' इत्यमरः) तासां श्रेणयः = पंक्तयः येषां येषु वा ते तथोक्ताः, अत एव शोणसरोजकोरकरुचः—शोणानि = रक्तवर्णानि यानि सरोजानि = कमलानि तेषां ये कोरकाः = कलिकाः तेषामिव रुचः = कान्तयः येषां ते, शार्ङ्गिणः = भगवतः विष्णोः, ते = भुवनप्रसिद्धाः, चत्वारः = चतुःसङ्ख्याकाः, पाणयः = कराः, श्रेयः = कल्याणम्, सामाजिकानामिति शेषः, प्रथयन्तु = विस्तारयन्तु। ये = विष्णोः कराः, अब्जभुवः = ब्रह्मणः, भालेषु = ललाटेषु, पुण्यवर्णावलीः—पुण्याः = पवित्राः पुण्यफलद्योतिकाः इत्यर्थः, वर्णावलीः = अक्षरपंक्तीः, तथा श्रियः = लक्ष्म्याः, पयोधरयुगे = विशाले कुचयुग्मे, गण्डद्वये = कपोलमिथुने, च = अपि, कस्तूरीमकरीः = मृगमदनिर्मिताः मकरिकाकाराः पत्ररचनाः च, युगपत् = एककालम्, एवेति शेषः, लिखन्ति = निर्मान्ति। ब्रह्मणो ललाटेष्वक्षरलेखना-लक्ष्म्याः कपोलयुग्मे स्तनयुगले च कस्तूरीमकरीरचनाच्च विष्णोर्विभुत्वं लीलयैव जन्म-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रथम अङ्क

अर्थः—मूंगे की लता के समान लाल अंगुलियोंवाले, रक्त कमलों की कली की कान्तिवाले, विष्णु के वे चार हाथ कल्याण का विस्तार करें; जो (हाथ) ब्रह्माजी के ललाटों में पवित्र अक्षरों की पंक्तियों को (तथा) लक्ष्मी के दोनों विशाल स्तनों (और) कपोलों पर भी कस्तूरी से मकरिका (के आकार की पत्ररेखाओं) को एक साथ लिखते हैं ॥ १ ॥

और भी—

बिना परिश्रम के ही बादलों की गड़गड़ाहट के प्रभाव को (अथवा–मेघनाद राक्षस के प्रभाव को) अतिक्रमण करनेवाली, दानवरूप हाथियोंके गण्डस्थल और कानों को (अथवा—दानवरूप हाथियों में कुम्भकर्ण राक्षस को) पीड़ा देनेवाली जो, विष्णु के मुखचन्द्र से मधुरता के साथ निकलने वाले वायु की माधुर्य से गम्भीर, उत्कृष्ट और मनोहर, पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि दश दिशाओं को (अथवा—रावण को एवं दिशाओं को) आक्रमण कर रही है (वह) आप (सामाजिकों)को कल्पपर्यन्त सुखी करे ॥ २॥

धारणं तत्तत्कार्यकरणं सीतया विवाहो विलासश्चापि सूचितः । श्लोकेऽस्मिन् उपमारूपकालङ्कारयोश्च संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १ ॥

अन्वयः—लीलालङ्घितमेघनादविभवः, दानवदन्तिनाम्, कुम्भकर्णव्यथादायी, यः, मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरीधीरोदात्तमनोहरः, पाञ्चजन्यध्वनिः, दशमुखम्, दिक्चक्रम्, आक्रामति, (सः), त्वाम्, आकल्पम्, सुखयतु ॥२॥

भङ्ग्यन्तरेण भाविनीं कथामुन्मीलयन् द्वितीयं नान्दीपद्यमवतारयति—आकल्पमिति । लीलालङ्घितमेघनादविभवः—लीलया = अनायासेन क्रीडया वा लङ्घितः = अतिशयितः मेघस्य = जलदस्य नादः = गर्जितम् तस्य विभवः = प्रभावः येन तादृशः, अथवा लीलया लङ्घितः मेघनादस्य = रावणात्मजस्य राक्षसस्येत्यर्थः विभवः येन तादृशः, दानवदन्तिनाम्—दानवाः = असुराः एव दन्तिनः = हस्तिनः तेषाम्, कुम्भकर्णव्यथादायी—कुम्भेषु = गण्डस्थलेषु कर्णेषु = श्रोत्रेषु च व्यथादायी = पीडाप्रदः, अथवा कुम्भकर्णस्य = तन्नामकस्य रावणानुजस्य व्यथादायी = पीडाप्रदायकः, विजयिनदशत्रोर्विजयध्वनिमुपश्रुत्य पराजितस्य शत्रोर्हृदि व्यथोत्पत्तिर्लोकप्रसिद्धैव, यः = जगद्विश्रुतः, मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरीधीरोदात्तमनोहरः—मुरजितः = मुरनामकस्य दैत्यस्य जेतुः श्रीविष्णोरित्यर्थः मुखेन्दोः = मुखचन्द्रस्य मधुरम् = मनोहरम् यथा तथा उन्मीलन् = निःसरन् यः मरुत् = वायुः तस्य या माधुरी = माधुर्यम् तया धीरः = गम्भीरः उदात्तः = उत्कृष्टः मनोहरः = चित्ताकर्षकः, पाञ्चजन्यध्वनिः—पाञ्चजन्यस्य = विष्णोः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अन्यच्च—

नाभीपद्मवसच्चतुर्मुखमुखोद्गीतस्तवाकर्णन-
प्रोन्मीलत्कमनीयलोचनकलाखेलन्मुखेन्दुद्युतिः ।
सक्रोधं मधुकैटभौ सकरुणस्नेहं सुतामम्बुधेः
सोत्प्रासप्रणयं सरोजवसतिं पश्यन् हरिः पातु वः ॥ ३ ॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(परितो विलोक्य । सहर्षम् ।) अये, कथममी निजवदनशारदारविन्दनर्तितगिरिनन्दिनीनयनखञ्जनस्य निखिलमुनिजनहृदयरञ्जनस्य विकटजटापटलोत्सङ्गताण्डवितगङ्गातरङ्गनिकरस्य मन्दाकिनीचन्दनललाटिकायमानमुकुटोपनीतनूतनसुधाकरस्य

शङ्खस्य ('शङ्खो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यः' इत्यमरः) ध्वनिः = रवः, दशमुखम् = दशधाभिन्नम्, दशसंख्याकमित्यर्थः, दिक्चक्रम् = दिङ्मण्डलम्, अथवा दशमुखम् = दशाननम्, दिक्चक्रञ्च, आक्रामति = दिशां पक्षे व्याप्नोति, रावणपक्षे—आक्रम्य वर्तते, (सः = सः ध्वनिः), त्वाम् = भवन्तं प्रत्येकं सामाजिकम्, आकल्पम् = आप्रलयम् ('प्रलयः कल्पः क्षयः' इत्यमरः), सुखयतु = आनन्दयतु । अत्र मेघनादकुम्भकर्णदशमुखशब्दाश्रितश्लेषैः धीरोदात्तेन विष्णोरवतारेण नायकेन रामेण मेघनादकुम्भकर्णनिराकरणपुरस्सरं रावणस्य निपातनं नाटकस्येतिवृत्तं सूचितम् । तत्सूचनञ्च कथितं नाट्यप्रदीपे नान्दीलक्षणप्रसङ्गे—'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशोऽन्यतमा मता ' इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥२॥

अन्वयः—नाभी-पद्म-वसच्चतुर्मुख-मुखोद्गीत--स्तवाकर्णनप्रोन्मीलत्-कमनीयलोचन-कला-खेलन्मुखेन्दु-द्युतिः, मधुकैटभौ, सक्रोधम्, अम्बुधेः, सुताम्, सकरुणस्नेहम्, सरोजवसतिम्, सोत्प्रासप्रणयम्, पश्यन्, हरिः, वः, पातु ॥ ३ ॥

पुनर्विष्णुं वर्णयन्नाह—नाभीति । नाभीपद्मेत्यादिः—नाभ्याम् = नाभिकूप्याम् यत् पद्मम् = कमलम् तस्मिन् वसन् = वासं कुर्वन् यः चतुर्मुखः = ब्रह्मा तस्य मुखैः = आननैः उद्गीतः = गीयमानः यः स्तवः = स्तुतिः तस्य आकर्णनेन = श्रवणेन प्रोन्मीलती = प्रफुल्लिते कमनीये = सुन्दरे ये लोचने = नेत्रे तयोः या कला = छविः तया खेलन्ती = क्रीडन्ती मिलितेत्यर्थः, मुखमेवेन्दुस्तस्य मुखेन्दोः = मुखचन्द्रस्य द्युतिः = शोभा यस्य सः तथाभूतः, अग्रे कथितस्य हरिशब्दस्य विशेषणमेतत्, मधुकैटभौ = मधुकैटभनामानौ असुरौ, सक्रोधम्=सकोपम् यथा स्यात्तथा क्रियाविशेषणमिदम्, अम्बुधेः = सागरस्य, सुताम्=पुत्रीम्, स्ववल्लभां लक्ष्मीमित्यर्थः, सकरुणस्नेहम् = दयास्नेहसहितम् यथा स्यात्तथा, सरोजवसतिम्—सरोजे = कमले वसतिः=वासः यस्य तादृशम्, ब्रह्माणमित्यर्थः, सोत्प्रासप्रणयम्—उत्प्रासप्रणयाभ्याम् = अधिकहास्यप्रीतिभ्याम् सह इति सोत्प्रासप्रणयं यथा स्यात्तथा सहासमिति यावत्, मधुकैटभभीतस्य ब्रह्मणो हास्यास्पदत्वं बोध्यम्, पश्यन् = अवलोकयन्, हरिः = विष्णुः, वः = युष्मान्, सभ्यानित्यर्थः, पातु = रक्षतु । एकदा हरेः कर्णमलान्मधुकैटभनामानावसुरौ जातौ । यदा तौ हरेर्नाभिकमलस्थं ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ तदा ब्रह्मा शयानं विष्णुं जागरयितुं तुष्टाव । स्तूयमानः उद्बुद्धश्च भगवान् तौ जघानेति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

और भी—

नाभि के कमल पर रहनेवाले ब्रह्मा के मुखों से उद्गीत स्तुति को सुनने से प्रफुल्लित सुन्दर नेत्रों की कान्ति से खेलनेवाली मुखचन्द्र की शोभा से सम्पन्न, मधु और कैटभ (नामक राक्षसों) को क्रोध के साथ, समुद्र की पुत्री (लक्ष्मी) को करुणा और स्नेह के साथ, ब्रह्मा को अधिक हास्य और प्रेम के साथ, देखते हुए हरि आप लोगों की रक्षा करें ॥ ३ ॥

(मङ्गलाचरण की समाप्ति पर)

सूत्रधार—(चारों ओर देखकर । प्रसन्नतापूर्वक) अरे, शरत् ऋतु के कमल के सदृश अपने मुख से खञ्जन पक्षियों के तुल्य पार्वती के (सुन्दर) नेत्रों को नचानेवाले (अर्थात् कमल-सदृश-सुन्दर अपने मुख की ओर पार्वती के सुन्दर नेत्रों को आकृष्ट करनेवाले), समस्त मुनिजनों के हृदय को आह्लादित करनेवाले, भयङ्कर (अपने) जटासमूह के मध्य में (आकाश से गिरी हुई) गङ्गा की तरङ्गों के समूह का ताण्डव

मार्कण्डेयपुराणस्थं वृत्तमिहानुसन्धेयम् । क्रोधकरुणास्नेहहास्यप्रणयानां विरुद्धस्वभावानामेककालमेवाविष्करणेन भगवदुत्कर्षो व्यज्यते । अत्र मुखेन्दुरित्यत्र रूपकालङ्कारः । एतस्मिन्नाटके पद्यत्रितयेन द्वादशपदात्मिका नान्दी प्रतिपादिता । उक्तञ्च नान्दीलक्षणं साहित्यदर्पणे—

'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥'

अत्र पदशब्दस्तु पादवचनः ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

नान्द्यन्ते इति । नान्द्याः = उक्तलक्षणलक्षितायाः मङ्गलाचरणात्मिकायाः क्रियायाः अन्ते = अवसाने ॥

सूत्रधार इति । सूत्रधारः = रङ्गशालायाः व्यवस्थापकः प्रधानः नटः । अत्र लक्षणया सूत्रशब्दः नाट्योपकरणादिवाचकः अभिनयनिर्देशनपरो वा । तल्लक्षणञ्चोक्तं यथा—

'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥

निजवदनेत्यादिः । निजम् = स्वकीयम् यद्वदनम् = आननम् तदेव शारदम् = शरत्कालीनम् अरविन्दम् = कमलम् तेन नर्तितौ = भ्रामितौ गिरिनन्दिन्याः = पार्वत्याः नयने = लोचने एव खञ्जनौ = खञ्जरीटौ ('खञ्जरीटस्तु खञ्जनः' इत्यमरः) येन तादृशस्य, वल्लभया पार्वत्या सप्रणयं निरीक्षितस्येति भावः, शारदोपन्यासस्तु शरद्येव खञ्जरीटनृत्यदर्शनात्, निखिलमुनिजनहृदयरञ्जनस्य—निखिलाः = समग्राः ये मुनिजनाः = ऋषिजनाः तेषां हृदयरञ्जनस्य = हृदयाह्लादकस्य, विकटेत्यादिः—विकटा = महती या जटाः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

त्रिभुवननलिननिर्माणनिर्मलविसाङ्कुरस्य भगवतः शङ्करस्य यात्रायां परिमीलिता एव पारिषदाः। तदेतानुपगम्य निजकलाविलोकनप्रसादाय तावदभ्यर्थयामि। (विमृश्य।) अथवा किमभ्यर्थनया। यतः—

आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम्।
गर्भस्थं केतकीपुष्पमामोदेनैव षट्पदाः॥ ४॥

(विलोक्य। सहर्षम्।) नूनमेतदभिसंधानादेव सामाजिकसमाजादितोऽभिवर्तते सखा मे रङ्गतरङ्गः।

(प्रविश्य)

नटः—भाव, इदं मन्मुखेनैव भवन्तमुदीरयन्ति सामाजिकाः। यत्किल 'अये भरताधिराज—' (इत्यर्धोक्ते।)

सूत्रधारः—(कर्णौ पिधाय) अहह! असमञ्जसमसमञ्जसम्। भवतु। कार्यं तावदाकर्णयामि।

तासां पटलम् = समूहः तस्य उत्सङ्गे = क्रोडे मध्ये इत्यर्थः ताण्डवितः = नर्तितः गङ्गायाः = शिरःस्थितायाः भागीरथ्याः तरङ्गनिकरः = वीचीसमूहः येन तादृशस्य, मन्दाकिनीत्यादिः—मन्दाकिन्याः = जटानिवेशितायाः गङ्गायाः ललाटभवोऽलङ्कारः ललाटिका ('पत्रपाश्या ललाटिका' इत्यमरः) चन्दनरचिता ललाटिका चन्दनललाटिका चन्दनललाटिकावदाचरन् चन्दनललाटिकायमानः = चन्दनरचितललाटभूषणायमानः मुकुटे = किरीटे उपनीतः = प्रापितः नूतनः = बालः सुधाकरः = चन्द्रः येन तादृशस्य, त्रिभुवननलिननिर्माणनिर्मलविसाङ्कुरस्य—त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम् = लोकत्रयम् तदेव नलिनम् = कमलम् तस्य निर्माणे = उत्पादने निर्मलः = स्वच्छः विसाङ्कुरः = मृणालाङ्कुरः, उपादानकारणमित्यर्थः, तस्य, जगत्त्रयसृष्टिकारणभूतस्येति भावः, भगवतः = सर्वविधैश्वर्यसम्पन्नस्य, शङ्करस्य = शिवस्य, यात्रायाम् = पूजनोत्सवे ('यात्रा देवार्चनोत्सवे' इति विश्वः), परिषदि = = सभायां साधवः पारिषदाः = सभ्याः, मिलिताः = एकीभूताः। तत् = तस्मात्, एतान् = पारिषदान्, उपगम्य = प्राप्य, निजकलाविलोकनप्रसादाय—निजकला = स्वकीया नाट्यचातुरी तस्याः विलोकने = दर्शने यः प्रसादः = अनुग्रहः तस्मै। अभ्यर्थयामि = प्रार्थयामि॥

अन्वयः—षट्पदाः, आमोदेन, गर्भस्थम्, केतकीपुष्पम्, इव, चतुराः, आकारेण, एव, परेङ्गितम्, तर्कयन्ति॥ ४॥

आकारेणेति। षट्पदाः = भ्रमराः ('द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः, इत्यमरः), आमोदेन = सौरभेण, गर्भस्थम् = कलिकावस्थम्, केतकीपुष्पम् = केतकीकुसुमम्, इव=यथा; भ्रमराः आमोदेनैव यथा गर्भस्थं केतकीप्रसूनं तर्कयन्ति तथैवेत्यर्थः; चतुराः=प्रवीणाः, आकारेण = आकृत्या, आकृतिं दृष्ट्वेत्यर्थः, मुखनेत्रादिविकारेणेति भावः, एवेति निश्चये, परेङ्गितम्—परेषाम् = अन्येषाम् इङ्गितम् = अभिप्रायम् अभिप्रायानुरूपां चेष्टां वा, तर्कयन्ति = अनुमिन्वन्ति। चतुराः आकारविकारं दृष्ट्वैव पराभिप्रायं जानन्ति।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नृत्य करानेवाले (अर्थात् तरङ्गों के समूह को उछालनेवाले), (मस्तक पर स्थित) गङ्गाजी के चन्दन से बने हुए ललाट के आभूषण की तरह प्रतीत होनेवाले बालचन्द्र को मुकुट में रखनेवाले, त्रिभुवन रूप कमल की उत्पत्ति (निर्माण) में निर्मल मृणाल के अंकुर रूप (अर्थात् समस्त जगत् के उपादान कारण) भगवान् शङ्कर की यात्रा में कैसे ये सभासद् मिल ही गये (अर्थात् कितने प्रेम से मिल गये)। तो इन लोगों के समीप जाकर अपनी (अभिनय की) कला को देखने का अनुग्रह करने के लिए सर्व-प्रथम (मैं) प्रार्थना करता हूँ। (विचार कर) अथवा प्रार्थना की क्या आवश्यकता है ? (अर्थात् कोई नहीं)। क्योंकि—

जैसे भौंरे सुगन्ध से ही (कली के) भीतर स्थित केतकी के पुष्प को (जान जाते हैं; उसी तरह) चतुर व्यक्ति आकार (देखने) से ही दूसरों के भाव को (सङ्केत को) अनुमान करके जान लेते हैं ॥ ४ ॥

(देखकर। प्रसन्नता के साथ) निश्चय ही इसी बात को जानकर मेरा मित्र रङ्ग-तरङ्ग सभ्यों के समाज से इधर आरहा है।

(प्रवेश करके)

नट—विद्वन्, सामाजिक लोग मेरे द्वारा ही आपको यह कहते हैं कि—'हे नटराज'—(ऐसा आधा कहने पर)

सूत्रधार—(कानों को ढक कर) अहह ! अनुचित (है) अनुचित (है)। अच्छा, पहले कार्य (तो) सुनता हूँ।

अतः एते सभ्याः अपि अभिनयप्रदर्शनविषयिणीं मदीयां भावनामभ्यर्थनां विनैव ज्ञास्यन्तीति भावः। अत्र दृष्टान्तोऽलङ्कारः। तल्लक्षणं साहित्यदर्पणे—'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्' इति। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४ ॥

नूनमिति। नूनम् = निश्चयेन ('नूनं तर्केऽर्थनिश्चये' इत्यमरः), एतदभिसन्धानात्—एतस्य मदुक्तश्लोकाभिप्रायस्य अभिसन्धानात् = अभिप्रायात् सामाजिकानाम् = सभ्यानाम् ('सभासदः सभास्ताराः सभ्याः सामाजिकाश्च ते' इत्यमरः) समाजात् = समवायात्। अभिवर्तते = समागच्छति ॥

नट इति। नटः = शैलूषः ('रङ्गावतारी शैलूषो नटो भरतभारतौ' इत्यमरः)। भाव = विद्वन् ('भावो विद्वन्' इत्यमरः), भाव इति नटस्य सूत्रधारं प्रति समुचितोक्तिः। इदम् = वक्ष्यमाणम्, अये भरताधिराजेत्युपन्यस्तं वाक्यमिति भावः। मन्मुखेन = मद्-द्वारा। अये भरताधिराज = हे नटाधिराज ॥

एवमुक्ते नटेऽपरं तद्वक्ष्यमाणमश्रुत्वा स्वकीयामुच्चपदवीमनुचितां मन्यमानः तदुक्तिमाक्षिपति सूत्रधारः—**कर्णौ पिधायेति**। कर्णौ = श्रोत्रे, पिधाय = आच्छाद्य, कर्णपिधानं खेदद्योतकम्। अनुचितोक्तौ लोके कर्णाच्छादनस्य परिपाटी प्रचलति। अहहेति खेद-सूचकमव्ययपदम् ('अहहेत्यद्भुते खेदे' इत्यमरः)। न समञ्जसम् = उचितम् असमञ्जसम् = अनुचितम् ('अभ्रेषन्यायकल्पास्तु देशरूपं समञ्जसम्' इत्यमरः) ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नटः—भाव, अधुना मयैव भवत्सकाशादाकर्णनीयं किमिदमसमञ्जसमिति ।

सूत्रधारः—नन्विदमेव । यत्किल नन्दति ज्यायसि कनीयसि राजपदमुपन्यस्यते । अहं हि भरतमात्रक एव । मम पुनरग्रजन्मा गुणारामनामा राजपदभाजनम् ।

नटः—कीदृग्गुणस्ते गुणारामः ।

सूत्रधारः—ननु नाम्नैव दत्तोत्तरम् ।

नटः—(विहस्य ।) कथं नाम्नैव गुणावगमः ।

सूत्रधारः—अथ किम् ।

गुणग्रामाभिसंवादि नामापि हि महात्मनाम् ।
यथा सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः ॥ ५ ॥

अपि च । किमिदं गुणारामे कथं नाम्नैव गुणावगम इत्युच्यते । यः खलु रतिजनकस्य राज्ञः सदसि हरचापारोपणं नाम रूपकमभिनीय परितुष्टेन राज्ञा समर्पितां रङ्गविद्याधराख्यातिप्रियामिव समासादितवान् ।

नटः—स पुनः सम्प्रति कं देशमभिनन्दयति ।

नट इति । भाव = विद्वन् ('भावो विद्वानथावुकः' इत्यमरः) । आकर्णनीयम् = श्रोतव्यम् ॥

सूत्रधार इति । ननु = इदमवधारणार्थकमव्ययपदम् ('प्रश्नाऽवधारणाऽनुज्ञाऽनुनयामन्त्रणे ननु' इत्यमरः) । किलेत्यरुचौ 'वार्तायामरुचौ किल' इति त्रिकाण्डकोषः) ज्यायसि=ज्येष्ठे, नन्दति = वर्तमाने, कनीयसि = वयसाऽल्पे, मयीति शेषः, राजपदम् = भरताधिराजपदम् , उपन्यस्यते = प्रयुज्यते । मत्समीपे भरताधिराजेति यदुच्यते तदेवासमञ्जसमिति भावः । हि = यस्मात् , अहं भरतमात्रक एव = साधारणो नटमात्र एव । अग्रजन्मा = श्रेष्ठः भ्राता । राजपदभाजनम्—राजपदस्य = भरताधिराजेति कथनस्य भाजनम् = पात्रम् ॥

नट इति । प्रशंसाश्रवणोपजातोत्कण्ठः नटः पृच्छति—कीदृगुणः—कीदृशाः = कीदृक्प्रकाराः गुणाः अस्येति कीदृग्गुणः = कीदृग्वैशिष्ट्यविशिष्टः । कीदृशाः सन्ति तस्मिन् गुणाः इति प्रश्नाशयः ॥

सूत्रधारः—नाम्ना = अभिधानेन, दत्तोत्तरम् = कथितोत्तरम् । अस्य नाम्नैव गुणा उक्ता इति भावः ॥

न सर्वत्र गुणाः नामानुसारिण इति मनसि निधाय नटः पृच्छति—कथमिति । नाम्नैव कथम् = केन प्रकारेण, गुणावगमः—गुणानाम् = वैशिष्ट्यानाम् अवगमः = ज्ञानम् , भवतीति शेषः ॥

अन्वयः—हि, महात्मनाम् , नाम, अपि, गुणग्रामाभिसंवादि, (भवति); यथा, सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः, (सन्ति) ॥ ५ ॥

गुणाभिसंवादं नाम्ना दर्शयितुं काव्यलिङ्गमुपन्यस्यति—गुणग्रामेति । हि = यतः ('हि हेताववधारणे' इत्यमरः), महान् आत्मा = आशयः येषां तेषां महात्मनाम् = महाशयानाम् , नाम = अभिधानम् , अपि = च, गुणग्रामाभिसंवादि—गुणानाम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नट—विद्वन्, अब मुझे ही आप से सुनना है (कि) यह क्या अनुचित हुआ ?

सूत्रधार—अरे, यही कि ज्येष्ठ के रहने पर (मुझ) कनिष्ठ में राजपद का प्रयोग किया जा रहा है। मैं तो केवल नट ही (हूँ)। और मेरे बड़े भाई गुणाराम नामवाले राजपद के पात्र हैं (अर्थात् पहले वही भरताधिराज कहे जाने के योग्य है)।

नट—आपके गुणाराम कैसे गुणवाले हैं ?

सूत्रधार—निश्चय ही (उनके) नाम के द्वारा ही उत्तर दे दिया गया है।

नट—(हँस कर) क्या नाम के ही द्वारा गुणों का ज्ञान (होता है) ?

सूत्रधार—और क्या !

क्योंकि महात्माओं का नाम भी गुणसमुदाय के (अर्थात् गुणों के) अनुरूप (होता है)। जैसे (कि) सुवर्ण (सोना), श्रीखण्ड (चन्दन), रत्नाकर (समुद्र) और सुधाकर (चन्द्र नाम हैं) ॥ ५ ॥

और भी—गुणाराम में नाम से ही कैसे गुणों का ज्ञान होता है ? यह क्या कहते हो ? जिन्होंने रतिजनक नामक राजा की सभा में 'हरचापारोपण' नामक नाटक का अभिनय कर प्रसन्न हुए राजा के द्वारा प्रदत्त 'रङ्गविद्याधर' इस पदवी को प्रिया की तरह प्राप्त किया है।

नट—तो वे इस समय किस देश को सम्मानित कर रहे हैं ? (अर्थात् इस समय किस देश में हैं ?)।

दयादाक्षिण्याद्युदात्तभावानाम् ये ग्रामाः = समूहाः तान् अभिसंवदति = अनुकूलमभिधत्ते यत् तत्तथाभूतम्, भवतीति शेषः ॥

अनुकूलान्युदाहरणानि प्रदर्शयति—यथेति। यथा = येन प्रकारेण, सुवर्ण-श्रीखण्ड-रत्नाकर-सुधाकराः— सुवर्णञ्च = कनकञ्च श्रीखण्डश्च = मलयजश्च रत्नाकरश्च = सागरश्चेति सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः, सन्तीति शेषः। अत्र सुवर्णमित्यत्र शोभनो वर्णो यस्येति व्युत्पत्तिः। श्रीखण्डः इत्यत्र श्रियः = लक्ष्म्याः खण्डः = अंशः इति व्युत्पत्तिः। रत्नाकरः इत्यत्र रत्नानाम् आकरः = आश्रयः इति व्युत्पत्तिः। सुधाकरः अत्र सुधायुक्ताः = अमृतमिलिताः कराः = किरणाः यस्येति व्युत्पत्तिः। यथा सुवर्णादिनाम्नैव तत्तद्वाच्यगुणाः व्यज्यन्ते तथैव गुणारामेति नाम्ना, आरमन्ति सानन्दं वर्तन्ते यत्र स 'आरामः' गुणानाम् आरामः गुणाराम इति व्युत्पत्त्या, विशिष्टगुणाकरत्वं व्यज्यते इति भावः ॥ ५ ॥

गुणारामस्य नाम्नोऽन्वर्थत्वं प्रतिपादयति—यः खल्विति। यः = गुणारामः, रतिजनकस्य = तन्नामकस्य राज्ञः, सदसि = सभायाम्, रूपकम् = नाटकविशेषम्, अभिनीय = प्रदर्श्य, परितुष्टेन = अभिनयचातुरीसन्तुष्टेन, राज्ञा = नृपेण, समर्पिताम् = प्रदत्ताम्, रङ्गविद्याधराख्यातिम् = रङ्गविद्याधर इति पदवीम्, प्रियामिव = कान्तामिव, समासादितवान् = प्राप्तवान्। यथा प्रियतमा प्रसन्नेन हृदयेन गृह्यते तथैव सा पदवी गृहीतेति भावः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधारः—केनापि दाक्षिणात्येन नटापसदेन ममैवेदं गुणारामेति नामेति वदता रङ्ग-विद्याधरख्यातिरपहृता । तदाकर्ण्य गुणारामस्तामेव दिशं प्रचलितः । अधुना च श्रुत-मस्माभिः, यत्किल सुकण्ठनाम्ना गायकेन सह मैत्रीं विधाय दाक्षिणात्यानां भूभुजां सदसि तेन सह रङ्गसंगरमुपक्रान्तवानिति ।

नटः—अहो । महानुपक्रमः ।

सूत्रधारः—उचितमिदम् । यतः—

कीर्तिं मृणालकमनीयभुजामनिद्र-
चन्द्राननां स्मितसरोरुहचारुनेत्राम् ।
ज्योत्स्नास्मितामपहृतां दयितामिव स्वां
लब्धुं न कः परमुपक्रममातनोति ॥ ६ ॥

तत्कथय कार्यम् ।

नटः—इदमेव । यत्किल त्वयाभिनीयमानमवलोकयाम इति ।

प्रत्यङ्कमङ्कुरितसर्वरसावतारं
नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम् ।
घर्मेतरांशुमिव वक्रतयातिरम्यं
नाट्यप्रबन्धमतिमञ्जुलसंविधानम् ॥ ७ ॥

नट इति । सः = गुणारामः, अभिनन्दयति = अलङ्करोति ॥

सूत्रधारः इति । दक्षिणस्यां दिशि भवो दाक्षिणात्यः तेन दाक्षिणात्येन = दक्षिण-दिग्भवेन, नटापसदेन—नटेषु अपसदः = नीचः तेन, रङ्गविद्याधरख्यातिः—रङ्गविद्या-धरेति पदवी, अपहृता = स्वायत्तीकृता । आत्मानं गुणारामरूपेण उद्घोष्य रङ्गविद्याधर इति पदवी गुणारामेण लब्धा स्वायत्तीकृतेति भावः । गायकेन = गानविद्याविशारदेन, सह = साकम्, मैत्रीम् = मित्रताम्, विधाय = कृत्वा, भूभुजाम् = राज्ञाम्, तेन = पदवीचौरेण नटापसदेन, रङ्गसङ्गरम्—रङ्गे = रङ्गशालाप्रयोक्तव्ये कर्मणि, अभिनये इत्यर्थः, सङ्गरम् = युद्धम्, कः श्रेष्ठः इति दर्शयितुम् अभिनयस्पर्द्धामिति भावः । अत्र गुणारामो रामम्, रतिजनकः जनकम्, नटापसदः रावणम्, आख्यातिः सीताम्, सुकण्ठः सुग्रीवं सूचयतीत्यपि बोद्धव्यम् ॥

नट इति । अहो = आश्चर्यसूचकमिदम् अव्ययपदम् । महान् = परिश्रमसाध्यः, उप-क्रमः = कार्यारम्भः ॥

अन्वयः—मृणालकमनीयभुजाम्, अनिद्रचन्द्राननाम्, स्मितसरोरुहचारुनेत्राम्, ज्योत्स्नास्मिताम्, स्वाम्, दयिताम्, इव, परैः, अपहृताम्, (स्वाम्), कीर्तिम्, लब्धुम्, कः, परम्, उपक्रमम्, न, आतनोति ॥ ६ ॥

गुणारामोपक्रममभिनन्दयन्नाह—कीर्तिमिति । मृणालकमनीयभुजाम्—मृणाले इव = बिसे इव ('मृणाले तु बिसं बिसम्' इति द्विरूपकोषः) कमनीयौ = मनोहरौ भुजौ = बाहू यस्यास्तादृशीम्, अनिद्रचन्द्राननाम्—अनिद्रः = पूर्णोदितः यः चन्द्रः = सुधाकरः तद्वत् आननम् = मुखम् यस्यास्तादृशीम्, स्मितसरोरुहचारुनेत्राम्—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधार—'गुणाराम यह नाम मेरा ही है' ऐसा कहनेवाले किसी दक्षिणी दुष्ट नट ने रङ्गविद्याधर की प्रसिद्धि का अपहरण किया (अर्थात् रङ्गविद्याधर की ख्याति ले ली)। यह सुन कर गुणाराम उसी दिशा की ओर चल पड़े। इस समय हमने सुना है कि (उन्होंने) सुकण्ठ नामक गवैये के साथ मित्रता करके दक्षिणी राजाओं की सभा में उस (दुष्ट नट) के साथ रङ्गयुद्ध को प्रारम्भ किया है (अर्थात् नीचा दिखलाने के लिए उस दुष्ट नट के साथ स्पर्द्धापूर्वक नाटकों का अभिनय प्रदर्शित करना आरम्भ किया है)।

नट—अहो ! महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है।

सूत्रधार—यह उचित (ही) है क्योंकि—

कमल के दण्ड के समान कमनीय भुजाओं से युक्त, पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुखवाली, विकसित कमलों के सदृश नेत्रों से सम्पन्न, चाँदनी के समान (स्वच्छ) मुस्कराहटवाली अपनी प्रिया की तरह शत्रुओं के द्वारा अपहरण की गई (अपनी) कीर्ति को प्राप्त करने के लिए कौन (व्यक्ति) महान् प्रयास नहीं करता ? (अर्थात् सभी करते हैं) ॥ ६ ॥

तो (अपना) कार्य बतलाओ।

नट—यही कि—

प्रत्येक अङ्क में प्रादुर्भूत (शृङ्गार आदि) सभी रसों की अवतारणा से युक्त, नूतन एवं विकसित होनेवाले फूलों की पंक्ति (माला की लड़ी) के समान सुन्दर पदरचनावाले, चन्द्रमा के समान वक्रता (कुटिलता, वक्रोक्ति) से अत्यन्त रमणीय, अत्यन्त ललित कथानकवाले, नाटक को (आपके द्वारा रङ्गमञ्चपर प्रदर्शित किया जाता हुआ देखेंगे) ॥ ७ ॥

स्मितम् = विकसितम् यत् सरोरुहम् = कमलम् तद्वत् चारुणी = कमनीये नेत्रे = लोचने यस्यास्तादृशीम्, ज्योत्स्नास्मिताम्—ज्योत्स्ना = चन्द्रिका तद्वत् स्मितम् = हसितम् यस्याः सा ताम्, स्वाम् = स्वकीयाम्, दयिताम् = वल्लभाम्, इव = यथा, परैः = शत्रुभिः, अपहृताम् = स्वायत्तीकृताम्, स्वामिति शेषः, कीर्तिम् = ख्यातिम्, लब्धुम् = पुनः प्राप्तुम्, कः = कः जनः, परम् = श्रेष्ठम्, महान्तमिति यावत्, उपक्रमम्=प्रयासम्, न आतनोति = न करोति, अपि तु सर्वः करोत्येवेति भावः। अत्र दयितापहारप्रस्तावेन भावि जानकीहरणं तदानयनार्थं रामोपक्रमश्च सूचितो भवति। प्रस्तावनायां भाविनो वस्तुनः आक्षेपस्य समीचीनत्वात्। तद्यथा दशरूपके—'स्वकार्यप्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत् तदामुखम्' इति। अत्रोपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तं तल्लक्षणं यथा—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ ६ ॥

नट इति। अभिनीयमानम् = रङ्गे प्रयुक्तं रूपकविशेषमिति भावः ॥

अन्वयः—प्रत्यङ्कम्, अङ्कुरितसर्वरसावतारम्, नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम्, धर्मेतरांशुम्, इव, वक्रतया, अतिरम्यम्, अतिमञ्जुलसंविधानम्, नाट्यप्रबन्धम्, (त्वया, अभिनीयमानम्, अवलोकयामः) ॥ ७ ॥

नाट्यप्रबन्धं विशेषयन्नाह—प्रत्यङ्कमिति। प्रत्यङ्कम् = अङ्कम् अङ्कं प्रति-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधारः—तत्कथं पुनरवधारणीयं किंनामधेयं नाटकमिति। (विमृश्य। सहर्षम्।) अये, कथमहं निजशिरःशेखरशयाल्वपि नीलोत्पलं रत्नाकरचपलवीचिमालापरिसरे विचारयामि नन्विहैव श्लोकेऽष्टपङ्क्तिक्रमाल्लिखिते स्फुटमस्ति 'प्रसन्नराघवं नाम' इति।

नटः—(तमेव श्लोकं पठित्वा। सहर्षम्।) अहो, देव्याः कविकुलकुमुदविकासचन्द्रिकायाः प्रसादमहिमा सरस्वत्याः यत्प्रसादादेवंविधाः कवीनां विचित्रमधुराः सूक्तयः समुल्लसन्ति।

सूत्रधारः—एवमेतत्। नन्वनेनैव कविनोक्तम्—

> **वाणि त्वत्पदपद्मरेणुकणिका या स्वान्तभूमिं सतां**
> **संप्राप्ता कवितालता परिणता सैवेयमुज्जृम्भते।**
> **त्वत्कर्णेऽपि चिराय यत्किसलयं सूक्तापदेशं शिरः—**
> **कम्पभ्रंशितपारिजातकलिकागुच्छे विधत्ते पदम् ॥ ८॥**

प्रत्यङ्कम्, वीप्सार्थेऽव्ययीभावः, अङ्कुरितसर्वरसावतारम्—अङ्कुरिताः = उत्पन्नाः ये सर्वे = नवसंख्याकाः रसाः = शृङ्गारादयः तेषाम् अवतारः = आविर्भावः यस्मिन तम्, नाट्यप्रबन्धमित्यस्य विशेषणम् एवमग्रेऽपि। नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम्—नव्यानि = नवीनानि अपर्युषितानीत्यर्थः, उल्लसन्ति = प्रफुल्लानि यानि कुसुमानि = प्रसूनानि तेषां याः राजयः = श्रेणयः ताः इव विराजिनः = शोभनाः सुकुमाराः, अशिथिलाश्चेत्यर्थः, बन्धाः = पदविन्यासाः यस्मिन् तम्, घर्मेतरांशुम्—घर्मः = उष्णः तदितरः = तद्भिन्नः, शीतः इत्यर्थः, अंशुः = किरणः यस्य तम्, इव = यथा, वक्रतया = चन्द्रपक्षे कुटिलतया, नाट्यप्रबन्धपक्षे वक्रोक्तिभावनया, अतिरम्यम् = अतिमनोहरम्, अतिमञ्जुलसंविधानम्—अतिमञ्जुलम् = मनोज्ञम् ('मनोज्ञं मञ्जुलम्' इत्यमरः) संविधानम् = रचना यस्मिन् तम्, नाट्यप्रबन्धम् = नाटकमित्यर्थः; त्वया अभिनीयमानम् अवलोकयामः इति पूर्वेण सम्बन्धः। अयं श्लोकः प्ररोचना। तल्लक्षणं यथा—'अत्रोन्मुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना।' अत्रोपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः॥ ७॥

सूत्रधार इति। अवधारणीयम् = निश्चेयम्। निजशिरःशेखरशयालु—निजशिरसः = स्वकीयोत्तमाङ्गस्य शेखरः = शिखरस्थमाल्यम् तस्मिन् शयालु = वर्तमानम्, नीलोत्पलम्=नीलकमलम्, रत्नाकरवीचिमालापरिसरे—रत्नाकरस्य = सागरस्य या वीचयः= लहर्यः तासां याः मालाः=पंक्तयः तासां परिसरे=प्रान्तभूमौ ('पर्यन्तभूः परिसरः' इत्यमरः), विचारयामि = तर्कयामि। समीपस्थमपि वस्तु दूरे विचारयाम्यहो मे मूर्खता? इति भावः। इहैव श्लोके = अस्मिन्नेव पद्ये। प्रसन्नराघवम्—प्रसन्नः = सर्वदैव प्रसादयुक्तः राघवः = रामः यस्मिन् तत् प्रसन्नराघवम्॥

नट इति—कविकुलकुमुदविकाशचन्द्रिकायाः—कवीनाम्=काव्यकर्तॄणाम् कुलम्= समुदायः सदेव कुमुदम् = कैरवम् तस्य यः विकासः = प्रफुल्लता तस्मिन् चन्द्रिकायाः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधार—तो फिर कैसे निश्चय किया जाय (कि अभिनय किये जानेवाले) नाटक का क्या नाम है ? (सोचकर । प्रसन्नता के साथ) अरे, कैसे मैं अपने शिर की माला में विद्यमान नीलकमल को भी समुद्र की चञ्चल तरङ्गों की पंक्ति के निकट में (स्थित) सोच रहा हूँ । निश्चय ही, आठ पंक्तियों के क्रम से लिखित इसी श्लोक में 'प्रसन्नराघव नाम' (नाटक) स्पष्ट है ।

विशेष—एक-एक चरण को दो बराबर भागों में करके प्रत्येक भाग के आदि का एक-एक अक्षर ले लिया जाय । इस प्रकार 'प्रसन्नराघवनाम' अपने आप स्पष्ट हो जाता है ।

नट—(उसी श्लोक को पढ़कर, प्रसन्नता के साथ) कवियों के समुदाय रूपी कैरवों के विकास (प्रसन्नता) में चांदनी स्वरूप सरस्वती की कृपा की महिमा आश्चर्य-जनक है । जिस (सरस्वती) की कृपा से कवियों की विचित्र एवं मधुर सूक्तियां प्रकाशित होती हैं ।

सूत्रधार—यह ऐसा ही है । अरे, इसी (ग्रन्थकर्ता) कवि के द्वारा (दूसरे ग्रन्थ में) कहा गया है—

हे सरस्वति, जो तुम्हारे चरणकमलों की धूल की कनी सज्जनों की अन्तःकरणरूपी भूमि में पड़ी, वही रूपान्तरित (होती हुई) कवितालता (के रूप में) बढ़ती है । सूक्तिनामक जिस (कवितालता) का पल्लव, शिर के कम्प से गिर गया है पारिजात की कलियों का गुच्छा जहाँ से ऐसे, तुम्हारे कान में भी बहुत दिनों से स्थान बनाये हुए है ॥ ८ ॥

ज्योत्स्नारूपायाः, प्रसादमहिमा = कृपामहत्वम् । एवंविधाः—एवंविधा = प्रकारः यासां ताः, विचित्रमधुराः—विचित्राः = गुणालङ्कारसम्पन्नाः मधुराः = माधुर्यगुणविशिष्टाः, पूर्वोक्तश्लोकरूपाः, इत्यर्थः; माधुर्ये विशेषादरः अतएव पृथगुक्तिरिति बोध्यम् । समुल्लसन्ति = प्रादुर्भवन्ति । धन्या सा कविभारती । यत्प्रसादात्तेषां सूक्तयो जगति शोभन्ते इति भावः ॥

अन्वयः—हे वाणि, या, त्वत्पदपद्मरेणुकणिका, सताम्, स्वान्तभूमिम्, सम्प्राप्ता, सा, एव, परिणता, (सती), कवितालता, उज्जृम्भते; सूक्तापदेशम्, यत्, किसलयम्, शिरःकम्पभ्रंशितपारिजातकलिकागुच्छे, त्वत्कर्णे, अपि, चिराय, पदम्, विधत्ते ॥ ८ ॥

सूत्रधार इति । नन्विति निश्चये । अनेनैव कविना = जयदेवेनैवेत्यर्थः । अन्यत्रेति शेषः ॥

वाणीति । हे वाणि=हे सरस्वति, या=विलक्षणप्रभावा, त्वत्पदपद्मरेणुकणिका—तव= भवत्याः पदे एव पद्मे पदपद्मे, रूपकसमासः, तयोः पदपद्मयोः = चरणकमलयोः रेणुकणिका=परागकणिका, सताम्=सज्जनानाम्, सत्कवीनामिति यावत्, स्वान्तभूमिम्=अन्तःकरणप्रदेशम्, सम्प्राप्ता=सङ्गता, सा एव = त्वत्पदपद्मकणिकैवेत्यर्थः, परिणता=रूपान्तरं

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनर्विभाव्य) मम पुनः कविकमलसद्मनि मुनौ वल्मीकजन्मनि मनः कौतुकितं यस्यैक-मपि वदनारविन्दमासाद्य चतुर्मुखकमलवनविहारविनोदमनुभवति भारती नाम राजहंसी ।

नटः—एवमेतत् । त्रिभुवनाभोगेऽपि हि—

भास्वद्वंशवतंसकीर्तिरमणीरङ्गप्रसङ्गस्वन-
द्वादित्रप्रथमध्वनिर्विजयते वल्मीकजन्मा मुनिः ।
पीत्वा यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः किम-
प्याकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षति ॥ ९ ॥

(विमृश्य ।) मम तु रामचन्द्र एव निर्भरमानन्दितोऽयं चित्तचकोरः । यत्कीर्तिचन्द्रिका-चुम्बितोऽयं वाल्मीकेरपि सारस्वतसागरः समुल्लास ।

सूत्रधारः—इत्थमिदम् ।

प्राप्ता, सतीति शेषः, कवितालता—कविता एव लता = वल्ली, कवितालतारूपेणेत्यर्थः, उज्जृम्भते = वर्द्धते । सूक्तापदेशम्—सूक्तम् एव अपदिश्यते अनेनेति अपदेशः = संज्ञा यस्य तत्, सूक्तिसंज्ञकं यत्किसलयमित्यर्थः, यत्किसलयम्—यस्याः = कवितालतायाः किसलयम् = नूतनं पत्रम्, शिरःकम्पभ्रंशितपारिजातकलिकागुच्छे—काव्याभिनन्दने शिरसः = मूर्ध्नः यः कम्पः = चालनम् तेन भ्रंशितः = स्खलितः यः पारिजातस्य = सुरतरोः कलिकानाम् = कुड्मलानाम् गुच्छः = स्तबकः यस्मात् स तस्मिन्, त्वत्कर्णे = भवत्याः श्रोत्रे, अपि, चिराय=बहोः कालादारभ्येत्यर्थः, पदम्=स्थानम् ('पदं व्यवसितित्राणस्थान-लक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु, इत्यमरः), विधत्ते = कुरुते, वसतीत्यर्थः । पारिजातकलिकागुच्छादपि अधिकतराह्लादजननी कविसूक्तिरिति चतुर्थचरणेन ध्वनितम् । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । तल्लक्षणम्—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडि-तम् ॥ ८ ॥

पुनर्विभाव्येति । विभाव्य = विचार्य । कविकमलसद्मनि—कवीनां, कमलमेव सद्म = वासस्थानम् यस्यासौ कमलसद्मा = ब्रह्मा तस्मिन्, कविश्रेष्ठे इत्यर्थः, वल्मीकजन्मनि —वल्मीकात् = वामलूरात् ('वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम् , इत्यमरः) जन्म = उत्पत्तिः यस्य तस्मिन्, वाल्मीकौ इत्यर्थः, कौतुकितम्—कुतुकमेव कौतुकम्=उत्कण्ठा तदस्य सञ्जातमिति कौतुकितम् = उत्कण्ठितम् । चतुर्मुखकमलवनविहारविनोदम्—चत्वारि मुखानि = आननानि एव कमलानि = सरसिजानि तेषां वनम् = उपवनम्, समवायः इत्यर्थः, तस्मिन् यो विहारः = क्रीडा तस्य विनोदम् = आनन्दम् । अनेन चतुर्मुखादपि वाल्मीके र्महत्वातिशयः सूच्यते ॥

अन्वयः—भास्वद्वंशवतंसकीर्तिरमणीरङ्गप्रसङ्गस्वनद्वादित्रप्रथमध्वनिः, वल्मीकजन्मा, मुनिः, विजयते; यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः, किमपि, पीत्वा, कविनूतनाम्बुदमयी, कादम्बिनी, आकल्पम् , वर्षति ॥ ९ ॥

नट इति । त्रिभुवनाभोगे—त्रिभुवनस्य = जगत्त्रयस्य आभोगः = विस्तारः परिधिः इत्यर्थः तस्मिन् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(फिर विचार कर) मेरा मन तो कवियों के ब्रह्मा (अर्थात् आदि कवि अथवा कविश्रेष्ठ) वाल्मीकि मुनि के विषय में उत्कण्ठित है, जिस (वाल्मीकि) के एक भी मुखकमल को प्राप्त कर सरस्वती राजहंसी ब्रह्माजी के चार मुखकमल रूप वनमें विहार के आनन्द का अनुभव करती है।

नट—यह ऐसा ही है। क्योंकि समस्त त्रिलोकी में—

सूर्य-वंश के आभूषण (श्री रामचन्द्र) की कीर्ति रूपी नटी के रङ्गशाला के प्रसङ्ग में (अर्थात् नृत्य के अवसर पर) बजनेवाले वाद्य (बाजा) की पहली ध्वनि (ताल) स्वरूप वाल्मीकि मुनि अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त कर रहे हैं। जिन (वाल्मीकि) के मुख रूप चन्द्रमण्डल से बहनेवाले काव्यामृतरूप सागर की कुछ बूँदों को पीकर कवि-रूप नवीन मेघों की माला प्रलयकाल तक वर्षा करती रहती है ॥ ९ ॥

(सोचकर) मेरा यह चित्तचकोर तो रामचन्द्र में ही अत्यन्त आनन्दित है, जिन (रामचन्द्र) की कीर्तिरूपी चाँदनी के सम्बन्ध से वाल्मीकि का भी वाङ्मय-सागर अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो गया।

सूत्रधार—यह ऐसा ही है—

भास्वदिति। भास्वान् = सूर्यः तस्य वंशः = कुलम् तस्मिन् वतंसः = अवतंसः, अलङ्कारस्वरूपः श्रीरामः इत्यर्थः, ('वष्टि भागुरिवल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इति भागुरिमतेन अल्लोपः) तस्य या कीर्तिः सा एव रमणी = नटी नृत्याङ्गनेति यावत् तस्याः यो रङ्गप्रसङ्गः = नृत्यावसरः तस्मिन् स्वनत् = शब्दायमानम् यद् वादित्रम् = वाद्यम् ('वाद्यवादित्रातोद्यनामकम्' इत्यमरः) तस्य यः प्रथमः = आद्यः ध्वनिः = तालः, लक्षणया तालभूतः, वल्मीकजन्मा—वल्मीकात् = वामलूरात् जन्म = उत्पत्तिः यस्य सः, मुनिः = वाल्मीकिरित्यर्थः, विजयते = सर्वोत्कर्षेण वर्तते। यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः—यस्य = वाल्मीकेः वदनमेव = आननमेव इन्दुमण्डलम् = चन्द्रमण्डलम् तस्मात् गलत् = निःस्यन्दमानम् यत् काव्यरूपम् अमृतम् = पीयूषम् ('पीयूषममृतं सुधा' इत्यमरः) तस्य अब्धिः = सागरः तस्य, किमपि = लवमेव, बिन्दुमेवेत्यर्थः, पीत्वा = आचम्य, कविनूतनाम्बुदमयी—कवयः=काव्यकर्तारः एव नूतनाः नवीनाः, नवाम्बुभरिताः इत्यर्थः, अम्बुदाः = जलदाः मेघाः इति यावत् तन्मयी = तत्स्वरूपा, कादम्बिनी = मेघ-माला ('कादम्बिनी मेघमाला' इत्यमरः), आकल्पम् = कल्पपर्यन्तम्, 'आङ्मर्यादाऽभिविध्योः' इत्यव्ययीभावः, वर्षति = वृष्टिं करोति। यथा मेघाः सागराज्जलं समुद्धृत्य तद्वर्षन्ति, एवमेव अर्वाचीनाः कवयः वाल्मीकिकृतं रामायणमुपजीव्य बहोः कालात् काव्य-निर्माणे प्रवृत्ताः भवन्तीति परिस्फुटार्थः। रूपकमत्रालङ्कारः। वृत्तं शार्दूलविक्रीडितम्। तल्लक्षणन्तूक्तं पुरस्तात् ॥ ९ ॥

विमृश्येति। रामचन्द्रे = राघवे, राम एव चन्द्रः तस्मिन्निति श्लेषः, निर्भरम् = दृढम् यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्, आनन्दितः = हृष्टः। यत्कीर्ति-चन्द्रिकाचुम्बितः—यस्य = भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य कीर्तिः = समज्ञा ('यशः कीर्तिः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणां च दृगञ्चले।
नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ कस्य नामोदते मनः ॥ १० ॥

अपि च।

झगिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामहविष्टपा-
न्महति पथि यो देव्या वाचः श्रमः समजायत।
अपि कथमसौ मुञ्चेदेनं न चेदवगाहते
रघुपतिगुणग्रामश्लाघासुधामयदीर्घिकाम् ॥ ११ ॥

नटः—कथं पुनरमी कवयः सर्वे रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति।

सूत्रधारः—नायं कवीनां दोषः। यतः—

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः।
यदेतैर्निःशेषैरपरगुणलुब्धैरिव जग-
त्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः ॥ १२ ॥

समशा च' इत्यमरः) सा एव चन्द्रिका = कौमुदी ('चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः) तया चुम्बितः = प्राप्तसंसर्गः इत्यर्थः। सारस्वतसागरः—सरस्वत्याः = वाग्देव्याः इदं सारस्वतम् = सरस्वतीसम्बन्धीति यावत् तदेव सागरः = समुद्रः, समुल्लास = वृद्धौ। यथा चन्द्रसम्पर्कात्सागरं वर्धते तथैव रामचन्द्रसंसर्गात् वाल्मीकेरपि हृदयस्थं काव्यं समुल्लास अथवा तत्काव्यं जगति प्रसिद्धमिति भावः ॥

अन्वयः—नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ, चन्द्रे, च, रामचन्द्रे, च, नारीणाम्, दृगञ्चले, च, कस्य, मनः, न, आमोदते ॥ १० ॥

चन्द्र इति। अत्र 'मध्यमणिन्यायेन' 'नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ' विशेषणमिदं 'चन्द्रे', 'रामचन्द्रे' तथा 'दृगञ्चले' एषु त्रिष्वपि स्थलेषु योज्यम्। नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ—नीलञ्च तदुत्पलं नीलोत्पलं तस्य नीलोत्पलस्य = नीलकमलस्य यः सुहृत् = मित्रम्, प्रकाशकत्वात्सूर्यः इत्यर्थः तस्मात् कान्तिः = प्रकाशः यस्य तस्मिन्, चन्द्रे = सुधाकरे, क्षीणश्चन्द्रः सूर्यसकाशात् प्रकाशं गृह्णातीति पुराणेषु ज्योतिश्शास्त्रे च प्रसिद्धम्, च = तथा, नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ—नीलोत्पलस्य = नीलकमलस्य सुहृत् = समाना तत्सदृशीत्यर्थः कान्तिः = देहप्रभा यस्य तस्मिन्, रामचन्द्रे = रामे, च, नारीणाम् = ललनानाम्, नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ = नीलोत्पलस्य सुहृत् = तत्सदृशी कान्तिः = आभा शोभा वा यस्य तस्मिन्, दृगञ्चले—कटाक्षे, च, कस्य = कस्य जनस्य, मनः = चेतः, न = नहि, आमोदते = आह्लादितं जायते। अपितु सर्वेषामेव आमोदते इति काक्वा व्यज्यते। अलङ्कारोऽत्र दीपकम्। अनुष्टुब्वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १०॥

अन्वयः—पितामहविष्टपात्, झगिति, जगतीम्, आगच्छन्त्याः, वाचः, देव्याः,

Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूर्य से प्रकाश पानेवाले चन्द्र में, नीलकमल के समान (शरीर की) कान्तिवाले श्री रामचन्द्र में और नीलकमल के सदृश आभावाले स्त्रियों के कटाक्ष में किसका मन आह्लादित नहीं होता ? (अर्थात् इन तीनों में सभी व्यक्तियों का मन आह्लादित होता है) ॥ १० ॥

विशेष—'मध्यमणिन्याय' से 'नीलोत्पलमुद्धलकान्तौ' यह विशेषण 'चन्द्रे', 'रामचन्द्रे' तथा 'दृगञ्चले' तीनों के साथ लगेगा ।

और भी—

ब्रह्माजी के लोक से जल्दी से पृथ्वी को आती हुई सरस्वती देवी को बहुत लम्बे मार्ग में जो श्रम हुआ उसको वह कैसे दूर करतीं यदि रामचन्द्रजी के गुणों के समूह की प्रशंसा रूपी अमृतमय बावली में न स्नान करतीं ॥ ११ ॥

नटः—वे सभी कवि रामचन्द्र का ही फिर वर्णन क्यों करते हैं ?

सूत्रधार—यह कवियों का दोष नहीं है । क्योंकि—

अपने सुन्दर वचन-रचनाओं से युक्त काव्यों के वर्णनीय विषय एकमात्र रामचन्द्र जी को चुननेवाले (बनानेवाले) कवियों का क्या दोष ? वह तो (रामचन्द्र जी के) गुणगणों का दोष (है) । क्योंकि संसार में (रामचन्द्र जी में पहले से स्थित) अन्य गुणों के साथ (निवास के लिए) लालायित के समान समस्त इन गुणों के द्वारा केवल

महति, पथि, यः, श्रमः, समजायत; एनम्, असौ, कथम्, मुञ्चेत्, चेत्, रघुपति-गुणग्रामश्लाघासुधामयदीर्घिकाम्, न, अवगाहते, ॥ ११ ॥

झगितीति । पितामहविष्टपात्—पितामहस्य = ब्रह्मणः विष्टपात् = लोकात् ('जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः) झगिति = झटिति, जगतीम् = पृथिवी-लोकम्, आगच्छन्त्याः = आयान्त्याः, वाचः देव्याः = सरस्वत्या इत्यर्थः, महति = विशाले, पथि = मार्गे, यः श्रमः = या श्रान्तिः, समजायत = अभवत्, एनम् = मार्ग-चलनोद्भवं श्रमम्, असौ = वाग्देवी, कथम् = केन प्रकारेण, मुञ्चेत् = त्यजेत्, चेत् = यदि, रघुपतिगुणग्रामश्लाघासुधामयदीर्घिकाम्—रघुपतेः = श्रीरामस्य गुणानाम् = सद्भावानाम् शौर्यादिगुणानां वा यो ग्रामः = समूहः तस्य या श्लाघा = प्रशंसा सा एव सुधा = अमृतम् तन्मयी या दीर्घिका = वापी ('वापी तु दीर्घिका' इत्यमरः) ताम्, न अवगाहते = न प्रविशति । अपीति शङ्कायाम् ('शङ्कासम्भावनास्वपि' इत्यमरः) । जाते च परिश्रमे लोकोऽवगाहते शीतलजलभरितं जलाशयम् । तेन श्रमापनयनप्रतीतिस्तु सर्वसाधारणी । वाग्देव्यपि ब्रह्मलोकादत्रागमनेन श्रान्ता । अतः सा रामचन्द्रगुणग्रामा-मृतसम्पर्कात् विगतश्रमा जातेति भावः । अत्र रूपकालङ्कारः । हरिणीवृत्तं तल्लक्षणं यथा—

नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥११॥

अन्वयः—स्वसूक्तीनाम्, पात्रम्, एकम्, रघुकुलतिलकम्, कलयताम्, कवी-नाम्, कः, दोषः; सः, तु, गुणगणानाम्, अवगुणः, (अस्ति); यत्, जगति, अपर—गुणलुब्धैः, इव, निःशेषैः, एतैः, एकः, असौ, सततसुखसंवासवसतिः, चक्रे ॥१२॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च । भोः,

बीजं यस्य चिरार्जितं सुचरितं प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः
काण्डः पण्डितमण्डलीपरिचयः काव्यं नवः पल्लवः ।
कीर्तिः पुष्पपरम्परा परिणतः सोऽयं कवित्वद्रुमः
किं वन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम् ॥ १३ ॥

नटः—कः पुनरस्य कविः ।

सूत्रधारः—(सप्रणयकोपम् ।)

विलासो यद्वाचामसमरसनिष्यन्दमधुरः
कुरङ्गाक्षीबिम्बाधरमधुरभावं गमयति ।
कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो-
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः ॥ १४ ॥

स्वसूक्तीनामिति । स्वसूक्तीनाम् = स्ववचनरचनाचातुरीणाम्, स्वकाव्यानामित्यर्थः, पात्रम् = आधारम्, विषयमिति यावत्, एकम् = केवलम्, रघुकुलतिलकम्—रघोः कुलस्य=रघुवंशस्य तिलकम्=मौलिभूषणम्, श्रीराममित्यर्थः, कलयताम्= मन्यमानानाम्, कुर्वतामित्यर्थः, कवीनाम् = कवयितॄणाम्, कः = कीदृशः, दोषः = दूषणम् ? न कोऽपीत्यर्थः । कवीनां नायं दोषः कस्य तर्हीति शङ्कायामाह—सः = दोषः, तु, गुणगणानाम्—गुणानाम् = रामे पूर्वत एव विद्यमानानां सुशीलत्वादिगुणानाम् गणः = समुदायः तस्य अवगुणः = दोषः । आस्ते इति शेषः । यत् = यस्मात्, जगति = संसारे, अपरगुणलुब्धैः—अपरे = अन्ये, रामे पूर्वत एव विद्यमानाः इत्यर्थः, ये गुणाः = सुशीलत्वादिगुणाः, तेषु लुब्धैः इव = साभिलाषैः इव, अथवा न परः = श्रेष्ठः यस्मात् सोऽपरः = सर्वश्रेष्ठः यः गुणः तस्मिन् लुब्धैरित्यादिः पूर्ववत्, निःशेषैः = समग्रैः, गुणैः = उदात्तभावैः, सततसुखसंवासवसतिः—सततम् = निरन्तरम् यः सुखेन = आनन्देन संवासः = सहवासः तस्य वसतिः = निवासस्थानम्, चक्रे = कृतः । दृश्यते हि लोके ज्ञातिभिः सह ज्ञातीनां सहवासः । एवमेव जगति येऽन्ये गुणाः सन्ति तेऽपि रामचन्द्रगुणैः सह निवसितुमभिलषन्तीति रामः तैः स्वाश्रयः कृत इति भावः । अत्रालङ्कारस्तु उत्प्रेक्षा वृत्तं च शिखरिणी, तल्लक्षणं यथा—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ १२ ॥

अन्वयः—चिरार्जितम्, सुचरितम्, यस्य, बीजम्; प्रज्ञा, (यस्य), नवीनः, अंकुरः; पण्डितमण्डलीपरिचयः, (यस्य), काण्डः; काव्यम्, (यस्य), नवः, पल्लवः; कीर्तिः, (यस्य), पुष्पपरम्परा; परिणतः, सः, अयम्, कवित्वद्रुमः; रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम्, विना, किम्, वन्ध्यः, क्रियते ? ॥ १३ ॥

पूर्वोक्तमेव प्रकारान्तरेण द्रढयति—बीजमिति । चिरार्जितम्—चिरकालसञ्चितम्, अनेकजन्मपरम्परासञ्चितमित्यर्थः, सुचरितम् = पुण्यम्, यस्य = कवित्वद्रुमस्य, बीजम् = कारणम्; पूर्वोपात्तपुण्यं विना काव्ये प्रवृत्तिः पाटवञ्चापि दुष्करमिति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यह रामचन्द्र ही निरन्तर सुखपूर्वक रहने का आश्रय बनाये गये हैं ॥ १२ ॥

और भी । अरे,

बहुत दिनों से (अर्थात् जन्म-जन्मान्तर से) उपार्जित पुण्य जिसका बीज (है); प्रतिभा (जिसका) नवीन अंकुर (है); पण्डितों (अर्थात् काव्य के मर्मज्ञ पण्डितों) की मण्डली का सेवन (जिसका) स्कन्ध (तना) है; काव्य (जिसका), नूतन पल्लव (है); कीर्ति (जिसकी) फूलों की पंक्ति (है); अत्यन्त समृद्ध ऐसा यह काव्यरूपी वृक्ष रघुकुल-भूषण (रामचन्द्र जी) की प्रशंसा रूपी फल के बिना क्या निष्फल (बाँझ) किया जाता है ? (अर्थात् नहीं) ॥ १३ ॥

नट—इस (नाटक) का कवि कौन है ?

सूत्रधार—(प्रेमपूर्ण क्रोध के साथ)

अनुपम रस के प्रवाह से मधुर जिनकी वाणियों का विलास मृगनयनी के बिम्बफल के समान (लाल) ओष्ठ की मधुरता का अनुभव कराता है। कवि श्रेष्ठ, कुण्डिनगोत्र में उत्पन्न, महादेव के पुत्र, वे जयदेव जी यहाँ तुम्हारे कानों के आतिथ्य को क्या प्राप्त नहीं हुए ? (अर्थात् क्या तुमने जयदेव का नाम अपने कानों से नहीं सुना

सुचरितं तद्बीजं कथितमिति भावः । प्रज्ञा = नूतननूतनभावाविष्कारिणी प्रतिभा, काव्यजननीति भावः, यस्य नवीनः = अचिरोद्गतः, अंकुरः = प्ररोहः, अस्तीति क्रियाशेषः । प्रज्ञां विना कवेः काव्यमुपहसनीयतां गच्छतीत्याचार्याः । पण्डितमण्डलीपरिचयः— पण्डितानाम् = काव्यमर्मविदाम् मण्डली = समवायः तस्याः परिचयः = सेवनम् , काव्यज्ञशिक्षाप्राप्तिरिति भावः, यस्य, काण्डः = स्कन्धः ('काण्डो नालेऽधमे वर्गे द्रुमस्कन्धे' इति हैमः), वाक्यसमासौ सर्वत्र अस्तीति क्रियाशेषः । काव्यम् = रसात्मकवाक्यावलिः, यस्य नवः = नूतनः, पल्लवः = किसलयम् । कीर्तिः = यशः, काव्यनिर्माणजन्यं यशः इत्यर्थः, यस्य पुष्पपरम्परा = कुसुमसमृद्धिः । परिणतः = समृद्धः, सः = अनन्तरमेव निर्दिष्टः, अयम् = एषः, मम मनसि चिन्तितः इति भावः, कवित्वद्रुमः = काव्यवृक्षः, रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम्—रघुकुलस्य = रघुवंशस्य यः उत्तंसः = आभूषणम् , श्रीरामः इत्यर्थः, तस्य या प्रशंसा = कीर्तिगायनम् तदेव फलम् = परिणामम् , विना, किमिति प्रश्ने, वन्ध्यः = निष्फलः, क्रियते = विधीयते ? नैवेति भावः । सर्वावयवसमृद्धमपि काव्यं रामचरितवर्णनं विना निष्फलमेवेति कविहृदयम् । अत्र शक्तिर्निपुणता—लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात् । काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥' इत्याचार्यमम्मटोक्तिर्विचारणीया । श्लोकेऽत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—असमरसनिष्यन्दमधुरः, यद्वाचाम्, विलासः, कुरङ्गाक्षीबिम्बाधरमधुरभावम् , गमयति; कवीन्द्रः, कौण्डिन्यः, महादेवतनयः, सः, जयदेवः, इह, तव, श्रवणयोः, आतिथ्यम् , किम् , न, अयासीत् ॥ १४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च ।

लक्ष्मणस्येव यस्यास्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः ।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृङ्गायते मनः ॥ १५ ॥

नटः—कथमविदितचन्द्रमसश्चकोरकिशोरकस्य चरितमनुसृतोऽस्मि । तेन हि मम हस्ते निजनाटकमर्पयित्वेदमुक्तोऽस्मि—'रक्षणीयमिदं सूक्तिरत्नं चोरेभ्यः' इति । स च मया सविनयमिदमुक्तः—

कर्णे निधाय च पिधाय च कण्ठपीठे
धृत्वा च मूर्धनि नते हृदये च कृत्वा ।
चोरापहारचकितेन चिरं मयैष
त्वत्सूक्तिमौक्तिकगणः परिरक्षणीयः ॥ १६ ॥

नाटककर्तुः परिचयमालापप्रस्तावेनोपस्थापयति—विलास इति । असमरसनिष्यन्दमधुरः—असमाः = अनुपमाः, अलौकिकाः इति भावः; ये रसाः = शृङ्गारादयः तेषां निष्यन्देन = प्रवाहेण मधुरः = माधुर्यगुणोपेतः, यद्वाचाम्—यस्य = जयदेवस्य वाचाम् = वाणीनाम्, विलासः = विभ्रमः क्रीडा वा, आस्वादः इति भावः, कुरङ्गाक्षीविम्बाधरमधुरभावम्—कुरङ्गः=हरिणः ('मृगे कुरङ्गवातायुहरिणाजिनयोनयः' इत्यमरः) तस्य इव अक्षिणी = लोचने यस्याः सा कुरङ्गाक्षी = मृगनयनी, सौन्दर्यान्विता ललना इत्यर्थः, तस्याः बिम्बाधरः—बिम्बम् = बिम्बफलम् इव अधरः = निम्नौष्ठः, ओष्ठः इत्यर्थः, तस्य मधुरभावम् = माधुरीम्, गमयति = अनुभावयति । कुरङ्गाक्षीबिम्बाधरमधरभावमिति पाठान्ते तु—कुरङ्गाक्षीबिम्बाधरम् अधरभावम् = हीनतामित्यर्थोऽवधेयः । रमण्याः बिम्बाधरादप्युत्कृष्टो जयदेववाग्विलासः इत्यर्थः । कवीन्द्रः = कविश्रेष्ठः, कौडिन्यः = कुण्डिनगोत्रोत्पन्नः, महादेवस्य तनयः = पुत्रः, सः = पूर्वोक्तगुणविशिष्टो जगति प्रसिद्धो वा, जयदेवः = एतन्नाटककर्ता कविः, इह = संसारे अत्र वा, तव = नटस्य, श्रवणयोः = श्रोत्रयोः, आतिथ्यम् = अतिथिभावम्, किं न अयासीत् = किं न अगमत् । एतादृशस्यानुपमस्य कवेर्जयदेवस्य कीर्तिं किं त्वं न कदापि श्रुतवानसीति भावः । नाटकादौ कविपरिचयस्यौचित्यात् । तथा च भरतोक्तिः—'गोत्रं नाम च बध्नीयादिति' । अत्र शिखरिणीवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ १४ ॥

अन्वयः—लक्ष्मणस्य, इव, सुमित्राकुक्षिजन्मनः, यस्य, अस्य, मनः, रामचन्द्रपदाम्भोजे, भ्रमत्, भृङ्गायते ॥ १५ ॥

लक्ष्मणस्येति । लक्ष्मणस्य = सुमित्रातनयस्य, इव = यथा, सुमित्राकुक्षिजन्मनः—सुमित्रायाः तन्नामधेय्याः (लक्ष्मणपक्षे—दशरथपत्न्याः, कविपक्षे—महादेवपत्न्याः) कुक्षेः = गर्भात् जन्म = उत्पत्तिः यस्य तथाभूतस्य, सुमित्रापुत्रस्येति यावत्, यस्य अस्य = एतन्नाटककर्तुः कवीन्द्रस्य जयदेवस्य, मनः = चेतः, रामचन्द्रपदाम्भोजे—रामचन्द्रस्य = रामस्य पदाम्भोजे = चरणकमले, भ्रमत् = सञ्चरत्, भृङ्गायते

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

है ?) ॥ १४ ॥

और भी—

लक्ष्मण के समान सुमित्रा की कोख से जन्म लेनेवाले जिन इन (जयदेव) का मन रामचन्द्र के चरण-कमल में भ्रमण करता हुआ भौंरे के समान आचरण करता है (क्या उन जयदेव का नाम तुमने नहीं सुना है ?) ॥ १५ ॥

नट—चन्द्रमा को न जाननेवाले चकोर के शिशु के चरित्र का (मैंने) कैसे अनुसरण किया ? (अर्थात् दुःख है—कि इस कवि को न जानना वैसे ही आश्चर्यजनक है जैसे चकोर के बच्चे के द्वारा चन्द्रमा को न जानना)। क्योंकि उनके द्वारा मेरे हाथ में अपना (यह) नाटक सौंप कर (मैं) यह कहा गया हूँ (कि)—(नाटक रूप) यह सूक्तिरत्न चोरों से बचाने योग्य है' (अर्थात् नाटकरूप इस सुभाषितरत्न की चोरों से रक्षा करना)। तदनन्तर वे मेरे द्वारा यह कहे गए (अर्थात् मैंने उनसे कहा)—

चोरों के द्वारा (किये जाने वाले) अपहरण से सावधान मेरे द्वारा यह आपका सूक्तिरूप मोतियों का समूह कान में रख कर, कण्ठ-स्थान में छिपाकर मस्तक पर धारण कर और नम्र हृदय में रख कर भी चिरकाल तक बचा कर रक्खा जायगा ॥१६॥

=भ्रमर इव आचरति। यथा सुमित्रापुत्र एकाग्रेण मनसा रामं सिषेवे तथैवायं सुमित्रातनयो जयदेवोऽपि रामचन्द्रचरणसेवीति भावः। अत्र उपमालङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम्। तल्लक्षणम्—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ १५ ॥

नट इति। अविदितचन्द्रमसः—अविदितः = अज्ञातः चन्द्रमा = चन्द्रः येन तादृशस्य, चकोरकिशोरकस्य—चकोरस्य = चकोरनाम्ना प्रसिद्धस्य पक्षिणः किशोरकस्य = शावकस्य, चरितम् = चरित्रम्, अनुसृतोऽस्मि = आचारितोऽस्मि। यथा चकोर—शिशोश्चन्द्रमसः अज्ञानमुपहासास्पदं तथैव एतत्कविविषयकं मदीयमप्यज्ञानं हास्य—जनकमेवेति भावः। सूक्तिरत्नम् = एतन्नाटकरूपं सुभाषितश्रेष्ठम् ॥

अन्वयः—चोरापहारचकितेन, मया, एषः, त्वत्सूक्तिमौक्तिकगणः कर्णे, निधाय; च, कण्ठपीठे, पिधाय, च, मूर्धनि, धृत्वा, च, नते, हृदये, च, कृत्वा, चिरम्, परिरक्षणीयः ॥ १६ ॥

कर्णे इति। चोरापहारचकितेन—चौरैः = काव्यार्थचौरैः काव्यचौरैः वा यः अपहारः = लुण्ठनम् तस्मात् चकितेन = सावधानेन, काव्यचौराः परकृतं काव्य-मात्मीयत्वेन कथयन्ति, (मौक्तिकपक्षे—तस्करैः सावधानेन), मया = नटेन, एषः = त्वया मम हस्ते दीयमानः, त्वत्सूक्तिमौक्तिकगणः—तव = भवतः सूक्तयः = सुभाषितानि एव मौक्तिकगणः = मुक्तासमवायः, कर्णे = श्रोत्रे, निधाय = (सूक्तिपक्षे-) प्रयत्नतः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधारः—केयमलीकशङ्का तस्य कवेः ।

सुललितवचनामुदारवृत्तां कृतिमथवा युवतिं परस्य हृत्वा ।
तटमपि परमर्णवस्य गत्वा वद कतरः सुखभाजनं जनः स्यात् ॥ १७ ॥

नटः—एवमेतत् । नन्वयं प्रमाणप्रवीणोऽपि श्रूयते । तदिह चन्द्रिकाचण्डातपयोरिव कवितातार्किकत्वयोरेकाधिकरणतामालोक्य विस्मितोऽस्मि ।

सूत्रधारः—क इह विस्मयः ।

येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते ।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता-
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः ॥ १८ ॥

धृत्वा (मौक्तिकपक्षे-) आभूषणरूपेण परिधाय, च = तथा, कण्ठपीठे = कण्ठस्थाने, पिधाय = (सूक्तिपक्षे-) गोपायित्वा, सर्वस्याग्रेऽप्रकाश्येति यावत्, (मौक्तिकपक्षे-) मालारूपेण परिधाय, च = तथा, मूर्धनि = मस्तके, धृत्वा = स्थापयित्वा (सूक्तिपक्षे-) सर्वत्र प्रशंस्य, (मौक्तिकपक्षे-) भूषणरूपेण परिधाय, नते = नम्रे, हृदये = वक्षस्थले, कृत्वा = विधाय, (सूक्तिपक्षे—) चिन्तयित्वा, (मौक्तिकपक्षे—) आभूषणत्वेन धृत्वा, चिरम् = बहुकालम्, परिरक्षणीयः = परिपालनीयः । यथा जनाः रत्नादिकं चौरादिभिः परिरक्षितुं स्वशरीरस्थाप्यलङ्कर्तुं तत्तदवयवस्थाने धारयन्ति तथैवाऽहमपि भवत्काव्यसूक्ति चौरात् कुकवेः रक्षितुमतिश्रद्धया सयत्नो भविष्यामीति भावः । समासोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥' १६ ॥

अन्वयः—सुललितवचनाम्, उदारवृत्ताम्, परस्य, कृतिम्, अथवा, युवतिम्, हृत्वा, अर्णवस्य, परम्, तटम्, अपि, गत्वा, कतरः, जनः, सुखभाजनम्, स्यात्, वद ॥ १७ ॥

सूत्रधार इति । अलीकशङ्का—अलीका = मिथ्या ('अलीकं त्वप्रियेऽनृते' इत्यमरः) शङ्का = सन्देहः, चोरापहारभीतिरित्यर्थः ॥

सुललितेति । सुललितवचनाम्—(कृतिपक्षे—) सुललितानि = सुमधुराणि वचनानि = वाक्यानि यस्याः सा तादृशी तां लालित्यपूर्णामिति यावत्, (युवतिपक्षे—) सुमधुराणि = श्रवणप्रियाणि वचनानि = आलापाः यस्याः सा तादृशी ताम्, कोकिलालापामित्यर्थः, उदारवृत्ताम्—(कृतिपक्षे—)—उदारम् = प्रसादादिगुणसम्पन्नम् = वर्णनीयपुरुषस्य चरितम् यस्यां सा तादृशी ताम्, (युवतिपक्षे--)—उदारम् = अकृपणम् प्रशस्तं वा चरितम् = चरित्रम् यस्याः तादृशीम्, परस्य = अन्यस्य, कृतिम् = रचनाम्, अथवा = वा, युवतिम् = तरुणीम्, हृत्वा = चौर्येणापनीय, अर्णवस्य = समुद्रस्य, परम् = अन्यम्, तटम् = तीरम्, अपि, गत्वा = समासाद्य, कतरः = कः, जनः = व्यक्तिः, सुखभाजनम् = सुखपात्रम्, सुखी इत्यर्थः, स्यात् = भवेत्, इति वद = कथय । न कोऽपीति काक्वा

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधार—उस कवि की यह कैसी झूठी शङ्का है ? (क्योंकि)—

कृति के पक्ष में—सुन्दर ललित वाक्यों से रचित, (वर्णनीय व्यक्ति के) उदार चरित्र से युक्त (युवती के पक्ष में—सुललित वचन बोलनेवाली, उदार चरित्र से युक्त), दूसरे की रचना अथवा युवती को चुराकर समुद्र के दूसरे तट पर भी जाकर (अर्थात् समुद्र भी पार कर) कौन व्यक्ति सुखी हो सकेगा ? बतलाओ (अर्थात् कोई भी नहीं) ॥ १७ ॥

नट—यह ऐसा ही है। अरे, यह (कवि) न्यायशास्त्र में भी निपुण सुने जाते हैं। तो इनमें, चाँदनी और सूर्य के समान, कविता और तार्किकता (न्यायशास्त्र की पण्डिताई) की एक स्थान में उपस्थिति को देख कर आश्चर्य चकित हूँ ॥

सूत्रधार—इसमें क्या आश्चर्य ?

जिन (कवियों) की वाणी कोमल (पदों से युक्त)–काव्य (रचने) की–कला में विलासवती (दक्ष) है, उन (कवियों) की कर्कश तर्कशास्त्र के कुटिल (टेढ़े) वचनों को कहने में भी क्या हानि है ? (अर्थात् कुछ नहीं)। जिन (पुरुषों) के द्वारा प्रिया के स्तन-मण्डल पर (अपने) नाखून आनन्दपूर्वक रक्खे जाते हैं (गड़ाये जाते हैं), उन्हीं (पुरुषों) के द्वारा मतवाले गजराजों के गण्डस्थल पर क्या बाण नहीं रक्खे जाते (मारे जाते) ? (अर्थात् मारे जाते हैं) ॥ १८ ॥

व्यज्यते। अत्र रावणकृतं सीतापहरणादिकं सकलमेव रामायणवृत्तं सूचितमतोऽस्य पताकास्थानत्वम्। दशरूपके तल्लक्षणं यथा—

'प्रस्तुतागन्तुभावस्य भाविनोऽन्योक्तिसूचनम्।
पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम् ॥' इति ॥

यथा रावणो रामपत्नीं सीतामपहृत्य पारे समुद्रं सुखं नाऽऽप तथैवान्यस्य कृतिमपहृत्य कुत्रापि न कोऽपि जनः सुखभाजनं भविष्यतीति भावः। श्लेषाऽलङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो,
युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥' १७ ॥

नट इति। अयम् = जयदेवः, प्रमाणप्रवीणः—प्रमाणे = न्यायशास्त्रे प्रवीणः = निपुणः, तार्किकप्रवरः इत्यर्थः। तत् = तस्मात्, इह = अस्मिन् कवौ, चन्द्रिकाचण्डातपयोः—चन्द्रिका = ज्योत्स्ना चण्डः = तीक्ष्णः आतपः = घर्मः अस्य स चण्डातपः = सूर्यः, चन्द्रिका च चण्डातपश्च तयोः इव = यथा, कवितातार्किकत्वयोः = कविकृतित्वनैयायिकत्वयोः एकाधिकरणताम् = एकाधारताम्, विलोक्य = दृष्ट्वा, विस्मितः = आश्चर्यचकितः। यथा सुकोमलायाश्चन्द्रिकायाः सूर्यस्य चैकस्मिन्नेकस्मिन् काले सहभावः न सम्भवति तथैव कोमलगुणायाः कवितायाः कर्कशताविशिष्टस्य तर्कशास्त्रस्य चैकत्रोपस्थितिर्न सम्भवति। परञ्च एतस्मिन् कवौ एतयोः कवितातार्किकत्वयोरेकत्रोपस्थित्या विस्मितोऽस्मीति भावः ॥

अन्वयः—येषाम्, भारती, कोमल-काव्य-कौशल-कला-लीलावती, (अस्ति);

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नटः—अपि नाम स्वयमेव कविताकोविदाः पारिषदा अस्य सूक्तिभिर्विनोदिष्यन्ते।

सूत्रधारः—नन्वनेनैवोक्तम्—

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः।
निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः॥ १९॥

नटः—अहो अस्य कवेः सूक्तीनां सरलता कोमलता च।

सूत्रधारः—कचिद्वक्रता कठिनता च।

नटः—कथमेते अपि रमणीये।

तेषाम्, कर्कश-तर्क-वक्र-वचनोद्गारे, अपि, किम्, हीयते? यैः, कान्ताकुचमण्डले, कररुहाः, सानन्दम्, आरोपिताः, तैः, मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे, किम्, शराः, न, आरोपणीयाः?॥ १८॥

नात्राऽऽश्चर्यमिति प्रदर्शयन्नाह—येषामिति। येषाम् = कवीनाम्, जयदेव-सदृशानां जनानामित्यर्थः, भारती = वाणी ('ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती, इत्यमरः), कोमल-काव्य-कौशल-कला-लीलावती—कोमलम् = माधुर्यप्रसादादिगुणयुक्तम् यत् काव्यम् = रसात्मकं वाक्यजातम् तस्य तस्मिन् वा यत् कौशलम् = नैपुण्यम् तस्य या कला = सरणिः तस्यां लीलावती = विलासवती, अस्तीति शेषः; तेषाम् = तादृशानां कवीना-मित्यर्थः, कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारे—कर्कशः=कठोरः, माधुर्यादिविरहितः इति यावत्, यः तर्कः = प्रमाणशास्त्रम् तस्य वक्राणि = कुटिलानि, अतिगहनानीत्यर्थः, यानि वचनानि = वाक्यानि तेषाम् उद्गारे = कथने, प्रकाशने इति भावः, अपि, किं हीयते = का हानिरित्यर्थः? न काऽपीति भावः। उक्तमेवार्थं दृष्टान्तेन द्रढयति—यैः = जनैः, कान्ताकुचमण्डले—कान्तायाः = प्रियायाः कुचमण्डले—स्तनमण्डले, अतिकोमले स्थाने इत्यर्थः, कररुहाः = नखाः ('कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः), आनन्देन सहितं सानन्दम् = सहर्षम् यथास्यात्तथा, आरोपिताः = दत्ताः, नखैः क्षतं कृतमिति भावः, तैः = तादृशैः पुरुषैरित्यर्थः, मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे—मत्ताः = मदस्राविणः ये करीन्द्राः = गजयूथाधिपतयः तेषां कुम्भशिखरे = कपोलमण्डले, अतिकठोरे दुःखलभ्ये स्थाने इतिभावः, किमिति प्रश्ने, शराः = बाणाः, न = नहि, आरोपणीयाः = प्रक्षेप्तव्याः? प्रक्षेप्तव्या एवेति काक्वा ध्वन्यते। यथा सुकोमले सुखलभ्ये च कान्ताकुचकुम्भे नखैः क्षतकारकाः जना गजकुम्भे शरैः प्रहर्तुं समर्थाः भवन्ति तथैव कोमलकाव्यपदगुम्फने प्रवीणाः जनाः अपि कर्कशे न्यायशास्त्रेऽपि पाटवमधिगच्छन्तीति भावः। इह दृष्टान्तालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्॥' १८॥

नट इति। अपीति प्रश्ने, कविताकोविदाः—कवितायाः कोविदाः = कवयः, कर्तारः जनाः इत्यर्थः ('कोविदः बुधः·····पण्डितः कविः' इत्यमरः),

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नट—स्वयं ही कविता के कर्ता सभा में उपस्थित जन क्या इस (कवि) की सूक्तियों से मनोविनोद करेंगे ?

सूत्रधार—अरे, इसी (कवि) के द्वारा कहा गया है—

अपने वचनों के विलास से (अर्थात् अपनी काव्य-रचनाओं से) हर्ष को पाते हुए भी कतिपय सज्जन अन्य (कवि) जनों की उक्तियों में सन्तोष प्राप्त करते हैं। अपने अत्यधिक मकरन्द के प्रवाह से भरा हुआ आलवाल (थाला) वाला आम का वृक्ष कलशों के जल से सींचा जाना क्या नहीं पसन्द करता है ? (अर्थात् पसन्द करता है) ॥ १९ ॥

नट—इस कवि की सूक्तियों की सरलता और कोमलता आश्चर्यजनक है।

सूत्रधार—कहीं-कहीं कुटिलता और कठिनता भी (आश्चर्यजनक है)।

नट—क्या ये (कुटिलता और कठोरता) भी गुण हैं ?

पारिषदाः = परिषदि स्थिताः जनाः, सभ्याः इत्यर्थः; अस्य = कवितार्किकस्य जयदेवस्य, सूक्तिभिः = सुमधुरैः वचनैः, सुभाषितैः इति यावत् ॥

अन्वयः—स्वकीयैः, वाग्विलासैः, मुदम्, उपयान्तः, अपि, कियन्तः, सन्तः, परभणितिषु, तोषम्, यान्ति; निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः, रसालः, किम्, कलश-सलिलसेकम्, न, ईहते ? ॥ १९ ॥

अपि मुदमिति । स्वकीयैः = निजैः, वाग्विलासैः-वाचाम् = वाणीनाम् विलासैः = लीलाभिः, मुदम् = प्रसन्नताम्, उपयान्तः = प्राप्नुवन्तः, अपि, कियन्तः = कतिपये, सन्तः = सज्जनाः सरसधियः इत्यर्थः, परभणितिषु—परेषाम् = अन्येषाम् भणितिषु = कथनेषु सूक्तिष्वित्यर्थः, तोषम् = हर्षम्, यान्ति = गच्छन्ति । तोषं लभन्ते इत्यर्थः । अमुमेवार्थं द्रढयति दृष्टान्तेन—निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णाऽऽलवालः—निजः = स्वकीयः यः घनः = बहलः मकरन्दः = पुष्परसः तस्य स्यन्दः = प्रवाहः तेन पूर्णम् = भरितम् आलवालम् = आवापः ('स्यादालवालमावालमावापः' इत्यमरः), यस्य तादृशः, रसालः = आम्रवृक्षः ('आम्रश्चूतो रसालोऽसौ' इत्यमरः), कलशसलिलसेकम्—कलशस्य = घटस्य यत् सलिलम् = जलम् तस्य सेकम् = सिञ्चनम्, किमिति प्रश्ने, न = नहि, ईहते = वाञ्छति ? अपि तु वाञ्छत्येव काकुध्वनिः । यथा रसालः स्वमकरन्दैः पूरितालवालोऽपि कलशैर्जलसिञ्चनमिच्छति तथैव स्वकृतिसन्तर्पितहृदया अपि कवयः अन्यकृतिभिः आनन्दमनुभवन्तीति तात्पर्यम् ।

श्लोकेऽत्र दृष्टान्तालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ १९ ॥

नट इति । अस्य कवेः = जयदेवस्येत्यर्थः । सरलता = सुगमता, प्रसादगुणयुक्तता इत्यर्थः, कोमलता = मधुरता, सुकुमारता इति भावः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधारः—अथ किम् ।

निन्द्यन्ते यदि नाम मन्दमतिभिर्वक्राः कवीनां गिरः
स्तूयन्ते न च नीरसैर्मृगदृशां वक्राः कटाक्षच्छटाः ।
तद्वैदग्ध्यवतां सतामपि मनः किं नेहते वक्रतां
धत्ते किं न हरः किरीटशिखरे वक्रां कलामैन्दवीम् ॥ २० ॥

अपि च—

अमृतजलधेः पायंपायं पयांसि पयोधरः
किरति करकास्ताराकारा यदि स्फटिकावनौ ।
तदिह तुलनामानीयन्ते क्षणं कठिनाः पुनः
सततममृतस्यन्दोद्गारा गिरः प्रतिभावताम् ॥ २१ ॥

सूत्रधार इति । क्वचित् = कुत्रचित्, वक्रता = कुटिलता, दुर्बोधता इत्यर्थः, कठिनता = कठोरता, दीर्घसमासता इति भावः ॥

नट इति । एते अपि = वक्रता-कठिनते अपीत्यर्थः, रमणीये = काव्यरमणीयताप्रतिपादिके ॥

अन्वयः—यदि नाम; मन्दमतिभिः, कवीनाम्, वक्राः, गिरः, निन्द्यन्ते, नीरसैः, मृगदृशाम्, वक्राः, कटाक्षच्छटाः, न, स्तूयन्ते, तत्, अपि, वैदग्ध्यवताम्, सताम्, मनः, किम्, वक्रताम्, न, ईहते ? किम्, हरः, किरीटशिखरे, वक्राम्, ऐन्दवीम्, कलाम्, न, धत्ते ? ॥ २० ॥

निन्द्यन्त इति । यदि नामेति निन्दायां क्रोधे वा ('नाम प्रकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने 'इत्यमरः), मन्दमतिभिः—मन्दा = अचतुरा मतिः = बुद्धिः येषां तैः, मूर्खैः इति यावत्, कवीनाम् = जयदेवसदृशानां कवयितॄणाम्, वक्राः = कुटिलाः, अभिप्रायगर्भिताः इत्यर्थ, गिरः = वाण्यः, रचनाः इति यावत्, निन्द्यन्ते = अधिक्षिप्यन्ते; नीरसैः = अरसिकैः, काव्यरसास्वादविहीनैः इत्यर्थः, मृगदृशाम्—मृगस्येव = हरिणस्येव दृशौ = लोचने यासां तासाम्, हरिणनयनानामित्यर्थः, वक्राः = कुटिलाः, विलासकुटिलाः इत्यर्थः, कटाक्षच्छटाः = अपाङ्गदर्शनशोभाः ('कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने 'इत्यमरः), न स्तूयन्ते = नाभिनन्द्यन्ते । तदपि = तथाऽपि, वैदग्ध्यवताम्—वैदग्ध्यम् = काव्यमर्मज्ञत्वम् तद्वताम्, काव्यमर्मज्ञानामित्यर्थः, सताम् = विदुषां सज्जनानाम्, मनः = चेतः, किमिति प्रश्ने, वक्रताम् = कुटिलताम्, व्यङ्ग्यानुसरणपरिपाटीमित्यर्थः, न ईहते = न कांक्षते ? कांक्षत एवेत्यर्थः । किं हरः = भगवान् शिवः, किरीटशिखरे किरीटस्य=मुकुटस्य शिखरे=ऊर्द्ध्व—भागे, वक्राम् = कुटिलाम्, द्विकलारूपामित्यर्थः, इन्दोः = चन्द्रस्य इयम् ऐन्दवी ताम् ऐन्दवीम् = चन्द्रसम्बन्धिनीमित्यर्थः, कलाम् = लेखाम्, न धत्ते = न धारयति ? अपि तु धारत्येव । यदि नाम मन्दमतयः 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' इत्यजानन्तः महाकवीनां वक्रोक्तिगर्भितां रचनां नाभिनन्दन्ति, अरसिकाः मृगदृशां कटाक्षशोभां न सम्मानयन्ति तर्हि नाभिनन्दन्तु नानेन काऽपि क्षतिः । कलाविलासचतुराः वक्रतामेव वाञ्छन्ति । वक्रे

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सूत्रधार—और क्या—भले ही मन्दबुद्धिवाले (व्यक्तियों) के द्वारा कवियों की वक्र रचनाएँ निन्दित की जायँ; नीरस (जनों) के द्वारा मृगनयनी स्त्रियों के टेढ़े कटाक्षों की सुन्दरता प्रशंसित न हों। तो भी कला के मर्मज्ञ सज्जनोंका मन क्या वक्रता को नहीं चाहता है ? (अर्थात् चाहता ही है)। क्या शङ्करजी (अपने) मुकुट के शिखर पर कुटिल (वक्र) चन्द्रमा की कला को नहीं धारण करते हैं ? (अर्थात् धारण ही करते हैं) ॥ २० ॥

और भी—

यदि अमृत के सागर का जल (अमृत) बारम्बार पीकर मेघ स्फटिक की भूमि पर ताराओं के आकार के ओलों को वर्षावे तो काव्य में क्षण भर के लिए कठोर फिर सर्वदा अमृत की वर्षा करनेवाली प्रतिभाशाली (कवियों) की वाणियाँ (रचनाएँ) तुलना को प्राप्त कराई जा सकती हैं ॥ २१ ॥

विशेष—अमृत के सागर के जल को पीकर यदि बादल उसे ओलों के रूप में वर्षावे तो अवश्य ही वे ओले पहले क्षण भर के लिए कठोर प्रतीत होंगे। किन्तु वे जब पिघलने लगेंगे तो उनसे खानेवाला व्यक्ति निःसन्देह अमृत का आस्वाद प्राप्त करेगा। ठीक इसी तरह प्रतिभाशाली कवियों की रचनाएँ भले ही पहले कठिन प्रतीत हों, किन्तु जब वे पाठक की समझ में ठीक-ठीक बैठने लगेंगी तो उनसे अपूर्व काव्यामृत का आनन्द प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

आदराभिव्यक्तये एव शिवोऽपि कुटिलां चन्द्रकलां शिरसि धारयत्येवेति भावः। अत्र निदर्शनालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ २० ॥

अन्वयः—यदि, अमृतजलधेः, पयांसि, पायंपायम्, पयोधरः, स्फटिकावनौ, ताराकाराः, करकाः, किरति; तत्, इह, क्षणम्, कठिनाः, पुनः, सततम्, अमृतस्यन्दोद्गाराः, प्रतिभावताम्, गिरः, तुलनाम्, आनीयन्ते ॥ २१ ॥

सूक्तिकठिनतामनुमोदयन्नाह—अमृतजलधेरिति। यदि = चेत्, अमृतजलधेः—अमृतस्य = सुधायाः जलधिः = सागरः तस्मात्, सुधासमुद्रस्येत्यर्थः, पयांसि = अमृतानि ('पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः), सुधासागरे जलाभावादत्र पयश्शब्देनाऽमृतमेव गृह्यते, पायंपायम् = पुनः पुनः पीत्वा, पयोधरः = मेघः, स्फटिकावनौ = स्फटिककुट्टिमे, स्फटिकनिर्मिते स्थाने इत्यर्थः, ताराकाराः = तारास्वरूपाः, करकाः = मेघोपलान्, किरति = वर्षति; तत् = तदा, इह = अत्र काव्ये, क्षणम् = किञ्चित्कालम्, कठिनाः = कठोराः, दुर्बोधाः इत्यर्थः, पुनः = भूयः, कृतावबोधाः सत्यः इत्यर्थः, सततम् = सर्वदा, अमृतस्यन्दोद्गाराः—अमृतस्य = सुधायाः स्यन्दः = प्रवाहः इव उद्गारः = प्रकटितः अभिप्रायः यासां ताः, अमृतवर्षिण्यः इत्यर्थः, प्रतिभावताम् = नवनवोन्मेषशालिबुद्धियुक्तानाम्, कवित्वशक्तिसम्पन्नानामिति यावत्, गिरः = वाण्यः, सूक्तयः इति भावः, तुलनाम् = समानताम्, आनीयन्ते = प्राप्यन्ते। यथा कठोरा अपि

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नटः — नूनमस्य कवेः किमपि कौतुकप्रमोदमेदुरमन्तःकरणं यदेवंविधाः सरसशीतलाः सूक्तयः समुल्लसन्ति ।

सूत्रधारः—उचितमिदम् ।

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ २२ ॥

अपि च—

न ब्रह्मविद्या न च राजलक्ष्मीस्तथा यथेयं कविता कवीनाम् ।
लोकोत्तरे पुंसि निवेश्यमाना पुत्रीव हर्षं हृदये करोति ॥ २३ ॥

(नेपथ्ये ।)

अमृतकरकाः स्फटिकभूमिं समासाद्य द्रवन्त्यः रसमुत्पादयन्ति तथैव कठिना अपि सत्कविसूक्तयः सहृदयहृदयं प्राप्य सत्काव्यानन्दं जनयन्त्येवेति भावः । सम्भावनाऽलङ्कारः । हरिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता' ॥ २१ ॥

नट इति । नूनमिति निश्चये, किमपि = अनिर्वचनीयेन रूपेण, कौतुकप्रमोदमेदुरम्—कौतुकम् = कुतूहलम् प्रमोदः = हर्षः, आनन्दातिशय इत्यर्थः, ताभ्यां मेदुरम् = पूर्णम् , स्निग्धमिति यावत् , एवंविधाः = एवम्प्रकाराः, सरसशीतलाः—हृदयाह्लादिकाः ॥

अन्वयः—यस्याः, चोरः, चिकुरनिकरः; मयूरः, कर्णपूरः; भासः, हासः; कविकुलगुरुः, कालिदासः, विलासः; हर्षः, हर्षः; बाणः, हृदयवसतिः, पञ्चबाणः, (अस्ति); कथय, एषा, कविताकामिनी, केषाम् , कौतुकाय, न, (आस्ते) ॥ २२ ॥

यस्या इति । यस्याः = कविताकामिन्याः, चोरः = चोरनामकः चौरपञ्चाशिकायाः कर्ता कविः, चिकुरनिकुरः—चिकुराणाम् = केशानाम् निकरः = कलापः ('चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः 'इत्यमरः), मयूरः = मयूरकविः, सूर्यशतककर्ता मयूरः, कर्णपूरः = कर्णाभूषणम् , भासः = भासनामा महाकविः, हासः = स्मितम् , कविकुलगुरुः—कवीनां कुलम् = समुदायः तस्य गुरुः = आचार्यः, कविश्रेष्ठः इति यावत् , कालिदासः = स्वनामधन्यः रघुवंशाद्यनेकविश्वविश्रुतग्रन्थनिर्माता महाकविः, विलासः = विभ्रमः ('स्त्रीणां विलासविब्वोकविभ्रमा ललितं तथा 'इत्यमरः), हर्षः = श्रीहर्षः, नैषधीयचरितरचयिता कविः, हर्षः = प्रमोदः, बाणः = कादम्बरीनिर्माता कविः, हृदयवसतिः = हृदये = मनसि इत्यर्थः वसतिः = वासः यस्य सः, पञ्चबाणः = कामदेवः ('कामः पञ्चशरः स्मरः 'इत्यमरः), अस्तीति क्रियाशेषः । कथय = ब्रूहि, एषा = एतादृशी, कविताकामिनी—कविता एव कामिनी = सुन्दरी, केषाम् = केषां सहृदयानामित्यर्थः, कौतुकाय = कुतूहलाय, मनोविनोदायेत्यर्थः, न आस्ते = न भवति ? सर्वस्यैव

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नट—निश्चय ही इस कवि का अन्तःकरण अनिर्वचनीय रूप से कुतूहल एवं हर्ष से भरा हुआ (है), जो कि (इनके) इस प्रकार के सरस तथा हृदय को आह्लादित करनेवाले सुभाषित प्रादुर्भूत होते हैं।

सूत्रधार—यह ठीक (ही) है ॥

जिस (कवितारूप कामिनी) का चोर नामक (कवि) केशसमूह, मयूर कर्णफूल (कान का आभूषण), भास मुस्कान, कविसमुदाय के गुरु कालिदास हाव-भाव, श्रीहर्ष प्रसन्नता तथा बाण हृदय में निवास करनेवाला कामदेव (है), बतलाओ, ऐसी कविता रूप कामिनी किनके कौतूहल के लिए नहीं है ? (अर्थात् किनके हृदय में कौतूहल नहीं उत्पन्न करती है ?) ॥ २२ ॥

और भी—

कवियों की यह कविता असामान्य पुरुष (श्रीराम आदि) में लगाई जाने पर, जिस प्रकार पुत्री के समान, हृदय में हर्ष उत्पन्न करती है, उस तरह न (तो) वेदान्तादि शास्त्र और न राजलक्ष्मी (ही हर्ष उत्पन्न करती हैं) (अर्थात् जिस प्रकार पिता अपनी कन्या को किसी योग्य वर के हाथों में सौंप कर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार श्री राम आदि वर्णनीय पुरुष के साथ कविता का सम्बन्ध स्थापित कर कवि भी प्रसन्न होता है) ॥ २३ ॥

(परदे के पीछे)

कौतुकायाऽस्ते इति काक्वभिप्रायः। रूपकालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तं। तल्लक्षणं यथा—'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—कवीनाम्, इयम्, कविता, लोकोत्तरे, पुंसि, निवेश्यमाना, यथा, पुत्री, इव, हृदये, हर्षम्, करोति; तथा, न, ब्रह्मविद्या, न, च, राजलक्ष्मीः, (हर्षम्, करोति) ॥ २३ ॥

न ब्रह्मविद्येति। कवीनाम् = काव्यकर्तॄणाम्, इयम् = एषा, अनन्तरमेवोक्तरूपा, कविता = रचना, लोकोत्तरे = असाधारणे, पुंसि = पुरुषे, श्रीरामे इत्यभिप्रायः, निवेश्यमाना = संयुज्यमाना, यथा = येन प्रकारेण, पुत्री = स्वकीया सुता, इव = यथा, हर्षम् = प्रसन्नताम्, करोति = विदधाति, तथा = तेन प्रकारेणेत्यर्थः, न, ब्रह्मविद्या = अध्यात्मविद्या, वेदान्तादिशास्त्राणीति भावः, न च = न तु, राजलक्ष्मीः राज्ञः = पृथिवीपालस्य लक्ष्मीः = श्रीः, राजश्रीरित्यर्थः, हर्षं न करोतीति योज्यम्। यथा योग्यवराय दत्ता कन्या पितुः हृदये हर्षं जनयति तथैव लोकोत्तरे श्रीरामादौ पुरुषे वर्णनाय संलग्ना कविताऽपि कविहृदयानन्दकारिणीति भावः। अनेन जनककृतः कन्यादानसम्भारारम्भः सूचितो भवति। उपमा अलङ्कारः। उपजातिवृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥ २३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

साधु भोः, कुशीलवकुलोत्तंस साधु ।

सूत्रधारः—कथमयं भगवतो याज्ञवल्क्यस्य प्रियोऽन्तेवासी दाल्भ्यायन इत एवाभिवर्तते । तदस्यानवलोकनीयचतुर्थवर्णस्य पुरतः स्थातुमनुचितमस्माकम् । तदेहि । परतो गच्छावः ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

। इति प्रस्तावना ।

(प्रविश्य ।)

दाल्भ्यायनः—(तमेव श्लोकं पठित्वा साकूतम् ।) साधूक्तमनेन । तथाहि । भूपतिरयं जनकोऽपि सकललोकलोचनारविन्दमार्तण्डे कचिदपि पुरुषप्रकाण्डे निजां कन्यां समर्पयितुकामोऽस्मद्गुरूपदिष्टायां ब्रह्मविद्यायां कुलक्रमागतायां राजलक्ष्म्यां च शिथिलादरः संवृत्तः ।

(पुनः कर्णं दत्त्वा ।) कथमयमाकाशे वीणाध्वनिः श्रूयते । तन्नूनमस्मद्गुरुसमभ्यागच्छता समीरसंघट्टनकलक्वणद्वल्लकीगुणेन देवर्षिणा नारदेन भवितव्यम् । (विलोक्य ।) कथं ध्वनिसादृश्येन प्रतारितोऽस्मि । नन्वयं गगनतलावलम्बिनोर्मधुकरयोरेव ध्वनिराकर्ण्यते ।

नेपथ्ये = वेशरचनास्थाने । यत्र नटाः रङ्गभूमौ आगमनात्पूर्वं वेशादिकं रचयन्ति तत्स्थानं नेपथ्यमुच्यते—'अन्तर्जवनिकामाहुर्नेपथ्यमिति ।' कुशीलवकुलोत्तंस—कुशीलवाः = नटाः ('नटाश्चारणास्तु कुशीलवाः' इत्यमरः) तेषां कुलम् = समुदायः तस्य उत्तंसः = शिखामणिः, तत्सम्बुद्धौ, नटश्रेष्ठ इत्यर्थः । साध्विति प्रशंसायाम् ॥

सूत्रधार इति । अन्तेवासी = छात्रः ('छात्रान्तेवासिनौ' इत्यमरः); अभिवर्तते = आगच्छति । अनवलोकनीयचतुर्थवर्णस्य–अनवलोकनीयः = अवलोकितुमनर्हः चतुर्थः = अन्तिमः वर्णः = जातिः यस्य स तस्य, पुरतः = समक्षम् । परतः = परस्यां दिशि, अन्यत्रेत्यर्थः । निष्क्रान्तौ = रङ्गस्थानाद् वेशरचनास्थानं गतौ, नटसूत्रधाराविति शेषः ।

प्रस्तावना = आमुखम् । प्रस्तावनालक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

'नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥ 'इति ॥

(साहि० ६।३१-३२)

दाल्भ्यायन इति । तमेव श्लोकम् = न ब्रह्मविद्येत्यादिश्लोकम्, साकूतम् = अभिप्रायपूर्वकम् । सकललोकलोचनारविन्दमार्तण्डे—सकलानाम् = समस्तानाम् लोकानाम् = जनानाम् लोचनानि=नेत्राणि तान्येव अरविन्दानि = कमलानि तेषांम् आह्लाद-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(प्रवेश करके)

वाह रे नटश्रेष्ठ, वाह !

सूत्रधार—क्या भगवान् याज्ञवल्क्य के प्रिय शिष्य दाल्भ्यायन इसी ओर आ रहे हैं ? तो शूद्र को न देखनेवाले इनके सामने हम लोगों का रहना उचित नहीं है। अतः आओ। दूसरी ओर चलें।

(इस तरह दोनों निकल गये)

(प्रस्तावना समाप्त)

विशेष—नाटक के आरम्भ में सूत्रधार तथा किसी एक पात्र के बीच में हुआ परिचयात्मक वार्तालाप प्रस्तावना कहा जाता है। इसमें नाटककार तथा उसकी योग्यता का परिचय देकर श्रोताओं के सम्मुख नाटक की घटनाओं को रक्खा जाता है।

दाल्भ्यायन—(उसी २३वें श्लोक को पढ़कर अभिप्रायपूर्वक) ठीक ही इस (सूत्रधार) के द्वारा कहा गया है। जैसे कि—इन महाराज जनक ने भी सब लोगों के नेत्र-कमलों को विकसित करनेवाले (अर्थात् प्रियदर्शी) किसी भी पुरुषश्रेष्ठ (के हाथों) में अपनी पुत्री (सीता) को समर्पित करने की इच्छा से हमारे गुरु (याज्ञवल्क्य) के द्वारा उपदिष्ट अध्यात्म-विद्या तथा वंशपरम्परा से चली आती हुई राजलक्ष्मी के विषय में प्रेम कम कर दिया है।

(फिर कान लगा कर)

क्या आकाश में यह वीणा की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ? तो निश्चय ही हमारे गुरु जी के पास आते हुए, वायु के संघर्ष से मनोहरता के साथ झंकार कर रहा है वीणा का तार जिनका ऐसे नारद को होना चाहिये। (देख कर) किस तरह ध्वनि की समानता के कारण ठगा गया हूँ। अरे, यह (तो) आकाश में उड़नेवाले भौंरों की ही ध्वनि सुनाई पड़ रही है।

कल्याणो मार्तण्डः = सूर्यः तस्मिन्, सकललोचनानन्ददायिनि इत्यर्थः, पुरुषप्रकाण्डे—पुरुषेषु = नरेषु प्रकाण्डः = श्रेष्ठः तस्मिन्, नरश्रेष्ठे इति यावत्, निजां कन्याम् = स्वकीयां पुत्रीम्, सीतामित्यर्थः, समर्पयितुकामः—समर्पयितुम् = दातुम् कामः = इच्छा यस्य तादृशः, अस्मद्गुरूपदिष्टायाम्—अस्माकं गुरुणा = आचार्येण, याज्ञवल्क्येनेत्यर्थः, उपदिष्टायाम् = शिक्षितायाम्, ब्रह्मविद्यायाम् = अध्यात्मज्ञाने, कुलक्रमागतायाम्—कुलक्रमात् = वंशपरम्परायाः आगतायाम् = प्राप्तायाम्, शिथिलादरः—शिथिलः = श्लथः, न्यून इति यावत्, आदरः = सम्मानम्, अभिरुचिरित्यर्थः, यस्य तादृशः, संवृत्तः = जातः ॥

समीरसंघट्टनकलक्वणद्वल्लकीगुणेन—समीरेण = वायुना यत् संघट्टनम् = संघर्षः तेन कलम् = मधुरं यथा तथा क्वणन्तः = शब्दायमानाः वल्लक्याः = वीणायाः ('वीणा तु वल्लकी' इत्यमरः) गुणाः = तन्तवः ('गुणो ज्या सूत्रतन्तुषु । रज्जौ सत्त्वादौ' इति हैमः) यस्य स तेन । ध्वनिसादृश्येन = शब्दसाम्येन, प्रतारितः = वञ्चितः । यथा वीणा—गुणाः शब्दायन्ते तथैव भ्रमरा अपीति बोध्यम् । गगनतलावलम्बिनोः—गगनतले=आकाशे अवलम्बिनोः=स्थितयोः, मधुरकरयोः = भ्रमरयोः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनः कर्णं दत्त्वा । सहर्षविस्मयम् ।) अहो, भगवतो योगेश्वरस्य प्रसादमहिमा येनाहमेवंविधानामपि वचनावबोधमधुरां सिद्धिमासादितवानस्मि । तदाकर्णयामि किमेता-वालपतः ।

(कर्णं दत्त्वा ।) एकः किमाह—'सखे कलालाप, कुत आगतोऽसि ।' अपरः किमाह—'वयस्य मधुरप्रिय, संततविकस्वराच्चन्द्रमौलिमन्दाकिनीकुमुदकाननात् ।' अहो अनयोश्चतुरालापपेशलता रुचिरनामधेयता च । (पुनः कर्णं दत्त्वा ।) किमाह मधुर-प्रियः—'अस्ति नवीनः कोऽपि वृत्तान्तः' । किमाह कलालापः—'अस्ति । अचिरमेव कदापि खलु बलिनन्दनो बाणासुरः कमलमालया भगवन्तमिन्दुमौलिमभ्यर्च्य सविनयमिद-मूचिवान् । यत्किल भगवन्,

कैलासाधिकसारं किमस्ति वस्तु महीतले ।
यस्मिन्सफलतामेति मम दोर्दण्डमण्डलम् ॥ २४ ॥

ततश्च विहस्येदमाह च भगवानिन्दुमौलिः—

अस्ति मे कार्मुकं दिव्यं न्यस्तं जनकभूभुजि ।
यस्य बाणानले तिस्रः पुरः प्राप्ताः पतङ्गताम् ॥ २५ ॥

सहर्षविस्मयम् = प्रसन्नताऽऽश्चर्याभ्यां सहितं यथा तथा । भ्रमरशब्दपरिज्ञानेन हर्षः सर्वप्राणिशब्दपरिज्ञानप्रदे गुरौ विस्मयश्च ज्ञेयः । भगवतः सकलसिद्धिमतः, योगीश्वरस्य = योगविद्याविशारदश्रेष्ठस्य याज्ञवल्क्यस्येत्यर्थः, प्रसादमहिमा—प्रसादस्य = अनुग्रहस्य महिमा = महत्त्वम् । एवंविधानाम् = विहङ्गमादीनामित्यर्थः, वचनावबोधमधुराम्—वचनस्य = वाक्यस्य अवबोधः = ज्ञानम् तेन मधुराम् = रुचिराम्, आसादितवान् = प्राप्तवान् ॥

भ्रमरवाक्यानि मनुष्यभाषया परिवर्त्य कथयति दाल्भ्यायनः—कलालाप—कलः = मधुरः ('ध्वनौ तु मधुराऽस्फुटे कलः' इत्यमरः) आलापः = आलपनम् यस्य सः तत्सम्बुद्धौ । सन्ततविकस्वरात् = सन्ततम् = निरन्तरम् विकस्वरात् = विकासशीलात्, चन्द्रमौलिम-न्दाकिनीकुमुदकाननात्—चन्द्रमौलेः = शिवस्य या मन्दाकिनी = आकाशगङ्गा तस्यां यानि कुमुदानि = कैरवाणि ('कैरवं चन्द्रकान्तं गर्दभं कुमुदं कुमुद्' इति माधवः) तेषां काननात् = वनात् । चतुरालापपेशलता—चतुरः = चातुर्यपूर्णः यः आलापः=वचन-व्यवहारः तत्र पेशलता = पटुता ('दक्षे तु चतुरपेशलपटवः' इत्यमरः), नामधेयता= नाम इत्यर्थः ('अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः) । वृत्तान्तः = समाचारः । इन्दुमौलिम्—इन्दुः = चन्द्रः मौलौ = मस्तके यस्य स तम्, अभ्यर्च्य = पूजयित्वा, सवि-नयम् = सादरम्, ऊचिवान् = अवोचत्, न्यवेदयदिति भावः ॥

अन्वयः—महीतले, कैलासाऽधिकसारम्, किम्, वस्तु, अस्ति ? यस्मिन्, मम, दोर्दण्डमण्डलम्, सफलताम्, एति ॥ २४ ॥

कैलासो रावणेनोत्तोलितः, अतः तम् अतिशयितुकामः बाणः कैलासाधिक-सारं वस्तु शिवं प्रति पृच्छति—कैलासाधिकसारमिति । महीतले = भूतले, कैलासाधि-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(फिर कान लगा कर हर्ष और आश्चर्य के साथ) भगवान् योगीश्वर (याज्ञवल्क्य) की कृपा की महिमा आश्चर्यजनक है, जिससे मैंने इस तरह के (प्राणियों के) भी वचनों को जानने की मधुर सिद्धि प्राप्त की है। तो सुनता हूँ (कि) ये दोनों क्या बातचीत कर रहे हैं।

(कान लगाकर) एक (भौंरे) ने क्या कहा—'मित्र कलालाप ! कहाँ से आये हो ?' दूसरे ने क्या कहा—'मित्र मधुरप्रिय ! निरन्तर खिले रहनेवाले, शंकर जी की मन्दाकिनी (आकाश गंगा) के कुमुदों के वन से (आया हूँ)।' इन दोनों की चतुरतापूर्ण बातचीत करने की कुशलता और मनोहर संज्ञा (नाम) कितनी सुन्दर है ! (फिर कान लगा कर) मधुरप्रिय ने क्या कहा—'कोई नवीन वृत्तान्त है ?' कलालाप ने क्या कहा—'है। अभी कुछ ही पहले किसी समय बलि के पुत्र बाणासुर ने कमलों की माला से भगवान् शंकर को पूजकर सविनय यह कहा—कि हे भगवन्,

पृथिवीतल पर कैलास (पर्वत) से भी अधिक वजनी (भारवाला) कौन पदार्थ है ? जिसके विषय में (अर्थात् जिसे उठाकर) मेरा बाहुमण्डल सफलता को प्राप्त करे ॥ २४ ॥

तदनन्तर हँसकर भगवान् शङ्कर ने यह कहा—

राजा जनक के पास रखा गया मेरा दिव्य धनुष (कैलासपर्वत से भी अधिक भारवाला है, जिसके बाणाग्नि में (त्रिपुरनामक राक्षस के) तीनों नगर पतङ्गों की अवस्था को प्राप्त हो गये (अर्थात् पतङ्गों की भाँति जल मरे) ॥ २५ ॥

कसारम्—कैलासात् = शिवनिवासभूतात् पर्वतात् अधिकः = विशिष्टः सारः = गुरुता यस्य तत्, किं वस्तु = कः पदार्थः, अस्ति = विद्यते ? यस्मिन् = यस्य विषये इत्यर्थः; यदुत्तोल्येति भावः, मम = बाणस्य, दोर्दण्डमण्डलम् = भुजमण्डलम्, सफलताम् = सार्थकताम्, एति = गच्छति, प्राप्नोतीति भावः। विंशतिभुजो रावणः कैलासमुत्तोल्य स्वभुजमण्डलं सार्थकं मन्यते अतः सहस्रभुजोऽहं यदि कैलासाधिकभारं वस्तु उत्तोलयामि तदैव मम भुजमण्डलं सार्थकमिति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ २४ ॥

अन्वयः—जनकभूभुजि, न्यस्तम्, मे, दिव्यम्, कार्मुकम्, (कैलासाधिकसारम्), अस्ति; यस्य, बणाऽनले, तिस्रः, पुरः, पतङ्गताम्, प्राप्ताः ॥ २५ ॥

अस्तीति—जनकभूभुजि—भुवम् = पृथिवीम् भुनक्तीति भूभुक्, जनकश्चासौ भूभुक् तस्मिन्, राज्ञः जनकस्य समीपे इत्यर्थः, न्यस्तम् = स्थापितम्, मे = मम, शिवस्येत्यर्थः, दिव्यम् = अलौकिकम्, कार्मुकम् = धनुः ('धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्, इत्यमरः), कैलासाधिकसारमिति शेषः, अस्ति = विद्यते; यस्य=कार्मुकस्य, बाणानले—बाणः = शरः एव अनलः = अग्निः तस्मिन्, तिस्रः = त्रिसंख्याकाः, पुरः = नगराणि, पतङ्गताम् = पतङ्गभावम्, प्राप्ताः = गताः, यद्विसृष्टेन बाणेन अनायासेन विनष्टा इत्यर्थः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तदाकर्ण्य च तत्कार्मुकं विलोकयितुं स तत्र गतः। अहमिहागतः। कुतः पुनस्त्वमिह। कथय कीदृशो वा तत्र नवीनो वृत्तान्त इति।' किमाह मधुरप्रियः—'अहमागतोऽस्मि नन्दनवनात्। अथ च तत्र मया लङ्केश्वरानुचरस्य गर्जितमाकर्णितम्—आः कथं रे, नन्दनवनस्य रक्षिणोऽनर्चितचन्द्रचूड एव निशाचरचक्रवर्तिनि लूनसकलप्रसूनं नन्दनवनमिति। ततस्तैरिदमुक्तो निशाचरः—क्षन्तव्यमेतत्। अत्र हि जनकराजकन्यकावीरस्वयंवरविलोकनकुतुकितसकलसुरलोकविमानमण्डनाय महान्कुसुमोपयोगः। तदाकर्ण्य चेममेव वृत्तान्तमुपायनीकरोमि लङ्केश्वरस्येति प्रचलितो निशाचरः। अहमपि कौतुकादिहागतोऽस्मि।'

(सविषादम्) अहो महाननर्थाङ्कुरोद्भेदो यदयं बाणरावणयोः कर्णान्तिकमपि विश्रान्तः सीतास्वयंवरवृत्तान्तः। अथवा। अलमतिकातरतया। भ्रमारोपिता अपि भ्रमरोक्तयः संभवन्ति। (विमृश्य) कुतो वा भ्रमरसंभावना।

मकरन्दरसस्यन्दसुन्दरोद्गारधारिणौ।
श्रवणानन्दिनावेतौ वन्दिनाविव राजतः॥ २६॥

(नेपथ्ये)

साधु भगवन्, विज्ञातं वन्दिनावेव खल्वावां नानादिगन्तसमागतनृपतिचक्रवर्णनाय जनकेन समादिष्टौ।

तदाकर्ण्येति। कार्मुकम् = धनुः, शिवधनुरित्यर्थः, सः = बाणः। नन्दनवनात् = स्वर्गोपवनात्। अनर्चितचन्द्रचूडे—अनर्चितः = अपूजितः चन्द्रचूडः = भगवान् शिवः येन सः तस्मिन्, निशाचरचक्रवर्तिनि—निशाचराणाम् = राक्षसानाम् चक्रवर्ती = सम्राट् तस्मिन्, लूनसकलप्रसूनम्—लूनानि = अवचितानि, गृहीतानीत्यर्थः, सकलानि = समग्राणि प्रसूनानि = पुष्पाणि यस्य तत्। जनकराजकन्यकेत्यादिः—जनकराजस्य = महाराजस्य जनकस्य कन्यका = पुत्री तस्याः वीरस्वयम्वरः = स्वयंकृतवीरपतिवरणम् तस्य विलोकनम् = दर्शनम् तस्मिन् कुतुकितः = उत्कण्ठितः सकलः = समग्रः यः सुरलोकः = देवसमुदायः तस्य विमानानाम्=व्योमयानानाम् मण्डनाय=सज्जीकरणाय, कुसुमोपयोगः—कुसुमानाम् = प्रसूनानाम् उपयोगः = व्ययः। उपायनीकरोमि = निवेदयामीत्यर्थः। अनर्थाङ्कुरोद्भेदः—अनर्थस्य = अनिष्टस्य अंकुरः=नूतनोद्भित् तस्य उद्भेदः = उत्पत्तिः, अनर्थपरम्पराजन्म इत्यर्थः; कर्णान्तिकम् = श्रवणसमीपम्, विश्रान्तः = गतः। अतिकातरतया = अतिभीत्या। भ्रमारोपिताः—भ्रमैः = सन्देहैः आरोपिताः = लक्षिताः, भ्रमरोक्तयः—भ्रमराणाम् = द्विरेफाणाम् उक्तयः = वचनानि।

अन्वयः—मकरन्दरसस्यन्दसुन्दरोद्गारधारिणौ, श्रवणानन्दिनौ, एतौ, वन्दिनौ, इव, राजतः॥ २६॥

मकरन्देति। मकरन्दरसस्यन्दसुन्दरोद्गारधारिणौ—मकरन्दरसस्य = पुष्परसस्य; यद्यप्यत्र मकरन्दशब्देनैव पुष्परसस्याभिव्यक्तिस्तथापि रसशब्दस्य ग्रहणं सामान्य

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यह सुनकर वह (वाणासुर) उस धनुष को देखने के लिए वहाँ (जनकपुरी में) गया। मैं यहाँ चला आया। अच्छा, तुम कहाँ से यहाँ (आये हो) ? और बतलाओ वहाँ कैसा नया समाचार है ?' मधुरप्रिय ने क्या कहा—'मैं नन्दनवन (स्वर्ग की वाटिका) से आया हूँ, और वहाँ मैंने लङ्काधिपति (रावण) के सेवक का गर्जन सुना (कि)—अरे, क्यों रे नन्दनवन के रखवालों ! राक्षसों के सम्राट् (रावण) के शङ्कर की पूजा न करने पर ही (अर्थात् शङ्कर की पूजा करने के पहले ही) नन्दनवन के सभी फूल तोड़ लिए गये ? तदनन्तर उन (देवताओं) के द्वारा (वह) निशाचर यह कहा गया—इसे क्षमा कर देना चाहिये। आज राजा जनक की कन्या (सीता) के वीर-स्वयंवर को देखने के लिए उत्कण्ठित सम्पूर्ण देवों के विमानों को सजाने के लिए फूलों का पर्याप्त उपयोग (हुआ है)। उस बात को सुनकर 'इसी समाचार को लङ्केश्वर (रावण) को (से) निवेदन करता हूँ' ऐसा कहकर (वह) निशाचर चल पड़ा। मैं भी उत्कण्ठावश यहाँ चला आया हूँ।'

(दुःख के साथ) खेद है, महान् अनर्थ के अङ्कुर का प्रादुर्भाव हो गया है (अर्थात् महान् अनर्थ की भूमिका तैयार हो गयी है) जो कि सीता के स्वयम्वर का समाचार वाणासुर और रावण के कानतक भी पहुँच गया। अथवा अधिक भय करना व्यर्थ है। भ्रमरों (भौंरों) के वचन भ्रम से भी आरोपित (अर्थात् भ्रमपूर्ण) भी हो सकते हैं। (विचार कर) अथवा भ्रमरों की सम्भावना कहाँ से (हो सकती है) ?

पुष्परस के प्रवाह के समान सुन्दर वचनों को धारण करनेवाले, कानों को आनन्दित करनेवाले ये दो भौरें स्तुतिपाठकों (भाटों) के समान सुशोभित हो रहे हैं ॥ २६ ॥

(पर्दे के पीछे)

भगवन्, (आपने) ठीक जान लिया। हम दोनों स्तुतिपाटक ही हैं। महाराज जनक के द्वारा (हम दोनों) विभिन्न दिशाओं से आये हुए राजाओं के समूह का वर्णन करने के लिए आज्ञा दिये गये हैं।

रसाभिप्रायेणेति बोध्यम्, यः स्यन्दः = प्रस्रवणम्, प्रवाहः इत्यर्थः, तद्वत् सुन्दरः = मनोहरः यः उद्गारः = उक्तिः तस्य धारिणौ = धारणकर्तारौ, वक्तारौ इत्यभिप्रायः, श्रवणानन्दिनौ = श्रवणम् = कर्णम् आनन्दयतः = तर्पयतः इति श्रवणानन्दिनौ = श्रवणतर्पकौ, एतौ = दृश्यमानौ भ्रमरौ, वन्दिनौ = स्तुतिपाठकौ, इव = यथा, राजतः = शोभेते। उपमालङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २६ ॥

नेपथ्य इति। साधु = सुष्ठु। नानादिगन्तसमागतनृपतिचक्रवर्णनाय—नानादिगन्तेभ्यः = विभिन्नदिशान्तेभ्यः समागताः = स्वयम्वरे प्राप्ताः ये नृपतयः = राजानः तेषां चक्रम् = समूहः तस्य वर्णनाय = परिचयप्रदानाय ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

दाल्भ्यायनः—अहो घुणाक्षरन्यायो यदिदं भ्रमरद्वयं प्रति मयोक्तं बन्दिद्वयं प्रति फलितं वचः। भवतु। तदिमं भ्रमरवृत्तान्तमस्मद्गुरवे निवेदयामि।

(इति निष्क्रान्ताः)

। इति विष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति बन्दिद्वयम्।)

एकः—वयस्य मञ्जीरक, पश्य पश्य। गजेन्द्रदशनस्निग्धशलाकासहस्रनिर्मितेषु मञ्चेष्वासीना इमे कुङ्कुमकृताङ्गरागा राजानोऽमलस्फटिकप्रासादशिखरासङ्गिनः कनकसिंहा इव राजन्ते। अमुग्धदुग्धसागरलहरीशिखरावलम्बिनोऽभिनवोद्गच्छन्निशाकरबिम्बप्रतिबिम्बा इव शोभन्ते।

[वअस्स मञ्जीरअ, पेक्ख पेक्ख। गइन्ददसणसिणिद्धसलाआसहस्सणिम्मिदेसु मञ्चएसु आसीणा इमे कुङ्कुमकअङ्गराआ राआणो अमलफडिअपासाअसिहरासङ्गिणो कणअसिंहा विअ रेहन्ति। अमुद्धदुद्धसाअरलहरिसिहरावलम्बिणो अभिणवुग्गमन्तणिसाअरबिम्बपडिबिम्बा विअ सोहन्ति।]

मञ्जीरकः—सखे नूपुरक, पश्य पश्य—

स्वां स्वां दिशं श्रितवतां निवहेन राज्ञां
मञ्चावलीवलयमाकलितं विभाति।
सीतास्वयंवरविलोकनकौतुकेन
पुञ्जीकृताकृति दिशामिव चक्रवालम् ॥ २७॥

दाल्भ्यायन इति। घुणाक्षरन्यायः = आकस्मिकी घटनाप्रवृत्तिः, काष्ठे कीटैर्भक्ष्यमाणे कदाचित् केचन वर्णाः अनायासेनैवोत्कीर्णाः जायन्ते एवमेव संयोगेन यदा आकस्मिकं कार्यं सम्पद्यते तदा कथ्यते—कार्यमिदं घुणाक्षरन्यायेन सम्पन्नमिति। फलितम् = घटितम्।

विष्कम्भकः—एतल्लक्षणमुक्तं दशरूपके यथा —

'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥
एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः।' १।५९–६०॥

तथा चायं विष्कम्भकः मध्यपात्रप्रयोजितत्वात् शुद्धो ज्ञेयः इति॥

एक इति। वयस्य = मित्र। गजेन्द्रदशनस्निग्धशलाकासहस्रनिर्मितेषु—गजेन्द्राणाम् = गजराजानाम् ये दशनाः = दन्ताः ('रदना दशना दन्ता रदा' इत्यमरः) तेषां स्निग्धाः = चिक्कणाः याः शलाकाः = स्वल्पाः पट्टिकाः तासां सहस्रम् = दशशती, समुदायः इत्यर्थः, तेन निर्मितेषु = रचितेषु, मञ्चेषु = पर्यङ्केषु, आसीनाः = स्थिताः, इमे = एते, कुङ्कुमकृताङ्गरागाः—कुङ्कुमेन = काश्मीरेण ('काश्मीरं कुङ्कुमेऽपि स्याट्टङ्कपुष्करमूलयोः' इति मेदिनी) कृतः = विहितः अङ्गरागः = शरीरावयवेषु लेपनम् यैस्ते, राजानः = भूभुजः, अमलस्फटिकप्रासादशिखरासङ्गिनः—अमलाः = स्वच्छाः ये स्फटिकाः = स्फटिकमणयः तैः निर्मितः यः प्रासादः = राजभवनम् तस्य शिखरे = शृङ्गे,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

दाण्डायन—अहो ! यह घुणाक्षर न्याय है, जो कि मेरे द्वारा दो भौंरों के प्रति कहा गया यह वचन दो स्तुतिपाठकों के प्रति घटित हुआ। अच्छा, तो इस भ्रमर-वृत्तान्त को (चलकर) अपने गुरु (याज्ञवल्क्य) से निवेदन करूँ।

(इस प्रकार (सब) निकल जाते हैं)

विशेष—घुणाक्षरन्याय—(लकड़ी में घुण कीटों के द्वारा निर्मित अक्षर का न्याय) किसी लकड़ी में घुन लग जाने से अथवा किसी पुस्तक में दीमक लग जाने से कुछ अक्षरों की आकृतियाँ अपने आप बन जाती हैं। उन्हीं से कभी राम, कृष्ण आदि भी लिखा जाते हैं। इन अक्षरों को कीड़े जान-बूझ कर नहीं लिखते हैं। ये अचानक ही अपने आप लिखा जाते हैं। अतः जब कोई कार्य अनायास अथवा अकस्मात् हो जाता है तब उसे 'घुणाक्षरन्याय' से हुआ कहा जाता है।

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

टिप्पणी—विष्कम्भक—विष्कम्भक नाटक (रूपक) में अतीत (घटित) तथा आगे आनेवाली घटनाओं (कथांशों) की सूचना देनेवाला होता है। यह सूचना संक्षेप में ही दी जाती है। विष्कम्भक मध्यपात्रों के द्वारा उपस्थित किया जाता है। (देखिये—दशरूपक १।५९)।

(तदनन्तर दो स्तुतिपाठक प्रवेश करते हैं)

एक—मित्र मञ्जीरक देखो, देखो—गजराजों के दाँतों की चिकनी हजारों पटरियों से बने हुए मञ्चों पर बैठे हुए, केसर से अङ्ग में लेप किए हुए राजा लोग, स्वच्छ स्फटिक मणि के महल के सर्वोच्च भाग पर बैठे हुए सोने के सिंहों के समान सुशोभित हो रहे हैं। (तथा) उफने हुए क्षीर सागर की लहरियों के ऊपर प्रतिबिम्बित (चमकने वाले) शीघ्र ही निकलते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्बों के समान शोभा पा रहे हैं।

मञ्जीरक—मित्र नूपुरक देखो, देखो—अपनी-अपनी दिशा का आश्रयण करने वाले (अर्थात् अपने-अपने देश की तरफ वाली दिशा की ओर बैठे हुए) राजाओं के समुदाय के द्वारा ग्रहण किया गया, मञ्चों की कतारों का समूह, सीता के स्वयम्वर को देखने की उत्कण्ठा से एकत्रित, दिशाओं के समूह की तरह शोभित हो रहा है ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वभागे इत्यर्थः, आसङ्गिनः = आरूढाः स्थिताः इति यावत्, कनकसिंहाः = सुवर्णकेशरिणः, इव राजन्ते = शोभन्ते। वर्णसाम्येन कनकोपमानता बलाधिक्यसाम्याच्च सिंहसमानतेति धेयम्। अमुग्धदुग्धसागरलहरीशिखरावलम्बिनः—अमुग्धः = प्रबलः, पौर्णमासीचन्द्रमसं दृष्ट्वा उच्चलितः इत्यर्थः, यः दुग्धसागरः = क्षीरसागरः तस्य या लहर्यः = उर्मयः तासां शिखरेषु = ऊर्ध्वभागेषु अवलम्बन्ते = आश्रयन्ते तच्छीलाः, अभिनवोद्गच्छन्निशाकरप्रतिबिम्बाः—अभिनवः = नूतनः उद्गच्छन् = उद्यन् यः निशाकरः = चन्द्रः तस्य बिम्बस्य = मण्डलस्य प्रतिबिम्बाः=प्रतिच्छायाः, प्रतिमाः इत्यर्थः ('प्रतिमानं प्रतिबिम्बं प्रतिमा प्रतियातना प्रतिच्छाया' इत्यमरः), इव = यथा, शोभन्ते = शोभां लभन्ते ॥

अन्वयः—स्वाम्, स्वाम्, दिशम्, श्रितवताम्, राज्ञाम्, निवहेन, आकलितम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च—

नटति नरकराग्रव्यग्रसूत्राग्रलग्न-
द्विपदशनशलाकामञ्चपाञ्चालिकेयम् ।
त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिताना—
मतिरभसवतीव क्ष्माभृतां चित्तवृत्तिः ॥ २८ ॥

नूपुरकः—वयस्य मञ्जीरक, कोऽयं सीताकरग्रहवासनावसन्तलक्ष्मीविलसत्पुलकमुकुल-जालमण्डितं निजभुजसहकारशाखियुगलं विलोकयंस्तिष्ठति ।

[वअस्स मञ्जीरअ, को इमो सीदाकरग्गहवासनावसन्तलच्छीविलसन्तपुलअमुउल-जालमण्डिदं णिअभुअसहआरसाहिजुअलं पुलोवन्तो चिट्ठदि ।]

मञ्चावलीवलयम्, सीतास्वयम्वरविलोकनकौतुकेन, पुञ्जीकृताकृति, दिशाम्, चक्रवालम्, इव, शोभते ॥ २७ ॥

स्वां स्वामिति । स्वां स्वाम् = निजां निजाम्, वीप्सायां द्विरुक्तिः, दिशम् = पूर्वादिकाष्ठाम् ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः), श्रितवताम् = उपतिष्ठताम्, राज्ञाम् = भूभुजाम्, निवहेन = समूहेन, आकलितम् = अधिष्ठितम्, मञ्चावलीवलयम्—मञ्चाः = पर्यङ्काः ('मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्काः' इत्यमरः) तेषाम् अवल्यः = पंक्तयः तासां वलयम् = मण्डलम्, मञ्चमण्डलमिति यावत्, सीतास्वयम्वरविलोकनकौतुकेन–सीतायाः = जानक्याः स्वयम्वरः = स्वयम्पतिवरणमहोत्सवः इत्यर्थः, तस्य विलोकनम् = अवलोकनम् तस्मिन् कौतुकेन = कुतूहलेन, पुञ्जीकृताकृति—पुञ्जीकृता = एकत्रीकृता आकृतिः = आकारः येन यस्य वा तत्, दिशाम् = काष्ठानाम्, चक्रवालम् = मण्डलम्, इव = यथा, शोभते = विभाति । गजेन्द्रदशननिर्मितं राजभिरधिष्ठितं मञ्चावलीवलयं तथैव शोभते इव यथा पूञ्जीभूतं दिङ्मण्डलमिति तात्पर्यार्थः । अत्र उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥' २७ ॥

अन्वयः—इयम्, नरकराग्रव्यग्रसूत्राग्रलग्नद्विपदशनशलाकामञ्चपाञ्चालिका, त्रिपुर-मथनचापारोपणोत्कण्ठितानाम्, क्ष्माभृताम्, अतिरभसवती, चित्तवृत्तिः, इव, नटति ॥ २८ ॥

नटतीति । इयम् = सन्निकृष्टा, पुरो दृश्यमानेति यावत्, नरकराग्रेत्यादिः—नाराणाम् = जनकराजपुरुषाणाम् कराग्रेषु = हस्ताग्रभागेषु व्यग्राणि = लग्नानि यानि सूत्राणि = रज्जवः तेषाम् अग्रेषु = प्रान्तेषु लग्ना = बद्धा या द्विपानाम् = हस्तिनाम् दशनाः = दन्ताः तेषां शलकाः = लघुपट्टिकाः ताभिर्निर्मिताः ये मञ्चाः = पर्यङ्काः तद्रूपा या पाञ्चालिका = पुत्रिका ('पाञ्चालिका पुत्रिका स्याद्वस्त्रदन्तादिभिः कृता' इत्यमरः), त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठितानाम्—त्रिपुरमथनः = शिवः तस्य यः चापः = धनुः तस्य आरोपणे = उत्तोलने इत्यर्थः उत्कण्ठितानाम् = उत्सुकानाम्, क्ष्माम् = पृथिवीम् बिभ्रति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

और भी—

(महाराज जनक के) राजपुरुषों के हाँथों के अग्रभाग में लगी हुई (अग्रभाग से पकड़ी गई) रस्सियोंके छोर में बँधी हुई हाथी के दांतों की पटरियों से निर्मित मञ्च-रूप यह कठपुतली, शङ्कर के धनुष को चढ़ाने के लिए उत्कण्ठित राजाओं के अत्यन्त चञ्चल मनोभावना के समान नाच रही है ॥ २८ ॥

विशेष—प्राचीन काल में बड़े-बड़े महाराजाओं के यहाँ स्वयम्वर के अवसर पर बने मञ्चों को, राजाओं का सेवक-वर्ग, रस्सियों में बाँध कर इसलिए चारों ओर घुमाता रहता था ताकि वहाँ उपस्थित चारों ओर की जनता उन्हें आसानी से देख सके। पूर्व श्लोक में राजाओं की प्रथम अवस्था का वर्णन है, जब कि वे लोग अपनी-अपनी राजधानी की दिशा की ओर ही बैठे हैं, किन्तु इस श्लोक में उनकी द्वितीय अवस्थाका वर्णन है जब कि वे मञ्च पर बैठे ही बैठे चारों ओर घुमाए जा रहे हैं ॥ २८ ॥

नूपुरक—मित्र मञ्जीरक, यह कौन (है, जो) सीता के पाणिग्रहण (विवाह) की वासनारूप वसन्त (ऋतु) की शोभा के कारण प्रादुर्भूत रोमाञ्चरूप मुकुलों (कलियों) के समूह से मण्डित (युक्त) आम के वृक्षों के समान अपने दोनों बाहुओं को देख रहा है ? (अर्थात् वसन्त के कारण मुकुलित (बौराए) दो आम के वृक्षों की भाँति, सीता को पाने की खुशी के कारण रोमाञ्चित अपनी दोनों भुजाओं को देखनेवाला यह कौन है ?)

= पालयन्ति इति क्ष्माभृतः = राजानः तेषाम् , अतिरभसवती = अतिवेगवती, अतिचञ्चलेति यावत् , चित्तवृत्तिः = मनोदशा, इव = यथा, नटति = भ्रमति। पुरातने काले स्वयम्वरे रज्जुभिः सञ्चालितानां मञ्चानां तादृशी व्यवस्थाऽऽसीत् यथा चतुर्दिक्षु स्थिताः जनाः तत्र स्थितान् जनान् पश्येयुरिति। सीताप्राप्तौ निश्चयाऽनिश्चयरूपा राज्ञां मनोभावना तथैव नटति यथा मञ्चरूपा पुत्तलिकेति भावः। अत्र पूर्वार्द्धे रूपकमुत्तरार्द्धे चोपमालङ्कारः। मालिनी वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥' २८ ॥

नूपुरक इति। सीताकरग्रहवासनावसन्तलक्ष्मीविलसत्पुलकमुकुलजालमण्डितम्—सीतायाः = जानक्याः करग्रहः = पाणिग्रहणम् , विवाहः इत्यर्थः, तस्मिन् या वासना = उत्कटेच्छा सा एव वसन्तस्य = वसन्तर्तोः लक्ष्मीः = शोभा, समृद्धिरिति यावत् , तया विलसन्ति = विकसन्ति, उद्गतानीत्यर्थः, यानि पुलकानि = रोमोद्गमाः तान्येव मुकुलानि = कुड्मलानि तेषां जालम् = समुदायः तेन मण्डितम् = सुशोभितम् , सीतापाणिग्रहणकल्पनया रोमाञ्चितमित्यर्थः, निजभुजसहकारशाखियुगलम्—निजौ=स्वकीयौ यौ भुजौ = बाहू एव सहकारशाखिनौ = आम्रवृक्षौ तयोः युगलम् = युग्मम् , विलोकयन् = अवलोकयन् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मञ्जीरकः—स एष निजयशःपरिमलप्रमोदितचारणचञ्चरीकचयकोलाहलमुखरित-दिक्चक्रवालक्ष्मापालकुन्तलालंकारो मल्लिकापीडो नाम।

नूपुरकः—अयं पुनः कतमो यः किल दूरापसारितकटकप्रकटितधनुर्गुणकषणकिण-लेखामण्डले भुजदण्डे विलोकयंस्तिष्ठति।

[इमो उण कदमो जो किल दूरावसारिअकडअप्पअडिअधणुग्गुणकिणकसणलेहामण्डले भुअदण्डे पुलोवन्तो चिट्ठदि।]

मञ्जीरकः—सोऽयं कुबेरदिगङ्गनाललाटतटविलासलम्पटः काश्मीरतिलकः।

नूपुरकः—अयं पुनः को निजप्रतापदिनकरोद्गमपूर्वगिरिशिखरसहचरं दक्षिणभुज-दण्डमुन्नमय्य वर्तते।

[इमो उण को निअपडावदिणअरुग्गमपुव्वगिरिसिहरसहअरं दक्खिणभुअदण्ड-मुन्नमिअ वट्टदि।]

मञ्जीरकः—स एष निजप्रतापप्रभापटलपिञ्जरितमलयाचलनितम्बतटः काञ्चीमण्डनो वीरमाणिक्यनामा नृपतिः।

नूपुरकः—कोऽयं हर्षोल्लसत्पुलकविसंष्टुलकपोलस्थलचलितकुण्डलसदृशनिवेशना-पदेशेन प्रकटितहरशरासनकर्णपूरमनोरथो राजते।

[को इमो हरिसुल्लसन्तपुलअविसंठुलकपोलत्थलचलिअकुण्डलसरिसनिवेसणावदेसेण पअडिअहरसरासणकण्णऊरमनोरहो रेहदि।]

मञ्जीरक इति। निजयशःपरिमलेत्यादिः—निजम् = स्वकीयम् यत् यशः = कीर्तिः एव परिमलः = गन्धः ('परिमलो गन्धे जनमनोहरे' इत्यमरः) तेन प्रमोदिताः = हर्षिताः ये चारणाः = स्तुतिपाठकाः एव चञ्चरीकाः = भ्रमराः तेषां चयः = समुदायः तस्य कोलाहलेन = कलकलेन, प्रशंसाशब्देनेत्यर्थः, मुखरितः = शब्दायमानः दिशाम् = काष्ठानाम् ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः) चक्रवालम् = मण्डलम् येन सः, एव-म्भूतः क्ष्मापालः = पृथिवीपालः कुन्तलस्य = तन्नाम्नो देशस्य अलङ्कारः = आभूषणम्, मल्लिकापीडः अस्ति। अत्र केचन टीकाकाराः कुन्तलशब्दस्य 'केशः' इत्यर्थं कुर्वन्ति तत्तु न समीचीनमग्रे राजवर्णनविसम्वादादिति॥

नूपुरक इति। दूरापसारितकटकप्रकटितधनुर्गुणकषणकिणलेखामण्डले—दूरम् = विप्रकृष्टम् यथा तथा अपसारितः = प्रतिसारितः, ऊर्ध्वं स्थापितः इत्यर्थः, यः कटकः = वलयः ('आवापकः पारिहार्यः कटको वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः) तेन प्रक-टितः = स्पष्टं दृष्टः यः धनुषः = कोदण्डस्य गुणः = मौर्वी ('मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः) तस्य कषणेन = घर्षणेन यः किणः = घर्षणजन्यः कठिनः मांसग्रन्थिः स एव लेखामण्डलम् = रेखामण्डलम् तस्मिन्, भुजदण्डे = पीवरे बाहौ इत्यर्थः॥

मञ्जीरक इति। कुबेरदिगङ्गनाललाटतटविलासलम्पटः—कुबेरस्य = धनाधिपस्य ('कुबेर······'धनदो राजराजो धनाधिपः' इत्यमरः) या दिक् = दिशा, उत्तरा दिगित्यर्थः, सा एव अङ्गना = सुन्दरी तस्याः ललाटतटः = भालतटः, पर्यन्त-

Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मञ्जीरक—अपने यशरूप सुगन्ध से प्रसन्न चारण (स्तुतिपाठक) रूप भौंरों के समूह के कोलाहल से शब्दायमान कर दिया है दिशाओंके मण्डल को जिन्होंने ऐसे, राजाओं के शिरोभूषण (के सदृश) यह जगद्विदित मल्लिकापीड नामक (राजा हैं) ।

नूपुरक—और यह कौन है ? जो कि (हाथ में पहने गए) कड़ा को दूर हटा देने (ऊपर खिसका देने) के कारण स्पष्ट दिखलाई पड़ने वाले, धनुष की डोरी के घिसने से (उत्पन्न) घट्टारूप रेखा मण्डल वाले अपने भुजदण्ड के ऊपर देख रहा है ?

मञ्जीरक—यह कुबेर की (उत्तर) दिशारूप सुन्दरी के ललाटतट (उत्तरी सीमा) के सम्भोग के व्यसनी काश्मीर के अधिपति हैं ।

नूपुरक—अच्छा, यह कौन (है ? जो) अपने प्रतापरूप सूर्य के उदय के लिए पूर्वगिरि (उदयाचल) के शिखर के समान (अपने) दाहिने भुजदण्ड को उठाकर स्थित है ।

मञ्जीरक—अपने प्रताप के प्रभासमूह से पीला कर दिया है मलयपर्वत के निचले भाग को जिसने ऐसे यह काञ्ची (नगरी) के आभूषण (स्वरूप) वीरमाणिक्य नामवाले अत्यन्त प्रसिद्ध राजा हैं ।

नूपुरक—(सीता को पाने की) प्रसन्नता के कारण प्रकट होनेवाले रोमाञ्च से अस्थिर कपोल-स्थल पर चञ्चल कुण्डल को उचित (स्थान में) रखने के बहाने से प्रकट किया है शिव के धनुष को कर्णपूर (कान तक तानकर उसका आभूषण, बनाने) की अभिलाषा को जिसने ऐसा यह कौन (राजा) सुशोभित हो रहा है ?

पृथिवीत्यर्थः, तस्य विलासे = सम्भोगे लम्पटः = लोलुपः व्यसनी वा, काश्मीरतिलकः = काश्मीराधिपतिरिति यावत् ॥

नूपुरक इति । निजप्रतापदिनकरोद्गमपूर्वगिरिशिखरसहचरम्—निजः = स्वकीयः यः प्रतापः = प्रभावः ('प्रतापः प्रभावश्च' इत्यमरः) एव दिनकरः = सूर्यः तस्य उद्गमाय = उदयाय पूर्वगिरेः = उदयाचलस्य शिखरम् = शृङ्गम् तस्य सहचरम् = मित्रम्, तुल्यमित्यर्थः, दक्षिणभुजदण्डम् = वामेतरं बाहुमिति यावत्, उन्नमय्य = उत्थाप्य, वर्तते = तिष्ठतीति ॥

मञ्जीरक इति । निजप्रतापप्रभापटलपिञ्जरितमलयाचलनितम्बतटः—निजः = स्वकीयः यः प्रतापः = प्रभावः तस्य प्रभापटलम् = कान्तिसमूहः तेन पिञ्जरितः = पिशङ्गीकृतः = मलयाचलस्य = मलयपर्वतस्य नितम्बतटः = अधोभागः येन तादृशः, काञ्चीमण्डनः—काञ्च्याः = काञ्चीनगर्याः मण्डनः = आभूषणरूपः ॥

नूपुरक इति । हर्षोल्लसत्पुलकविसंष्ठुलकपोलस्थलचलितकुण्डलसदृशनिवेशनापदेशेन—हर्षेण = आनन्दाधिक्येन उल्लसन्ति = उद्गच्छन्ति यानि पुलकानि = रोमाञ्चाः तैः विसंष्ठुलम् = अस्थिरीकृतम्, यत् कपोलस्थलम् = गण्डस्थलम् तत्र

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मञ्जीरकः—सोऽयमसमरणमहार्णवैकमकरो मत्स्यराजः ।

नूपुरकः—अयं पुनः कोऽमलमलयजरसधवलितनिजभुजदण्डविडम्बितभुजगराजश्रीः शिरीषकुसुमसुकुमारं माररिपुशरासनं कलयन्विस्फुरति ।

[इमो उण को अमलमलअअरसधवलिअणिअभुअदण्डविडम्बिअभुअगराअसिरी सिरीसकुसुमसुउमारं माररिवुसराअणं कलअन्तो विप्फुरदि ।]

मञ्जीरकः—स एष विमलमुक्तावलीविराजमानवक्षस्तटतुङ्गभुजतरङ्गः सिन्धुराजः । तदलमनेन । प्रकृतं तावदुपक्रमामहे । (परिक्रम्य । उच्चैः ।) अहो राजानः, आकर्णयत आकर्णयत ।

आकर्णान्तं त्रिपुरमथनोद्दण्डकोदण्डनद्धां
मौर्वीमुर्वीवलयतिलकः कोऽपि यः कर्षतीह ।
तस्यायान्ती परिसरभुवं राजपुत्री भवित्री
कूजत्काञ्चीमुखरजघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाय ॥ २५ ॥

(पुनः सकौतुकम्) सखे, पश्यताममी—

चलितम् = चञ्चलम् यत् कुण्डलम् = कर्णवेष्टनम् ('कुण्डलं कर्णवेष्टनम्' इत्यमरः) तस्य सदृशे = उचिते स्थाने निवेशनम् = स्थापनम् तस्य अपदेशेन = व्याजेन ('व्याजोऽपदेशो लक्ष्यं च' इत्यमरः), प्रकटितहरसरासनकर्णपूरमनोरथः—प्रकटितः = प्रकाशितः हरस्य = शिवस्य कार्मुकम् = धनुः एव कर्णपूरः = कर्णाभूषणम् तस्मिन् मनोरथः = अभिलाषा येन तादृशः, हरचापारोपणोत्सुकः इति भावः ॥

मञ्जीरक इति । असमरणमहार्णवैकमकरः—असमः = अद्वितीयः रणः = संग्रामः एव महार्णवः = भयङ्करः सागरः तस्य एकः = अद्वितीयः, अनुपम इति यावत्, मकरः = ग्राहः । महान् युद्धकौशलविशारदः इत्यर्थः ॥

नूपुरक इति । अमलमलयजरसधवलितनिजभुजदण्डविडम्बितभुजगराजश्रीः— अमलः = अतिस्वच्छः यः मलयजरसः = मलयचन्दनरसः तेन धवलितौ = शुभ्रीकृतौ निजौ = स्वकीयौ यौ बाहुदण्डौ = भुजदण्डौ ताभ्यां विडम्बिता = अनुकृता भुजगराजस्य = सर्पराजस्य, शेषस्येत्यर्थः, श्रीः = शोभा येन तादृशः, शिरीषकुसुमसुकुमारम्—शिरीषकुसुमस्येव = शिरीषपुष्पस्येव सुकुमारम् = अत्यन्तकोमलम् ; माररिपुशरासनम्— माररिपोः = शिवस्य शरासनम् = धनुः, कलयन् = विचारयन् ॥

मञ्जीरक इति । विमलमुक्तावलीविराजमानवक्षस्तटतुङ्गभुजतरङ्गः— विमला = स्वच्छा या मुक्तावली = मुक्तामाला तया विराजमानम् = शोभमानम् वक्षस्तटम् यस्य तादृशः, पुनः तुङ्गौ = उन्नतौ भुजौ = बाहू एव तरङ्गौ यस्य तादृशः । सिन्धुराजः = सिन्धुदेशाधिपतिः । अलमनेन = प्रसङ्गमिमं समापयेत्यर्थः । प्रकृतम् = प्रस्तुतम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मञ्जीरक—यह अनुपम युद्धरूपी महासागर के एकमात्र ग्राह, मलय देश के प्रसिद्ध राजा हैं (अर्थात् किसी से भी भय न करनेवाले युद्ध-स्थल के चतुर महायोद्धा हैं) ।

नूपुरक—अच्छा, निर्मल मलय-चन्दन के रस से सफेद किये गए अपने भुजदण्डों से अनुकरण किया है शेषनाग की शोभा को जिसने ऐसा (अर्थात् शेषनाग की शोभा का अनुकरण करनेवाला) यह कौन (है ? जो) कामारि (भगवान् शङ्कर) के धनुष को शिरीष के फूल के समान सुकुमार समझता हुआ शोभित हो रहा है ।

मञ्जीरक—स्वच्छ मोतियों की माला से सुशोभित वक्षस्थलवाले तथा उन्नत बाहुरूपी तरङ्ग से युक्त ये प्रसिद्ध सिन्धुराज (सिन्धदेश के शासक) हैं । अच्छा, इस (राजवर्णन) को समाप्त करो । प्रस्तुत (विषय) का आरम्भ करें । (घूमकर जोर से) हे राजाओं, सुनिये सुनिये ।

इस स्वयम्वर में जो कोई भी राजा शङ्कर के विशाल धनुष में लगी हुई डोरी को कान तक खींचेगा, उसीके निकट की भूमि में (अर्थात् पास में) आती हुई, झनझनाती (बजती) हुई करधनी से शब्दायमान, कमर के अगले भागवाली राजपुत्री (सीता उसी के ही) कान और आँख के आनन्द के लिए होगी (अर्थात् उसी को अपना पति वरण करेगी ॥ २९ ॥

(फिर उत्सुकता के साथ) मित्र, देखो ये—

अन्वयः—इह, यः, कोऽपि, उर्वीवलयतिलकः, त्रिपुरमथनोद्दण्डकोदण्डनद्धाम् , मौर्वीम् , आकर्णान्तम् , कर्षति; तस्य, परिसरभुवम् , आयान्ती, कूजत्काञ्चीमुखरजघना, राजपुत्री, (सीता, तस्य एव), श्रोत्रनेत्रोत्सवाय, भवित्री ॥ २९ ॥

जनकप्रतिज्ञामुद्घोषयन्नाह—आकर्णान्तमिति । इह = अस्मिन् स्वयम्वरे, यः कोऽपि = यः कश्चिदपि, उर्वीवलयतिलकः—उर्व्याः = पृथिव्याः वलयः = मण्डलम् तस्य तिलकः = विशेषकः, अलङ्कारः इत्यर्थः, त्रिपुरमथनोद्दण्डकोदण्डनद्धाम्—त्रिपुरमथनः = शिवः तस्य उद्दण्डम् = भयानकम् , विशालमित्यर्थः, यत् कोदण्डम् = धनुः तस्मिन् नद्धाम् = बद्धाम् , मौर्वीम् = ज्याम् ('मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः), आकर्णान्तम् = कर्णपर्यन्तम् , कर्षति = आकर्षति; तस्य = शिवचापगुणारोपकस्य, परिसरभुवम् = प्रान्तभूमिम् , समीपमित्यर्थः, आयान्ती = आगच्छन्ती, कूजत्काञ्चीमुखरजघना—कूजन्ती = शब्दायमाना या काञ्ची = रशना ('स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा' इत्यमरः) तया मुखरम् = शब्दायमानम् जघनम् = स्त्रीकट्याः पुरोभाग ('स्त्रीकट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः) यस्याः सा, राजपुत्री—राज्ञः = जनकस्य पुत्री = सुता सीतेत्यर्थः, तस्यैवेति शेषः, श्रोत्रनेत्रोत्सवाय—श्रोत्रयोः = कर्णयोः, काञ्चीपादभूषणझङ्कारेण श्रोत्रयोः, नेत्रयोः = नयनयोश्च उत्सवाय = आनन्दाय, भवित्री = भविष्यतीति । राजपुत्री शिवचापोत्तोलकस्य वीरवरस्य श्रोत्रयोः काञ्चीशब्देन नेत्रयोश्च

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कामारिकार्मुकविकर्षणकौतुकोर्मि-
रोमाञ्चितद्विगुणपीवरबाहुदण्डाः ।
सीताकरग्रहमिलत्कुतुकातिमात्र-
विस्तीर्यमाणहृदयाः परितो नरेन्द्राः ॥ ३० ॥

(पुनः सहर्षम्) अये, कथमुच्चलितमेव समसमयसञ्चरणमिलत्कपोलतलसंघट्टमसृणरणन्मणिकुण्डलेन राजमण्डलेन ।

नूपुरकः—विलोकय विलोकय । एषामन्योन्यसंघट्टमानकेयूरसमुच्चलत्कनककणमिषेण प्रतापाग्नेर्विस्फुलिङ्गा इव दृश्यन्ते ।

[पुलोवेहि पुलोवेहि । इमाणं अण्णोण्णसंघट्टन्तकेयूरसमुच्चलन्तकणअकणमिसेण पआवाग्गिणो विप्फुलिङ्गा विअ दीसन्ति ।]

मञ्जीरकः—(विहस्य)

पश्य पश्य सुभटैः स्फुटभावं भक्तिरेव गमिता न तु शक्तिः ।
अञ्जलिर्विरचितो न तु मुष्टिर्मौलिरेव नमितो न तु चापः ॥ ३१ ॥

रूपसौन्दर्यादिभिश्चानन्ददायिनी भविष्यतीति भावः । अत्र परिकरालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ; तल्लक्षणं यथा—'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥' २९ ॥

अन्वयः—कामारिकार्मुकविकर्षणकौतुकोर्मिरोमाञ्चितद्विगुणपीवरबाहुदण्डाः, सीताकरग्रहमिलत्कुतुकातिमात्रविस्तीर्यमाणहृदयाः, नरेन्द्राः, परितः, (तिष्ठन्ति) ॥३०॥

कामारीति । कामारिकार्मुकविकर्षणेत्यादिः—कामारेः = शिवस्य कार्मुकम् = धनुः तस्य विकर्षणे = आकर्षणे, आरोपणे इत्यर्थः, यत् कौतुकम् = कौतूहलम् तस्य उर्मयः = तरङ्गाः तैः रोमाञ्चितौ = सञ्जातपुलकौ द्विगुणमांसलौ बाहुदण्डौ = भुजदण्डौ येषां ते, पुनः सीताकरग्रहेत्यादिः—सीतायाः = जानक्याः करग्रहः = पाणिग्रहणम् , विवाहः इत्यर्थः, तस्मिन् मिलत् = प्राप्तं भवत् यत् कुतुकम् = कौतूहलम् , उत्कण्ठेत्यर्थः, तेन हेतुना अतिमात्रम् = अत्यधिकम् यथा स्यात्तथा विस्तीर्यमाणानि = प्रफुल्लानि हृदयानि = वक्षस्थलानि येषां तादृशा नरेन्द्राः = राजानः, परितः = चतुर्दिक्षु, तिष्ठन्तीति शेषः । श्लोकेऽस्मिन् वसन्ततिलका वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ ३० ॥

पुनरिति । समसमयसञ्चरणमिलत्कपोलतलसंघट्टमसृणरणन्मणिकुण्डलेन—समसमये = एकस्मिन्नेव काले यत् सञ्चरणम् = चलनम् , धनुरुत्तोलनाय प्रस्थानमित्यर्थः, तेन मिलन्ति = संयुक्तानि यानि कपोलतलानि = गण्डस्थलानि तेषां संघट्टेन = संघर्षणेन मसृणम् = मृदुलं यथा तथा, रणन्ति = शब्दायमानानि, झणझणायमानानीत्यर्थः, मणिकुण्डलानि = मणिनिर्मितानि कर्णाभूषणानि यस्य तादृशेन, राजमण्डलेन राज्ञां मण्डलेन = समूहेन, उच्चलितम् = प्रस्थितम् ॥

नूपुरक इति । एषाम् = अत्रोपस्थितानां राज्ञामिति । अन्योन्यसंघट्टमानकेयूरसमुच्चलत्कनककणमिषेण—अन्योन्यम् = परस्परम् संघट्टमानानि = घृष्टानि यानि

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शिव के धनुष को खींचने (चढ़ाने) की उत्कण्ठा की तरङ्गों से रोमाञ्चित एवं दूना फूले हुए भुजदण्डवाले, सीता के पाणिग्रहण (की कल्पना) से प्राप्त उत्सुकता के कारण अत्यन्त फूली हुई छातीवाले राजा लोग चारों ओर (स्थित हैं) ॥ ३० ॥

(फिर प्रसन्नता के साथ) अरे, क्या एक ही समय चल पड़ने से (परस्पर) मिलनेवाले कपोलों की रगड़ से मनोहर शब्द करनेवाले मणिनिर्मित कुण्डलों से युक्त राजसमूह के द्वारा चल दिया गया (अर्थात् राजसमूह चल पड़ा) ?

नूपुरक—देखो देखो। इन (राजाओं) के परस्पर टकराते हुए बाजूबन्दों से निकलनेवाले सुवर्ण के कणों (टुकड़ों) के बहाने मानो (इनके) प्रतापरूपी अग्नि की (निकलती हुई) चिनगारियाँ दिखलाई पड़ रही हैं।

मञ्जीरक—(हँसकर)—

देखो, देखो। योद्धाओं के द्वारा (शिवजी के धनुष में) भक्ति ही व्यक्त की गयी, शक्ति नहीं। अञ्जलि (ही) बाँधी गयी (धनुष खींचने के लिए) मुट्ठी नहीं (बाँधी गई)। (अपना) मस्तक ही झुकाया गया किन्तु धनुष नहीं ॥ ३१ ॥

विशेष—राजाओं ने झुक-झुक कर जोर से धनुष उठाना प्रारम्भ किया। किन्तु उनका प्रयास निष्फल रहा। अतः मञ्जीरक उनका उपहास करते हुए कह रहा है कि—राजाओं ने शिवधनु उठाने के लिए शिर नहीं झुकाया है, अपितु उसकी गुरुता देखकर मानो श्रद्धा से उसे प्रणाम किया है, धनुष पकड़ने के लिए मुट्ठी नहीं बाँधी है, अपितु उसे मानो हाथ जोड़ा है ॥ ३१ ॥

केयूराणि = अङ्गदानि ('केयूरमङ्गदम्' इत्यमरः) तेभ्यः समुच्चलन्तः = उद्गच्छन्तः ये कनककणाः = स्वर्णरजांसि तेषां मिषेण = व्याजेन, प्रतापाग्नेः—प्रतापः = तेजः एव अग्निः = वह्निः तस्य, विस्फुलिङ्गाः = कणाः, इव दृश्यन्त इत्युत्प्रेक्षा। राज्ञामिति शेषः ॥

अन्वयः—पश्य, पश्य, सुभटैः, भक्तिः, एव, स्फुटभावम्, गमिता, शक्तिः, तु, न; अञ्जलिः, (एव), विरचितः, तु, मुष्टिः, न; मौलिः, एव, नमितः, तु, चापः, न ॥ ३१ ॥

धनुरुद्यमनाय राज्ञां प्रयासं निष्फलं दृष्ट्वा मञ्जीरक उपहसति—**पश्य पश्येति**। पश्य पश्य = अवलोक अवलोकय, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः, सुभटैः = वीरवरैः, राजभिरिति शेषः, भक्तिः = श्रद्धा, शिवकार्मुके इति शेषः, एव, स्फुटभावम् = प्रकाशताम्, गमिता = प्रापिता, शक्तिः = सामर्थ्यम्, शौर्यमिति शेषः, तु न = न प्रकटितेत्यर्थः। अञ्जलिः = करसम्पुटम्, प्रणामाञ्जलिरित्यर्थः, विरचितः = निर्मितः, तु = किन्तु, मुष्टिः = धनुर्ग्रहणाय अङ्गुलिसङ्कोचनमित्यर्थः, न = न विरचितेति शेषः। मौलिः = स्वशिरः, एव, नमितः = नम्रीकृतः, तु = किन्तु, चापः = धनुः, न = न तु चापः। असफले धनुरुद्यमने राज्ञामुद्यमनमुद्रा तत्र चापे तेषां भक्तिसूचिकेवेति भावः। अत्र परिसंख्यालङ्कारः। स्वागता वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'स्वागता रनभगैर्गुरुणा च ॥' ३१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नूपुरकः—कथमारम्भरमणीय एवैतेषां संरम्भः ।
[कहं आरम्भरमणिज्जो जेव्व इमाणं संरम्भो ।]
मञ्जीरकः—(सविषादम्)

आ द्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्येयं कलधौतकोमलरुचिः कीर्तिश्च लाभास्पदम् ।
नाकृष्टं न च टात्कृतं न नमितं स्थानाच्च न त्याजितं
केनापीदमहो धनुः किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम् ॥ ३२ ॥

(नेपथ्ये)

आः, कोऽयमलीकवैतालिको धनुर्मात्रकेऽपि नमयितव्ये निर्वीरमुर्वीतलमुपदिशति ।
नूपुरकः—वयस्य, कस्यायं महीतलचलद्राहुरथचक्ररवकर्कशः कण्ठध्वनिः श्रूयते ।
[वअस्स, कस्स इमो महीअलचलन्तराहुरहचक्करवकक्कसो कण्ठधुणी सुणीअदि ।]
मञ्जीरकः—मयाप्ययमपरिचितः । तदेनं पृच्छामि तावत् । (परिक्रम्य) अहो, कः खलु भवान्यः सकलदेशदर्शिनो ममापि न विख्यातः ।

(प्रविश्य)

पुरुषः—(साटोपं परिक्रम्य । सक्रोधम् ।) आः पाप, वैतालिकापसद, कतिपयग्रामटिकापर्यटनदुर्विदग्ध, कथं मामपि दश—(इत्यर्धोक्ते स्वगतम्) कथं संवरणीयं विवरितुमुपक्रान्तोऽस्मि । भवतु । इदमेव तावन्निर्वाहयामि । कथं मामपि दश-

---

नूपुरक इति । आरम्भरमणीयः—आरम्भे = प्रारम्भे, धनुरुत्तोलनाय प्रस्थानकाले इति यावत् , रमणीयः = सुन्दरः, एषाम् = राज्ञाम् , संरम्भः = उत्साहः ॥

अन्वयः—परतः, अपि, द्वीपात् , आ, अमी, सर्वे, नृपतयः, समभ्यागताः । कलधौतकोमलरुचिः, इयम् , कन्या, कीर्तिः, च, लाभास्पदम् , (आस्ते) । (किन्तु), केन, अपि, इदम् , धनुः, न, आकृष्टम् , न च, टात्कृतम् , न, नमितम् , च, स्थानात् , न, त्याजितम् । अहो ! अधुना, किम् , उर्वीतलम् , निर्वीरम् ? ॥ ३२ ॥

मञ्जीरक इति । परतः = अन्यस्मात् , अस्माज्जम्बूद्वीपादिति शेषः, अपि = च, द्वीपात् = भूभागात् , आ = प्रारभ्य, अत्र मर्यादायाम् आङ् , अन्यस्मादपि द्वीपादित्यर्थः, अमी = सम्प्रत्येव चापोत्तोलने निष्फलप्रयासाः, सर्वे = निखिलाः, नृपतयः = राजानः, समभ्यागताः = आयाताः । कलधौतकोमलरुचिः = कलधौतम् = सुवर्णम् ('कलधौतं सुवर्णं स्याद्रजते च नपुंसकम्' इति मेदिनी) इव कोमला = मृदुला रुचिः = कान्तिः यस्याः सा तादृशी, इयम् = एषा, यदर्थं सर्वे समायाताः सा इत्यर्थः, कीर्तिः = समज्ञा ('यशः कीर्तिः समज्ञा च' इत्यमरः), शिवधनुरुत्तोलनात् प्राप्तं यशः इत्यर्थः, लाभास्पदम् = प्राप्तिस्थानम् , प्राप्तव्येत्यर्थः, आस्ते इति शेषः । किन्तु, केनापि = केनाऽपि वीरेणेत्यर्थः, इदम् = पुरो वर्तमानम् , धनुः = शरासनम् , शिवशरासनमित्यर्थः, न आकृष्टम् = न आरोपितम् , न च टात्कृतम् = न शब्दायितम् , न नमितम् = न नम्रीकृतम् , च = तथा, स्थानात् = स्वप्रदेशात् , न त्याजितम् = न चालितम् । अहो

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नूपुरक—किस प्रकार इन (राजाओं) का उत्साह प्रारम्भ में ही सुन्दर था (अन्त में नहीं) ।

मञ्जीरक—(खेद के साथ) ।

अन्य भी द्वीप से ये सभी राजा लोग आये हुए हैं। सुवर्ण के समान कोमल कान्तिवाली यह कन्या (सीता) तथा (शिव धनुष उठाने से होनेवाली) कीर्ति प्राप्त होनेवाली है। (किन्तु) किसी के भी द्वारा यह धनुष न (तो) चढ़ाया, न (डोरी खींचकर छोड़ने से) टङ्कार ही किया गया। न (तो) झुकाया और न स्थान से ही हटाया गया। आश्चर्य है ! सम्प्रति क्या भूतल वीरों से विहीन हो गया है ? ॥३२॥

(पर्दे के पीछे)

अरे, यह कौन झूठा वैतालिक केवल धनुष को झुकाने भरके लिए भूतल को वीर-विहीन बतला रहा है।

नूपुरक—मित्र, पृथिवी पर चलते हुए राहु के रथ के चक्र (पहिया) के शब्द के समान कठोर यह किसकी गले की आवाज सुनाई पड़ रही है ?

मञ्जीरक—मेरे द्वारा भी यह नहीं पहचाना गया। अच्छा, पहले इस (व्यक्ति) से पूछता हूँ। (घूमकर) अहा, आप कौन हैं ? जो (कि) सम्पूर्ण देश को देखनेवाले मेरे लिए भी अपरिचित हैं (अर्थात् सभी देशों में घूमनेवाला मैं भी जिसे नहीं जानता हूँ) ।

(प्रवेश करके)

पुरुषः—(गर्व के साथ घूमकर । क्रोधपूर्वक) आः पापिन्, दुष्ट वैतालिक । कुछ (गिने-चुने) तुच्छ गाँवों में घूमने से (ही सम्पूर्ण देश में भ्रमण का) मिथ्या अभिमान करनेवाले । कैसे मुझ दश—(ऐसा आधा ही कहने पर, अपने आप) कैसे छिपाने योग्य बात को प्रकाशित करने जा रहा हूँ। अच्छा, तो इसका ही निर्वाह करूँगा (अर्थात् 'दश—' से आरम्भ किये गये वाक्य को ही पूरा करूँगा) । किस

इत्याश्चर्येऽव्ययपदम्, अधुना = सम्प्रति, किमिति प्रश्ने, उर्वीतलम् = भूतलम्, निर्वीरम्= वीरविरहितम्, अस्तीति शेषः। अत्रोपमालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। 'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितमिति' तल्लक्षणम् ॥ ३२ ॥

आः, कोऽयमिति । अलीकवैतालिकः = दुर्वैतालिकः, वैतालिकापसदः इत्यर्थः । निर्वीरम् = वीरशून्यम् ॥

नूपुरक इति । महीतलचलद्राहुरथचक्रस्वकर्कशः—महीतलम् = भूतलम् तस्मिन् = चलन् = गच्छन् राहोः = सैंहिकेयस्य ('राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः' इत्यमरः) रथः = स्यन्दनः तस्य यः स्वः = शब्दः तद्वत् कर्कशः = श्रवणकटुः ॥

पुरुष इति । साटोपम् = सगर्वम् । वैतालिकापसद—वैतालिकेषु = स्तुतिपाठकेषु अपसदः = जाल्मः, दुष्टः इति यावत्, तत्सम्बुद्धौ, कतिपयग्रामटिकापर्यटनदुर्विदग्ध—कतिपयाः = स्वल्पसंख्याकाः याः ग्रामटिकाः = क्षुद्राः ग्रामाः तासु पर्यटनेन= भ्रमणेन दुर्विदग्धः = वृथाऽभिमानी तत्सम्बुद्धौ । संवरणीयम् = गोपनीयम्, गोपनीयं

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

दिग्विलासिनीकर्णपूरीकृतकीर्तिपल्लवं त्रिभुवनवीरनामधेयं कूपमण्डूक इव सागरमविख्यातमपदिशसि। तत्कथय। क तावत्कर्णान्तनिवेशनीयगुणं कन्यारत्नं कार्मुकं च।

मञ्जीरकः—इदं तावत्कार्मुकम्। कन्या तु चरमं लोचनपथमवतरिष्यति।

पुरुषः—(ससंरम्भम्) धिङ् मूर्ख। कथं रे, राशिनक्षत्रपाठकानां गोष्ठीं न दृष्टवानसि। तेऽपि कन्यामेव प्रथमं प्रकटयन्ति, चरमं धनुः।

मञ्जीरकः—(स्वगतम्) कथमयं वाचाटतां प्रकटयति। भवतु। अनयैव तावदेनं निवारयामि। (प्रकाशम्।) अये, एतावति वीरमण्डले भवानेव नक्षत्रविद्याकुशलः।

पुरुषः—(सक्रोधम्) आः, कथं रे, अहमेव क्षत्रविद्यायामकुशलः।

मञ्जीरकः—तत्कथं कार्मुकमन्तरेणैव कन्याविलोकनायोत्कण्ठसे।

पुरुषः—(साटोपम्। परिक्रम्य।) कथं ममापि चापारोपणे संशयः।

मञ्जीरकः—अथ किम्।

पुरुषः—तदेष ममाभिसंभाव्यते। यदि—

विनैवाम्भोवाहं बहुलरुचिलिप्ताम्बरतला-
तडिल्लेखा हेमद्युतिविततिरम्या विलसति।

यदि वा—

विनैव स्वर्गङ्गां नभसि रभसोन्मुद्रशफरी-
परीवर्तैः साकं स्फुरति नवनीलोत्पलवनम्॥ ३३॥

स्वपरिचयमित्यर्थः, विवरितुम् = प्रकाशयितुम्, उपक्रान्तः = कृतोपक्रमः। निर्वाहयामि = पूरयित्वा कथयामि। दशदिग्विलासिनीकर्णपूरीकृतकीर्तिपल्लवम्—दश = दशसंख्याकाः दिशः = काष्ठाः ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः) एव विलासिन्यः = सुन्दर्यः ताभिः कर्णपूरीकृतम् = कर्णाभूषणीकृतम् कीर्तिः = यशः, निजयशः इत्यर्थः, एव पल्लवः = किसलयम् ('पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' इत्यमरः) यस्य तम्, त्रिभुवनवीरनामधेयम्—त्रिभुवने = त्रिलोक्याम् वीरः नामधेयम् = नाम यस्य तम्। कर्णान्तनिवेशनीयगुणम्—कन्यारत्नपक्षे—कर्णान्ते = श्रवणप्रान्ते निवेशनीयाः = स्थापनीयाः, सुश्राव्याः इत्यर्थः, गुणाः = सौन्दर्यादिगुणाः यस्य तत्, कार्मुकपक्षे—कर्णान्ते = कर्णभागं यावदित्यर्थः, निवेशनीयः = स्थापनीयः, आकृष्य आनेयः इत्यर्थः, गुणः = प्रत्यञ्चा यस्य तत्॥

मञ्जीरक इति। कार्मुकम् = धनुः। चरमम् = पश्चात्, धनुरुत्तोलनानन्तरमित्यर्थः। लोचनपथम्—लोचनयोः = नेत्रयोः पन्थाः = मार्गः इति लोचनपथः 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इति समासान्तोऽप्रत्ययः, तम्, अवतरिष्यति = समागमिष्यति॥

पुरुष इति। ससंरम्भम् = सकोपम्। रे इति तिरस्कारोक्तिः। राशिनक्षत्रपाठकानाम् = ज्योतिःशास्त्रविदुषामित्यर्थः, गोष्ठीम् = सभाम् ('समज्या परिषद् गोष्ठी सभासमितिसंसदः' इत्यमरः), कन्यां प्रथममेव प्रकटयन्ति = राशीनां गणनाक्रमे कन्याराशिः प्रथममेवाऽऽगच्छति ततो धनुरितित्यर्थः॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रकार दशों दिशा रूपी सुन्दरियों के द्वारा कर्णपूर (कान का आभूषण) बनाया गया है कीर्ति-पल्लव जिसका (अर्थात् दशों दिशाओं में प्रसिद्ध) ऐसे 'त्रिभुवनवीर' नाम-वाले मुझको भी (तुम उसी तरह) अप्रसिद्ध बतला रहे हो जैसे कुएँ का मेढक सागर को (अप्रसिद्ध बतलावे)। तो बतलाओ, कान के समीप स्थापित करने योग्य (अर्थात् सुनने योग्य) गुणवाली श्रेष्ठ कन्या (सीता) तथा कान के पास तक खींचकर ले जाने योग्य है प्रत्यञ्चा जिसकी ऐसा धनुष कहाँ है ?

मञ्जीरक—धनु तो यह (है), किन्तु कन्या (धनुष उठाने के) बाद में आँखों के समक्ष आएगी।

पुरुष—(क्रोधपूर्वक) मूर्ख, (तुझे) धिक्कार (है)। क्यों रे, राशि एवं नक्षत्र को पढ़ानेवाले (अर्थात् ज्योतिषियों) की सभा को (तुमने) नहीं देखा है ? वे (ज्योतिषी) भी (बारह राशियों को गिनने के क्रम में) कन्या (राशि) को ही पहले प्रकट करते हैं और धनु (राशि) को बाद में।

मञ्जीरक—(अपने आप) क्या यह अपनी वाचालता (बात करने की चतुरता) प्रकट कर रहा है ? अच्छा, इसी (वाचालता) से ही इसको जवाब देता हूँ (अधिक बोलने से रोकता हूँ)। (प्रकट रूप में) अरे, इतने वीरों के समूह में आप ही नक्षत्र विद्या में कुशल हैं ! (गूढ़ार्थ—क्षत्रविद्या = क्षत्रियविद्या में कुशल नहीं हैं)।

पुरुष—(क्रोधपूर्वक) आः, क्यों रे मैं ही क्षत्रविद्या (क्षत्रियविद्या = वीरविद्या) में अकुशल हूँ ?

मञ्जीरक—तब क्यों धनुष को उठाये बिना ही कन्या को देखने के लिए अभिलाषा कर रहे हो ?

पुरुष—(गर्व के साथ घूमकर) क्या मेरे भी धनुष उठाने में सन्देह है ?

मञ्जीरक—और क्या ?

पुरुष—यह (धनुष न उठाने की बात) मेरे लिये तब सम्भव (हो सकती) है यदि—

बादलों के बिना ही (सूर्य की किरणों की) विभिन्न आभाओं से व्याप्त गगनतलसे सुवर्ण की कान्ति की रेखा के समान मनोहर विद्युल्लेखा (बिजली) प्रकाशित हो। अथवा—आकाशगङ्गा के बिना ही अम्बर में वेग से चञ्चल मछलियों के इधर-उधर चलने के साथ नवीन नील कमलों का वन प्रकाशित

मञ्जीरक इति। वाचाटताम् = वाचालताम्, वचनपाटवमित्यर्थः। अनया = वाचाटतया, यथाऽनेन कथितं तथैव मयाप्युत्तरितं भविष्यतीति भावः। निवारयामि = अवरुणध्मि। नक्षत्रविद्याकुशलः—नक्षत्रविद्यायाम् = ज्योतिःशास्त्रे कुशलः = प्रवीणः, गूढार्थस्तु नकारच्छेदेन क्षत्रविद्यायाम् = क्षत्रियविद्यायाम्, वीरवृत्तौ इत्यर्थः॥

पुरुष इति। चापारोपणे—चापस्य = शिवधनुषः इत्यर्थः आरोपणे = उत्तोलने इत्यर्थः॥

अन्वयः—(यदि, अम्भोवाहम्, विना, एव, बहुलरुचिलिप्ताम्बरतलात्, हेमद्युति-

In Public domain. Digitization-Muthulakshmi Research Academy

(विलोक्य सविषादम्) कथमस्मत्प्रतिज्ञाभङ्गाय विपरीतं सृष्टिनैपुणं प्रणीतवान्विधिः । नन्विदं तथैव पश्यामि । (विमृश्य) अथवा क एष विधिरपि मद्विरोधाय ।

मयि क्षीरोदन्वन्निभृतमुरजिन्नाभिनलिनीं
निजक्रीडावापीजलकमलिनीं कर्तुमनसि ।
पदभ्रंशाशङ्की मधुरमधुरालापचतुरै-
श्चतुर्भिः स्वैर्वक्त्रैरनुनयपरोऽभूदयमपि ॥ ३४ ॥

(पुनर्निपुणं निरूप्य) अये, सादृश्येन प्रतारितोऽस्मि ।

तडिल्लेखा नेयं विलसति परं सौधशिखरे
वसन्त्याः कस्याश्चित्कनकरुचिरा गात्रलतिका ।
अपीदं नोन्मज्जत्कुवलयवनं मीनतरलं
परं तस्या एव स्फुरति नयनालोकललितम् ॥ ३५ ॥

विततिरम्या, तडिल्लेखा, विलसति । (यदि वा), स्वर्गङ्गाम्, विना, एव, नभसि, रभसोन्मुद्रशफरीपरीवर्तैः, साकम्, नवनीलोत्पलवनम्, स्फुरति ॥ ३३ ॥

मया चापस्याऽनारोपणं तदैव सम्भाव्यते यदा जगति अन्यान्यपि असम्भाव्यानि वस्तूनि सम्भाव्यानि स्युरिति प्रतिपादयन्नाह प्रच्छन्नरूपः रावणः—

विनैवेति । यदि = चेत्, अम्भोवाहम् = अम्बुदम्, विनैव = अन्तरेणैव, बहुलरुचिलिप्ताम्बरतलात्—बहुलाभिः = विभिन्नाभिः रुचिभिः = कान्तिभिः, सूर्यकिरणानां विभिन्नैः प्रकाशैरित्यर्थः, लिप्तम् = व्याप्तम्, अनेनाकाशस्य नैर्मल्यं सूचितम्, यत् अम्बरतलम् = गगनतलम् तस्मात्, हेमद्युतिविततिरम्या—हेम्नः = सुवर्णस्य द्युतिः = आभा तस्याः विततिः = विस्तारः रेखा इत्यर्थः, तद्वत् रम्या = मनोहरा, तडिल्लेखा—तडितः = विद्युतः लेखा = रेखा, विलसति = सुशोभते । यदि वा = अथवा, स्वर्गङ्गाम् = आकाशगङ्गाम्, विनैव = अन्तरेणैव, नभसि = आकाशे, रभसोन्मुद्रशफरीपरीवर्तैः—रभसेन = वेगेन ('रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः) उन्मुद्राः = चलनोन्मुखाः याः शफर्यः = क्षुद्रमत्स्यविशेषाः तासां परीवर्तैः = परिवर्तनैः, साकम् = सह, नवनीलोत्पलवनम्—नवम् = नवीनम् नीलोत्पलानाम् = नीलकमलनाम् वनम् = समवायः, स्फुरति = प्रकाशते । अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥' ३३ ॥

विलोक्येति । विलोक्य = दृष्ट्वा, प्रासादोपरिस्थितां सीतामिति शेषः । विपरीतम् = असम्भवमित्यर्थः, सृष्टिनैपुणम् = सृष्टिचातुरीम्, प्रणीतवान् = कृतवान् । मद्विरोधाय = मदाज्ञाभङ्गायेत्यर्थः ।

अन्वयः—मयि, क्षीरोदन्वन्निभृतमुरजिन्नाभिनलिनीम्, निजक्रीडावापीजलकमलिनीम्, कर्तुमनसि; पदभ्रंशाशंकी, अयम्, अपि, मधुरमधुरालापचतुरैः, स्वैः, चतुर्भिः, वक्त्रैः, अनुनयपरः, अभूत् ॥ ३४ ॥

विधातुरपि स्वोत्कर्षं वक्ति—मयीति । मयि = रावणे इत्यर्थः, क्षीरोदन्वन्निभृतमुरजि-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हो (अर्थात् जैसे स्वच्छ आकाश में बिजली की चमक तथा आकाशगङ्गा के बिना ही आसमान में मछलियों का तैरना एवं कमलों का खिलना असम्भव है उसी तरह इस धनुष को मैं न उठा सकूँ—यह भी असम्भव है) ॥ ३३ ॥

(देख कर, दुःख के साथ) क्या मेरी प्रतिज्ञा को भङ्ग करने के लिए विधाता ने विपरीत सृष्टि-चातुरी का प्रणयन किया है ? अरे, यह (तो) वैसा ही देख रहा हूँ (अर्थात् स्वच्छ आकाश में बिजली की चमक तथा आकाश गंगा के बिना भी मछलियों की उछलकूद एवं कमलों का विकाश देख रहा हूँ) । (सोच कर) अथवा यह विधाता भी हमारे विरोध के लिए कौन (क्या) है ।

मेरे क्षीरसागर में सोये हुए विष्णु की नाभि में (उत्पन्न) कमलिनी को अपने विहार-सरोवर के जल की कमलिनी बनाने की इच्छा करने पर (अपने) आधार के विनष्ट हो जाने की आशंका करनेवाले यह (ब्रह्मा) भी अत्यन्त बातचीत करने में चतुर अपने चारों मुखों से (मेरी) विनती करने लगे ॥ ३४ ॥

विशेषः—ब्रह्मा जी की उत्पत्ति भगवान् विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल से हुई है । वे सर्वदा उसी पर रहते हैं । रावण ने जब उस कमल की लता को उखाड़ना चाहा तो ब्रह्मा जी को अपने आधार के ही नष्ट होने की शंका हो गई । अतः वे रावण की मिन्नत करने लगे ॥ ३४ ॥

(फिर सावधानी से देखकर) अरे, समानताके कारण छला गया हूँ ।

यह विद्युल्लेखा (बिजली की रेखा) नहीं (है), अपितु राजमहल के ऊपर स्थित किसी (सुन्दरी) की सुवर्ण की तरह कान्तिवाली शरीरलता (है) । यह (दूसरा भी) जल से बाहर निकलता हुआ मछलियों से चञ्चल कमलवन नहीं (है), बल्कि उस (सुन्दरी) के ही नेत्रों के देखने का विलास है ॥ ३५ ॥

न्नाभिनलिनीम्—क्षीरोदन्वति=क्षीरसागरे निभृतः=शान्तः, सुप्तः इति यावत्, यः मुरजित्= मुरारिः, विष्णुरित्यर्थः, तस्य नाभिनलिनीम्=नाभिकमलिनीम्, निजक्रीडावापी-जलकमलिनीम्—निजस्य=स्वस्य या क्रीडावापी=विहारदीर्घिका ('वापी तु दीर्घिका' इत्यमरः) तस्याः जलकमलिनीम्=नीरपद्मिनीम्, कर्तुमनसि—कर्तुं मनो यस्य स तस्मिन् कर्तुमनसि=विधातुमभिलषति सति, 'तुं काममनसोरपी' ति मकारलोपः । 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति भावे सप्तमी । पदभ्रंशाशंकी—पदस्य=आधारस्य भ्रंशम्—च्युतिम्, विनाशमिति यावत्, आशङ्कते तच्छीलः इति तादृशः, आधारविनाशभयाकुलः इत्यर्थः, अयम्=विधिः, अपि, मधुरमधुरालापचतुरैः—मधुरमधुरः=अतिमिष्टः यः आलापः=सम्भाषणम् तस्मिन् चतुरैः=निपुणैः, स्वैः=स्वकीयैः, चतुर्भिः=चतुः-संख्याकैः, वक्त्रैः=आननैः, अनुनयपरः—अनुनये=विनये परः=संलग्नः, अभूत्= आसीत् । ममानुनयपरस्य विधातुर्विरोधस्य न किञ्चिन्मूल्यमिति भावः । 'शिखरिणी वृत्तम् ॥' ३४ ॥

अन्वयः—इयम्, तडिल्लेखा, न, (अस्ति), परम्, सौधशिखरे, वसन्त्याः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(विभाव्य) नूनं तदेव सीताभिधानं कन्यारत्नम् । (पुनः सहर्षम्)

राजीव जीवसि मुधा न सुधाकर त्व-
मस्याः समः पदनखस्य कुतो मुखस्य ।
अग्रे दृशोर्मृगदृशः कतमः कुरङ्ग-
स्तत्खञ्जन त्वमपि किं जनरञ्जनाय ॥ ३६ ॥

(पुनः सस्मयम्)

कदली कदली करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः ।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः ॥ ३७ ॥

कस्याश्चित्, कनकरुचिरा, गात्रलतिका, (वर्तते)। इदम्, अपि, उन्मज्जत्, मीनतरलम्, कुवलयवनम्, न, (अस्ति ; परम्, तस्याः, एव, नयनालोकललितम्, स्फुरति ॥ ३५ ॥

तडिल्लेखेति । इयम् = पुरो दृश्यमाना, तडिल्लेखा—तडितः = विद्युतः लेखा = रेखा, न = न अस्तीति शेषः । किं तर्हीत्याशंकायामाह—परम् = केवलम्, किन्तु, सौधशिखरे—सौधस्य = राजसदनस्य ('सौधोऽस्त्री राजसदनम्' इत्यमरः) शिखरे = शृङ्गे, वसन्त्याः = स्थितायाः, कस्याश्चित् = अपरिचितायाः कस्याश्चित् ललनायाः, कनकरुचिरा—कनकवत् = सुवर्णवत् रुचिरा = मनोहरा, गात्रलतिका = शरीरवल्लरी, वर्तते इति शेषः । इदम् = एतदपरम्, अपि, उन्मज्जत् = निःसरत्, मीनतरलम् = मीनैः = मत्स्यैः तरलम् = चञ्चलम्, कुवलयवनम् = कमलवनम्, न = नहि, अस्तीति शेषः; सीतानयने कुड्मलाकारौ पयोधरौ च दृष्ट्वा रावणस्य मनसि मीनयोः कुवलयवनस्य च भ्रान्तिरुत्पन्ना जातेति बोध्यम् ; परम् = केवलम्, तस्या एव = तस्याः सुन्दर्याः एव, नयनालोकललितम्—नयनयोः = नेत्रयोः आलोकस्य = दर्शनस्य, दर्शनकलायाः इत्यर्थः, ललितम् = विलासः, स्फुरति = विलसति । प्रासादशिखरे काचित्तडिल्लेखया इव सुन्दर्या गात्रयष्ट्या मीनाभ्यामिव मनोहराभ्यां लोचनाभ्यां कुड्मलाकृतिभ्यां स्तनाभ्यामुपलक्षिता ललना स्थितेति भावः । अत्र सन्देहालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम्,—तल्लक्षणम्—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे राजीव ! मुधा, जीवसि; हे सुधाकर ! त्वम्, अस्याः, पदनखस्य, (अपि), समः, न, मुखस्य, कुतः ? मृगदृशः, (अस्याः, सुन्दर्याः), अग्रे, कुरङ्गः, कतमः ? तत्, हे खञ्जन ! त्वम्, अपि, किम्, जनरञ्जनाय, (असि) ? ॥ ३६ ॥

सीतासौन्दर्यं वर्णयन्नाह—राजीवेति । हे राजीव = हे कमल ! मुधा = व्यर्थमेव, जीवसि = अस्तित्वं धारयसि । सति सीतावदने जगति तवोपस्थितिर्मुधैवास्ते इति भावः । हे सुधाकर = हे चन्द्र, त्वम् = भवान्, जगत्याह्लादकत्वस्य प्रतिमानभूतः इति भावः, अस्याः = पुरो विलसन्त्याः ललनायाः, पदनखस्य = चरणनखस्य, मुखस्य का कथा, अपि, समः = तुल्यः, न = न असि, मुखस्य = आननस्य, कुतः = कस्मात्, कथमित्यर्थः, समोऽसीति शेषः; अर्थात् कथमपि न समोऽसीति । मृगदृशः—मृगस्येव =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(विचार कर) निश्चय ही (यह) वही सीतानामक कन्यारत्न है। (फिर प्रसन्नता के साथ)

हे कमल ! (तू) व्यर्थ जी रहा है। हे चन्द्र ! तुम इसके चरणों के नख के भी बराबर नहीं (हो तो) मुख के (बराबर) कहाँ से (हो सकते हो) ? मृगनयनी (इस सुन्दरी) के सामने हरिण क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं)। अतः हे खञ्जन ! तुम भी क्या लोगों का मनोरञ्जन करने के लिए हो (अर्थात् नहीं) ॥ ३६ ॥

विशेषः—किसी सुन्दरी के मुख की उपमा कमल तथा चन्द्रमा से और आँखों की उपमा हरिण एवं खञ्जन की आँखों से की जाती है। किन्तु सीता के मुख तथा नयन आदि अंग इतने अधिक सुन्दर हैं कि संसार में उनसे अधिक सुन्दर कुछ भी नहीं है। अतः अब तक सुन्दरतामें सर्वाधिक महत्त्वशाली कमल, चन्द्र आदि व्यर्थ हो गये हैं। उनके स्थान पर अब सीता के अवयव लोगों का मनोरञ्जन करते हैं ॥ ३६ ॥

(फिर प्रसन्नता के साथ)

कदली कदली है (अर्थात् अत्यन्त शीतल है), करभ (हथेली के बगल का भाग) करभ है (अर्थात् अत्यन्त लघु है), गजराज का सूँड़ गजराज का सूँड़ है (अर्थात् अत्यन्त कठोर है)। (अतः) मृगनयनी (सीता) की यह दोनों जाँघें तीनों लोकों में भी (अपनी) शानी नहीं रखती हैं ॥ ३७ ॥

हरिणस्येव दृशौ = लोचने यस्यास्तस्याः, अस्याः सुन्दर्याः इति शेषः, अग्रे = समक्षम्, तुलनायामिति यावत्, कुरङ्गः = हरिणः, कतमः = न कोऽपीति तात्पर्यम्। तत् = तस्मात्, हे खञ्जन = हे खञ्जरीट, त्वमपि = दृक्सौन्दर्यस्य प्रतिमानभूतः भवानपि इति भावः, किमिति प्रश्ने, जनरञ्जनाय = जनानां मनोविनोदाय, असीति शेषः, न कदापीति काकुध्वनिः। अत्र प्रतीपोऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्;—तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ ३६ ॥

अन्वयः—कदली, कदली, (अस्ति); करभः, करभः, (वर्तते); करिराजकरः, करिराजकरः, (आस्ते); चमूरुदृशः, इदम्, ऊरुयुगम्, भुवनत्रितये, अपि, तुलाम्, न, बिभर्ति ॥ ३७ ॥

हर्षेण जानक्याः ऊरू वर्णयन्नाह—कदलीति। कदली—रम्भातरुः, कदली = अतिशयशैत्यसम्पन्नः तरुः, अत्र द्वितीयोपात्तस्य कदल्यादिशब्दस्य व्यर्थत्वात् जाड्याद्यतिशयश्च व्यङ्ग्यो बोध्यः, सर्वत्राऽस्तीति क्रियाशेषः। करभः = मणिबन्धादारभ्य कनिष्ठिकापर्यन्तं हस्तस्य बाह्यो भागः ('मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः), करभः = अतिखर्वः हस्तभागः, वर्तते इति शेषः। करिराजकरः—करिराजस्य = गजराजस्य करः = शुण्डादण्डः, करिराजकरः = अतिकठोरः, आस्ते। अतः चमूरुदृशः—चमूरुः = हरिणः ('चमूरुश्चेति हरिणा अमी' इत्यमरः) तस्येव दृशौ = नयने यस्याः तस्याः, हरिणनयनायाः इत्यर्थः, इदम् = एतत्, ऊरुयुगम्—ऊर्वोः = जानूपरिभागयोः युगम् = द्वन्द्वम्, भुवनत्रितये = त्रिलोक्याम्, अपि, तुलाम् = सादृश्यम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मञ्जीरकः—सखे नूपुरक, किमेतत् । कस्याश्चिदपि हस्तादादाय सानन्दमालोकयत्यन्तःपुरिको जनः ।

नूपुरकः—अहमीदृशं संभावयामि यत्किल गुरुभवनादागतया चन्दनिकया समर्पितं चित्रपटं विलोकयतीति ।

[अहं एरिसं संभावेमि जं किर गुरुभवणादो आगदाए चन्दणिआए समप्पिदं चित्तपडं पुलोवेदि त्ति ।]

मञ्जीरकः—स त्वया दृष्टश्चित्रपटः ।

नूपुरकः—भर्तृदारिका तावदन्यश्च कोऽपि नीलोत्पलदामश्यामलः कुसुमशरसदृशरूपः कुण्डलीकृतहरचापश्चक्रवर्तिकुमारः ।

[भट्टदारिआ दाव अणच्च को वि णीलुप्पलदामसामलओ कुसुमसरसरिसरूओ कुण्डलीकिदहरचावो चक्कवट्टिकुमारो ।]

मञ्जीरकः—अहह, मुग्धः खल्वबलाजनः । यदेवमपि कठोरप्रतिज्ञे राजनि किशोरवयसं जामातरमाशंसति । सखे, जानासि केन लिखितं चित्रमिति ।

नूपुरकः—जानामि महर्षेर्जनकस्य दुहित्रा धर्मचारिण्या ।

[जाणामि महेसिणो जणकस्स दुहिआए धम्मआरिणीए ।]

मञ्जीरकः—(सहर्षम्) इदानीमुद्भिन्नो मम मनोरथाङ्कुरः । देवी हि मैत्रेयी सिद्धयोगिनी कालत्रयदर्शिनी सा नालीकमालिखति ।

नूपुरकः—सर्वं संभाव्यते यद्ययं जरठाङ्ग इतोऽपसरति ।

[सव्वं संभावीअदि जइ इमो जरठङ्गो इदो ओसरदि ।]

मञ्जीरकः—आः, कोऽयं किमिदम् । एनमपसारयामि । अये, किमितस्ततो विलोकयसे । नन्विदं शाम्भवं धनुः । तदिहैव दीयतां दृष्टिः ।

उपमानमिति यावत्, न बिभर्ति = न दधाति । निखिलानि जगद्विदितानि उपमानानि ऊरुयुगलेन समानतां न भजन्ते इत्यभिप्रायः । अत्र व्यतिरेकोऽलंकारः । तोटकवृत्तं; तल्लक्षणं यथा—'वद तोटकमब्धिसकारयुतम्' ॥ ३७ ॥

मञ्जीरक इति । कस्याश्चित् = कस्याश्चिदन्तःपुरपरिचारिकायाः । आदाय = गृहीत्वा । अन्तःपुरिकः = राजस्त्रीसमवायः ॥

नूपुरक इति । सम्भावयामि = तर्कयामि. समर्पितम् = प्रदत्तम्, चित्रपटम् = चित्रमित्यर्थः ॥

नूपुरक इति । भर्तृदारिका—भर्तुः = स्वामिनः, जनकस्येत्यर्थः, दारिका = पुत्री, सीतेति यावत् । नीलोत्पलदामश्यामलः—नीलोत्पलानाम् = नीलकमलानाम् दाम = माला तद्वत् श्यामलः = श्यामवर्णः, रुचिरश्यामवर्ण इति यावत्; कुसुमशरसदृशरूपः—कुसुमानि = पुष्पाणि शराः = बाणाः यस्य सः कुसुमशरः = कामदेवः तेन सदृशम् = समानम् रूपम् = शरीरलावण्यम् यस्य तादृशः; कुण्डलीकृतहरचापः—कुण्डलीकृतः = आकर्णमाकृष्य कर्णकुण्डलवत् वर्तुलीकृतः हरचापः = शिवधनुः येन तादृशः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मञ्जीरक—मित्र नूपुरक ! यह क्या (है) ? (जिसे) रनिवास की स्त्रियाँ किसी (स्त्री) के हाथ से लेकर प्रसन्नतापूर्वक देख रही हैं।

नूपुरक—मैं ऐसी सम्भावना करता हूँ कि गुरु जी के घर से आई हुई चन्दनिका के द्वारा दिये गये चित्रपट को देख रही हैं।

मञ्जीरक—वह चित्रपट तुम्हारे द्वारा देखा गया है ? (अर्थात् क्या तुम उस चित्र-पट को देखे हो ?)

नूपुरक—स्वामी की पुत्री (सीता) और नीले कमल की माला के सदृश श्याम वर्णवाला, कामदेव के समान रूपवाला, शंकर के धनुष को कान तक खींचनेवाला चक्रवर्ती का कोई एक कुमार उसमें लिखा हुआ है।

अहह ! निश्चय ही स्त्रियाँ बहुत भोली-भाली होती हैं। जो कि राजा (जनक) के इस तरह कठोरप्रतिज्ञ होने पर भी (अर्थात्—जो राजा के इस तरह कठोर प्रतिज्ञा करने पर भी) किशोर अवस्थावाले दामाद (मिलने) की आशा करती हैं। मित्र, जानते हो (यह) चित्र किसके द्वारा लिखा गया (बनाया गया) है ?

नूपुरक—(हाँ) जानता हूँ, महर्षि जनक की पुत्री धर्मचारिणी के द्वारा (बनाया गया है)।

मञ्जीरक—(बड़ी प्रसन्नता के साथ) अब मेरा मनोरथरूप अंकुर उग गया (अर्थात् अब मेरी अभिलाषा के पूरी होने की आशा हो चली है)। क्योंकि देवी मैत्रेयी तीनों कालों को देखनेवाली सिद्धयोगिनी (हैं)। वह झूठा नहीं लिखती हैं।

नूपुरक—सब कुछ सम्भव हो सकता है, यदि यह गली शरीरवाला (अर्थात् बुड्ढा) यहाँ से हटे।

मञ्जीरक—ओह, यह कौन है, यह क्या है ? इसको (यहाँ से) हटाता हूँ। अरे, इधर-उधर क्या देख रहे हो ? शंकर का धनुष तो यह है। तो इसी पर निगाह लगाओ।

मञ्जीरक इति। अहह इति खेदेऽव्ययम्। मुग्धः = विवेकविरहितः, अबला-जनः = स्त्रीजनः। कठोरप्रतिज्ञे—कठोरा = कठिना प्रतिज्ञा = प्रणः यस्य तस्मिन्, राजनि = जनकभूभुजि, किशोरवयसम्—किशोरम् = अनतिप्रौढम् वयः यस्य तादृशम्, जामातरम् = दुहितुः पतिम्, आशंसति = वाञ्छति ॥

नूपुरक इति—दुहित्रा = पुत्र्या ॥

मञ्जीरक इति—उद्भिन्नः = उद्गतः, मनोरथांकुरः—अभिलाषप्ररोहः, आशा बलवती जातेत्यर्थः। तत्र हेतुमाह—देवीति। अलीकम् = असत्यम् ॥

नूपुरक इति। सर्वम् = त्वन्मनोरथरूपं सीतायाः योग्यवरसङ्गमादिकं, सम्भाव्यते= सम्भवति। जरठाङ्गः—जरठानि = शीर्णानि अङ्गानि = अवयवाः यस्य तादृशः, वृद्धः इति यावत् ॥

मञ्जीरक इति। अपसारयामि = इतो दूरीकरोमि। शाम्भवम्—शम्भोः = शिवस्य इदं शाम्भवम् = शैवम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पुरुषः—आः किमुच्यते दृष्टिरिति। नन्वियं मुष्टिरपि दीयते। (परिक्रम्य शेखरभ्रंशमभिनीय सविषादं विलोकयति)

मञ्जीरकः—

अये लङ्केश विस्रस्तशेखरालोकनेन ते।
समयो याति तत्तूर्णं गृहाण हरकार्मुकम् ॥ ३८ ॥

पुरुषः—(स्वगतम्) कथमनेन विदितोऽस्मि। (विमृश्य) अथवाघुणाक्षरन्यायगतं शब्दसादृश्यमेतत्। (प्रकाशम्। ससंरम्भम्)

सावलेपकमनीयमुदस्य क्रीडयैव विनिबध्य च मौर्वीम्।
कृष्टमेव हरकार्मुकमेतद्दृश्यमत्र सुदृशो हृदयं च ॥ ३९ ॥

(धनुषि हस्तमर्पयित्वा। स्वगतम्) कथं न चलत्यपि। भवतु। (प्रकाशम्) अये, धनुरिति वक्रः पन्थाः। तत्सरलेन करवालधारापथेन सीतामानयामि।

मञ्जीरकः—कथमतिप्रगल्भसे। न विलोकयसि।

पुरुष इति। मुष्टिरपि दीयते = हस्तेनादायोत्तोलयामीत्यर्थः। शेखरभ्रंशम्—शेखरस्य = शिरोभूषणस्य भ्रंशम् = पतनम्, सविषादम् = सदुःखम् ॥

अन्वयः—(१) अये! ते, केशविस्रस्तशेखरालोकनेन, अलम्; समयः, याति; तत्, तूर्णम्, हरकार्मुकम्, गृहाण ॥ ३८ ॥

(२) अये लंकेश! ते, विस्रस्तशेखरालोकनेन, समयः, याति; तत्, तूर्णम्, हरकार्मुकम्, गृहाण ॥ ३८ ॥

अय इति। (१) अये इति सम्बोधने, ते = तव, केशविस्रस्तशेखरालोकनेन—केशात् = शिरोरुहात्, शिरसः इत्यर्थः, विस्रस्तः = पतितः यः शेखरः = शिरोभूषणम् तस्य आलोकनेन = दर्शनेन, अलम् = पर्याप्तम्, अतः परं शेखरं माऽवलोकयेत्यर्थः; कुतः? समाधत्ते—समयः = कालः, याति = व्यतीतो भवति। तत् = तस्मात्, तूर्णम् = शीघ्रम्, हरकार्मुकम्—हरस्य = शिवस्य कार्मुकम् = धनुः, गृहाण = आदत्स्व। अनेनैव कार्येण तव मनोरथाऽवाप्तिर्नान्यथेति भावः ॥

(२) द्वितीये पक्षे त्वेवं व्याख्येयम्—अये = हे, लंकेश = रावण, ते = तव, विस्रस्तशेखरालोकनेन—विस्रस्तः = भूमौ निपतितः यः शेखरः = मस्तकालंकरणम् तस्य आलोकनेन। अन्यत् पूर्ववद्बोध्यम्। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३८ ॥

पुरुष इति। विदितः = ज्ञातः, 'अयं रावणः' इत्थं ज्ञातः इत्यर्थः। घुणाक्षरन्यायगतम् = अकस्माद्भवम्, शब्दसादृश्यम् = वर्णविन्याससाम्यम्। ससंरम्भम्—संरम्भेण = क्रोधेन सहितं ससंरम्भम् = सक्रोधम् ॥

अन्वयः—सावलेपकमनीयम्, उदस्य, मौर्वीम्, च, क्रीडया, एव, विनिबध्य, एतत्, हरकार्मुकम्, कृष्टम्, एव अत्र, सुदृशः, दृश्यम्, हृदयम्, च, (कृष्टम्, एव) ॥ ३९ ॥

सावलेपकमनीयमिति। अवलेपेन = अभिमानेन सहितं सावलेपम् अत एव

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पुरुष—ओह, क्या कह रहे हो निगाह (लगाओ) ? अरे, यह मुट्ठी भी (उसमें) लगाई जा रही है। (अर्थात् मुट्ठी से पकड़ कर उठा रहा हूँ)।

(घूमकर शिरोभूषण के गिरने का अभिनय करके खेद के साथ देखता है)

मञ्जीरक—(१) अरे ! तुम्हें केश से गिरे हुए शिर के आभूषण को देखने से विरत होना चाहिये। समय बीत रहा है। तो शीघ्र शंकर के धनुष को पकड़ो (उठाओ) ॥ ३८ ॥

(२) दूसरा अर्थ—

हे लंकेश (रावण) तुम्हारे (जमीन पर) गिरे हुए शिर के आभूष को देखने से समय बीत रहा है। तो शीघ्र ही शंकर के धनुष को पकड़ो (अर्थात् उठाओ) ॥ ३८ ॥

पुरुष—(अपने आप) क्या इसके द्वारा पहचान लिया गया हूँ ? (सोचकर) अथवा घुणाक्षरन्याय से प्राप्त (अर्थात् अकस्मात् होनेवाली) यह केवल शब्द की समानता है ? (प्रकट रूप में। क्रोध के साथ)—

अभिमानपूर्वक सुन्दरता के साथ उठा कर प्रत्यञ्चा को भी खिलवाड़ से ही (अर्थात् बिना परिश्रम के ही) चढ़ा कर यह शिव-धनुष (अब) खींच ही लिया गया। यहाँ सुनयनी (सीता) का मनोहर हृदय भी (वश में कर ही लिया गया। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है) ॥ ३९ ॥

(धनुष पर हाथ लगा कर। अपने आप) क्या (यह) हिल भी नहीं रहा है ? अच्छा। (प्रकट रूप में) अरे, धनुष (उठा कर सीता को ले जाना) यह टेढ़ा मार्ग है। अतः सीधे तलवार की धार के रास्ते (अर्थात् तलवार की धार के बल पर) सीता को ले चलता हूँ।

मञ्जीरक—क्यों अधिक ढिठाई कर रहे हो ?

कमनीयम् = मनोहरम् यथास्यात्तथा, उदस्य = उत्थाय, मौर्वीम् = प्रत्यञ्चाम्, च = अपि, क्रीडया = हेलया, अनायासेनेत्यर्थः, एवेति निश्चये, विनिबध्य = आरोप्य, एतत् = इदम्, हरकार्मुकम् = शिवधनुः, कृष्टमेव = आकृष्टमेव, उत्तोलितमेव, नात्र कर्मणि विलम्बसम्भावनेति भावः। अत्र = अस्मिन् कर्मणि, सुदृशः = सुलोचनायाः, दृश्यम् = मनोहारि, हृदयम् = चेतः, च = अपि, कृष्टम् = वशीकृतमेवेति शेषः। झटिति शिवधनुरुत्तोल्य सीतां वशीकरिष्यामीति भावः। अत्र अतिशयोक्तिरलङ्कारः। स्वागता वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—

'स्वागता रनभगैर्गुरुणा च' ॥ ३९ ॥

धनुषीति। हस्तम् = करम्, अर्पयित्वा = दत्त्वा, उत्तोलितुं यत्नं कृत्वेत्यर्थः। वक्रः = कुटिलः, पन्थाः = मार्गः, समयापेक्षी मार्गः इत्यर्थः। तत् = तस्मात्, सरलेन = सुतीक्ष्णेन, अवक्रेणेत्यपि, करवालधारापथेन—करवालस्य = खड्गस्य धारा एव पन्थाः तेन, करवालेन युध्येत्यर्थः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रोषारुणीकृतविलोचनकान्तिभिन्न-
भ्रूभङ्गभीमघटितभ्रुकुटीविटङ्कम् ।
उत्खातलोलकरवाललताकराल-
दोर्दण्डचण्डचरितं नरवीरचक्रम् ॥ ४० ॥

पुरुषः—(कृपाणमुद्यम्य । परितो विलोक्य) पश्यत पश्यत ।

निर्भिन्नवैरिकरिकुम्भतटीविमुक्त-
मुक्ताफलप्रकरतारकिताम्बरश्रीः ।
यः कालरात्रिरिव भाति रणे स एष
रे रे नृपा मम कृपाकृपणः कृपाणः ॥ ४१ ॥

(आकाशे कर्णं दत्त्वा) किं ब्रूथ ।

एकः कथं बहुतरैः सुभटैः करोमि
संग्रामडम्बरमिति त्यज रे विषादम् ।
यं मन्यसे सुलभमत्र सहैव तेन
चेतो निधेहि समरे समरेखयैव ॥ ४२ ॥

अन्वयः—रोषारुणीकृतविलोचनकान्तिभिन्नभ्रूभङ्गभीमघटितभ्रुकुटीविटङ्कम्, उत्खातलोलकरवाललताकरालदोर्दण्डचण्डचरितम्, नरवीरचक्रम्, (न, विलोकयसि ?) ॥४०॥

राजमण्डलं वर्णयति—रोषारुणीकृतेति । रोषारुणीकृतेत्यादिः—रोषेण = क्रोधेन, रावणप्रगल्भजनितेन क्रोधेनेत्यर्थः, अरुणीकृतानि = रक्तवर्णीकृतानि यानि विलोचनानि तेषां कान्त्या = प्रभया भिन्नाः = जातभेदाः ये भ्रूभङ्गाः = भ्रूकौटिल्यानि तैः भीमं यथा स्यात्तथा घटिताः = निर्मिताः ये भ्रुकुटीविटंकाः = भ्रून्नतप्रदेशाः यस्य तत्, उत्खातलोलेत्यादिः—उत्खाताः = कोशान्निस्सारिताः लोलाः = चञ्चलाः याः करवाललताः = खड्गलताः ताभिः करालाः = भीषणाः ये दोर्दण्डाः = बाहुदण्डाः तैः चण्डम् = प्रचण्डम् चरितम् = आचरणम् यस्य तत् तादृशम्, नरवीरचक्रम्—नरवीराणाम् = राज्ञाम्, चक्रम् = समूहम्, न विलोकयसि = नाऽवलोकयसीति पूर्वेण सम्बन्धः । बलात्सीतानयने सर्वे एवैते राजानः त्वां निवारयिष्यन्तीति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ ४० ॥

अन्वयः—रे रे नृपाः ! निर्भिन्नवैरिकरिकुम्भतटीविमुक्तमुक्ताफलप्रकरतारकिताम्बरश्रीः, रणे, यः, कालरात्रिः, इव, (अस्ति); सः, एव, कृपाकृपणः, मम, कृपाणः, भाति ॥४१॥

नृपान् विभीषयन् स्वकरवालभीषणतां कथयति—निर्भिन्नेति । निर्भिन्नेत्यादिः—निर्भिन्नाः = विदारिताः, स्फोटिताः इत्यर्थः, वैरिणाम् = शत्रूणाम् करिणाम् = हस्तिनाम् कुम्भतट्यः = गण्डस्थलानि ताभ्यः विमुक्तानि = निःसृतानि मुक्ताफलानि = मौक्तिकफलानि तेषां प्रकरेण = समूहेन तारकिता = सञ्जाततारका अम्बरस्य = आकाशस्य श्रीः = शोभा येन तादृशः, रणे = संग्रामे, यः = करवालः, कालरात्रिः = प्रलयकालरात्रिः, शत्रुसमूह-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

क्रोध के कारण लाल-लाल आँखों की कान्ति से भिन्न भ्रू-भङ्गों से भयानक बने हुए भ्रुकुटि के ऊँचे प्रदेशवाले (अर्थात् अत्यन्त क्रुद्ध), (म्यान से) निकाली गई लपलपाती हुई तलवार–लता से भयंकर बाहुदण्डों के कारण कोपपूर्ण आचरण करनेवाले राजाओं के समूह को (क्या नहीं देख रहे हो ?) ॥ ४० ॥

पुरुष—(तलवार उठाकर। चारों ओर देख कर) देखो, देखो,

रे रे राजाओं ! फोड़े गये (विदीर्ण किये गये), शत्रु के हाथियों के कपोलस्थलों से गिरी हुई मोतियों के समूह से तारायुक्त (सी) आकाश की शोभा को करनेवाला (और) संग्राम में जो (शत्रुओं के लिये) कालरात्रि (महाप्रलय की रात्रि) के समान है, वही कृपा करने में कृपण (अर्थात् निर्दय) मेरा कृपाण शोभित हो रहा है ॥ ४१ ॥

(आकाश में कान लगा कर) क्या कह रहे हो ?

अरे ! अकेला (मैं) बहुत से वीरों के साथ किस तरह संग्राम का आडम्बर (अर्थात् संग्राम) करूँगा ? इस बात की चिन्ता छोड़ो। यहाँ जिस (मुझ) को सुलभ जान रहे हो, उसी के साथ बराबरी (के भाव) से ही संग्राम में मन लगाओ (अर्थात् संग्राम करो) ॥ ४२ ॥

विशेष—आकाशे कर्णं दत्त्वा—इसे आकाश भाषित कहते हैं—जहाँ कोई पात्र 'क्या कह रहे हो' इस तरह कहता हुआ दूसरे पात्र के बिना ही, आकाश की ओर देख कर, बातचीत करे तथा उसके कथन के बिना भी मानो सुन कर उत्तर-प्रत्युत्तर करे, वह 'आकाश भाषित' होता है ॥ ४२ ॥

विनाशकरत्वात्करवालस्य कालरात्रिसाम्यमित्यपि ज्ञेयम्, इव = यथा, अस्तीति शेषः, सः = जगद्विदितः, एव, कृपाकृपणः—कृपायाम् = दयायाम् कृपणः = कार्पण्ययुक्तः, निर्दयः इति यावत्, मम, कृपाणः = करवालः, भाति = शोभते। अतो युष्माभिर्युद्धेच्छा न कदापि करणीयेति भावः। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—रे ! एकः, बहुतरैः, सुभटैः, कथम्, संग्रामडम्बरम्, करोमि, इति, विषादम्, त्यज। अत्र, यम्, सुलभम्, मन्यसे, तेन, एव, सह, समरेखया, एव, समरे, चेतः, निधेहि ॥ ४२ ॥

आकाशभाषितं प्रत्याह—एक इति। रे इति अनादराभिव्यक्तये सम्बोधनपदम्। एकः = एकाकी, अहमिति शेषः, बहुतरैः = बहुभिः, सुभटैः = वीरैः, कथम् = केन प्रकारेण, संग्रामडम्बरम्—युद्धाडम्बरम्, युद्धमित्यर्थः, करोमि = करिष्यामि, वर्तमानसामीप्ये लट्; इति = इत्थम्, विषादम् = खेदम्, त्यज = मुञ्च। अत्र = एतस्मिन् स्थाने प्राप्ते काले वा, यम् = एकाकिनं मामित्यर्थः, सुलभम् = अनायासलब्धम्, मन्यसे = जानासि, तेनैव = काले प्राप्तेन मयैवेत्यर्थः, सह = साकम्, समरेखया—समा = तुल्या या रेखा = तुल्यता तया, तुल्यभावेनेत्यर्थः, एवेति न्यूनत्वपरिहारार्थम्, समरे = संग्रामे, चेतः = मनः, निधेहि = देहि। मिलित्वा सर्वे मया सह युद्धं कुर्वन्त्वित्यभिप्रायः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अहो धृष्टता मनुष्यकीटानाम् । तदेतान्निजमूर्त्यैव तावद्भीषयामि । (साटोपं निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

मन्दाकिनीकनकपद्मबिसाङ्कुराणां
किञ्चोग्रदिग्गजलसद्दशनाङ्कुराणाम् ।
उन्मूलनैरलमनीयत शैशवं यै-
स्तेऽमी निजा मम भुजाः प्रकटीभवन्तु ॥ ४३ ॥

(ततः प्रविशति निजरूपेण दशकण्ठः)

नूपुरकः—वयस्य, पश्य पश्य कौतूहलं यदेकस्यापि मानुषस्य दश मस्तकानि ।
[वअस्स, पेक्ख पेक्ख कोदूहलं जं एकस्स माणुसस्स दस मत्थआइं ।]

मञ्जीरकः—नैष मानुषः । राक्षसराजः खल्वसौ दशकण्ठः ।

नूपुरकः—तत्परित्रायतु मां वयस्यः । नूनं राक्षसमात्र एव संमुखपतितं मानुषं चर्वति किं पुना राक्षसराजः ।

[ता परित्ताअदु मं वअस्सो । णं रक्खसमत्तो जेव्व संमुहपडिदं माणुसं चव्वेइ किं उण रक्खसराओ ।]

मञ्जीरकः—अलं कातरतया । सकलवीरवन्दनीया हि बन्दिजातिः । तत्कथमस्मद्विधेषु सकलभुवनैकवीरो विपरीतं वर्तिष्यते दशकण्ठः ।

नूपुरकः—यदीदृशस्तर्हि किमप्येन निःशङ्कः प्रक्ष्यामि। (उपसृत्य) अये, किमितीयन्ति मस्तकान्युह्यन्ते किमिति वैकं रक्षित्वा पुनरपराणि यत्रकुत्रापि न निक्षिप्यन्ते ।

[जदि एरिसं ता किंपि इमं णीसङ्को पुच्छिस्सम् । अये, किंति एत्तिआइं मत्थआइं उव्वहीअन्ति किंति वा एकं रक्खिअ उण अवराइं जत्तकुत्तवि ण णिक्खिप्पन्ति ।]

रावणः—आः पाप, कथमस्थाने शिरश्छेदवार्तयामङ्गलमावेदयसि । तदेष वैतालिक इत्युपेक्ष्यः ।

मञ्जीरकः—(विहस्य) स्थाने शिरश्छेदवार्तापि भवतो मङ्गलाय ।

अन्वयः—मन्दाकिनीकनकपद्मबिसाङ्कुराणाम्, किञ्च, उदग्रदिग्गजलसद्दशनाङ्कुराणाम्, उन्मूलनैः, यैः, शैशवम्, अलम्, अनीयत; ते, मम, अमी, निजाः, भुजाः, प्रकटीभवन्तु ॥ ४३ ॥

निजस्वरूपप्रकाशनेच्छया स्वभुजानाह्वयन्नाह—**मन्दाकिनीति** । मन्दाकिनीकनकपद्मबिसाङ्कुराणाम्—मन्दाकिन्याः = आकाशगङ्गायाः ('मन्दाकिनी वियद्गङ्गा स्वर्णदी' इत्यमरः) यानि कनकपद्मानि = सुवर्णकमलानि तेषां बिसाङ्कुराणाम् = मृणालदण्डप्ररोहाणाम्, अनेन स्वसमक्षं देवानामपि अकिञ्चित्करत्वं सूचितम्, किञ्च = तथा, उदग्रदिग्गजलसद्दशनाङ्कुराणाम्—उदग्राः = उन्नताः मदस्राविणो वा ये दिग्गजाः = दिक्करिणः तेषां लसन्तः = शोभमानाः ये दशनाङ्कुराः = दन्तप्ररोहाः नूतनाः दशनाः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मनुष्य-कीटों की ढिठाई आश्चर्यजनक है। तो अब इन्हें अपने शरीर से ही डराता हूँ। (गर्व के साथ निकल गया)

(पर्दे के पीछे)

आकाशगङ्गा के सुवर्णकमलों के मृणालरूप अङ्कुरों के तथा विशालकाय दिग्गजों के सुन्दर उगते हुए दाँतों (दन्ताङ्कुरों) के उखाड़ने से (अर्थात् उखाड़-उखाड़ कर, मेरी) जिन (भुजाओं) के द्वारा बाल्यकाल ठीक ढङ्ग से व्यतीत किया गया, वे मेरी ये अपनी भुजाएँ प्रकट हों ॥ ४३ ॥

(तदनन्तर अपने (असली) रूप में रावण प्रवेश करता है)

नूपुरक—मित्र ! देखो-देखो तमाशा, जो कि एक मनुष्य के भी दश शिर हैं।

मञ्जीरक—यह मनुष्य नहीं है। यह तो राक्षसराज रावण है।

नूपुरक—तो मित्र मुझे बचाओ। साधारण राक्षस ही सामने आये हुए मनुष्य को चबा डालता है तो फिर राक्षसराज का क्या कहना।

मञ्जीरक—भय करना व्यर्थ है। वन्दियों (स्तुतिपाठकों) की जाति सम्पूर्ण वीरों के द्वारा आदर करने के योग्य (होती है)। ऐसी अवस्था में, सकल भुवनों का अप्रतिम वीर रावण हमारे जैसे लोगों पर कैसे विरुद्ध बर्ताव करेगा ?

नूपुरक (प्रसन्नतापूर्वक) यदि ऐसा है तो निर्भय होकर इससे कुछ पूछूँगा। (पास में जाकर) अरे ! क्यों इतने (अधिक) मस्तकों को धारण करते हो ? एक (मस्तक) को रख कर औरों को जहाँ कहीं क्यों नहीं फेंक देते ?

रावण—आह, पापिन् ! क्यों अनुचित अवसर पर शिर काटने की बात से अमङ्गल की सूचना दे रहे हो ? अच्छा, यह वन्दी है, अतः उपेक्षा कर देने के योग्य है (अन्यथा इसे बिना मारे न छोड़ता)।

मञ्जीरक—(हँसकर) विशेष अवसर पर (अर्थात् शिवजी की पूजा के समय) शिर काटने की बात भी आपके मङ्गल के लिए (होती है)।

इत्यर्थः तेषाम् , एतेन महाबलशालित्वं निर्दिष्टम् , उन्मूलनैः = उत्पाटनैः, यैः = मम भुजैः, शैशवम् = बाल्यम् , अलम् = पर्याप्तम् , अनीयत = अयाप्यत; ते = जगद्विदिताः, मम = रावणस्य, अमी = एतादृशाः, निजाः = स्वकीयाः, भुजाः = बाहवः, प्रकटीभवन्तु= निःसरन्त्वित्यर्थः। स्वविक्रमैः जगद्विदिता मम बाहवः प्रकाशं गच्छन्त्विति भावः। वसन्ततिलका छन्दः ॥ ४३ ॥

मञ्जीरक इति। कातरतया = भीरुतया, भीतिर्न कार्येत्यर्थः। सकलवीरवृन्दवन्दनीया—सकलाः = सम्पूर्णाः ये वीराः = शूराः तेषां वृन्दम् = समूहः तेन वन्दनीया = आदरणीया, सम्मानार्हेत्यर्थः। अस्मद्विधेषु = अस्मासु वन्दिष्वित्यर्थः, सकलभुवनैकवीरः—सकलम् = समग्रम् च तत् भुवनम् = जगन्मण्डलम् तस्मिन् एकः = अद्वितीयः वीरः = योद्धा; दशकण्ठः = रावणः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—अथ किम् । ननु रे

विद्याधरप्रणयिनीकरपल्लवाग्र-
लीलाविमुक्तकुसुमप्रकरावकीर्णे ।
श्रीचन्द्रचूडचरणे च रणे च कामं
छिन्नोऽपि मस्तकगणो मम मङ्गलाय ॥ ४४ ॥

नूपुरकः—यदीदृशस्त्वं तर्हि किमिति निजरूपं संगोप्य चोर इव प्रविष्टोऽसि ।
[जदि एरिसो तुमं ता किंति णिअरूअं संगोविअ चोरा व्व पविट्ठोसि ।]

रावणः—धिङ् मूर्ख । न जानासि रे,

ये चन्द्रचूडाचलचालनैकचातुर्यचिन्तामणयो भुजा मे ।
तैरेव भूयिष्ठतरैः प्रवृत्तश्चापाधिरोपाय कथं न लज्जे ॥ ४५ ॥

तत्कथय कुत्र जानकीति ।

मञ्जीरकः—(सविषादम्)

यस्याः स्वयं कुलगुरुः किल याज्ञवल्क्य-
स्तातः स एष जनको जननी धरित्री ।
सापि त्वमद्य बत दुर्विधिवैशसेन
वत्से निशाचरकराङ्कगता भवित्री ॥ ४६ ॥

अन्वयः—विद्याधरप्रणयिनीकरपल्लवाग्रलीलाविमुक्तकुसुमप्रकारावकीर्णे, श्रीचन्द्रचूडचरणे, च, रणे, च, कामम्, छिन्नः, अपि, मस्तकगणः, मम, मङ्गलाय, (भवति) ॥ ४४ ॥

पूर्वं कृतेन शिरश्छेदनेन स्वपौरुषं स्मारयति—विद्याधरेति । विद्याधरप्रणयिनीत्यादिः—विद्याधराणाम् = देवयोनिविशेषाणाम् प्रणयिन्यः = प्रेयस्यः तासां करपल्लवाग्रैः = हस्तकमलाग्रभागैः लीलया = विलासेन = विमुक्तानि = त्यक्तानि यानि कुसुमानि = पुष्पाणि तेषां प्रकरेण = समूहेन अवकीर्णे = व्याप्ते, श्रीचन्द्रचूडचरणे—श्रिया = पार्वत्या कान्त्या वा युक्तः चन्द्रचूडः = चन्द्रशेखरः, शिवः इति यावत्, तस्य चरणे = पादे, च=तथा, रणे = संग्रामे, च = अपि, कामम् = यथेच्छम्, छिन्नः = कृत्तः, अपि, मस्तकगणः = शिरोगणः, मम = वीरस्य रावणस्येत्यर्थः, मङ्गलाय = शुभाय, भवतीति शेषः । यथा शिवपूजने छिन्नानि मम मस्तकानि कल्याणाय जातानि तथैव समरेऽपि छिन्नानि सन्त्यपि निःश्रेयसे भविष्यन्तीति भावः । अनेन रामकर्तृकं भावि स्वशिरश्छेदनं सूचितमित्यपि ज्ञेयम् । रूपकालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—ये, मे, भुजाः, चन्द्रचूडाचलचालनैकचातुर्यचिन्तामणयः, (सन्ति); भूयिष्ठतरैः, तैः, (भुजैः), एव, चापाधिरोपाय, प्रवृत्तः, (अहम्), कथम्, न, लज्जे ॥ ४५ ॥

नूपुरकमुत्तरयन्नाह—ये चन्द्रेति । ये = सारवत्तया विश्वविदिताः इत्यर्थः, मे = मम, जगदेकवीरस्य रावणस्येत्यर्थः भुजाः = बाहवः, चन्द्रचूडाचलचालनैकचातुर्य-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावण—और क्या (अर्थात् ठीक कह रहे हो)। अरे ! निश्चय ही—

विद्याधरों की स्त्रियों के करपल्लवों के अग्रभाग से विलासितापूर्वक छोड़े गये पुष्प-समूह से व्याप्त श्री शङ्करजी के चरण में तथा संग्राम में भी प्रसन्नतापूर्वक कटा हुआ भी (मेरा) मस्तक-समूह हमारे मङ्गल के लिए (हुआ करता है) ॥ ४४ ॥

नूपुरक—यदि तुम ऐसे हो तो अपने (असली) रूप को छिपाकर चोर की तरह क्यों (यहाँ) प्रवेश किये हो ?

जो मेरी भुजाएँ शंकरजी के पर्वत (कैलास) को (अपने स्थान से अन्यत्र) हटा देने की एकमात्र चतुरता में चिन्तामणि हैं (अर्थात् इच्छा करते ही अनायास कैलास को अपने स्थान से अन्यत्र पहुँचा देने में समर्थ हैं); वहुतेरी उन्हीं (भुजाओं) से ही एक धनुष उठाने के लिए प्रवृत्त मैं क्यों नहीं लज्जित होऊँगा ? ॥ ४५ ॥

तो बतलाओ, जानकी कहाँ है ?

मञ्जीरक—(खेद के साथ)

हे बेटी (सीते) ! स्वयं याज्ञवल्क्य जिसके कुलगुरु हैं, जगत्प्रसिद्ध यह जनक (जिसके) पिता हैं, पृथिवी (जिसकी) माता हैं; हाय ! ऐसी भी तुम आज दुर्भाग्य की क्रूरता (अथवा दुष्ट विधाता की क्रूरता) के कारण राक्षस (रावण) की गोद में पड़ी हुई (अर्थात् राक्षस के हस्तगत) होओगी—ऐसी सम्भावना है ॥ ४६ ॥

चिन्तामणयः—चन्द्रः = शशिः चूडायाम् = मौलौ इत्यर्थः यस्य सः चन्द्रचूडः = शिवः तस्य अचलः = पर्वतः, कैलासः इति यावत्, तस्य चालनम् = स्वस्थानात् प्रच्यावनम् तस्मिन् यत् एकम् = अभूतपूर्वम्, चातुर्यम् = चतुरता तस्मिन् चिन्तामणयः = इच्छापूरकमणयः, आश्रयभूताः इति यावत्, सन्तीति क्रियाशेषः; भूयिष्ठतरैः=बहुतरैः, तैः = प्रदर्शितसामर्थ्यैः, भुजैरिति शेषः, एव, चापाधिरोपाय— चापस्य = शिवधनुषः अधिरोपाय = आरोपाय, प्रवृत्तः = प्रचलितः, अहमिति शेषः, कथम् = केन प्रकारेण, कस्मादित्यर्थः, न लज्जे = न व्रीडामनुभवामि । यथा कृतमहत्कार्यः कश्चिज्जनः लघुनि कार्ये प्रवृत्तो भवन् लज्जते तथैवोत्तोलितमहच्छैलोऽहमधुना स्वल्पं चापमुत्थापयितुमागतोऽतः लज्जे इत्यर्थः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ; तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥' ४५ ॥

अन्वयः—हे वत्से ! स्वयम्, याज्ञवल्क्यः, यस्याः, कुलगुरुः; सः, एषः, जनकः, तातः; धरित्री, जननी, (अस्ति); बत ! अपि, त्वम्, अद्य, दुर्विधिवैशसेन, निशाचरकराङ्कगता, भवित्री, किल ॥ ४६ ॥

यस्या इति । हे वत्से = हे पुत्रि, वत्सेति स्नेहप्रदर्शनार्थं सम्बोधनम्, स्वयम् = न तु कश्चिदन्यः साधारणः इति भावः, याज्ञवल्क्यः = याज्ञवल्क्यनामा योगिराजः, यस्याः = यस्यास्तवेत्यर्थः, कुलगुरुः = वंशपरम्परागतः आचार्यः, सः = जगति प्रसिद्धः, एषः = धनुर्यज्ञसंयोजकः, जनकः = राजर्षिर्विदेहः, तातः = पिता; धरित्री = सकललोकधात्री पृथिवी, जननी = माता; सर्वत्र अस्तीति क्रियाशेषः । बत खेदे, मह-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नूपुरकः—(अपवार्य) अलं तापेन । कथमेतावन्मात्रे वीरमण्डले कोऽपि नास्ति योऽस्य हठप्रवृत्तस्य पुरतो भवति ।

[अलं तावेण । कहं एत्तिअमेत्तम्मि वीरमण्डले कोवि णत्थि जो इमस्स हठप्पउत्तस्स पुरदो होदि ।]

मञ्जीरकः—कुपितस्य दशकण्ठस्य कः संमुखे भवति क्षत्रियः ऋते सहस्रबाहोः कार्तवीर्यात् ।

नूपुरकः—(सहर्षम्) जीविताः स्मः । पश्य ननु प्राप्तः सहस्रबाहुः कृतवीर्यपुत्रः ।

[जीविदं ह्म । पेच्छ णं पत्तो सहस्सबाहू किदवीरपुत्तो ।]

मञ्जीरकः—धिङ् मूर्ख । जामदग्न्यकुठारधाराजलनिमग्नः क्व सम्प्रति कार्तवीर्यः । तन्नूनमयं बाणासुरो भविष्यति । हन्त भोः, तदिदमनर्थान्तरम् । (विमृश्य) अथवा विषस्य विषमौषधं भविष्यति ।

(ततः प्रविशति बाणासुरः)

बाणासुरः—(परिक्रम्य । साटोपम् ।)

कैलासशैलशिखरादपि भूरिसारं
निःसीमभारमधुना धनुरिन्दुमौलेः ।
आलम्ब्य पुष्पसदृशं करपल्लवेन
स्फीतं भुजद्रुमवनं सफलं करोमि ॥ ४७ ॥

दुःखस्यायं विषय इत्यर्थः, त्वम् = सर्वथा पवित्रा त्वमिति यावत्, अद्य = अस्मिन् दिने, दुर्विधिवैशसेन—दुर्दुष्टः विधिः = विधाता, भाग्यं वा तस्य वैशसेन = क्रौर्येण, निशाचराङ्कगता—निशाचरस्य = राक्षसराजस्य रावणस्येत्यर्थः, अङ्के = क्रोडे गता = प्राप्ता, राक्षसहस्तगतेत्यर्थः, भवित्री = भविष्यसि, किलेति सम्भावनायाम् ('वार्तासम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः) । पवित्राचार्यपितृमातृकुलां त्वामपवित्रो रावणोऽद्य बलान्नेष्यतीति सम्भावना । अतः महत्कष्टमेतदिति । अनेन रावणकृतं भावि जानकीहरणं सूचितमिति । वसन्ततिलका वृत्तम्; तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥' ४६ ॥

नूपुरक इति—अपवार्य = कथनोद्देश्यभूतं जनं निवार्येत्यर्थः । साहित्यदर्पणेऽपवारितलक्षणं यथा—'तद्भवेदपवारितम् । रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशेश्य' इति । वीरमण्डले—वीराणाम् = शूराणाम् मण्डले=समुदाये; हठप्रवृत्तस्य—हठे = बलात्कारे प्रवृत्तस्य = तत्परस्य, धनुष आरोपणमकृत्वैव सीतां निनीषतः इति भावः । पुरतो भवति= सम्मुखं भवति, बलान्निवारयितुमग्रे आयातीत्यर्थः ॥

मञ्जीरक इति । कुपितस्य = क्रुद्धस्य, ऋते सहस्रबाहोः = सहस्रबाहुं विना, अत्र, ऋते योगे पञ्चमी । 'नासूचितस्य प्रवेशः स्यादिति' रीत्या सहस्रबाहुपदप्रस्तावेन सहस्रबाहोर्बाणस्य प्रवेशः सूचितः ॥

मञ्जीरक इति । जामदग्न्यकुठारधाराजलनिमग्नः—जमदग्नेरपत्यं पुमान् जामदग्न्यः = परशुरामः तस्य कुठारः = परशुः तस्य धारा = सुतीक्ष्णाग्रभागः सा एव

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नूपुरक—(अलग से) दुःख करने की आवश्यकता नहीं है। क्या इतने बड़े वीर-समूह में (ऐसा) कोई नहीं है, जो हठ में (सीता को ले जाने में) प्रवृत्त इस (रावण) के सामने आ सके (अर्थात् जबर्दस्ती इसे रोक सके) ?

विशेष—अपवार्य—(१) अपवारित (२) जनान्तिक। जब एक पात्र अपने हाथ की तीन अंगुलियाँ उठाकर अनामिका अँगुली को टेढ़ी किये हुए अन्य लोगों से छिपाकर किसी एक पात्र से कुछ कहता है तो वह जनान्तिक कहा जाता है। और जब मुँह फेर कर दूसरे से गुप्त बात कही जाती है तब वह सम्वाद अपवारित कहलाता है।

मञ्जीरक—कुपित हुए रावण के सामने सहस्रबाहु कार्तवीर्य को छोड़कर (अन्य) कौन क्षत्रिय आ सकता है ?

नूपुरक—(प्रसन्नता के साथ) हम लोग जी गए (अर्थात् बच गये)। देखो, कृतवीर्य का पुत्र सहस्रबाहु आ ही गया।

मञ्जीरक—धिक् मूर्ख ! परशुराम के फरसे (कुठार) के धार रूपी जल में डूबा हुआ (परशुराम के द्वारा फरसे से वध किया गया) कार्तवीर्य अब कहाँ रहा ? तो निश्चय ही यह बाणासुर होगा। अरे ! बड़ा दुःख है, (एक अनर्थ रावण पहले से था ही), यह तो दूसरा भी अनर्थ आ पड़ा। (सोचकर) अथवा विषकी दवा विष ही (होगी) (अर्थात् एक दुष्ट का निवारण दूसरा दुष्ट ही करेगा)।

(तदनन्तर बाणासुर प्रवेश करता है)

बाणासुर—(घूमकर घमण्ड के साथ)

कैलास पर्वत की चोटी से भी अधिक मजबूत, निःसीम भार वाले, शङ्कर जी के धनुष को पल्लव के समान कोमल (अपने) हाथ से फूल की तरह पकड़ कर सम्प्रति (मैं) बढ़े हुए बाहुरूप वृक्षों के वन को (अर्थात् बाहुओं को) सार्थक करूँगा ॥४७॥

जलम् = सलिलम्, अनेन परशोः अतिस्वच्छता सर्वत्र प्रसरणशीलता च सूचिता, तस्मिन् निमग्नः = ब्रुडितः, जामदग्न्येन परशुना घातितः इत्यर्थः। अतः कुतस्तस्य पुनरिहागमनं सम्भवतीति भावः। अनर्थान्तरम् = अपरोऽनर्थः, अनर्थकर्तेति यावत्। विषस्य विषमौषधम् = विषरूपस्य रावणस्य अन्यो विषस्वरूपो बाणः हठान्निवारको भविष्यतीति भावः॥

अन्वयः—कैलासशैलशिखरात्, अपि, भूरिसारम्, निःसीमम् इन्दुमौलेः, धनुः, करपल्लवेन, पुष्पसदृशम्, आलम्ब्य, अधुना, स्फीतम्, भुजद्रुमवनम्, सफलम्, करोमि ॥४७॥

कैलासेति। कैलासशैलशिखरात्—कैलासशैलस्य = हराचलस्य शिखरात् = शृङ्गात्, अपि, भूरिसारम्—भूरि = भूयिष्ठः सारः = स्थिरांशः ('सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः) यस्य तत्, तस्मादप्यधिकसारमित्यर्थः, निःसीमभारम्—निःसीमः = इयत्ताविरहितः भारः = गुरुता यस्य तत्, इन्दुः = चन्द्रः मौलौ = मस्तके यस्य तस्य, शिवस्येत्यर्थः, धनुः = चापम्, करपल्लवेन = स्वकीयेन हस्तपल्लवेन, पुष्पसदृशम् = प्रसूनतुल्यम्, अनायासेनैवेत्यर्थः, आलम्ब्य = गृहीत्वा, अधुना = सम्प्रति, स्फीतम् = समृद्धम्, भुजद्रुम-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—(अनाकर्णितकेन) कथमद्यापि नानीयते जानकी ।

बाणः—(विलोक्य । स्वगतम्) कथमिह दशकण्ठोऽपि । (प्रकाशम्) अहो एतावति वीरलोके न केनापि तावदारोपितमैश्वरं धनुः ।

नूपुरकः—नारोपणीयं च ।

रावणः—कथमद्यापि नानीयते सीता । तदयं चन्द्रहास एव मे बलादानयति ।

बाणः—(विहस्य) यदीदृशं वीरडम्बरं तत्किमारोप्यैव हरकार्मुकं नानीयते सीता ।

रावणः—आः, कोऽयमलीकपण्डितः ।

> उद्दण्डचण्डिमलसद्भुजदण्डषण्ड-
> हेलाचलाचलहराचलचारुकीर्तेः ।
> कीदृग्यशस्तुलितबालमृणालकाण्ड-
> कोदण्डकर्षणकदर्थनयानया मे ॥ ४८ ॥

बाणः—सोऽयमशक्तिप्रकारः ।

रावणः—आः, कथं दशमुखस्याप्यशक्तिसंभावना ।

बाणः—(विहस्य) अये, बहुमुखता नाम बहुप्रलापितायाः कारणम् । विक्रमस्य बहुबाहुतैव ।

रावणः—आः, कथं रे, पलालभारनिःसारेण भुजभारेण वीरम्मन्योऽसि ।

वनम्—भुजाः = बाहवः एव द्रुमाः = वृक्षाः तेषां वनम्, सफलम् = सार्थकम्, करोमि = विदधामि । यथा पल्लवाग्रे अनायासेन लग्नानि पुष्पाणि अनतिभारस्य वृक्षस्य फलवन्ति जायन्ते तथैवानायासमेवोत्तोलितमिदं धनुः मम बाहूनां सार्थकतां दर्शयिष्यतीति भावः । अत्र रूपकालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—उद्दण्डचण्डिमलसद्भुजदण्डषण्डहेलाचलाचलहराचलचारुकीर्तेः, मे, अनया, तुलितबालमृणालकाण्डकोदण्डकर्षणकदर्थनया, कीदृक्, यशः ॥ ४८ ॥

रावण इति । अलीकपण्डितः = मिथ्याभिमानीत्यर्थः ॥

स्वपराक्रमं वर्णयन्नाह रावणः—**उद्दण्डचण्डिमेति** । उद्दण्डेत्यादिः—उद्दण्डः = उग्रः यः चण्डिमा = उग्रता, क्रूरतेति यावत्, तेन लसन् = शोभां प्राप्नुवन् यः भुजदण्डानाम् = पीवराणां बाहूनाम् षण्डः = समूहः ('षण्डं पद्मादिसंघाते न स्त्रीस्याद्गोपतौ पुमान्' इति मेदिनी) तेन हेलया = क्रीडया, अनायासेनेत्यर्थः, चलाचलः = चलायमानः यः हरस्य = शिवस्य निवासभूतः अचलः = पर्वतः तेन चार्वी = शोभना कीर्तिः = समज्ञा, यशः इत्यर्थः ('कीर्तिर्यशः समज्ञा च' इत्यमरः) यस्य तादृशस्य, मे = मम, बलशालितया जगद्विदितस्य रावणस्येत्यर्थः, अनया = एतया, धनुरुद्यमनरूपयेत्यर्थः, तुलितेत्यादिः—तुलितः = समानतां प्राप्तः बालः = नवीनः, अतिकोमलः इति यावत्, मृणालस्य = बिसस्य ('मृणालं बिसम्' इत्यमरः) काण्डः = दण्डः, प्ररोहः इति यावत्, येन तत् तथाभूतं यत् कोदण्डम् = धनुः, शिवधनुरित्यर्थः, तस्य कर्षणे = आरोपणे या कदर्थना = विडम्बना तया, कीदृक् = कीदृशम्, यशः = कीर्तिरित्यर्थः, भविष्यतीति क्रियाशेषः ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावण--(न सुनते हुए) क्या अभी भी जानकी नहीं लाई जा रही है ?

बाण—(देखकर, अपने आप) क्या यहाँ रावण भी (उपस्थित है) ! (प्रकट रूप में) आश्चर्य है, इतने बड़े वीर समूह में किसी के द्वारा भी अभी तक शङ्कर जी का धनुष नहीं चढ़ाया (खींचा) गया ?

नूपुरक—और चढ़ाया भी नहीं जायगा।

रावण—क्या अभी भी सीता नहीं लाई जा रही है ? तो यह मेरा चन्द्रहास ही जबर्दस्ती (सीता को) लाएगा।

विशेष—चन्द्रहासः—रावण की तलवार का नाम चन्द्रहास था।

बाण—(हँसकर) यदि वीरता का ऐसा अभिमान है, तो शङ्कर के धनुष को चढ़ा कर ही सीता क्यों नहीं ले जाई जाती (अर्थात् सीता को क्यों नहीं ले जाते) ?

रावण—आह, यह कौन झूठा पण्डित (अर्थात् डींग हांकने वाला) है ?

उद्दण्ड उग्रता से सुशोभित (अर्थात् अत्यन्त उग्र) मोटी-मोटी भुजाओं के समूह के द्वारा बिना परिश्रम ही हिला दिये गये कैलास पर्वत से (प्राप्त) सुन्दर यशवाले मुझे इस, अत्यन्त कोमल मृणालदण्ड (भिसाड़ के डण्डे) के समान (कमजोर) धनुष को चढ़ाने की विडम्बना से कैसा यश (मिलेगा) ? ॥ ४८ ॥

बाण—यह (कहना) तो कमजोरी (अशक्ति) का (एक) प्रकार है।

रावण—आह, क्या दशमुख की भी कमजोरी की सम्भावना (की जा सकती है) ?

बाण—(हँस कर) अरे ! बहुत मुखों का होना तो अधिक बकवास करने का कारण है। पराक्रम (का कारण तो) बाहुओं की अधिकता ही है।

रावण—आह, क्यों रे ! पुआल के समूह के समान सारहीन बाहुओं के समूह से (तुम अपने को) वीर माननेवाले हो ?

उत्थापितकैलासपर्वतस्य मे अत्यन्ततुच्छस्य शिवधनुषः उत्तोलने कीदृशं यशः ? न किमपीति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्; तल्लक्षणं यथा—

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥' ४८ ॥

बाण इति। सोऽयम् = इत्थं तव कथनमित्यर्थः, अशक्तिप्रकारः—अशक्तेः = बलहीनतायाः प्रकारः = भेदः। अनेन कथनेन तव बलहीनतैव द्योत्यते इत्यर्थः ॥

रावण इति। दशमुखस्यापि = मम रावणस्यापीत्यर्थः, अशक्तिसम्भावना—अशक्तेः = पौरुषराहित्यस्य सम्भावना = उत्प्रेक्षा, आशङ्केति यावत् ॥

बाण इति। बहुमुखता = मुखानां बाहुल्यम्, बहुप्रलापितायाः = बहूनामनर्थकवचसां कथनस्य ('प्रलापोऽनर्थकं वचः' इत्यमरः), कारणम् = हेतुः। विक्रमस्य = पराक्रमस्य, कारणमिति शेषः, बहुबाहुता = बाहूनां बाहुल्यमित्यर्थः। अहमेव प्रतापी त्वं तु प्रलापीति भावः ॥

रावण इति। पलालभारनिःसारे—पलालानाम् = काण्डानाम् ('काण्डो-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

बाणः—(सक्रोधम्) अये समरकलाकुण्ठ दशकण्ठ, ममापि भुजभारं निःसारं व्यपदिशसि। न जानासि किं। यतोऽत्रैव

पितुः पादाम्भोजप्रणतिरभसोत्सिक्तहृदयः
प्रयातः पातालं न कतिकतिवारानकरवम्।
सहस्रे बाहूनां क्षितिवलयमासज्य सकलं
जगद्भारोद्वेलां फणफलकमालां फणिपतेः ॥ ४९ ॥

रावणः—अरे, चलितनयवृत्तिरसि। यदलीकविक्रमवर्णनया सत्यविक्रमस्य मे पुरतः स्वात्मानं विडम्बयसि।

बाणः—कथं त्वमेव सत्यविक्रमः।

रावणः—अथ किम्।

दोष्णां न मे विदितवानसि वीरलक्ष्मी-
प्रासादविभ्रमवतीं पदवीं गरिष्ठाम्।
ये चन्द्रशेखरगिरौ करपङ्कवाङ्क-
पर्यङ्कशायिनि दधुः कलशप्रतिष्ठाम् ॥ ५० ॥

ऽस्य पलालः' इत्यमरः) भारः = समवायः तद्वत् निःसारः = सारहीनः, बलरहितः इति यावत्; तेन। वीरम्मन्यः = वृथैव वीरताभिमानी ॥

बाण इति। समरकलाकुण्ठः—समरस्य = संग्रामस्य कलायाम् = कौशले कुण्ठः = अनभिज्ञः अपटुरिति तत्सम्बुद्धौ, व्यपदिशसि = कथयसि ॥

अन्वयः—पितुः, पादाम्भोजप्रणतिरभसोत्सिक्तहृदयः, पातालम्, प्रयातः, (अहम्) सकलम्, क्षितिवलयम्, (अत्रैव), बाहूनाम्, सहस्रे, आसज्य, फणिपतेः, फणफलकमालाम्, जगद्भारोद्वेलाम्, कतिकति, वारान्, न, अकरवम् ॥ ४९ ॥

स्वभुजविक्रमं वर्णयति बाणः—पितुरिति। पितुः = तातस्य, बलेरिति भावः, पादाम्भोजप्रणतिरभसोत्सिक्तहृदयः—पादाम्भोजयोः = चरणकमलयोः या प्रणतिः=प्रणामः तस्यै तस्याः वा यः वेगः = हर्षः ('रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः) तेन उत्सिक्तम् = चञ्चलम् हृदयम् = चेतः यस्य तादृशः, अतः पातालम् = पृथिव्यधस्तललोकम्, बलिः पाताले निवसतीति पौराणिकी कथा, प्रयातः = गतः, अहमिति शेषः, सकलम् = समग्रम्, क्षितिवलयम् = भूमण्डलम्, अत्रैवेत्यस्य गद्यस्थितस्यात्रैव सम्बन्धः, बाहूनाम् = भुजानाम्, सहस्रे = समुदाये इति भावः, आसज्य = निधाय, फणिपतेः = शेषनागस्य, फणफलकमालाम्—फणफलकानाम् = फणपट्टानाम् मालाम् = पंक्तिम्, जगद्भारोद्वेलाम्—जगतः = पृथिव्याः इत्यर्थः भारात् = गौरवात् उद्वेलाम् = भाररहिताम्, चञ्चलामित्यर्थः, कतिकतिवारान् = कतिधा; न अकरवम् = न कृतवान्, अनेकधा अकरवमित्यर्थः। कैलासोत्तोलनरूपात् तव कार्यात् पृथिवीसमुत्तोलनरूपं बहुधा कृतं मदीयं कार्यं श्रेयानतः तव तुलनायामहमतिश्रेष्ठः वीर इति भावः। उपमाऽलङ्कारः। शिखरिणीवृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥' ४९ ॥

रावण इति। चलितनयवृत्तिः—चलिता = विचलिता, भ्रष्टेति यावत् नयस्य

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

बाण—(क्रोधपूर्वक) अरे, युद्ध करने की कला में अनभिज्ञ रावण, मेरे भी बाहु समूह को सारहीन कह रहे हो ? क्या नहीं जानते कि—

पिता (बलि) जी के चरण-कमलों में प्रणाम करने की प्रसन्नता से चञ्चल चित्तवाला (अतः) पाताल को गया हुआ (मैं) सम्पूर्ण भूमण्डल को (इन्हीं) हजार बाहुओं के उपर उठाकर शेषनागके तख्ता के समान चिपटे फनों की पंक्ति को पृथिवी के भार से हीन कितनी-कितनी वार नहीं किया है ? (अर्थात् अनेकों बार किया है) ॥ ४९ ॥

रावण—अरे ! (तुम) विचलित नीति-व्यवहार वाले हो (अर्थात् तुम्हारा नीति-व्यवहार विचलित = भ्रष्ट हो गया है)। जो कि (अपने) झूठे पराक्रम के वर्णन से सच्चे पराक्रमी मेरे सामने अपने-आपको विडम्बित (तिरस्कृत) कर रहे हो।

बाण—क्या तुम्ही सच्चे पराक्रमी हो ?

रावण—और क्या ?

वीरता की लक्ष्मी के प्रासाद (निवास-स्थान) के विलास से सम्पन्न (अर्थात् वीरता के आधारभूत), मेरी बाहुओं के गौरवपूर्ण चरित्र को (तुम) नहीं जानते हो। जिन्होंने (अर्थात् जिन बाहुओं ने) कर पल्लवों के मध्य भाग (अर्थात् हथेली) रूपी पलङ्ग पर स्थित कैलास पर्वत में कलश की स्थिति को धारण किया ॥ ५० ॥

विशेष—देवताओं के महलों के ऊपर सुवर्ण के कलश को रखने की प्रथा अति प्राचीन है। रावण की भुजाओं में वीरता देवी निवास करती हैं। अतः भुजाएँ वीरता की देवी के प्रासाद हैं। रावण ने हाथ उठाकर उपर सुवर्ण के पर्वत कैलास को धारण कर रक्खा है। अतः वीरता की लक्ष्मी के प्रासाद का कैलास सुवर्ण का कलश प्रतीत होता है ॥ ५० ॥

= नीतेः, व्यवहारस्येत्यर्थः, वृत्तिः = वर्तनम् आचारणमिति यावत्। अलीकविक्रमवर्ण-नया—अलीकः = मिथ्या यः विक्रमः = पराक्रमः, तस्य वर्णनया = प्रशंसया, सत्यविक्रम-स्य—सत्यः = यथार्थः विक्रमः = शौर्यम् यस्य तादृशस्य, विडम्बयसि = तिरस्करोषि ॥

अन्वयः—वीरलक्ष्मीप्रासादविभ्रमवतीम्, मे, दोष्णाम्, गरिष्ठाम्, पदवीम्, न विदितवान्, असि; ये, करपल्लवाङ्कपर्यङ्कशायिनि, चन्द्रशेखरगिरौ, कलशप्रतिष्ठाम्, दधुः ॥ ५० ॥

स्वभुजापराक्रमं वर्णयन्नाह रावणः—दोष्णामिति। वीरलक्ष्मीप्रासादविभ्रमव-तीम्—वीराणाम् = शूराणाम् लक्ष्मीः = देवी, वीरतेत्यर्थः, तस्याः प्रासादः = निवास-स्थानम्, मन्दिरमित्यर्थः, तस्य विभ्रमः = विलासः तद्वतीम्, पदवीमित्यस्य विशेषणमेतत्, मे = मम, दोष्णाम् = बाहूनाम् ('भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' इत्यमरः), गरिष्ठाम् = गुरुत-राम्, पदवीम् = पद्धतिम्, चरित्रमित्यर्थः, न = नहि, विदितवान् = ज्ञातवान्, असि। ये = मम भुजाः, करपल्लवाङ्कपर्यङ्कशायिनि—करपल्लवानाम् = हस्तपल्लवानाम् अङ्काः = मध्यभागाः एव पर्यङ्कः = पल्यङ्कः तत्र शायी = शयनशीलः, स्थित इत्यर्थः, तस्मिन्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

बाणः—अलमलीकवाग्विग्रहेण। तदिदं धनुरावयोस्तारतम्यं निरूपयिष्यति।

मञ्जीरकः—अये बाणरावणौ, किमिदं नरवीरैकसमर्पणीयसीतापरिणयमनोरथेन विफलमायास्यते चेतःपदवी।

बाणः—किमेतावता।

त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिता धी-
मेम न जनकपुत्रीपाणिपद्मग्रहाय।
अपि तु बहुलबाहुव्यूहनिर्व्यूहमाला-
बलपरिमलहेलाताण्डवाडम्बराय ॥ ५१ ॥

रावणः—

उन्मीलितेन शिखरेण हराचलस्य
प्रागेव मे भुजवनस्य कृता परीक्षा।
एषा विदेहतनयाकुचकुम्भकेलि-
कौतूहलाद्गिरिशकार्मुककर्मदीक्षा ॥ ५२ ॥

चन्द्रशेखरगिरौ—चन्द्रशेखरस्य = चन्द्रचूडस्य गिरौ = पर्वते, कैलासे इत्यर्थः, कलशप्रतिष्ठाम्—कलशस्य = मन्दिरशृङ्गघटस्य प्रतिष्ठाम् = शोभाम्, दधुः = धारयन्ति स्म। रावणस्य बाहवः वीरलक्ष्म्याः मन्दिरम् अतः तदुत्तोलितः कैलाशः सुवर्णकलशः इव शुशुभे इति भावः। अत्रोपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५० ॥

बाण इति। अलम् = व्यर्थम्, अलीकवाग्विग्रहेण—अलीकः = मिथ्या वाचाम् = वाणीनाम् विग्रहः = कलहः तेन। तारतम्यम् = न्यूनाधिकभावम्, निरूपयिष्यति = कथयिष्यति। तदिदानीमावयोः का गरीयसीति धनुरेव निर्णेष्यतीति भावः ॥

मञ्जीरक इति। नरवीरैकसमर्पणीयसीतापरिणयमनोरथेन—नरवीरेषु = मनुष्यशूरेषु समर्पणीया = दातुं योग्या या सीता = जानकी तस्याः परिणये = विवाहे यः मनोरथः = अभिलाषा तेन, चेतःपदवी—चेतसः = चित्तस्य पदवी = पद्धतिः चित्तमित्यर्थः, विफलम् = व्यर्थम् यथा स्यात्तथा, आयास्यते = पीड्यते ॥

अन्वयः—मम, धीः, त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिता, (अस्ति); जनकपुत्रीपाणिपद्मग्रहाय, न, (उत्कण्ठिता, अस्ति); अपि तु, बहुलबाहुव्यूहनिर्व्यूहमालाबलपरिमलहेलाताण्डवाडम्बराय, (उत्कण्ठिता, अस्ति) ॥ ५१ ॥

सीता नरवीरैकसमर्पणीया स्यान्न मे कापि हानिरित्याशयेनाह बाणः—त्रिपुरमथनेति। मम = बाणस्य धीः = बुद्धिः, त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिता—त्रिपुरमथनस्य = शिवस्य चापः = धनुः तस्य आरोपणे = अधिज्यकरणे उत्कण्ठिता = अभिलाषावती, अस्तीति शेषः। जनकपुत्रीपाणिपद्मग्रहाय—जनकपुत्र्याः = सीतायाः पाणिपद्मग्रहाय = हस्तकमलग्रहणाय, न = नहि, उत्कण्ठिता अस्तीति शेषः; अपितु = किन्तु, बहुलेत्यादिः—बहुलाः = बहवः ये बाहवः = भुजाः तेषां यो व्यूहः = समूहः, तस्य निर्व्यूढा = सुष्ठुप्रकारेण प्रसारिता या माला = श्रेणी तस्याः बलपरिमलः = शौर्यसुगन्धः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

बाण—व्यर्थ जबानी झगड़े को बन्द करो। अब यह धनुष (ही) हम दोनों की छोटाई-बड़ाई के भेद को स्पष्ट करेगा।

मञ्जीरक—हे बाण और रावण! मनुष्यों में (किसी) अद्वितीय योद्धा को देने के योग्य सीता के साथ विवाह करने की इच्छा से (अपने) चित्त-मार्ग (अर्थात् चित्त) को यह व्यर्थ में क्यों परेशान कर रहे हो?

बाण—इतने से क्या?

मेरी बुद्धि शङ्कर के धनुष को चढ़ाने के लिए उत्कण्ठित है, सीता के हस्त-कमल को ग्रहण करने के लिए नहीं (उत्कण्ठित है)। किन्तु बहुत से बाहुओं के समूह की भली-भाँति फैलाई गई पंक्ति के बल रूपी सुगन्धि के विलास से भयङ्कर नृत्य का विस्तार करने के लिए (उत्कण्ठित है) ॥ ५१ ॥

रावण—कैलासपर्वत की उखाड़ी गयी, चोटी के द्वारा पहले ही मेरे बाहुओं के समूह की परीक्षा कर ली गयी है। सम्प्रति सीता के स्तनकलशों (घट के समान विशाल स्तनों) के साथ क्रीडाकी उत्कण्ठा से शङ्कर के धनुष के चढ़ाने का व्रत (स्वीकार किया गया है) ॥ ५२ ॥

'बलपरिणतिरि' ति पाठान्तरे शक्तिनैपुण्यमित्यर्थः, परिमलोऽत्र यशो ज्ञेयः, तस्य हेल्या = क्रीडया, विलासेनेति यावत्, ताण्डवस्य = भयङ्करस्य नृत्यस्य आडम्बराय = आरम्भाय ('आडम्बरः समारम्भे गजगर्जिततूर्ययोः' इति विश्वः), उत्कण्ठिता अस्तीति शेषः। सीताविवाहे न मे काऽपि रुचिरतो न तदर्थं धनुरुत्तोलयितुमायातोऽपितु शिवधनुष उत्थापनेन स्वबाहून चरितार्थयितुमत्र प्राप्त इति बाणभावः। मालिनी वृत्तम्; तल्लक्षणं यथा—

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥' ५१ ॥

अन्वयः—हराचलस्य, उन्मीलितेन, शिखरेण, प्राक्, एव, मे, भुजवनस्य, परीक्षा, कृता। एषा, विदेहतनयाकुचकुम्भकेलिकौतूहलात्, गिरीशकार्मुककर्मदीक्षा, (स्वीकृता) ॥ ५२ ॥

स्वाभिलाषं प्रकटयन्नाह रावणः—उन्मीलितेनेति। हराचलस्य—हरस्य = भगवतः शिवस्य अचलः = पर्वतः, कैलास इत्यर्थः, तस्य, उन्मीलितेन = उत्पाटितेन, शिखरेण = शृङ्गेण, प्राक् = पूर्वम्, एव = हि, मे = मम, भुजवनस्य = बाहुसमूहस्य, परीक्षा=शक्तिपरीक्षणमित्यर्थः, कृता = विहिता। एषा = सम्प्रति विधीयमाना, विदेहतनयाकुचकुम्भकेलिकौतूहलात्—विदेहस्य = जनकस्य तनया = पुत्री, जानकीत्यर्थः, तस्याः कुचकुम्भौ=स्तनकलशौ ताभ्यां सह या केलिः = कामक्रीडा तस्यां कौतूहलात् = कौतुकात्, गिरीशकार्मुककर्मदीक्षा—गिरीशस्य = शिवस्य यत् कार्मुकम् = धनुः तस्य कर्मणि = उत्थापने आरोपणे च दीक्षा = व्रतम्, स्वीकृतेति शेषः। मम शिवधनुष आरोपणे प्रवृत्तिर्न शक्तिपरीक्षायै किन्तु सीतापरिणयायैवेति भावः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(नेपथ्ये)

असुरसुरनिशाचरोरगाणामपि नरकिन्नरसिद्धचारणानाम् ।
नमयति यदि कोऽपि चापमेतन्मम दुहितुः स करग्रहं तनोतु ॥ ५३ ॥

रावणः—

रे रे भुजाः कुरुत चन्द्रकलाकिरीट-
कोदण्डकर्षणयशोधवलां त्रिलोकीम् ।
अङ्गीकुरुध्वमचिराच्च विदेहपुत्री-
वक्षोजचन्दनरजःपरिधूसरत्वम् ॥ ५४ ॥

(धनुरालोक्य । स्वगतम्) अये, दुर्विगाहमिदम् । तदलमनेन । (प्रकाशम्) बाण, त्वमेव तावदग्रे धनुरारोपय । अस्माकमपि नूतनागतत्वेन मान्योऽसि ।

बाणः—तथास्तु । (इति परिक्रामति)

रावणः—(स्वगतम्) अरे हृदय, अलं कातरतया । अयं तावत्कतरः कुण्ठीकृत-दशकण्ठे शितिकण्ठकार्मुके ।

अन्वयः—असुरसुरनिशाचरोरगाणाम्, नरकिन्नरसिद्धचारणानाम् , अपि, (मध्ये), यदि, कोऽपि, एतत् , चापम् , नमयति, (तर्हि), सः, मम, दुहितुः, करग्रहम् , तनोतु ॥ ५३ ॥

नेपथ्ये जनकराजकृता घोषणा श्रूयते—असुरसुरेति । असुराः = दैत्याः सुराः = देवाः निशाचराः = राक्षसाः उरगाः = सर्पाश्च, उरगजातिविशेषाश्चेत्यर्थः, तेषाम्, नरकिन्नरसिद्धचारणानाम्—नराः = मानवाः किन्नराः = किम्पुरुषाः सिद्धाः = देवयोनिविशेषाः चारणाः = कुशीलवाः तेषाम् , अपीति भेदनिरासार्थम, मध्ये यदि कोऽपि = कश्चिदपि, एतत् = ममाधिकारे निक्षिप्तम् , चापम् = धनुः, नमयति = आरोपितं करोति, तर्हि सः = धनुषः आनमनकर्ता, मम = जनकस्य, दुहितुः=पुत्र्याः, सीतायाः इत्यर्थः, करग्रहम् = पाणिग्रहणम्, तनोतु = विस्तारयतु, करोत्वित्यर्थः । नरवीरेत्यादि-मञ्जीरकोक्तिं प्रतिषेधयन् जनकः कथयति यत्त्रिलोक्यां यः कोऽपि धनुरानमयति जाति-व्यक्तिविचारं विनैवाहं तस्मै जानकीं समर्पयिष्यामीति भावः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्ल-क्षणं यथा—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥' इति ॥५३॥

अन्वयः—रे रे भुजाः ! त्रिलोकीम् , चन्द्रकलाकिरीटकोदण्डकर्षणयशोधवलाम् , कुरुत; (तथा), अचिरात् , विदेहपुत्रीवक्षोजचन्दनरजःपरिधूसरत्वम् , अङ्गीकुरु-ध्वम् ॥ ५४ ॥

रे रे भुजा इति । रे रे भुजाः = हे हे मम बाहवः, त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी तां त्रिलोकीम् = त्रीन् लोकान् इत्यर्थः, चन्द्रकलाकिरीटकोदण्डकर्षणयशोधवलाम्—चन्द्रस्य= चन्द्रमसः कला = अंशः, लेखेति यावत्, किरीटे = मुकुटे ('मुकुटं किरीटम्' इत्यमरः) यस्य तस्य शिवस्येत्यर्थः यः कोदण्डः = धनुः तस्य कर्षणेन = आरोपणेन यत् यशः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
(पर्दे के पीछे)

दैत्य, देव, राक्षस, सर्प, मानव, किन्नर, सिद्ध और चारण के भी (मध्य) में यदि कोई भी इस धनुष को झुकाता है (तो) वह मेरी पुत्री (सीता) के पाणिग्रहण को कर ले ॥ ५३ ॥

रावण—रे रे मेरी भुजाओं ! तीनों लोकों को शंकरजी के धनुष को खींचने से प्राप्त यश से उज्ज्वल कर दो तथा शीघ्र ही सीता के स्तनों में (लगे) चन्दन की धूलि (पराग = पाउडर) के भूरेपन (सफेदी) को (भी) स्वीकर कर लो (अर्थात् धनुष के उठाने से एक साथ ही दो-दो लाभ प्राप्त कर लो—संसारव्यापी यश तथा सीता का सलोना आलिङ्गन) ॥ ५४ ॥

विशेष—साहित्य में यश का रङ्ग सफेद कहा गया है। यही कारण है कि यश से दिशाओं तथा त्रिलोकी आदि को सफेद करने की बात कही जाती है ॥ ५४ ॥

(धनुष को देखकर, अपने आप) अरे, इस (धनुष) को पार पाना कठिन है (अर्थात् इसे उठा पाना मुश्किल है)। तो इसे छूने की आवश्यकता नहीं है। (प्रकट रूप में) बाण, अच्छा पहले तुम्हीं धनुष को चढ़ाओ। बाद में आने के कारण (तुम) हम लोगों के भी माननीय हो।

बाण—ऐसा ही हो। (ऐसा कहकर घूमता है)

रावण—(अपने आप) अरे हृदय ! भय मत करो। दशकण्ठ (रावण) को (भी) निष्फल बना देनेवाले, शंकर के धनुष के विषय में यह (बाण) भी कौन है ? (अर्थात् जिस धनुष को रावण नहीं उठा सका उसको यह बाण भला क्या उठा सकेगा)।

कीर्तिः तेन धवलाम् = शुभ्राम्, साहित्ये यशसः शुभ्रत्वं निगदितमिति, कुरुत = सम्पादयत। तथा, अचिरात् = शीघ्रम्, विदेहपुत्रीवक्षोजचन्दनरजःपरिधूसरत्वम्—विदेहस्य = जनकस्य पुत्री = सुता तस्याः वक्षोजयोः = कुचयोः यत् चन्दनरजांसि = मल—यजधूल्यः तैः परिधूसरत्वम् = रजस्वलत्वम्, अङ्गीकुरुध्वम् = स्वीकुरुत। इत्थमप-स्यानमनेन त्रैलोक्यविदितं यशः त्रिलोकीललामभूता सीता चापि प्राप्य सुखमनुभवते-त्यभिप्रायः। अत्र पर्यायोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५४ ॥

धनुरिति। इदम् = धनुः, दुर्विगाहम् = आरोपयितुमशक्यम्, दुःसा-ध्यमित्यर्थः ॥

रावण इति। अलम् = व्यर्थम्, कातरतया = भीरुतया। अथ बाणो धनुरारोपयिष्यतीति चिन्ता न कर्तव्येति भावः। कतरः = किं कर्तुं समर्थः इत्यभिप्रायः। कुण्ठीकृतदशकण्ठे—कुण्ठीकृतः = निष्फलीकृतः दशकण्ठः = रावणो येन तस्मिन्, शितिकण्ठकार्मुके—शितिकण्ठस्य = नीलकण्ठस्य शिवस्येत्यर्थः कार्मुके = धनुषि ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अन्योऽपि कोऽपि यदि चापमिमं विकृष्य
सीताकरग्रहविधिं विदधीत वीरः ।
लङ्कां नयामि च गिरानुनयामि चैनां
द्रागानयामि च वशे जनकेन्द्रपुत्रीम् ॥ ५५ ॥

मञ्जीरकः—सखे पश्य—

बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानं
नेदं धनुश्चलति किञ्चिदपीन्दुमौलेः ।
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै-
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम् ॥ ५६ ॥

रावणः—(सविषादमात्मगतम्) कथमियं सीतानुनयप्रत्यूहपिशुनेव दुरुपश्रुतिः । (प्रकाशम्) अये बाण, अपि नाम ते पलालभारनिःसारो भुजभारः ।

बाणः—कथं भुजमण्डलमिदमालोकयन्नपि कटुभाषितां न मुञ्चसि ।

रावणः—तत्किमनेन करिष्यसि ।

बाणः—यत्कृतं हैहयराजेन ।

अन्वयः—यदि, अन्यः, अपि, कोऽपि, वीरः, इमम्, चापम्, विकृष्य, सीताकरग्रहविधिम्, विदधीत; (तदाऽपि), एनाम्, जनकेन्द्रपुत्रीम्, लंकाम्, नयामि, गिरा, अनुनयामि, च, द्राक्, वशे, आनयामि ॥ ५५ ॥

अन्योऽपीति । यदि = चेत्, अन्यः = अपरः, अपि, कोऽपि = कश्चिदपि, वीरः = शूरः, इमम् = सम्मुखस्थम्, चापम् = धनुः, विकृष्य = आकृष्य, सीताकरग्रहविधिम्—सीतायाः = जानक्याः करग्रहस्य = पाणिग्रहणस्य विधिम् = संस्कारमित्यर्थः, विदधीत = कुर्यात्, तदाऽपि, एनाम् = प्रासादोपरिवर्तमानाम्, जनकेन्द्रपुत्रीम्—जनकेन्द्रस्य = जनकराजस्य पुत्रीम् = सुताम्, जानकीमित्यर्थः, लङ्काम् = स्वनगरीम्, नयामि = प्रापयामि, प्रापयिष्यामीत्यर्थः, गिरा = वाण्या, मधुरया वाचा, अनुनयामि = प्रसादयामि, च = तथा, द्राक्=झटिति, वशे = आधीनतायाम्, आनयामि = करोमि, करिष्यामि, एवं सर्वत्र वर्तमानसामीप्ये लट् बोध्यम् । यदि मया धनुर्न चलतीति न काऽपि क्षतिः । अन्येनाऽपि धनुरुत्तोल्य विवाहितायां सीतायामपि तां नेष्यामि लंकामिति भावः । एतेन भावि जानकीहरणं निर्दिष्टम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—बाणस्य, बाहुशिखरैः, परिपीड्यमानम्, इन्दुमौलेः, इदम्, धनुः, कामातुरस्य, वचसाम्, संविधानैः, अभ्यर्थितम्, सतीनाम्, प्रकृतिचारु, मनः, इव, किञ्चित्, अपि, न, चलति ॥ ५६ ॥

बाणस्येति । बाणस्य = बलिपुत्रस्य बाणासुरस्य, बाहुशिखरैः—बाहवः = भुजाः, शिखराणीव = शृङ्गाणीव तैः, पर्वतशृङ्गविशालैरित्यर्थः, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इति समासः, परिपीड्यमानम् = मुष्टिभिराकृष्यमाणम्, इन्दुमौलेः—इन्दुः = चन्द्रः, मौलौ = मस्तके यस्य तस्य, शिवस्येत्यर्थः, इदम् = एतत्, धनुः = चापम्;

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यदि दूसरा भी कोई वीर इस धनुष को खींच कर सीता के पाणिग्रहण—संस्कार को करता है, (तो भी) इस जनकपुत्री (सीता) को लङ्का ले चलूँगा, वचनों से मनाऊँगा तथा शीघ्र ही (अपने) वश में ले आऊँगा ॥ ५५ ॥

मञ्जीरक—मित्र देखो देखो,

बाणासुर के पर्वत की चोटी के सदृश (विशाल) बाहुओं से खींचा जाता हुआ शङ्कर का यह धनुष; कामातुर (स्त्री के साथ सम्भोग करने की इच्छा से पीडित) व्यक्ति के वचनों की रचनाओं से (अर्थात् रच-रच कर कहे गये वचनों से) (सम्भोग के लिए) प्रार्थित पतिव्रता स्त्रियों के स्वभाव-सुन्दर चित्त की भाँति; थोड़ा भी नहीं हिल रहा है ॥ ५६ ॥

रावण—(खेदपूर्वक अपने-आप)

सीता को मना लेने (अर्थात् अनुनय के द्वारा अपनी बात से सहमत करा लेने) में विघ्न की सूचना देती हुई-सी यह बुरी बात सुनी गयी है। (प्रकट रूप में) अरे बाण ! तुम्हारी भुजाओं का समूह क्या पुआल के भार (गट्ठर) की भाँति तत्त्वहीन (बलरहित) है ?

बाण—क्या इस भुजमण्डल को देखते हुए भी (तुम) कटु बोलना नहीं बन्द कर रहे हो !

रावण—(यदि नहीं छोड़ूँगा) तो इससे क्या करोगे ?

बाण—जो हैहयराज ने (तुम्हारे साथ) किया था।

विशेष—हैहयराज अर्जुन कार्तवीर्य को कहते हैं। यह कृतवीर्य का पुत्र था। इसका असली नाम अर्जुन था। इसकी एक हजार भुजाएँ थीं। इसे परशुराम ने मार गिराया था। इसने रावण को जबर्दस्ती पकड़ कर जेल में बन्द कर रखा था।

कामातुरस्य = कामपीडितस्य, स्त्री-सम्भोगेच्छाविह्वलस्येत्यर्थः, वचसाम् = वाणीनाम्, संविधानैः = रचनाभिः, चाटुवचनैरित्यभिप्रायः, अभ्यर्थितम् = प्रार्थितम्, सम्भोगायेति-शेषः, सतीनाम् = पतिव्रतास्त्रीणाम्, प्रकृतिचारु—प्रकृत्या = स्वभावेन, चारु = मनोहरम्, सन्मार्गस्थितमित्यर्थः, मनः = चेतः, इव = यथा, किञ्चिदपि = स्वल्पमपि, न = नहि, चलति = विचलति, स्वस्थानादिति शेषः। कामिना चाटुवचनैः सतीनां मनांसीव बाणबाहुभिः शिवधनुस्तिलमपि न विचलतीति भावः। अत्र दृष्टान्तालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५६ ॥

रावण इति। सीतानुनयप्रत्यूहपिशुना—सीतायाः = जानक्याः, अनुनये = चाटूक्तिभिः स्ववशीकरणे प्रत्यूहः = विघ्नः ('विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' इत्यमरः), तस्य पिशुना = सूचिका ('पिशुनौ खलसूचकौ' इत्यमरः), दुरुपश्रुतिः = अप्रियं श्रवणमित्यर्थः। सद्वचनं कामिनः श्रवणयोरप्रियमेव भवतीति बोध्यम्, पलालभारनिःसारः—पलालानाम् = अन्नरहितशुष्कधान्यतृणानाम्, भारः = समूहः, तद्वत् निःसारः = तत्त्वविहीनः, बलविरहितः इति यावत्। अनेन रावणस्य भावी सीताऽनुनयः निष्फलः भविष्यतीति सूचितम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—इदमसौ ते भुजवनं निजप्रतापानले निर्दहामि ।

बाणः—इदमहं त्वत्प्रतापानलमनेकरुचिरचापचुम्बितनिजबाहुबलाहकनिवहनिर्मुक्त-धारासारैः शमयामि ।

रावणः—

रे बाण मुञ्च मयि बाणशतानि पञ्च
नन्वस्ति मे करतले करवालवल्ली ।
रे पञ्चबाण विवृणु त्वमपि स्वबाणा-
नन्वेति सा युवतिलोकललामवल्ली ॥ ५७ ॥

नूपुरकः—अये बाणरावणौ, स्वयमेवात्मानं वर्णयन्तौ न लज्जेथ ।
[अये बाणलावणा, सअं जेव्व अप्पाणं वण्णअन्ता ण लज्जेथ ।]

रावणः—धिङ् मूर्ख, कथमात्मैकश्लाघ्यो दशकण्ठः । ननु रे,

मन्दोदरीकुटिलकोमलकेशभार-
मन्दारदाममकरन्दरसं पिबन्तः ।
वीणानिनादमधुरध्वनिमुद्गिरन्तो
मद्विक्रमं मधुकरा अपि कीर्तयन्ति ॥ ५८ ॥

रावण इति—इदम् = सम्प्रत्येव । निजप्रतापानले—निजः = स्वकीयः, यः प्रतापः = तेजः, स एव अनलः = वह्निः तस्मिन् । शत्रुनिर्दाहकत्वात्प्रतापेऽनलारोपः । निर्दहामि = भस्मीकरोमि ॥

बाण इति । त्वत्प्रतापानलम् = तव पराक्रमाऽग्निम्, अनेकरुचिरेत्यादिः--अनेके = बहवः, रुचिराः = शोभनाः, ये चापाः = धनूंषि (पक्षान्तरे—इन्द्रधनूंषि), तैः चुम्बिताः = युक्ताः, ये निजाः = स्वकीयाः, बाहवः = भुजाः, ते एव बलाहकाः = पयोदाः तेषां निवहेन = समूहेन, निर्मुक्ताः = त्यक्ताः, ये नाराचाः = बाणाः, सर्वलोहमयाः शर-विशेषाः इत्यर्थः, एव धाराः = जलप्रपाताः, तेषाम् आसारैः = निरन्तरवर्षणैः ॥

अन्वयः—रे बाण ! मयि, पञ्च, बाणशतानि, मुञ्च; ननु, मे, करतले, करवालवल्ली, अस्ति । रे पञ्चबाण ! त्वम्, अपि, स्वबाणान्, विवृणु; ननु, युवतिलोकललामवल्ली, सा, एति ॥ ५७ ॥

रे बाणेति । रे बाण = रे बलितनय, मयि = रावणे इत्यर्थः, पञ्च = पञ्च-संख्याकानि, बाणशतानि--बाणानाम् = शराणाम्, शतानि = बहूनीत्यर्थः, मुञ्च = त्यज । किं करिष्यति तर्हीत्याह—नन्विति निश्चये; मे = मम, करतले = हस्ते, करवाल-वल्ली = खड्गलता, सुतीक्ष्णोऽसिरित्यर्थः, अस्ति । येन तव बाणान् खण्डयिष्यामीत्यर्थः । रे पञ्चबाण = हे कामदेव ('कामः पञ्चशरः स्मरः' इत्यमरः), त्वमपि, स्वबाणान् = स्वशरान्, विवृणु = विस्तारय, प्रक्षेपयेति यावत्, ननु, युवतिलोकललामवल्ली—युवतिलोके = तरुणीसमूहे, ललामवल्ली = आभूषणव्रततिस्वरूपा, सा = जानकीत्यर्थः एति = मामागच्छति । अतः तव सन्तापोऽपि मां न भृशं सन्तापयिष्यतीति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावण—अभी मैं तुम्हारे भुजवन को अपने प्रतापरूप अग्नि में जला डालता हूँ (अर्थात् अभी तुम्हारे हाथों को मैं काट डालता हूँ)।

बाण—अभी मैं तुम्हारे प्रतापरूप अग्नि को अनेक सुन्दर धनुषों से युक्त अपने बाहुरूपी बादलों के समूह के द्वारा छोड़े गये बाणरूपी जलधार की लगातार वृष्टि से शान्त कर देता हूँ। (अर्थात् जैसे इन्द्रधनुषों से युक्त बादल धारासार वर्षा करके जङ्गल में लगी आग को शान्त कर देता है, उसी तरह मैं अपने धनुषों से छोड़े गये बाणों की वृष्टि से तुम्हारे प्रताप को ही शान्त कर देता हूँ)।

रावण—रे बाणासुर! मेरे ऊपर पाँच सौ बाणों को छोड़ो; मेरे हाथ में तलवार-लता (अर्थात् तीक्ष्ण तलवार) है (जिससे मैं उन्हें काट कर गिरा दूँगा)। हे कामदेव! तुम भी अपने बाणों को (मेरे ऊपर) छोड़ो; युवतियों के समूह की आभूषण-लतारूप (अर्थात् शिरमौर) वह (सीता मेरे पास) आ रही है (जिससे मिलकर तुम्हारे सन्ताप को शान्त कर दूँगा) ॥ ५७ ॥

नूपुरक—अरे बाण और रावण! अपनी प्रशंसा अपने-आप करते हुए लज्जित नहीं हो रहे हो?

रावण—धिक् मूर्ख! क्या रावण एकमात्र अपने-आप ही प्रशंसा करनेवाला है? (उसकी प्रशंसा और लोग नहीं करते)? देख रे—

मन्दोदरी के घुँघराले और कोमल केशसमूह (जूड़े) में मन्दार के पुष्पों की माला के रस को पीते हुए, वीणा की झंकृति के समान मधुर आवाज का करते हुए भौंरे भी हमारे पराक्रम का वर्णन करते हैं ॥ ५८ ॥

विशेष—मन्दार—इन्द्र के 'नन्दन' नामक उद्यान में स्थित अति प्रसिद्ध पाँच वृक्षों में 'मन्दार' एक है। देवता लोग 'नन्दन' के भीतर किसी को जाने नहीं देते। किन्तु रावण बलपूर्वक वहाँ जाकर अति सुगन्धित 'मन्दार' के फूलों को लाता था। गुन-गुनाते हुए भौंरे मानो उसके इसी पराक्रम का वर्णन करते थे ॥ ५८ ॥

रावण इति। आत्मैकश्लाघ्यः—आत्मना = स्वेनैव, एकः = केवलः, श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः? किमन्ये न मां प्रशंसन्ते इति प्रश्नाशयः॥

अन्वयः—मन्दोदरीकुटिलकोमलकेशभारमन्दारदाममकरन्दरसम्, पिबन्तः, वीणा-निनादमधुरध्वनिम्, उद्गिरन्तः, मधुकराः, अपि, मद्विक्रमम्, कीर्तयन्ति ॥ ५८ ॥

मन्दोदरीति। मन्दोदरी—मन्दम् = क्षीणम्, उदरम् = कटिभागः इत्यर्थः यस्याः सा, मन्दोदरी = रावणपत्नी, तस्याः कुटिले = वक्रे, कुञ्चिते इत्यर्थः तथा कोमले = मृदुले, केशभारे = केशपाशे, मन्दारस्य = नन्दनवनस्य, देवतरुषु एकस्य दाम्नः = मालायाः मकरन्दरसम् = पुष्परसम्, पिबन्तः = आचामन्तः, वीणानिनादमधुरध्वनिम्—वीणायाः = वल्लक्याः ('वीणा तु वल्लकी' इत्यमरः), यः मधुरः = श्रवणप्रियः ध्वनिः तम्, उद्गिरन्तः = कुर्वन्तः, मधुकराः = भ्रमराः, अपि, मद्विक्रमम् = मदीयं पराक्रमम्, कीर्तयन्ति = गायन्ति, देवमनुष्यादीनां का कथेति ध्वनिः॥ वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५८ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

बाणः—कथमयं सुरतरुकुसुमदामकमनीयकामिनीजनोपभोगसौभाग्यं विडम्बयति। तदिदानीम्—

अमी मे दोर्दण्डास्तुलितहरशैलैकशिखरा-
स्तुरासाहं साहंकृतिकरतलन्यस्तकुलिशम्।
पराभूय स्वैरं त्रिदशवनमुन्मूल्य सकलं
मम क्रीडोद्यानं सुरतरुमनोज्ञं विदधतु॥ ५९।।

(इति निष्क्रान्तः)

रावणः—कथमयं निर्गतः। अहं तु

अनाहृत्य हठात्सीतां नान्यतो गन्तुमुत्सहे।
न शृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनुजीविनः॥ ६०॥

मञ्जीरकः—वत्से जानकि, अधुना दैवैकरक्षणीयासि।

रावणः—(कर्णं दत्त्वा) अये, कस्यायमाक्रन्दः श्रूयते नभसि। (निपुणं निरूप्य) नूनमनेन कस्यचिन्नाराचपीडितेन कठोरमाक्रन्दता गगनपथचारिणा मारीचेन भवितव्यम्। तदेनमाश्वासयामि तावत्।

(इति निष्क्रान्तः।)

बाण इति। सुरतरोः = मन्दारवृक्षस्य, कुसुमानाम् = पुष्पाणाम्, यत् दाम = माला, तेन कमनीयः = दर्शनीयः, मनोज्ञः इत्यर्थः, यः कामिनीजनः = सुन्दरीजनः, तस्य उपभोगस्य = सम्भोगस्य, रमणस्येति यावत्, सौभाग्यम् = सुभगत्वम्, विडम्बयति = वर्णयतीति भावः॥

अन्वयः—तुलितहरशैलैकशिखराः, अमी, मे, दोर्दण्डाः, साऽहङ्कृतिकरतलन्यस्तकुलिशम्, तुरासाहम्, पराभूय, सकलम्, त्रिदशवनम्, स्वैरम्, उन्मूल्य, मम, क्रीडोद्यानम्, सुरतरुमनोज्ञम्, विदधतु॥ ५९॥

अमी म इति। तुलितहरशैलैकशिखराः—तुलितम् = उपमितम्, हरशैलस्य = कैलासस्य, एकम् = प्रधानम्, शिखरम् = शृङ्गम् यैस्ते, अतिपीवराः इत्यर्थः, अमी = एते, मे = मम, बाणस्येत्यर्थः, दोर्दण्डाः = भुजदण्डाः, साऽहङ्कृतिकरतलन्यस्तकुलिशम्—अहङ्कृत्या = अहङ्कारेण, मदीयमस्त्रमद्वितीयममोघञ्चेति गर्वेणेत्यर्थः, सहितं यथास्यात्तथा करतले = हस्ते, न्यस्तम् = गृहीतम्, कुलिशम् = वज्रम् ('वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः' इत्यमरः) येन तम्, गृहीतास्त्रं योद्धुमुद्यतमिति भावः, तुरासाहम् = इन्द्रम् ('इन्द्रो मरुत्वान्·······तुराषाण्मेघवाहनः' इत्यमरः), पराभूय = तिरस्कृत्य, विजित्येति यावत्, सकलम् = समग्रम्, त्रिदशवनम्—त्रिदशानाम् = देवानाम्, वनम् = काननम्, नन्दनकाननमित्यर्थः, स्वैरम् = स्वच्छन्दम् ('मन्दस्वच्छन्दयोः स्वैरम्' इत्यमरः), यथा तथा, उन्मूल्य = उत्पाट्य, मम = बाणस्य, क्रीडोद्यानम्—क्रीडायाः = केल्याः, उद्यानम् = उपवनम्, सुरतरुमनोज्ञम्—सुरतरुणा = मन्दारवृक्षेण, मनोज्ञम् = मनोहरम्, विदधतु = कुर्वन्तु। बाणस्य निर्गमनार्थं कविना चातुर्येणेद-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

बाण—क्या यह मन्दार-वृक्ष के फूलों की माला से (सजी हुई) सुन्दरी-जनों के उपभोग (रमण) के (अपने) सौभाग्य का वर्णन कर रहा है। तो अभी—

कैलासपर्वत की एक चोटी के समान (मोटी) ये मेरी विशाल भुजाएँ अहङ्कारपूर्वक हाथ में वज्र को धारण करनेवाले इन्द्र को पराजित कर सम्पूर्ण देववन को मनमानी उखाड़ कर मेरे क्रीड़ा-उपवन को मन्दारवृक्ष से सुशोभित करें (अर्थात् मन्दार-वृक्ष को उखाड़ कर हमारे बगीचे में लगावें)॥ ५९॥

(ऐसा कहकर निकल गया)

रावण—क्या यह निकल गया ! मैं तो—

(अपने) अनुचर के क्रूर (दीन) रोने की आवाज (यदि) नहीं सुनूँगा तो सीता को जबर्दस्ती लिए बिना (यहाँ से) अन्यत्र जाने की इच्छा नहीं करूँगा॥ ६०॥

मञ्जीरक—बेटी जानकी! अब तुम एकमात्र भाग्य के ही द्वारा बचाई जा सकती हो (अर्थात् भाग्य को छोड़ कर इस रावण के हाथ से तुम्हें कोई नहीं बचा सकता)।

रावण—(कान लगाकर) अरे! आकाश में यह किसका रुदन सुनाई पड़ रहा है? (सावधानी के साथ विचार कर) निश्चय ही इसे किसी के बाणों से पीड़ित (अतः) करुण रुदन करनेवाले, आकाश मार्ग से जाते हुए मारीच को होना चाहिए (अर्थात् निश्चय ही यह मारीच होगा जो किसी के बाणों से घायल होकर रोता हुआ आकाश से जा रहा है)। तो सर्वप्रथम इसको ढाढ़स दिलाऊँ।

(ऐसा कहकर निकल गया)

मुपन्यस्तम्। रावणेन यत् कृतं ततोऽधिकं करिष्यामीति बाणगर्वोक्त्यभिप्रायः। अत्रोपमालङ्कारः। शिखरिणीवृत्तम्; तल्लक्षणं यथा—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागाः शिखरिणी॥' ५९॥

अन्वयः—अनुजीविनः, क्रूरम्, आक्रन्दम्, न, शृणोमि, यदि; सीताम्, हठात्, अनाहृत्य, अन्यतः, गन्तुम्, न, उत्सहे॥ ६०॥

अनाहृत्येति। अनुजीविनः = अनुचरस्य, क्रूरम् = कठोरम्, करुणमित्यर्थः, आक्रन्दनम् = रुदनध्वनिम्, न=नहि, शृणोमि = आकर्णयामि, यदि = चेत्, तदा सीताम् = जनकपुत्रीम्, हठात् = बलात्, अनाहृत्य = अगृहीत्वा, अन्यतः = अन्यत्र, गन्तुम् = प्रयातुम्, न = नहि, उत्सहे = अभिलषामि, अभिलाषां करिष्यामीत्यर्थः, वर्तमानसामीप्ये लट् बोध्यम्। यदि नागच्छेद् दुर्निवारं कारणं तदा सीतामगृहीत्वा नान्यत्र गमिष्यामीति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ ६०॥

मञ्जीरक इति। अधुना = सम्प्रति, दैवैकरक्षणीया = केवलं भाग्येनैव रक्ष्या। भाग्यं विना त्वां नान्यो रावणहस्तात्त्रातुं समर्थः इति भावः॥

रावण इति। आक्रन्दः = क्रन्दनध्वनिः, नभसि = आकाशे। निरूप्य =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नूपुरकः—वयस्य, दिष्ट्या व्याघ्रस्येव मुखात्कुरङ्गीवास्य हस्तादुर्वरिता जानकी।

[वअस्स, दिट्ठिआ वग्घस्स विअ मुहादो कुरङ्गी विअ इमस्स हत्थादो उव्वरिदा जाणई।]

मञ्जीरकः—सखे, एवमेतत्। तदेहि। वृत्तान्तमिदं जनकराजस्य निवेदयावः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

। इति प्रथमोऽङ्कः।

विचार्य। नाराचपीडितेन—नाराचेन = शरेण, पीडितः = व्यथितः तेन, कठोरम् = करुणं यथा स्यात्तथा, आक्रन्दता = रुदता, गगनपथचारिणा—गगनम् = आकाशः एव पन्थाः गगनपथः, समासान्तष्टच्, तेन चारिणा = गच्छता, भवितव्यम् = भाव्यम् ॥

मञ्जीरक इति। वृत्तान्तम् = घटनाम्, समाचारमित्यर्थः। जनकराजस्य = मिथिलाधिपतेः ॥

इति निष्क्रान्ताः सर्वे। पात्राणां रङ्गमञ्चात् बहिर्गमनमङ्कसमाप्तिसूचकमिति ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां प्रसन्नराघवव्याख्यायां रमाख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नूपुरक—मित्र ! भाग्य से, बाघ के मुँह से हिरन की तरह, इसके हाथ से जानकी बच गई।

मञ्जीरक--मित्र ! यह ठीक है। अतः आओ। इस समाचार को महाराज जनक से कहा जाय।

(इस प्रकार सभी निकल जाते हैं)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

———

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति तापसः)

तापसः—(समन्तादवलोक्य ।) अहो, अयमनेकशुकशावकानुगमनिकामहरिल्लता-वितानमनोरमारामरमणीय संनिवेशप्रदेशः । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथमयं भिक्षुः । भिक्षो, इत इतः ।

(प्रविश्य)

भिक्षुः—अपि कुशलं तापसस्य ।

तापसः—क्षेममस्माकम् । युष्माकं च कुशलम् ।

भिक्षुः—इदानीं विशेषतो भवद्दर्शनात् ।

तापसः—(पुनः सप्रणयम्) ननु कीटवन्महीपर्यटनेन श्रान्तो भवान् । तदिह मिथिलायां पञ्चरात्रनिवासेन श्रमोपनेतव्यः । प्रसङ्गादयं च राजा जनको द्रष्टव्यः ।

भिक्षुः—किमस्माकं निरीहाणां राजदर्शनेन ।

तापसः—नूनमयं ब्रह्मविद्याविनोदकुशलः खलु सीरध्वजः । तेन द्रष्टुमुचित एव भवादृशाम् ।

भिक्षुः—अये, राजापि ब्रह्मविद्यावानिति सत्यमेतत् ।

तापसः—भिक्षो, सत्यमेतत् । देवस्य दश—(इत्यर्धोक्ते) देवस्य शितिकण्ठस्याज्ञा ।

भिक्षुः—(विहस्य) अलमपलापेन । विदितं मया । राक्षसः खलु भवान् ।

तत इति । तापसः = तपस्वी ('तपस्वी तापसः' इत्यमरः) । अहो इति हर्षद्योतकमव्ययपदम् । अनेकशुकशावकेत्यादिः—अनेके = बहवः शुकानाम् = कीराणाम् ये शावकाः = शिशवः तेषाम् अनुगमेन = आगमनेन, स्थित्येत्यर्थः, निकामम् = अत्यर्थम् यथा स्यात्तथा हरितः = हरिद्वर्णाः याः लताः = व्रततयः ('वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः) तासां वितानैः = विस्तारैः, वस्तुतः उल्लोचैः, "चँदवा" इति ख्यातैः ('वितानो यज्ञ उल्लोचे विस्तारे पुन्नपुंसकम्' इति मेदिनी) मनोरमः = मनोज्ञः यः आरामः = उद्यानम् तेन रमणीयः = मनोहारी सन्निवेशः = अवस्थानम् यस्य तथाभूतः, तादृशः प्रदेशः = भूभागः ॥

तापस इति । कीटवत् = यथा कीटाः निरन्तरं महीं पर्यटन्ति तथैव भ्रमणेनेत्यर्थः, श्रान्तः = क्लान्तः ॥

भिक्षु इति । निरीहाणाम्—निर्गता = दूरीभूता ईहा = आकाङ्क्षा येभ्यस्तेषाम् ('इच्छा काङ्क्षा स्पृहेहा तृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः' इत्यमरः), राजदर्शनेन—राज्ञाम् = भूपालानाम् , धनवतामिति भावः, दर्शनेन = अवलोकनेन, साक्षात्कारेणेति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

द्वितीय अङ्क

(तदनन्तर तपस्वी प्रवेश करता है)

तापस—(चारों ओर देखकर) अहा ! अनेक मुग्गों के बच्चों के बैठने से अत्यधिक हरी लताओं के फैलाव से मनोहर उद्यान के कारण सुन्दर स्थितिवाला यह स्थान है। (पर्दे की ओर देखकर) क्या यह भिक्षु है ? भिक्षु जी, इधर, इधर (आइये)।

(प्रवेश करके)

भिक्षु—तापस का कुशल है ? (अर्थात् आप सकुशल हैं ?)।

तापस—हमारा कुशल है, आप का तो कुशल है ?

भिक्षु—इस समय आपके दर्शन से विशेष रूप से (कुशल है)।

तापस—(फिर प्रेमपूर्वक) अरे ! कीड़े के समान (निरन्तर) पृथिवी पर घूमते रहने से आप थक गये हैं। अतः यहाँ मिथिला में पाँच रात विश्राम करके (आपको अपनी) थकान मिटानी चाहिए। और यथावसर यह राजा जनक भी देखने (मिलने) के योग्य हैं (अर्थात् जनक से भी मिलना चाहिए)।

भिक्षु—हमारे जैसे निःस्पृह लोगों के लिए राजा के दर्शन से क्या (लाभ) ?

तापस—निश्चय ही यह महाराज सीरध्वज वेदान्त-विद्या से मनोरञ्जन करने में निपुण हैं (अर्थात् वेदान्तविषयक बात करने में पटु हैं)। अतः आप जैसे व्यक्तियों के लिए देखने (मिलने) के योग्य हैं।

भिक्षु—अरे ! राजा भी वेदान्तविद्यावाले हैं, क्या यह सच है ?

तापस—भिक्षो ! यह सच है। महाराज (देव) दश (ऐसा आधा ही कहने पर) भगवान् (देव) शङ्कर की आज्ञा है।

भिक्षु—(हँसकर) छिपाने की आवश्यकता नहीं है। मेरे द्वारा जान लिया गया। निश्चय ही आप राक्षस हैं।

यावत्, किम् = किं प्रयोजनम् ? न किमपीति प्रश्नाशयः। धनेच्छया जनाः धनवतां दर्शनं कुर्वन्ति। अहन्तु निरभिलाषः। अतो न राजदर्शनेच्छेति भावः ॥

तापस इति। ब्रह्मविद्याविनोदकुशलः—ब्रह्मप्रतिपादिका विद्या ब्रह्मविद्या = वेदान्तविद्या तया विनोदः = मनोरञ्जनम् तस्मिन् कुशलः = प्रवीणः, सर्वदब्रह्मानुसन्धानपरः इति यावत्। सीरध्वजः = जनकः। भवादृशाम् = ब्रह्मविद्यानुसन्धानपराणामिति यावत् ॥

भिक्षु इति। ब्रह्मविद्यावान् = वेदान्तविद्यानिपुणः इत्यर्थः। विलासितायाः साधनस्यैश्वर्यस्य ब्रह्मविद्यायाश्चैकत्रासम्भवादिति पृच्छतीति शेयम् ॥

तापस इति। सत्यम् = यथार्थम्, एतत् = त्वदुक्तं वचनम्। देवस्य =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तापसः—तत्कथय विश्रब्धं को भवानिति ।

भिक्षुः—अहमपि भवादृश एव कोऽपि राक्षसः ।

तापसः—तदाकर्ण्यताम् । अहं हि सकलमन्त्रिमुकुटमाल्येन माल्यवता प्रहितस्ताटका-वनम् । आकर्णितं हि तेन यत्किल कोऽपि कौशिको नाम मुनी राजानमयोध्यापतिमेत्य स्वमखरक्षणाय तस्य रामनामानं तनयं सानुजं याचितवान् । तेन चावश्यं माननीयो मुनिरिति निजनयनाभ्यामपि प्रियतमौ निजतनयौ तस्य समर्पितौ ।

भिक्षुः—ततस्ततः ।

तापसः—ततस्तेन मुनिना पारितोषिकं ताटङ्कयुगमर्पितं तस्य राज्ञः । उक्तं च—'राजन्, दिव्यमिदं ताटङ्कयुगम् ।

तदिदं वीरसूकर्णनिवेशोचितमित्यसौ ।
अन्तःस्फुरन्ती रत्नानां वर्णमालेव शंसति ॥ १ ॥

तेन च कौशल्याकर्णयोर्निवेशनीयम्' इति । अनुमतं च राज्ञा । राजकुमारद्वयानुगतेन निजाश्रमपदं प्रतिगतं च मुनिना ।

भिक्षुः—ततस्ततः ।

तापसः—तदिदमाकर्ण्य तत्ताटङ्कयुगं लङ्केश्वरजनन्या निकषाया एव कर्णोचितमिति विचिन्त्य तदाहरणाय पूर्वमेव ताटकां प्रति निजानुचर एकः प्रस्थापितः । अधुना च नूनं ताटकया तत्ताटङ्कयुगमाहृतमिति विचार्य तदानयनाय ताटकां प्रत्यहं प्रहितः ।

भिक्षुः—कथं पुनरिदं वृत्तान्तमाकर्णितं माल्यवता ।

महाराजस्य, दश = अभ्यस्तत्वाद्दशकण्ठेत्युच्चारणाय दशेति कथनं पूर्वम् । किन्त्वन्यस्य समक्षं ब्रवीमीति सति ज्ञाने तद्गोपनाय शितिकण्ठेत्यादिपूरणम् ॥

भिक्षु इति । अलम् = व्यर्थम्, अपलापेन = गोपनेन, स्वपरिचयगोपनेनेत्यर्थः । विदितम् = ज्ञातम् ॥

तापस इति । सकलमन्त्रिमुकुटमाल्येन—सकलाः = समग्राः ये मन्त्रिणः = सचिवाः तेषां मुकुटमाल्येन = किरीटमाल्येन, मूर्द्धन्येन, रावणस्य प्रधानमन्त्रिणेत्यर्थः, प्रहितः = प्रेषितः ॥

तापस इति । पारितोषिकम् = पुरस्कारस्वरूपम्, ताटङ्कयुगम्—विशिष्ट-कर्णाभूषणयुगलम् । दिव्यम् = स्वर्गीयम्, अनुपममिति यावत् ॥

अन्वयः—तत्, इदम्, वीरसूकर्णनिवेशोचितम्, इति, अन्तःस्फुरन्ती, असौ, रत्नानाम्, वर्णमाला, शंसति, इव ॥ १ ॥

तदिदमिति । तत् = जगद्विदितम्, इदम् = एतत्, मया त्वदर्थे दीयमान-मित्यर्थः, वीरसूकर्णनिवेशोचितम्—वीरम् = वीरपुत्रम् सूते = प्रसूते या सा वीरसूः = वीरपुत्रजननी तस्याः कर्णयोः = श्रोत्रयोः निवेशाय = धारणाय उचितम् = योग्यम्, वीरमात्रा धारणं कर्तुमुचितमित्यर्थः, अस्तीति शेषः । इति = इत्थम्, अन्तःस्फुरन्ती—अन्तः = अभ्यन्तरे, मणीनामभ्यन्तरे इत्यर्थः, स्फुरन्ती = द्योतमाना, असौ = इयम्, रत्नानाम् = मणीनाम्, वर्णमाला—वर्णानाम् = नीलपीतरक्तानाम्, पक्षे—अक्षराणाम्

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तापस—अच्छा, निःशङ्क होकर बतलाइए आप कौन हैं ?

भिक्षु—मैं भी आप जैसा ही कोई राक्षस हूँ।

तापस—तो सुनिए। सम्पूर्ण मन्त्रियों के मुकुट की माला के सदृश (अर्थात् मन्त्रियों के मूर्धन्य) माल्यवान् के द्वारा मैं ताटका-वन के लिए भेजा गया हूँ। क्योंकि उन्होंने (माल्यवान् ने) सुना है कि कौशिक नामक किसी मुनि ने अयोध्या के अधिपति राजा (दशरथ) के पास जाकर अपने यज्ञ की रक्षा के लिए छोटे भाई (लक्ष्मण) सहित उनके राम नामक लड़के को माँगा। मुनि (का आदेश) अवश्य मानने योग्य है—ऐसा सोचकर उन्होंने अपने नेत्रों से भी अधिक प्रिय अपने दोनों बच्चों को उन्हें समर्पित कर दिया।

भिक्षु—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

तापस—तदनन्तर उस मुनि के द्वारा उस राजा (दशरथ) को कान के आभूषण का जोड़ा पारितोषिक के रूप में प्रदान किया गया। और कहा गया—'राजन् ! कान के आभूषण का यह जोड़ा दिव्य है।

जगद्विख्यात यह (कान के आभूषण का जोड़ा) वीर-माता के कानों में पहनने के योग्य है—इस बात को भीतर चमकती हुई यह रत्नों की वर्णमाला (लाल-पीले आदि वर्णों की, अक्षरों की पङ्क्ति) सूचित-सी कर रही है (अर्थात् जैसे अक्षरों की पंक्ति किसी अभिप्राय को सूचित करती है, उसी प्रकार रत्नों के भीतर चमकते हुए रंगों की पंक्ति इस बात को सूचित कर रही है कि—यह वीर-माता को पहनने योग्य है) ॥ २ ॥

अतः (यह) कौशल्या के कानों में पहनने योग्य है।' राजा के द्वारा भी (यह) स्वीकार कर लिया गया। और दोनों राजकुमारों के साथ मुनि भी अपने आश्रम के लिए चले गये।

भिक्षु—उसके बाद, उसके बाद ?

तापस—तो इस बात को सुनकर 'वह कानों के आभूषण का जोड़ा रावण की माता निकषा के ही कानों के योग्य है'—ऐसा सोचकर उसको लेने के लिए पहले ही ताटका (नामक राक्षसी) के पास अपना एक सेवक भेज दिया गया था। और अब निश्चय ही ताटका के द्वारा वह कानों के आभूषण का जोड़ा (सेट) ले आया गया होगा—ऐसा सोचकर उसको लेने के लिए मैं ताटका के पास भेजा गया हूँ।

भिक्षु—अच्छा, इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को माल्यवान् ने कैसे सुन लिया ?

माला = पङ्क्तिः, शंसति इव = सूचयति, इव। यथा लिखिता अक्षरपंक्तिः कमपि भावविशेषं गमयति तथैव मणीनामन्तःस्फुरन्ती रङ्गमालापि मालेयं वीरमात्रा धारणीयेति सूचयतीव। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम्। वृत्तलक्षणं यथा—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ २ ॥

तापस इति। लङ्केश्वरजनन्या—लङ्केश्वरस्य = रावणस्य जनन्याः = मातुः।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तापसः—

वार्ता च कौतुकवती विमला च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरङ्गनाभेः ।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार-
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ ॥ २ ॥

विशेषतश्च बहुतरप्रणिधिप्रणिधायी माल्यवान् ।

भिक्षुः—तत्कथं मिथिलोपवने भवान् ।

तापसः—आकर्णितं हि मया मिथिलामागतो लङ्केश्वर इति । अतस्तद्विलोकनाय प्रथममिहागतः । अधुना च ताटकावनं यास्यामि । तत्कथय तावद्भवान्पुनः कतरः ।

भिक्षुः—अहमपि स एव यः प्रथमं ताटकां प्रति प्रहितः । मिथिलोपवनागमन-कारणं समानमावयोः ।

तापसः—(सहर्षम्) तत्कथय तावत् । तत्किं सताटङ्कमधुना ताटकावनम् ।

भिक्षुः—सताटकमिति तावत्पृच्छ ।

तापसः—क्व पुनः संप्रति ताटका ।

भिक्षुः—पुरीं प्रविष्टा ।

तापसः—तत्किं दशरथस्य ।

भिक्षुः—नहि नहि । अन्तकस्य ।

तापसः—केन पुनः प्रतिहारायितमन्तकपुरीप्रवेशे तस्याः ।

कर्णोचितम्—कर्णयोः = श्रोत्रयोः उचितम् = योग्यम् । तदाहरणाय—तस्य = ताटङ्कयुगस्य आहरणाय = आच्छिद्यानयनाय । प्रहितः = प्रेषितः ॥

अन्वयः—कौतुकवती, वार्ता; विमला, विद्या; च; कुरङ्गनाभेः, लोकोत्तरः, परिमलः, च; दुर्निवारम् , एतत् , त्रयम् , वारिणि, तैलस्य, बिन्दुः, इव, भूमौ, स्वयम् , एव, प्रसरति ॥ २ ॥

वार्ता चेति । कौतुकवती—कौतुकम् = उत्कण्ठा, उत्कण्ठोत्पादनसामर्थ्य-मित्यर्थः, अस्ति अस्यामिति कौतुकवती = उत्कण्ठोत्पादिकेत्यर्थः वार्ता = वृत्तान्तः ('वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः); विमला = निर्मला, यशस्करी चेत्यर्थः, विद्या = शास्त्रजन्यं ज्ञानम् , च = तथा, कुरङ्गनाभेः = मृगमदस्य कस्तूर्याः इत्यर्थः ('मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी' इत्यमरः), लोकोत्तरः—लोकेषु उत्तरः = श्रेष्ठः लोकोत्तरः = लोकातिशायी, परिमलः = सौरभः, दुर्निवारम् = सर्वासु दिक्षु प्रसरणान्नि-वारयितुमशक्यम् , एतत् = पूर्वनिर्दिष्टम् , त्रयम् = त्रिसंख्याकं वस्तु; वारिणि = जले, तैलस्य = सार्षपादिस्नेहस्य, बिन्दुः = पृषत् , इव = यथा; भूमौ = पृथिवीतले, स्वयमेव = साधनं विनैवेत्यर्थः, प्रसरति = विस्तारं प्राप्नोति । यथा जले पतितं तैलं कस्यचिदपि प्रयत्नं विनैव प्रसरति तथैव लोकश्रेष्ठमेतत्त्रयमपि स्वयमेव प्रसरति । अतः वार्ता चेयं कर्ण-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तापस—कौतूहल से भरा हुआ वृत्तान्त, निर्मल विद्या और कस्तूरी-मृग का अनुपम सुगन्ध—अनिवार्य (अर्थात् अवश्य आगे बढ़नेवाले) ये तीनों, जल में तेल की बूँद के समान, पृथिवी पर स्वयं ही फैल जाते हैं ॥ २ ॥

(इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि—) माल्यवान् विशेष रूप से अनेक गुप्तचरों को नियुक्त करते रहते हैं। (अतः सम्भव है कि किसी गुप्तचर से उन्हें यह खबर मिली हो)।

भिक्षु—तो आप मिथिला के उपवन (बगीचा) में कैसे आये ?

तापस—क्योंकि मैंने सुना है कि रावण मिथिला में आये हैं। अतः उनको देखने के लिए पहले यहाँ (ही) चला आया हूँ। अब ताटका-वन को जाऊँगा। अच्छा, अब बतलाइए कि आप कौन हैं ?

भिक्षु—मैं भी वही हूँ जो पहले ताटका के पास भेजा गया था। मिथिला के उपवन में आने का कारण हम दोनों का समान ही है (अर्थात् लङ्केश्वर को देखने के लिए ही तुम्हारे समान मैं भी यहाँ आया हूँ)।

तापस—(प्रसन्नता के साथ) तो पहले यह बतलाइए कि क्या इस समय ताटका-वन कान के आभूषण (ताटङ्क) से युक्त है ? (अर्थात् क्या ताटका ताटङ्क को अयोध्या से अपने वन में उठा लाई है ?)।

भिक्षु—पहले तो यही पूछिए (कि ताटका-वन) ताटका से युक्त है (कि नहीं) ?

तापस—अच्छा तो इस समय ताटका कहाँ है ?

भिक्षु—पुरी में चली गयी।

तापस—तो क्या दशरथ की (पुरी अयोध्या में गयी है) ?

भिक्षु—नहीं, नहीं। यमराज की (पुरी में चली गयी है)।

तापस—उसके यमराज की पुरी में प्रवेश करने में किस के द्वारा द्वारपाल का कार्य किया गया है ? (अर्थात् किसने उसे मार कर यमराज की पुरी में भेजा है ?)।

विशेष—प्रतिहारायितम्—किसी भवन या नगर में भेजने का कार्य द्वारपाल किया करते थे। यह उनकी इच्छा पर निर्भर था कि वे किसे योग्य समझ कर भीतर जाने दें और किसे नहीं। **'प्रतिहारायितम्'** का शाब्दिक अर्थ है द्वारपाल के समान व्यवहार करना। ताटका को यमपुरी में जाने की प्रेरणा किसने दी—यह है **'केन प्रतिहारायितम्'** का प्रसङ्गप्राप्त अर्थ ॥

परम्परया माल्यवताऽधिगतेति भावः। अत्र दीपकोपमयोरङ्गाङ्गिभावः सङ्करः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २ ॥

विशेषतश्चेति। बहुतरप्रणिधिप्रणिधायी—बहुतराः = अनेके ये प्रणिधयः = चराः ('प्रणिधिरपसर्पश्चरः' इत्यमरः) तेषां प्रणिधायी = नियोजकः। अतो गुप्तचरैरप्येतन्निवेदितं स्यादिति ॥

तापसइति। प्रतिहारायितम्—प्रतिहारवत् = द्वाररक्षकवत् आचरितमिति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

भिक्षुः—रामबाणेनैव ।

तापसः—क एष रामः । (विमृश्य) नूनं स एव यः खलु दशरथकुमारयोरग्रजः । तत्कथय क्व पुनरधुना ताटकातनयौ ।

भिक्षुः—सुबाहुस्तावत्ताटकामेवानुगतः । मारीचोऽपि शिशुक्रीडोचितरामनाराचपीडितो जीवन्मुक्त इव दूरं क्षिप्तः ।

तापसः—तत्कथमिदानीं न कथितं केनापि लङ्केश्वरस्य ।

भिक्षुः—कथितमेव किलेदमाक्रन्दता मारीचेन ।

तापसः—तत्कथं कुपितो न लङ्केश्वरः ?

भिक्षुः—सीताभिलाषशीतले लङ्केश्वरचेतसि नारूढ एव कोपपरितापः ।

तापसः—क्व पुनरधुना रामलक्ष्मणौ ।

भिक्षुः—श्रुतं मया कौशिकानुपदं तदाश्रमान्मिथिलां प्रति प्रचलिताविति । (विलोक्य । सत्रासम् ।) कथमिमौ तावित एवाभिवर्तेते । तदस्य निशाचरवैरिणो रामस्य पुरतः स्थातुमनुचितमावयोः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशतो रामलक्ष्मणौ)

रामः—वत्स लक्ष्मण, पश्य पश्यारामरामणीयकम् ।

लक्ष्मणः—आर्य, निसर्गरमणीयोऽयमारामः । अधुना तु मधुमासावतारेण नितान्तरमणीयः ।

प्रतिहारायितम् । अन्तकपुरीप्रवेशे—अन्तकस्य = यमराजस्य पुर्याम् = नगर्याम् प्रवेशे = गमने । यथा द्वाररक्षको जनान् राजनगरं प्रवेशयति कस्तथा ताटकायाः यमपुरीप्रवेशकः इत्यर्थः ॥

भिक्षु इति । अनुगतः = अनुयातः, ताटकामनुगतः = मृतः इत्यर्थः । शिशुक्रीडोचितरामनाराचपीडितः—शिशूनाम् = बालानाम् क्रीडायै = खेलायै ('क्रीडा खेला च कूर्दनम्' इत्यमरः) उचितः = योग्यः यः रामस्य = रामचन्द्रस्य नाराचः = बाणः तेन पीडितः = ताडितः, जीवन्मुक्तः—जीवनात् = प्राणात् मुक्तः = त्यक्तः, निर्जीवः इत्यर्थः । यथा विगतजीवनं वस्तु अनायासं दूरं क्षिप्यते तथैवेत्यर्थः ॥

भिक्षु इति । सीताभिलाषशीतले—सीताविषयकः यः अभिलाषस्तेन शीतले सीताभिलाषशीतले = जानकीकामनाऽऽर्द्रे, लङ्केश्वरस्य = रावणस्य चेतसि = चित्ते, कोपपरितापः कोपस्य = क्रोधस्य परितापः = ज्वाला । रावणस्य चेतः सीताप्राप्तिकामेन तथा शीतलं यातं यथा मारीचस्य वृत्तान्तं तस्य करुणेनाक्रन्दनेन श्रुत्वापि न क्रोधेनोद्दिप्तमिति कविहृदयम् ॥

भिक्षु इति । कौशिकानुपदम्—कौशिकस्य = विश्वामित्रस्य अनुपदम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

भिक्षु—रामचन्द्र के बाण के द्वारा ।

तापस—यह राम कौन है ? (विचार कर) निश्चय ही (यह) वही है जो दशरथ के कुमारों में सबसे बड़ा है । अच्छा तो बतलाओ, ताटका के दोनों पुत्र इस समय कहाँ हैं ?

भिक्षु—सुबाहु तो ताटका के ही पीछे-पीछे (यमपुरी को) चला गया (अर्थात् मर गया) । मारीच भी बालकों के खिलवाड़ के योग्य राम के बाण से पीड़ित होकर मृत के समान बहुत दूर फेंक दिया गया ।

तापस—तो सम्प्रति किसी ने रावण से (इस बात को) क्यों नहीं कहा ?

भिक्षु—चिल्ला-चिल्ला कर रोते हुए मारीच के ही द्वारा तो यह कह दिया गया । (अर्थात् यह बात मारीच के चिल्लाहट से ज्ञात हो जाती थी कि वह किसी के द्वारा घायल कर दिया गया है) ।

तापस—तो रावण (यह जानकर भी) क्रुद्ध क्यों नहीं हुआ ?

भिक्षु—सीता (को पाने) की अभिलाषा से शीतल, रावण के चित्त में क्रोध की गर्मी चढ़ी ही नहीं ।

तापस—अच्छा, सम्प्रति राम-लक्ष्मण कहाँ हैं ?

भिक्षु—मेरे द्वारा सुना गया है (कि) विश्वामित्र के पीछे-पीछे उनके आश्रम से मिथिला के लिए चल दिये हैं । (देखकर भयपूर्वक) क्या यह वे दोनों इधर ही आ रहे हैं ? तो राक्षसों के शत्रु इस राम के सामने हम दोनों का ठहरना ठीक नहीं है ।

(ऐसा कहकर निकल गये)

॥ **विष्कम्भक समाप्त** ॥

(तदनन्तर राम और लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

राम—प्रिय लक्ष्मण ! देखो, देखो, उपवन की सुन्दरता को ।

लक्ष्मण—आर्य ! यह उपवन (स्वयं) स्वभावतः सुन्दर है । (किन्तु) इस समय तो चैत मास के आ जाने से और अधिक सुन्दर हो गया है ।

विशेषः—आर्य—पत्नी पति को तथा छोटे व्यक्ति अपने से बड़े तथा आदरणीय व्यक्ति को 'आर्य' कह कर सम्बोधित करते हैं ॥

पश्चादित्यर्थः । सत्रासम् = सभयम् । निशाचरवैरिणः—निशाचराणाम् = राक्षसानाम् वैरिणः = शत्रोः, पुरतः = अग्रे ॥

विष्कम्भक इति । विष्कम्भकलक्षणादिकं प्रथमाङ्के गतमतस्तत्रैव द्रष्टव्यमिति ॥

राम इति । वत्सेति स्नेहद्योतकं सम्बोधनपदम् । आरामरामणीयकम्—आरामस्य = उपवनस्य ('आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्' इत्यमरः) रमणीयस्य भावो रामणीयकम् = सौन्दर्यम् ॥

लक्ष्मण इति । निसर्गरमणीयः—निसर्गेण = प्रकृत्या रमणीयः = सुन्दरः । मधुमासावतारेण—मधुमासस्य = चैत्रमासस्य ('स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधुः' इत्यमरः) अवतारेण =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—(सहर्षम्) कथमवतीर्णैवमधुमासलक्ष्मीः। (विमृश्य) एवमेतत्। तथाहि—

इह मधुपवधूनां पीतमल्लीमधूनां
विलसति कमनीयः काकलीसंप्रदायः।
इह नटति सलीलं मञ्जरी वञ्जुलस्य
प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षिणेनानिलेन ॥ ३ ॥

अपि च—

मलयशिखरादाकैलासं मनोभवशासना-
द्भुवनवलयं जेतुं वाञ्छन्वसन्तसमीरणः।
विहितवसतिं कैलासाग्रे भुजङ्गधरं हरं
मनसि विमृशन् भीतः शङ्के प्रयाति शनैः शनैः ॥ ४ ॥

आगमनेन, स्वर्गाद्भूमौ आगमनेनेत्यर्थः, नितान्तरमणीयः—नितान्तम् = अत्यधिकम् रमणीयः = शोभनः ॥

अन्वयः—इह, पीतमल्लीमधूनाम्, मधुपवधूनाम्, कमनीयः, काकलीसम्प्रदायः, विलसति। इह, दक्षिणेन, अनिलेन, प्रतिपदम्, उपदिष्टा, वञ्जुलस्य, मञ्जरी, सलीलम्, नटति ॥ ३ ॥

इहेति। इह=अस्मिन् आरामे, पीतमल्लीमधूनाम्—पीतानि=आचान्तानि मल्लीनाम्= भूरुण्डीनाम् ('भूरुण्डी तृणशून्यं तु मल्लिका' इत्यमरः), मल्लते गन्धं, मल्लयते वा मल्ली सैव मल्लिकेति बोध्यम्, मधूनि = पुष्परसाः याभिस्तासाम्, मधुपवधूनाम्—मधुपानाम् = भ्रमराणाम् वध्वः=स्त्रियः तासाम्, कमनीयः=मनोहरः, काकलीसम्प्रदायः—काकलीनाम् = कलसूक्ष्मस्वराणाम् ('काकली तु कले सूक्ष्मे' इत्यमरः) सम्प्रदायः = समूहः, परम्परेति यावत्, विलसति = शोभते। इह = अत्र, दक्षिणेन = मलयागतेनेत्यर्थः, अनिलेन = समीरेण, प्रतिपदम् = निरन्तरमित्यर्थः, उपदिष्टा = शिक्षिता, वञ्जुलस्य = अशोकस्य ('वञ्जुलोऽशोके' इत्यमरः), मञ्जरी = वल्लरी, सलीलम् = सविलासम्, नटति = नृत्यति। यथाचार्येण प्रतिचरणविन्यासं शिक्षिता बालिका यथाशास्त्रं नृत्या-भ्यासं करोति तथैव मलयमारुतेनोपदिष्टा अशोकमञ्जरी अपि शनैः शनैः नृत्यति। अनेन वसन्तलक्ष्म्याः शोभा मलयमारुतस्य मन्थरता च सूच्यते। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। मालिनी वृत्तम्। वृत्तलक्षणं यथा—

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ ३ ॥

अन्वयः—मलयशिखरात्, आकैलासम्, भुवनवलयम्, मनोभवशासनात्, जेतुम्, वाञ्छन्, वसन्तसमीरणः, कैलासाग्रे, विहितवसतिम्, भुजङ्गधरम्, हरम्, मनसि, विमृशन्, भीतः, शनैः, शनैः, प्रयाति, (इति, अहम्), शङ्के ॥ ४ ॥

वसन्तवायोर्मन्थरतां वर्णयन्नाह—मलयेति। मलयशिखरात्—मलयस्य = मलयाचलस्य शिखरात् = शृङ्गात्, आकैलासम् = कैलासपर्वतपर्यन्तमित्यर्थः, दक्षिणां दिशमारभ्योत्तरदिक्पर्यन्तमिति यावत्, भुवनवलयम् = जगतीतलम्, मनोभवशासनात्—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—(प्रसन्नता के साथ) क्या मधुमास (चैत्रमास) की शोभा आ ही गयी ? (सोच कर) यह ऐसा ही है (अर्थात्—हाँ मधुमास की शोभा आ ही गयी) । जैसे कि—

इस उपवन में, पिया है बेला के फूल के रस को जिन्होंने ऐसी (अर्थात् बेला के फूल का रस पीनेवाली) भ्रमरियों (भौंरे की स्त्रियों) की चित्ताकर्षक मन्द मधुर स्वरों की परम्परा (अर्थात् लगातार मन्द मधुर गुञ्जार) शोभित हो रही है । यहाँ दक्षिण दिशा से बहनेवाले वायु के द्वारा पग-पग पर सिखलायी गयी अशोक की मञ्जरी विलासपूर्वक नाच रही है ॥ ३ ॥

और भी—

मलय-पर्वत की चोटी से लेकर कैलास-पर्वत तक के पृथिवी-मण्डल को, कामदेव की आज्ञा से, जीतने की इच्छा करता हुआ वसन्त ऋतु का वायु, कैलास पर्वत की चोटी पर निवास करने वाले सर्पधारी शङ्कर को मन में सोचता हुआ डरकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है—(ऐसा मैं) सोचता हूँ ॥ ४ ॥

विशेष—यहाँ (१) 'मनोभवशासनात्' (२) भुजङ्गधरम्' तथा (३) हरम्—ये पद विशेष अभिप्राय से रक्खे गए हैं ।

१—मनोभवशासनात्—वसन्त-वायु कामदेव का गण है । अतः वह उसकी आज्ञा से संसार विजय के लिए अवश्य निकल पड़ा है । किन्तु जब कैलास निवासी शङ्कर का उसे ध्यान आता है तब वह भय से कांपने लगता है। वह सोचता है कि जिस कामदेव की आज्ञा से मैं निकला हूँ जब वही शङ्कर के क्रोध से भस्म हो गया तो मेरी क्या हस्ती है ।

२—भुजङ्गधरम्—सर्प वायु पीकर जीवित रहते हैं । कैलास के शङ्कर ने तमाम सर्पों को धारण कर रक्खा है । अतः कैलास की ओर बढ़ने वाला मलय वायु डर रहा है कि कहीं कैलास पर पहुँचते ही शङ्कर के महा सर्प हमें पी न जाँय ।

३—हरः—हरति = विनाशयति शत्रूनिति हरः । मलय वायु को हर की यह व्युत्पत्ति मालूम है । वह सोचता है कि मेरे स्पर्श से सम्भव है शङ्कर का मन विकृत हो जाय और वे क्रुद्ध होकर हमें कहीं जला न दें ॥ ४ ॥

मनोभवस्य = कामस्य शासनात् = आदेशात् , जेतुम् = वशीकर्तुम् , वाञ्छन् = इच्छन्, वसन्तसमीरणः—वसन्तस्य = वसन्तर्तोः समीरणः = वायुः, कैलासाग्रे—कैलासस्य = कैलासपर्वतस्य अग्रे = शृङ्गे, विहितवसतिम्—विहिता = कृता वसतिः = वासो येन तम् , भुजङ्गधरम् = भुजङ्गैरलङ्कृतम् , हरम् = प्रलयकारिणं शिवम्, मनसि = चेतसि, विमृशन् = विचारयन् , भीतः = भयग्रस्तः सन् , शनैः शनैः = मन्थरमित्यर्थः, प्रयाति = व्रजति, इति = इत्थम् , अहम् = रामः, इति पदद्वयं शेषः, शङ्के = विचारयामीति भावः । यद्यपि प्रभोर्वसन्तस्याज्ञया विश्वं जेतुं निर्गतो मलयमारुतस्तथापि सः शङ्करस्य सर्पैः भक्षितो भविष्यामि तथा कदाचित् क्रुद्धेन हरेण भस्मीकृतो भविष्यामीति च विचार्य भीतः सन् मन्थरं प्रयातीति हृदयम् ॥ अत्र उत्प्रेक्षा अलङ्कारः । हरिणी वृत्तम् ; वृत्तलक्षणं यथा—

'नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥' ४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः—आर्य, अहं त्वेवं तर्कयामि ।

पथि पथि लतालोलाक्षीभिः स्रवन्मधुसीकरं
कुसुमनिकरं वर्षन्तीभिः सहर्षमिवार्चितः ।
मधुकरवधूगीतासक्तं कुरङ्गकमास्थितः
प्रसरति वने मन्दं मन्दं वसन्तसमीरणः ॥ ५ ॥

रामः—वत्स, अलमनेन । तद्यावदयं भगवान्विश्वामित्रस्तत्रभवतो याज्ञवल्क्यस्य समागमसुखमनुभवति तावत्तदीयसायंतनदेवतार्चनोचितानि कुसुमान्यवचीयन्ताम् ।

लक्ष्मणः—बाढम् । (इति लताविटपान्तरितः कुसुमावचयं नाटयति)

रामः—(विलोक्य) कथमिदमितश्चण्डिकायतनम् (अञ्जलिं बध्वा) मातः,

करुणतरङ्गतरङ्गिणि विकसन्नयनामृतोर्मिसीकरिणि ।
तरुणतुहिनकरचूडामणिरमणि त्वां नमस्यामि ॥ ६ ॥

(पुनरन्यतो विलोक्य) अये, इयमसौ मदकलकलहंसोत्तंसितसितसरोजराजिराजिता सरसी सरसीकरोति मे चेतः । (पुनः सकौतुकम्) अये, कथमयं नलिनीवनविहारिणीं

अन्वयः—पथि पथि, स्रवन्मधुशीकरम्, कुसुमनिकरम्, वर्षन्तीभिः, लतालोलाक्षीभिः, सहर्षम्, अर्चितः, इव, मधुकरवधूगीतासक्तम्, कुरङ्गकम्, आस्थितः, वसन्तसमीरणः, वने, मन्दं मन्दम्, प्रसरति ॥ ५ ॥

लक्ष्मणो वसन्तवायुविषयेऽन्यथा सम्भावयति—पथि पथीति । पथि पथि = मार्गे मार्गे, स्रवन्मधुशीकरम्—स्रवन्ति = निर्झरन्ति मधुनः पुष्परसस्य शीकराणि = कणाः यस्मात् तम्, कुसुमनिकरम्—कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् निकरम् = समूहम्, वर्षन्तीभिः = स्रवन्तीभिः, उपहरन्तीभिरित्यर्थः, लतालोलाक्षीभिः—लताः = व्रततयः ('वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः) एव लोलाक्ष्यः = अङ्गनाः ताभिः, सहर्षम् = सप्रमोदम्, अर्चितः इव = पूजितः इव; मधुकरवधूगीतासक्तम्—मधुकराणाम् = भ्रमराणाम् वध्वः = वनिताः, भ्रमर्यः इत्यर्थः, तासां गीते = गाने गुञ्जने इत्यर्थः, आसक्तम् = संलग्नम्, कुरङ्गकम् = हरिणम्, आस्थितः = आरूढः, वसन्तसमीरणः = वसन्तवायुः, मलयमरुदित्यर्थः, वने = उद्याने, अरण्ये इत्यपि बोध्यम्, मन्दं मन्दम् = शनैः शनैः, प्रसरति = प्रवहति । वसन्तलक्ष्मीसंभृतशोभाप्रदर्शनार्थमेव भ्रमरीकुरङ्गकयोरुपस्थापनमिति । अत्र संसृष्टिरलङ्कारः । हरिणी वृत्तम् ॥ ५ ॥

राम इति । भगवान् = सर्वैश्वर्यसम्पन्नः । तत्रभवतः = परमादरणीयस्येत्यर्थः । समागमसुखम्—समागमजन्यं सुखं समागमसुखम् = मिलनप्रमोदम् । तदीयसायन्तनदेवतार्चनोचितानि—तदीयम् = विश्वामित्रसम्बन्धीत्यर्थः सायं भवं सायन्तनम् = सायङ्कालीनम् यत् देवतानामर्चनम् = देवानां पूजनम् तस्मिन् उचितानि = योग्यानि ॥

लक्ष्मण इति । बाढम् = एतत् स्वीकृतिबोधकमव्ययमस्ति, ('भृशप्रतिज्ञयोर्बाढम्' इत्यमरः) । लताविटपान्तरितः—लतानाम् = वल्लीनाम् विटपैः = शाखाभिः अन्तरितः = व्यवहितः, कुसुमावचयम्—कुसुमानाम् = प्रसूनानाम् अवचयम् = त्रोटनम्, नाटयति = अभिनयति ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मण—आर्य ! मैं तो ऐसा सोचता हूँ—प्रत्येक मार्ग पर रस के कणों की वर्षा करने वाले पुष्प-समूह को वर्षाने वाली लता रूपी सुन्दरियों के द्वारा प्रसन्नता-पूर्वक पूजित-सा होता हुआ; भौंरों की स्त्रियों (भ्रमरियों) के गीत को सुनने में संलग्न हरिण पर चढ़ा हुआ वसन्त-वायु वन में धीरे-धीरे बह रहा है ॥ ५ ॥

राम—वत्स ! छोड़ो इस (प्रसङ्ग) को। तो जब तक यह भगवान् विश्वामित्र परम आदरणीय याज्ञवल्क्य के मिलन-सुख का अनुभव कर रहे हैं (अर्थात् जब तक उनके पास बैठे हैं) तब तक उनके सायङ्कालीन देव-पूजा भर के लिए फूल तोड़े जाँय।

लक्ष्मण—अच्छी बात है। (ऐसा कह कर लताओं की डालियों की आड़ में होकर फूल तोड़ने का अभिनय करते हैं)

राम—(देखकर) क्या इधर यह चण्डिका (देवी दुर्गा) का मन्दिर (है) ? हे माँ,

हे करुण रूप तरङ्गों की नदि ! हे (दयावश) खुलने वाले नेत्रों के अमृत की लहरियों के कणों से भरपूर (अर्थात् हे दया रूप अमृतमयी)। हे अष्टमी के चन्द्रमा को (अपने) मस्तक पर धारण करने वाले (अर्थात् भगवान् शङ्कर) की अर्द्धाङ्गिनि ! आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

(फिर दूसरी ओर देखकर) अरे ! मद के कारण मनोहर तथा अस्पष्ट ढङ्ग से कूजने वाले राजहंसों से सुशोभित श्वेत कमलों की कतारों से सुन्दर प्रतीत होने वाली यह बावली (तलैया) हमारे चित्त को सरस बना रही है। (फिर उत्सुकता के साथ) अरे ! कैसे यह राजहंस का बच्चा कमलिनी के वन में विचरण करने वाली

अन्वयः—करुणतरङ्गतरङ्गिणि, विकसन्नयनामृतोर्मिसीकरिणि, तरुणतुहिनकरचूडामणिरमणि, त्वाम्, नमस्यामि ॥ ६ ॥

करुणेति—करुणतरङ्गतरङ्गिणि—करुणाः = दयाः एव तरङ्गाः = लहर्यः तेषां तरङ्गिणी = नदी तत्सम्बुद्धौ, विकसन्नयनामृतोर्मिसीकरिणि—विकसती = उन्मीलती दययेति शेषः ये नयने = नेत्रे तयोर्यत् अमृतम् = सुधा तस्य उर्मयः = लहर्यः तासां सीकरिणी = निर्झरिणी तत्सम्बुद्धौ, तरुणतुहिनकरेत्यादिः—तरुणः = तारुण्ययुक्तः, अष्टम्याः इत्यर्थः, यः तुहिनकरः = चन्द्रः एव चूडामणिः = शिरोरत्नम् यस्य सः, शिवः इत्यर्थः, तस्य रमणी = अर्द्धाङ्गिनी तत्सम्बुद्धौ, त्वाम् = भवतीम्, नमस्यामि = नमस्करोमि। वृत्तमत्र आर्या। तल्लक्षणं यथा—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥ ६ ॥

पुनरिति। मदकलकलहंसोत्तंसितसितसरोजराजिराजिता—मदेन = गर्वेण ('मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः' इति मेदिनी) कलाः = मधुराव्यक्तशब्दाः ये कलहंसाः = राजहंसाः तैः उत्तंसिताः = भूषिताः याः सितसरोजानाम् = श्वेतकमलानाम् राजयः = श्रेणयः ताभिः राजिता = शोभिता, सरसी = सरः, मे = मम, चेतः = मनः, सरसीकरोति =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सहचरीमपि विहाय कलहंसपोतश्चूतविटपान्तरालमनुसरति। (कर्णं दत्त्वा।) अये, क एप मदकलकरिकनकशृङ्खलामणिरणितानुकारी मनोहारी कोऽपि कलकलः समुल्लसति। (विमृश्य) नूनं राजहंससिञ्जितहारि मञ्जीरगुञ्जितमेतत्। तदवश्यमिह सलीलचलच्चरणरणन्मणिनूपुरया पुराङ्गनया कयाचन चण्डिकायतनमागच्छन्त्या भवितव्यम्। तदलमस्माकमितोऽवलोकनेन। परस्त्रीति शङ्काऽपि संकोचाय रघूणाम्।

(नेपथ्ये)

भर्तृदारिके, इत इतः।

रामः—कथमियं राजकुमारिका। तदवलोकयामि तावत्।
(विलोक्य। सहर्षकौतुकम्)

केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा-
लग्नैरङ्गैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः।
हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरं वहद्भिः
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति॥ ७॥

(ततः प्रविशति सीता सखी च)

रसपूर्णं करोति, सरागं करोतीति कविहृदयम्। नलिनीवनविहारिणीम्—नडाः सन्त्यत्र, नलम् = कमलम् अत्रास्तीति वा नलिनी = कमलिनी, कमललतेति यावत् तस्याः वनम् = विपिनम् तत्र विहारिणीम् = सञ्चारिणीम्। कलहंसपोतः = राजहंसशावकः। चूतविटपान्तरालम्—चूतविटपस्य = आम्रवृक्षशाखायाः अन्तरालम् = मध्यभागम्। मदकलकरिकनकशृङ्खलामणिरणितानुकारी—मदेन = दानेन कलः = मनोहरः यः करी = हस्ती तस्य या कनकशृङ्खला = पादबद्धा सुवर्णरज्जुः तस्यां ये मणयः = रत्नानि तेषां रणितम् = गुञ्जितम् अनुकरोति = अनुसरति तच्छीलः। आगच्छन्त्याः गमने गजगमनम् आरोपितमिति ध्वनितमिति। राजहंससिञ्जितहारि—राजहंसस्य शिञ्जितम् = अव्यक्तं शब्दं गुञ्जितमित्यर्थः हरति तच्छीलम्। सलीलचलच्चरणरणन्मणिनूपुरया—सलीलम् = सविलासम् यथा स्यात्तथा चलन्तौ = गच्छन्तौ यौ चरणौ = पादौ तयोः रणन्तौ = शब्दायमानौ यौ मणिनूपुरौ = मणिनिर्मितौ मञ्जीरौ ('मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्, इत्यमरः) यस्याः सा। चण्डिकायतनम् = चण्डिकायाः = दुर्गायाः आयतनम् = मन्दिरम्। आगच्छन्त्या = आयान्त्या॥

नेपथ्य इति। नेपथ्ये = वेशरचनास्थाने। अवलोकयामि = पश्यामि। कुमारिकादर्शने दोपाभावः परस्त्रीभावाभावादिति॥

अन्वयः—श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखालग्नैः, कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः, हारिद्राम्बुद्रवसहचरम्, कान्तिपूरम्, वहद्भिः, अङ्गैः, (उपलक्षिता), इयम्, का, कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेव, आविरस्ति॥ ७॥

केयमिति—श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखालग्नैः—श्यामः = कृष्णवर्णः यः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
सहचरी (साथी स्त्री) को भी छोड़कर आम्र-वृक्ष की डाली के मध्यभाग का अनुसरण कर रहा है (अर्थात् डाली के मध्य भाग में जाकर बैठ रहा है)। (कान लगा कर) अरे ! मद से मतवाले हाथी की सोने की जञ्जीर के मणि की झनझनाहट का अनुकरण (नकल) करने वाली मनोहर यह कैसी कोई आवाज आ रही है ? (विचार कर) निश्चय ही राजहंसों के गुञ्जान को जीतने वाली यह नूपुर की आवाज है। तो अवश्य ही, यहाँ विलास के साथ चलने वाले चरणों में झनझना रहे हैं मणि के नूपुर जिसके ऐसी, देवी दुर्गा के मन्दिर में आती हुई इसे कोई नगर की सुन्दरी होनी चाहिए (अर्थात् देवी के दर्शनार्थ आती हुई अवश्य ही यह कोई नगर की सुन्दरी होगी)। अतः हम लोगों का इधर देखना अनुचित है। 'यह पराई स्त्री है' ऐसी शङ्का भी रघुवंशियों के संकोच के लिए (होती है)।

(पर्दे के पीछे)

राजकुमारि ! इधर से, इधर से (चलें)।

राम—क्या यह राजकुमारी है ? तो (इसे) देखूँगा। (देखकर, प्रसन्नता एवम् उत्कण्ठा के साथ)।

कसौटी (शाण) पर घिसी गई सुवर्ण की अनुपम रेखा के समान संलग्न, सोने की कदली (केला के वृक्ष) के भीतरी भाग (गाछ) के सदृश किञ्चित् पीलेपन को लिए हुए गौरवर्ण तथा हल्दी के पानी के प्रवाह के समान सौन्दर्य की अधिकता को धारण करने वाले अङ्गों से (युक्त) यह कौन-सी स्त्री, कामदेव के क्रीड़ा-भवन की अटारी की दीपिका के सदृश, प्रकट हुई है ? ॥ ७ ॥

(तदनन्तर सीता और (उसकी) सखी प्रवेश करती है)

उपलः = पाषाणः, शाण इति भावः, तस्मिन् विरचितः = कृतः उल्लेखः = घर्षणम् यस्य तादृशस्य हेम्नः = सुवर्णस्य एकाः = अपूर्वाः याः रेखाः = लेखाः ता इव लग्नानि = सन्निविष्टानि तैः, श्यामवर्णानां लतानां मध्ये वर्तमाना गौरवर्णा जानकी तथैव शोभते यथा कृष्णवर्णे शाणे स्थिता गौरी सुवर्णरेखेति भावः। कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः—कनककदल्याः = सुवर्णरम्भावृक्षस्येत्यर्थः कन्दलीगर्भाः = मध्यांशाः तद्वत् गौराणि = पीतश्वेतानि तैः, हारिद्राम्बुद्रवसहचरम्—हारिद्रम = हरिद्रासम्बन्धि यत् अम्बु = जलम् तस्य द्रवः = प्रवाहः तस्य सहचरम् = सदृशम्, कान्तिपूरम् = प्रभासमूहम्, वहद्भिः = धारयद्भिः, अङ्गैः = अवयवैः, उपलक्षितेति शेषः, इयम् = एषा, मया दृष्टेति भावः, का = का स्त्री, कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेव—कामस्य = कामदेवस्य या क्रीडा = केलिः तस्याः भवनम् = गृहम् तस्य वलभी = अट्टालिका तस्याः तस्यां वा दीपिकेव = प्रदीपिकेव, आविरस्ति = प्रादुर्भूताऽस्तीति। कामोद्दीपकत्वात् कामभवनदीपिकेत्युत्प्रेक्षेति। अत्र उपमारूपकयोः सङ्करः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

"मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥"७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता—हला, पश्य पश्य । अद्यैतदुद्यानं वसन्तसहचरेण स्वयमेव मन्मथेनालंकृतमिवातिमात्रं रमणीयं प्रतिभाति ।

[हला, पेक्ख पेक्ख । अज्ज इममुज्जाणं वसन्तसहअरेण सअं जेव्व मम्महेणालंकिदं विअ अतिमेत्तं रमणिज्जं पडिहादि ।]

सखी—अनवद्याङ्गि, एवमेतत् ।

रामः—अये, सर्वानवद्याङ्गीति वक्तव्यम् । नन्वस्याः

बन्धूकबन्धुरधरः सितकेतकाभं
चक्षुर्मधूककलिकामधुरः कपोलः ।
दन्तावली विजितदाडिमबीजराजि-
रास्यं पुनर्विकचपङ्कजदत्तदास्यम् ॥ ८ ॥

(पुनर्निर्वर्ण्य) अहो, मुग्धाया अप्यस्याः प्रकृतिकमनीयपदार्थपरिशीलनौचित्यचातुरी। तथाहि । इयं हि

पदाभ्यामुन्निद्रामधरयति शोणाम्बुजरुचिं
कराभ्यामादत्ते नवकिसलयानामरुणताम् ।
प्रवालस्य च्छायां दशनवसनाग्रेण पिबति
स्मितज्योत्स्नापूरैरुपहसति कान्तिं हिमरुचेः ॥ ९ ॥

सखीति । अनवद्याङ्गि—अनवद्यानि = अनिन्दितानि, सर्वथा सुन्दराणीत्यर्थः, अङ्गानि = शरीरावयवाः यस्याः सा अनवद्याङ्गी तत्सम्बुद्धौ । सख्याः संस्कृतोक्तिस्तस्याः वैदग्ध्यसूचनार्थमिति भरतः ॥

अन्वयः—अस्याः, अधरः, बन्धूकबन्धुः, चक्षुः, सितकेतकाभम् ; कपोलः, मधूककलिकामधुरः; दन्तावली, विजितदाडिमबीजराजिः; पुनः, आस्यम्, विकचपङ्कजदत्तदास्यम्, (अस्ति) ॥ ८ ॥

राम इति । सर्वानवद्याङ्गी—सर्वाणि = निखिलानि अनवद्यानि = अनिन्दितानि अङ्गानि = अवयवाः यस्याः तादृशी ॥

सीतायाः सर्वेषामवयवानामनवद्यतां प्रदर्शयन् कथयति—बन्धूकेति । अस्याः = आगच्छन्त्याः सुन्दर्याः, अधरः = निम्नौष्ठः । बन्धूकबन्धुः—बन्धूकस्य = रक्तकस्य ('रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः, इत्यमरः) बन्धुः = तुल्यः इत्यर्थः, रक्तत्वादधरे बन्धूकबन्धुता बोध्या; चक्षुः = नेत्रम्, सितकेतकाभम्,—सितकेतकस्य = श्वेतकेतकीपुष्पस्य आभा = कान्तिः इव आभा यस्य तादृशम् ; कपोलः = गण्डः ('गण्डौ कपोलौ' इत्यमरः), मधूककलिकामधुरः—मधूकस्य = मधुद्रुमस्य ('मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ वानप्रस्थमधुष्ठीलौ' इत्यमरः) कलिका = कोरकः इव मधुरः = सरसः; दन्तानाम् अवली दन्तावली = दन्त— पंक्तिः, विजितदाडिमबीजराजिः—विजिता = पराजिता दाडिमस्य = करकस्य ('समौ करकदाडिमौ' इत्यमरः) बीजानाम् = अङ्कुरकारणानाम् ('बीजन्तु ······ हेतावङ्कुरकारणे' इति हैमः) राजिः = पंक्तिः यया तादृशी; पुनः = तथा, आस्यम् = मुखम्, विकचपङ्क-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता—सखि! देखो, देखो। आज यह उपवन (बगीचा) वसन्त को साथ लिये हुए स्वयं कामदेव के द्वारा अलङ्कृत के समान अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहा है।

सखी—हे निष्कलङ्क अङ्गोंवाली (अर्थात् अत्यन्त सुन्दरि)! यह (बात) ऐसी ही है (अर्थात् ठीक है)।

राम—अरे! (इसे तो) 'सम्पूर्ण निष्कलङ्क अङ्गोंवाली—ऐसा कहना चाहिए। निःसन्देह—

इसका ओष्ठ बन्धूक (दोपहरिया नामक लाल फूल) के सदृश, नेत्र श्वेत केतकी के पुष्प के समान, गाल महुए के फूल की कली के तुल्य मधुर, दाँतों की पंक्ति अनार के बीजों की पंक्ति को जीतने वाली तथा मुख खिले हुए कमल को दास बनाने वाला (अर्थात् कमल से भी सुन्दर) है॥ ८॥

(फिर ध्यान से देखकर) भोली-भाली भी इस किशोरी की प्रकृति के अत्यन्त सुन्दर पदार्थों को पहचानने की योग्यता में निपुणता आश्चर्यजनक है; जैसे कि यह—

चरणों (की शोभा) से विकसित रक्त कमलों की कान्ति को मात करती है। हाथों (की लालिमा) से नये पल्लवों (कोपलों) की ललिमा को छीन लेती है। ओष्ठों के अग्रभाग (की कान्ति) से मूंगे की कान्ति को पी जाती है। मन्द मुस्कानों के प्रकाश की लहरियों से चन्द्रमा की कान्ति का मजाक उड़ाती है (अर्थात् इसके चरण लाल कमलों से भी अधिक लाल हैं। हथेली कोपलों से भी अधिक रक्त है। ओष्ठ मूँगे से भी अधिक अरुण है। हँसी की छटा चन्द्रमा की कान्ति को भी मात करती है)॥ ९॥

जदत्तदास्यम्—विकचम्=विकसितम् यत् पङ्कजम्=कमलम् तस्मै दत्तम्=समर्पितम् दास्यम्=दासभावः हीनतेत्यर्थः येन तादृशम्, अस्तीति क्रियाशेषः। प्रफुल्लकमलादपि तदाननं सुन्दरमिति भावः। अत्रोपमाव्यतिकरालङ्कारयोः सङ्करः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ ८॥

अन्वयः—पदाभ्याम्, उन्निद्राम्, शोणाम्बुजरुचिम्, अधरयति; कराभ्याम्, नवकिसलयानाम्, अरुणताम्, आदत्ते; दशनवसनाग्रेण, प्रवालस्य, छायाम्, पिबति; स्मितज्योत्स्नापूरैः, हिमरुचेः, कान्तिम्, उपहसति॥ ९॥

पुनरिति। निर्वर्ण्य = ध्यानेनावलोक्य। मुग्धायाः किशोर्याः, अतिक्रान्तशैशवमात्रायाः इत्यर्थः, प्रकृतिकमनीयपदार्थपरिशीलनौचित्यचातुरी—प्रकृतौ=सृष्टौ वा प्रकृत्या=स्वभावेन ये कमनीयाः= अतिशयमनोहराः पदार्थाः=वस्तूनि तेषां परिशीलनस्य=परिचयस्य, गुणग्रहणस्येत्यर्थः, यत् औचित्यम्=योग्यता तस्मिन् चातुरी= निपुणता॥

तदेव समर्थयन्नाह—पदाभ्यामिति। पदाभ्याम्=चरणाभ्याम्, उन्निद्राम्=विकसिताम्, शोणाम्बुजरुचिम्—शोणम्=रक्तवर्णम् यत् अम्बुजम्=कमलम् तस्य रुचिम्= कान्तिम्, अधरयति=ग्लपयति, तिरस्करोतीत्यर्थः। विकसितरक्तोत्पलादपि सीताचरणौ

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—भर्तृदारिके, इदं तच्चण्डिकायतनम् ।

सीता—(अञ्जलिं बद्ध्वा ।) देवि, शशधरमौलिदेहार्द्धधारिणि, त्रिभुवनगृहसुवासिनिऽनमो नमस्ते ।

[देवि, ससहरमौलिदेहाद्धधारिणि, त्रिहुअणघरसुआसिणि, णमो णमो दे ।]

सखी—समुचितैव प्रणामपरिपाटी ।

सीता—(सप्रणयकोपम्) अलमलीकजल्पितेन ।

[अलमलीअजप्पिदेण]

सखी—(अञ्जलिं बद्ध्वा ।)

कान्तमिन्दुमणिदामकोमले कोमलेन्दुमुकुटाङ्कशायिनि ।
इन्दुचारुमचिरेण विन्दतामिन्दुसुन्दरमुखी सखी मम ॥ १० ॥

रामः—अये, कथमस्याः परिणयमनोरथप्रणयी सखीजनः । (विमृश्य) उचितमेतत् । वयःसंधौ खल्वियं वर्तते । तथाहि—

अपक्रान्ते बाल्ये तरुणिमनि चागन्तुमनसि
प्रयाते मुग्धत्वे चतुरिमणि चाश्लेषरसिके ।
न केनापि स्पृष्टं यदिह वयसा मर्म परमं
तदेतत्पश्चेपोर्जयति वपुरिन्दीवरदृशः ॥ ११ ॥

शोणतराविति भावः । कराभ्याम्=हस्ताभ्याम्, करतलाभ्यामित्यर्थः नवकिसलयानाम्—अचिरोद्गतपल्लवानाम्, अरुणताम्=ताम्रवर्णताम्, आदत्ते=गृह्णाति । सीताहस्ततले किसलयवर्णं इत्यर्थः । दशनवसनाग्रेण—दशनानाम्=दन्तानाम् वसने=वस्त्रे, आच्छादकत्वादोष्ठे इत्यर्थः, तयोरग्रेण=अग्रभागेन, प्रवालस्य=विद्रुमस्य, छायाम्=कान्तिम्, पिबति=आचामति, गृह्णातीत्यर्थः । सीतायाः अधरौ विद्रुमच्छविधराविति भावः । स्मितज्योत्स्नापूरैः—स्मितस्य=ईषद्धास्यस्य ज्योत्स्नाः=कान्तयः तासां पूरैः=समूहैः प्रवाहैः इत्यर्थः, हिमरुचेः=चन्द्रमसः कान्तिम्=प्रकाशम्, शोभां वा, उपहसति=तिरस्करोतीति भावः । सीतास्मितशोभा चन्द्रशोभाऽतिशायिनीति हृदयम् । अत्र व्यतिरेकतद्गुणयोः सङ्करः । शिखरिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा; 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥' ९ ॥

सखीति । भर्तृदारिके—भर्तुः = स्वामिनः दारिका = पुत्री तत्सम्बुद्धौ । चण्डिकायतनम्—चण्डिकायाः=देव्याः दुर्गायाः आयतनम्=मन्दिरम् ॥

सीतेति । शशधरमौलिदेहार्द्धधारिणि—शशधरः=चन्द्रः मौलौ=मस्तके यस्य सः तस्य देहार्द्धधारिणी=शरीरार्द्धधारिणी तत्सम्बुद्धौ, त्रिभुवनगृहसुवासिनि—त्रिभुवनम्=त्रिलोकी एव गृहम्=निवासस्थानम् तस्य सुवासिनी=सद्गृहिणी तत्सम्बुद्धौ ॥

सखीति । समुचिता = योग्या । प्रणामपरिपाटी प्रणामस्य = नमस्कारस्य परिपाटी=पद्धतिः । पार्वत्याः पतिदेहार्द्धधारणेन पतिप्रदत्तस्नेहः त्रिभुवनाधिकारेण गार्हपत्याधिपत्यं सूचितं प्रार्थितञ्चेति ध्वनिः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—राजकुमारि ! यह वह चण्डिका का मन्दिर (है, जिसके लिये आप चली हैं) ।

सीता—(हाथ जोड़ कर) देवि ! शशाङ्कशेखर (शङ्कर) की अर्द्धाङ्गिनि ! हे त्रिलोकी रूप घर की सद्गृहिणी ! (आपको) बारम्बार नमस्कार है !

सखी—प्रणाम करने का (यह) तरीका ठीक ही है ।

विशेष—सीता ने शङ्कर जी की अर्द्धाङ्गिनी के रूप में तथा सद्गृहिणी के रूप में पार्वती को प्रणाम किया है । अतः सखी का व्यङ्ग्य है कि विवाह के लिये उत्सुक युवती के लिये इस प्रकार प्रणाम करना ठीक ही है ॥

सीता—(प्रेमपूर्वक कोप के साथ—अर्थात् बनावटी क्रोध के साथ) व्यर्थ बकवास करना छोड़ो ।

सखी—(हाथ जोड़कर)

चन्द्रकान्तमणि की माला के समान कोमल हे द्वितीया के चन्द्रमा को मुकुट पर धारण करनेवाले (भगवान् शंकर) की गोद में शयन करनेवाली ! चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली मेरी सखी शीघ्र ही चन्द्र के समान मनोहर पति को प्राप्त करे ॥ १० ॥

राम—अरे ! क्या (इसकी) सखी इसके विवाह की अभिलाषा कर रही है ? (सोचकर) यह ठीक है । यह (राजकुमारी) (बाल्य और यौवन रूप) अवस्थाओं के बीच में है । जैसे कि—

बचपन के बीत जाने पर, जवानी के आने की इच्छा करने पर, भोलेपन के जाने पर तथा चतुरता के आलिङ्गन करने के इच्छुक होने पर (सम्प्रति) कमलनयनी (सीता) का जो शरीर किसी भी अवस्था के द्वारा नहीं छुआ गया है, वह यह (सीता का शरीर) कामदेव का परम रहस्यभूत (होता हुआ) इस संसार में सर्वश्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

सीतेति । अलीकजल्पितेन—अलीकम् = व्यर्थम् जल्पितम् = कथनम् तेन । निरर्थकवचनेनेत्यर्थः ॥

अन्वयः—इन्दुमणिदामकोमले, हे कोमलेन्दुमुकुटाङ्कशायिनि ! इन्दुसुन्दरमुखी, मम, सखी, अचिरेण, इन्दुचारुम्, कान्तम्, विन्दताम् ॥ १० ॥

कान्तमिति । इन्दुमणिदामकोमले—इन्दुमणीनाम् = चन्द्रकान्तमणीनाम् दाम = माला सा इव कोमला = मृद्वी, कमनीयेति यावत्, तत्सम्बुद्धौ, हे कोमलेन्दुमुकुटाङ्कशायिनि—कोमलः = बालः, द्वितीयोदितः इत्यर्थः, इन्दुः = मुकुटे = शेखरे यस्य सः तस्य अङ्के = क्रोडे शेते = स्थिता भवति या सा तत्सम्बुद्धौ, हे पार्वतीत्यर्थः, इन्दुसुन्दरमुखी—इन्दुः = चन्द्रः इव सुन्दरम् = मनोहरम् मुखम् = आननम् यस्याः सा, मम = मदीया, सखी = वयस्या, सीतेति यावत्, अचिरेण = शीघ्रम्, इन्दुचारुम्—इन्दुः = इव चारुः = मनोहरः तम्, स्वयोग्यमिति भावः, कान्तम् = पतिम्, विन्दताम् = लभताम् । जानकी स्वानुरूपं वरं सङ्गता भवेदिति मदीया प्रार्थनेति भावः । परिकरालंकारः । रथोद्धता वृत्तम् । वृत्तलक्षणं यथा—"रात्परैर्नरलगौ रथोद्धता ॥" १० ॥

अन्वयः—बाल्ये, अपक्रान्ते; तरुणिमनि, च, आगन्तुमनसि; मुग्धत्वे, प्रयाते;

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—अयि देवि, सत्वरं मे पूरय मनोरथम्। यावदियं न दुर्मनायते सखी।

सीता—(सप्रणयकोपम्।) किमिति दुर्मनायिष्ये।

[किंति दुम्मणायिस्सम्]

लक्ष्मणः—अयि राजहंसकन्यके, किमिति दुर्मनायसे। अयं ते चूतविटपान्तरितः कान्तः।

सीता—हला, कस्यायं करिकलभकण्ठनिर्घोषमधुरः कण्ठशब्दः श्रूयते। तन्निरूपयामः।

[हला, कस्स इमो करिकलहकण्टनिग्घोसमहुरो कण्टसद्दो सुणिअदि। ता णिरूवेह्म।]

रामः—(सविषादम्) कथमियमन्तरितैव लतया। (लतां प्रति)

स्तनविजितस्तबकश्रीरधराधरितप्रवालनवलक्ष्मीः।
अयि लतिके तिरयन्ती तरलदृशं मावलम्बसे लज्जाम्॥ १२॥

(पुनः सहर्षम्)

च, चतुरिमणि, आश्लेषरसिके; (सति), इन्दीवरदृशः, यत्, वपुः, केन, अपि, वयसा, न स्पृष्टम्; तत्, एतत्, पञ्चेषोः, परमम्, मर्म, इह, जयति॥ ११॥

अपक्रान्त इति। बाल्ये = शैशवे, कैशोरे इत्यर्थः, अपक्रान्ते = व्यतीते, तरुणस्य भावस्तरुणिमा तस्मिन् तरुणिमनि = यौवने च, आगन्तुं मनो यस्य सः तस्मिन् आगन्तुमनसि = आयातुमिच्छुके सति, नत्वायाते इति भावः। 'तुं काममनसोरपी'ति मकारलोपः। मुग्धत्वे = सारल्ये, व्यवहारज्ञानाभावे इत्यर्थः, प्रयाते = विगते, च = तथा, चतुरस्य भावश्चतुरिमा तस्मिन् चतुरिमणि=चातुर्ये, व्यवहारज्ञाने इत्यर्थः, आश्लेषरसिके= आश्लेषे-आलिंगने रसिकः=साभिलाषः तस्मिन्, सतीति शेषः, न तु कृताश्लेषे इति भावः, इन्दीवरदृशः—इन्दीवरे = कमले इव दृशौ = नयने यस्यास्तस्याः, कमलायतलोचनायाः इत्यर्थः, यत् वपुः = शरीरम्, केनाऽपि = एकेनापीत्यर्थः, वयसा = अवस्थया, न = नहि, स्पृष्टम् = अधिगतिमिति भावः। तत् = तादृशम्, एतत् = अवलोक्यमानं, सीतावपुः, पञ्चेषोः—पञ्च इषवः = बाणाः यस्य तस्य कामस्येत्यर्थः, परमम् = उत्कृष्टम्, मर्म = रहस्यम्, तत्त्वभूतमिति यावत्, इह = अस्मिन् जगतीतले, जयति = सर्वोत्कर्षेण वर्तते। सीतायाः विलक्षणमतोऽनुपमं कैशोरं वपुः कामोत्तेजकं वर्तते इत्यभिप्रायः। अत्र शिखरिणी वृत्तम्॥ ११॥

सखीति। सत्वरम् = शीघ्रम्, पूरय = सम्पादय। दुर्मनायते = खिद्यते॥

लक्ष्मण इति। राजहंससहचरीमुद्दिश्य लक्ष्मणः कथयति—अयीति। राजहंसकन्यके—राजहंस्य = श्रेष्ठजातिहंसस्य कन्यका = पुत्री तत्सम्बुद्धौ। इयं लक्ष्मणोक्तिः सीतापक्षेऽपि सङ्गच्छते तदा—राज्ञां राजसु वा हंसः = श्रेष्ठः, जनक इत्यर्थः, तस्य पुत्री = सुता तत्सम्बुद्धौ। चूतविटपान्तरितः—चूतस्य = आम्रस्य विटपः = शाखा तेन तत्र वा

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—हे देवि ! मेरी कामना को शीघ्र पूरा करो, जब तक कि (यह) सखी उदास न हो। (अर्थात् मेरी कामना शीघ्र पूरी कर दो ताकि सखी सीता को उदास होने का अवसर न मिले)।

सीता—(प्रेमपूर्वक क्रोध के साथ) (मैं) क्योंकर दुःखी होऊँगी ?

लक्ष्मण—हे राजहंस की पुत्रि ! क्योंकर (तुम) खिन्न हो रही हो ? तुम्हारा प्रिय यह आम के वृक्ष की शाखा से ओझल (छिपा) हुआ है।

सीता—हाथी के बच्चे के कण्ठ की आवाज की तरह मधुर यह किसकी आवाज सुनी जा रही है ? तो (चलकर) देखें।

राम—(खेद के साथ) क्या यह लता से छिप ही गयी ? (लता के प्रति)—

हे लते ! (अपने) स्तनों से जीत ली गयी है पुष्पगुच्छ की शोभा जिसकी ऐसी, अधर (ओष्ठ) से तिरस्कृत कर दी गयी है नवीन पत्रों की शोभा जिसकी ऐसी (तुम) चञ्चल नेत्रोंवाली (इस युवती) को छिपाती हुई लज्जित नहीं हो रही हो ? (अर्थात् जिसने सब प्रकार से तुम्हें पराजित कर दिया है, उसे छिपाती हुई तुम्हें लज्जित होना चाहिये ॥ १२ ॥

(फिर प्रसन्नता के साथ)

अन्तरितः = आच्छादितशरीरः, कान्तः = प्रियः। एकत्र राजहंसपुत्रोऽपरत्र रामो बोद्धव्यः।

सीतेति । करिकलभकण्ठनिर्घोषमधुरः—करेः = हस्तिनः कलभः = शावकः तस्य कण्ठनिर्घोषः = गलध्वनिः तद्वन्मधुरः = मनोहरः, चित्ताकर्षकः इत्यर्थः। निरूपयामः = अवलोकयामः ॥

अन्वयः—अयि लतिके ! स्तनविजितस्तबकश्रीः, अधराधरितप्रवालनवलक्ष्मीः, (त्वम्), तरलदृशम्, तिरयन्ती, लज्जाम्, न, अवलम्बसे ॥ १२ ॥

लतामुपालम्भयन्नाह—**स्तनविजितेति** । अयि लतिके = हे वल्लरि ! अयीत्युपालम्भे । स्तनविजितस्तबकश्रीः—स्तनाभ्याम् विजिता = पराजिता स्तबकानाम् = पुष्पगुच्छानाम् श्रीः = शोभा यस्याः सा, अधराधरितप्रवालनवलक्ष्मीः—अधरेण = निम्नोष्ठेन अधरिता = अधरीकृता प्रवालानाम् = अचिरोद्‌गतपल्लवानाम् नवा = नवीना लक्ष्मीः = कान्तिः यस्याः सा, एतादृशी त्वमिति शेषः, तरलदृशम्—तरले = चञ्चले दृशौ = नेत्रे यस्याः तादृशीम्, तिरयन्ती = आच्छादयन्ती, लज्जाम् = व्रीडाम्, न अवलम्बसे = न अनुभवसि ? सर्वथा पराजितायाः तव सीतासमक्षं व्रीडैवोचिता न तु तस्यास्तिरोधानमिति भाव :। अत्र व्यतिरेकाऽलङ्कारः। गीतिश्छन्दः। छन्दलक्षणं यथा—

"आर्यापूर्वार्द्धसमं द्वितीयमपि भवति यत्र हंसगते ।
छन्दोविदस्तदानीं गीतिंताममृतवाणि भाषन्ते" ॥ १२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

श्यामच्छवीनामियमन्तराले प्रादुर्भवन्ती कदलीदलानाम् ।
कलेव चान्द्री नवनीरदानां चकोरवन्मां मुदितं करोति ॥ १३ ॥

(पुनः कदलीं प्रति)

हे बालहेमलतिके ध्रुवमीहसे त्व-
मूरुश्रियं कलयितुं तरलायताक्ष्याः ।
एनां विलम्बय विलासवतीं चिरं हि
स्त्रीणां कलाः परिचिताः स्थिरतां प्रयान्ति ॥ १४ ॥

सीता—हला, कोऽयं कनकवर्णः शिखण्डिपिच्छमण्डितकर्णपूरो मुग्धत्वविमुक्तलोचनविकारः कुमारो दृश्यते । इमं पश्यन्त्या मम निजवत्स इव वात्सल्यप्रक्षालितं हृदयं वर्तते ।

[हला, को इमो कणअवण्णो सिहण्डिपिच्छमण्डिदकण्णपूरो मुद्धत्तणविमुक्कलोअणविआरो कुमारो दीसदि । इमं पेक्खन्तीए मह णिअवच्छम्मि विअ वच्छत्तणपच्छालिअं हिअअं वट्टदि ।]

अन्वयः—श्यामच्छवीनाम्, कदलीदलानाम्, अन्तराले, प्रादुर्भवन्ती, इयम्, नवनीरदानाम्, अन्तराले, प्रादुर्भवन्ती, चान्द्री, कला, इव, माम्, चकोरवत्, मुदितम्, करोति ॥ १३ ॥

श्यामच्छवीनामिति । श्यामच्छवीनाम्—श्यामा = हरिद्वर्णा छविः = आभा येषां तेषाम्, कदलीदलानाम्—कदल्याः = रम्भायाः दलानि = पत्राणि तेषाम्, अन्तराले = मध्ये, प्रादुर्भवन्ती = निःसरन्ती, इयम् = एषा युवती सीता, नवनीरदानाम्—नवाः = नूतनाः, जलभरिताः इत्यर्थः, ये नीरदाः = पयोदाः तेषाम्, अन्तराले = मध्ये, प्रादुर्भवन्ती = प्राकट्यम् दर्शयन्ती, चन्द्रस्य इयं चान्द्री = चन्द्रसम्बन्धिनी, कला = लेखा, इव = यथा, माम् = रामम्, चकोरवत् = चकोरपक्षिविशेषमिव, मुदितम् = आनन्दितम्, करोति = विदधाति । मेघान्तराले आविर्भवन्ती चन्द्रकला यथा चकोरमानन्दयति तथैवेयं कदलीपत्रान्तराले आविर्भवन्ती मामाह्लादयतीति । अत्रोपमालंकारः । उपजाति वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे बालहेमलतिके ! ध्रुवम्, त्वम्, तरलायताक्ष्याः, ऊरुश्रियम्, कलयितुम्, ईहसे; (अतः), एनाम्, विलासवतीम्, चिरम्, विलम्बय; हि, स्त्रीणाम्, कलाः, परिचिताः, (सत्यः), स्थिरताम्, प्रयान्ति ॥ १४ ॥

कदलीमुपालम्भयन्नाह—हे बालहेमेति । हे बालहेमलतिके—बाला = मृदुला अथ च हेम्नः = सुवर्णस्य सदृशी कान्ती लतिका तत्सम्बुद्धौ, ध्रुवम् = निश्चितम्, त्वम् = भवती, तरलायताक्ष्याः—तरले = चञ्चले आयते = विशाले अक्षिणी = नेत्रे यस्याः तादृश्याः, ऊरुश्रियम्—ऊर्वोः = जघनयोः श्रियम् = सुन्दरताम्, कोमलतां सुवर्णसादृश्य-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

श्याम रंगवाले कदली के पत्तों के बीच में प्रकट होनेवाली यह (युवती सीता), नूतन जल भरे बादलों के मध्य में प्रकट होनेवाली चन्द्रमा की कला की भाँति, मुझको, चकोर की भाँति, आनन्दित कर रही है। (अर्थात् जैसे बादलों के बीच में दिखलाई पड़नेवाली चन्द्रमा की कला चकोर को आनन्दित करती है, उसी तरह कदली-पत्रों में प्रकट होनेवाली यह सीता मुझे आनन्दित कर रही है) ॥ १३ ॥

(फिर केला = कदली के प्रति)

हे कोमल सुवर्णलते ! निश्चय ही तुम चञ्चल तथा विशाल नेत्रोंवाली (सुन्दरी सीता) की जाँघों की सुन्दरता को प्राप्त करना चाहती हो। (इसलिए) इस विलासवती (कामुक स्त्री) को काफी देर तक (अपने पास) रोको; क्योंकि स्त्रियों की कलाएँ सीख ली जाने पर चिरस्थायिनी बन जाती हैं (अर्थात् शीघ्र नहीं भूलती हैं) ॥ १४ ॥

विशेष—केला का वृक्ष (वस्तुतः उसका भीतरी भाग) पीतवर्ण होता है। अतः उसमें सुवर्ण की लता होने का आरोप किया गया है ॥ १४ ॥

सीता—सखि ! सोने के सदृश वर्णवाला, मयूर के पंख से अलंकृत कर्णाभूषण (कान के आभूषण) वाला, भोलेपन के कारण आँख की चञ्चलता से रहित यह कौन कुमार दिखलाई पड़ रहा है ? इसको देखकर मेरा हृदय (उसी तरह) स्नेह से प्रक्षालित (युक्त) हो रहा है जैसे अपने बच्चे के विषयमें होता है।

ञ्चेति भावः, कलयितुम् = प्राप्तुम् , ईहसे = वाञ्छसि; अतः एनाम् = तव सविधे स्थिताम्, विलासवतीम् = कामोद्दीपिकां सुन्दरीं सीताम्, चिरम् = बहुकालं यावत्, विलम्बय = अन्यत्र गमनान्निवारयेत्यर्थः। हि = यतः, स्त्रीणाम् = ललनानाम्, स्त्रीभिरिति शेषः, कलाः = कोमलगुणाः, परिचिताः = अभ्यस्ताः, सत्यः, स्थिरताम् = स्थैर्यम्, प्रयान्ति = प्राप्नुवन्ति। सीता तव समीपे चिरं तिष्ठेत्तर्हि त्वमस्याः उर्वोः मार्दवमाकृतिसौष्ठवञ्च कलयितुं पारयेरिति भावः। अत्रोत्प्रेक्षाऽर्थान्तरन्यासप्रतीपालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्। वृत्तलक्षणं यथा;—

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ १४ ॥

सीतेति। कनकवर्णः = सुवर्णवर्णाभः, शिखण्डिपिच्छमण्डितकर्णपूरः—शिखण्डिनः = मयूरस्य पिच्छेन = बर्हेण मण्डितः = अलंकृतः कर्णपूरः = कर्णाभूषणं यस्य तादृशः, मुग्धत्वविमुक्तलोचनविकारः—मुग्धत्वेन = प्रौढताऽभावेन, बालभावेनेत्यर्थः, (कारणेन) विमुक्तः = त्यक्तः लोचनयोः = नेत्रयोः विकारः = भङ्गिः, लोचनवक्रतेति यावत्, येन तादृशः। बाल्येनास्मिन् प्रौढविकारा न आयाता इति भावः। निजवत्स इव = निजपुत्र इव, वात्सल्यप्रक्षालितम्—वात्सल्येन = स्नेहेन प्रक्षालितम् = धौतम्, व्याप्तमिति भावः। 'निजवत्स इव वात्सल्यप्रक्षालितं हृदयं वर्तते' अनया सीतोक्त्या तस्याः भाविनी भक्तिपात्रता सूच्यते। परञ्चेयमुक्तिस्तस्याः अस्वाभाविकी कौमार्यभावात् पुत्रस्नेहस्याननुभूतत्वाच्चेति दिक् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः— अये, केयमस्यां सुमित्रायामिव मे सुचिरप्रवृत्ता चित्तवृत्तिः ।

सीता—हला, इमं कुमारं विलोकयन्त्या मम वत्सोर्मिला चित्तमारोहति ।

[हला, इमं कुमारं पुलोअन्तीए मह वच्छा उम्मिला चित्तमारुहदि ।

सखी—(विहस्य) नूनमयं कस्यचिद्वत्सशब्दलालनीयो भविष्यति । यं विलोकयन्त्या मे त्वमपि चित्तवृत्तिमारोक्ष्यसि । तत्पृच्छामि तावदेनम् । (परिक्रम्य) अये राजकुमार, कः खलु भवान् । यस्त्वमेक एव मुग्धतयापरिशीलितास्वपि वनभूमिषु विहरसि ।

लक्ष्मणः— धिङ् मूर्खे, कथं मामग्रजेन परिसरवर्तिना रामचन्द्रेण नाथवन्तमप्येकाकिनमपदिशसि ।

सखी—(सहर्षम्) कुसुमितस्तदधुना मे मनोरथद्रुमः ।

सीता—हला, किमत्रास्माकम् । तदेहि । निजगृहमेव व्रजामः । (किंचित्परिक्रम्य पुनर्व्यावृत्य) हला, एक विस्मृतास्मि । ननु स सहकारपादपोऽवलोकनीयो यस्य वासन्त्या लतया सह संगममभिलषन्ति ममाम्बाः । (इत्युभे परिक्रामतः)

[हला, किमेत्थ अह्माणं । ता एहि । णिअघरं जेव्व वज्जह्म । हला, एक्कं विसुमरिदह्मि । णं सो सहआरपादवो अवलोअणीओ जस्स वासन्दीलदाए सह संगमं अहिलसन्ति मह अम्बाओ ।]

रामः—(सहर्षम्)

> मन्मनःकुमुदानन्दशरत्पार्वणशर्वरी ।
> अहो इयमितो नूनं पुनरप्यभिवर्तते ॥ १५ ॥

लक्ष्मण इति । सुचिरप्रवृत्ता—सुचिरम् = अत्यधिकम् प्रवृत्ता = संलग्ना, आकृष्टेति यावत् । चित्तवृत्तिः = मनोव्यापारः । मातरीवास्यां मदीयं हृदयं भक्तिप्रवणं जायते इति भावः । सद्यो मुक्तशैशवावस्थां प्रायःसमवयस्कायां मातृभक्तिप्रदर्शनमुपहासास्पदमेवेति । एवमग्रेऽपि यत्र तत्र बोध्यम् ॥

सखीति । वत्सशब्दलालनीयः—वत्सशब्देन लालनीयः = स्नेह्यः । अपरिशीलितासु = अपरिचितासु ॥

लक्ष्मण इति । अग्रजेन = ज्येष्ठभ्रात्रा, परिसरवर्तिना—परिसरे = समीपे वर्तते = अस्ति यः स तेन, निकटस्थितेनेत्यर्थः, नाथवन्तम् = रक्षितारम्, सनाथमिति यावत्, एकाकिनम् = असहायम् ॥

सखीति । कुसुमितः = सञ्जातपुष्पः, फलितुमग्रेसरः इत्यर्थः, मनोरथद्रुमः—मनोरथः = अभिलाषा एव द्रुमः = वृक्षः । सम्प्रति मे अभिलाषापूर्तिसम्भावना जातेति तात्पर्यम् ॥

अन्वयः—अहो ! मन्मनःकुमुदानन्दशरत्पार्वणशर्वरी, इयम्, नूनम्, पुनरपि, इतः, अभिवर्तते ॥ १५ ॥

सीतायाः पुनरागमनं वर्णयन्नाह—मन्मन इति । अहो = हर्षसूचकमव्ययमिदम्, मन्मनःकुमुदानन्दशरत्पार्वणशर्वरी—मम = मदीयमित्यर्थः मनः = चेतः एव

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः—अरे ! यह कौन हैं ? इनमें मेरा अन्तःकरण सुमित्रा की तरह अत्यधिक आकृष्ट हो रहा है। (अर्थात् जैसे मेरा अन्तःकरण माँ सुमित्रा की ओर स्वभावतः आकृष्ट होता है वैसे ही इनकी ओर भी आकृष्ट हो रहा है)।

सीता—सखि ? इस कुमार को देखकर मेरे चित्त में वत्सा उर्मिला की याद आ रही है।

सखी—(हँस कर) निश्चय ही, यह (भी) किसी के 'वत्स' कह कर पुकारे जानेवाले व्यक्ति होंगे। जिसको देखने पर मुझे भी तुम याद आओगी। अच्छा, पूछूँ तो इनसे। (घूम कर) राजकुमार, आप कौन हैं ? जो कि भोलेपन के कारण अकेले ही अपरिचित भी वनभूमियों में विचरण कर रहे हैं।

विशेष—सीता ने लक्ष्मण को देख कर कहा है कि इन्हें देखकर वत्सा उर्मिला की याद मुझे आ रही है। उनके कहने का भाव यह है कि इस राजकुमार की और उर्मिला की जोड़ी बहुत अच्छी है। इन दोनों का विवाह बहुत ही सुन्दर होगा। सीता के कथन को सुन कर उनकी सखी ने जो कुछ कहा है उसका भी अभिप्राय यही है कि जैसे इस राजकुमार की और उर्मिला की जोड़ी तुम्हें जच रही है उसी तरह अवश्य ही कोई इसका बड़ा भाई होगा और उसकी तथा तुम्हारी भी जोड़ी बहुत ही सुन्दर होगी।

लक्ष्मण—धिक् मूर्खे ! समीप में ही स्थित बड़े भाई रामचन्द्र के द्वारा सुरक्षित भी मुझको कैसे (तुम) अकेला कह रही हो ?

सखी—(प्रसन्नता के साथ) तो अब मेरा मनोरथ रूप वृक्ष पुष्पित हो उठा (अर्थात् अब मेरी इच्छा पूरी होती हुई-सी दिखलाई पड़ रही है)।

सीता—सखि ! इसमें हमारा क्या (प्रयोजन है) ? तो आओ, अपने घर ही चलें। (कुछ घूमकर तथा पुनः लौट कर) सखि ! एक (बात तो) भूल ही गई। अरे, वह आम का वृक्ष देखना है, जिसका सङ्गम (मिलन) वासन्ती लता के साथ मेरी माताएँ चाहती हैं। (ऐसा कह कर दोनों घूमती हैं)

विशेष—वस्तुतः सीता आम्रवृक्ष को नहीं किन्तु रामचन्द्र को देखने के लिए लौट रही है। आम्रवृक्ष को देखने की बात तो एक बहानामात्र है।

राम—(प्रसन्नतापूर्वक)

अहा ! मेरे मन रूप कुमुद को प्रफुल्लित करने के लिए शरद् ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि के समान यह (राजकुमारी) निश्चय ही फिर से इधर ही आ रही है ॥ १५ ॥

विशेष—यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि कुमुद शरद् ऋतु की रात्रि में ही विकसित होते हैं। उनके विकास की पूर्ण छटा शरद् ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि में ही देखी जा सकती है ॥ १५ ॥

कुमुदम् = कैरवम् तस्य आनन्दे = विकाशे शरदः = शरदृतोः पार्वणशर्वरी = पौर्णमासी-रात्रिः, इयम् = एषा, सीतेत्यर्थः, नूनम् = निश्चयम्, पुनरपि = मुहुरपि, इतः = अस्यां दिशि, अभिवर्तते = आगच्छति। अत्र परम्परितरूपकमलंकारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(निर्वर्ण्य)

वहत्यस्या दृष्टिर्विकचनवनीलोत्पलतुला-
मखण्डस्याभिख्यां वदनमिदमिन्दोः कलयति ।
कुचौ किञ्चिन्मीलत्कमलतुलनां कन्दलयत-
स्तमःशोभां चित्रां चिकुरनिकुरम्बं हि कुरुते ।। १६ ।।

सखी—एष सहकारपादपः, इयं च वासन्ती लता । (इति तदन्तिकमनुसरतः)

रामः—कथमिमे मे परिसरमनुसरतः । तत्किञ्चिदपसरामि तावत् ।

सखी—(सहकारशाखां करे धृत्वा । सकौतुकम् ।) हला, पश्य पश्य । एतैर्नखशिखाविलिखितैः कोमलदलैः संभाव्यते यत्किलेयं चूतलता केनापि विदग्धेन निजहस्तेन संभावितेति । अथवा निजचापलताशङ्कितेन स्वयं मन्मथेनैवेति ।

[हला, पेक्ख पेक्ख । इमेहिं नहसिहाविलिहिदेहिं कोमलदलेहिं संभावीअदि जं किर इअं चूदलदा केणावि विदद्धेण णिअहत्थेण संभाविदेत्ति । अहवा णिअचावलदासङ्किदेण सअं मम्महेणेव्वेत्ति ।]

रामः—इत्थं संभावयति भवती । मम पुनरन्यथा वितर्कः ।

अन्वयः—अस्याः, दृष्टिः, विकचनवनीलोत्पलतुलाम्, वहति; इदम्, वदनम्, अखण्डस्य, इन्दोः, अभिख्याम्, कलयति; कुचौ, किञ्चिन्मीलत्कमलतुलनाम्, कन्दलयतः; चिकुरनिकुरम्बम्, चित्राम्, तमःशोभाम्, कुरुते ।। १६ ।।

पुनः सीतां वर्णयन्नाह—वहत्यस्या इति । अस्याः = सीतायाः, दृष्टिः = लोचनम्, जातौ एकवचनम्, विकचनवनीलोत्पलतुलाम्—विकचम् = प्रफुल्लम् नवम् = नूतनम् यत् नीलोत्पलम् = नीलकमलम् तस्य तुलाम् = समानताम्, वहति = धारयति । सीतायाः लोचने विकसितनीलकमलवत् सुन्दरे विशाले च स्तः । वदनम् = अस्याः मुखम्, अखण्डस्य = समग्रस्य सकलकलस्येत्यर्थः, इन्दोः = चन्द्रस्य, अभिख्याम् = शोभाम् ('अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः) कलयति = धारयति । पूर्णचन्द्रनिभमस्याः मुखमिति भावः । कुचौ = स्तनौ, किञ्चिन्मीलत्कमलतुलनाम्—किञ्चित् = ईषत् मीलतोः = मुकुलितयोः कमलयोः = उत्पलयोः तुलनाम् = समानताम्, कन्दलयतः = प्राप्नुतः । अनेन सीतास्तनयोर्मूले विस्तारोऽग्रे तीक्ष्णता च निर्दिष्टा । चिकुरनिकुरम्बम्—चिकुराणाम् = केशानाम् निकुरम्बम् = कदम्बकम्, केशपाशः इत्यर्थः, चित्राम् = विलक्षणाम्, तमःशोभाम्—तमसः = अन्धकारस्य शोभाम् = सौन्दर्यम्, कुरुते = विस्तारयतीत्यर्थः । सीतायाः केशपाशो निविडः कृष्णवर्णश्चेति भावः । हीति निश्चये पादपूर्तौ वा । दृष्ट्यादीनां स्वातन्त्र्येण वर्णनान्नकाप्यसङ्गतिरिति । अत्र उपमाऽलंकारः । शिखरिणी वृत्तम् । वृत्तलक्षणं यथा—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।। १६ ।।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(ध्यान से देख कर)—

इसकी (ये) आँखें विकसित नवीन नीलकमल की समानता को धारण करती हैं, यह मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की शोभा को प्राप्त करता है; दोनों स्तन थोड़ा खिले हुए कमल की समानता को धारण करते हैं, केशों का समूह (केशपाश) विचित्र अन्धकार की शोभा को प्रकट कर रहा है (अर्थात् सीता की आँखें खिले हुए नीलकमल की तरह विशाल एवं सुन्दर हैं; मुख पूर्णिमा के चाँद के समान मनोहर है; स्तन खिलती हुई कमल की कली के समान उभरे हुए तथा चित्ताकर्षक हैं; केश अँधेरे के समान एकदम काले-काले हैं) ॥ १६ ॥

सखी—यह आम का वृक्ष है और यह (है) वासन्ती लता। (ऐसा कह कर उनके पास जाती हैं)

राम—क्या ये दोनों हमारे पास आ रही हैं? तो अब (मैं यहाँ से) जरा हट जाता हूँ।

सीता—(आम की डाल को हाथ से पकड़ कर, मजाक के साथ)

सखि! देखो, देखो। नाखून के अग्रभाग से खरोंचे गये इन कोमल पत्तों से मालूम पड़ता है कि यह आम्रलता किसी रसिक व्यक्ति के द्वारा अनुगृहीत की गई है (छुई गई है) अथवा अपनी धनुर्लता की आशंका से (यह) स्वयं कामदेव के द्वारा ही (पकड़ कर अनुगृहीत की गई है)।

राम—यह (ऐसा) विचार करती हैं। किन्तु मेरी (तो) दूसरे ही प्रकार की कल्पना है।

सखीति। तदन्तिकम्—तयोः = माधवीलताऽऽम्रवृक्षयोः अन्तिकम् = पार्श्वभागम्, अनुसरतः = आगच्छतः इत्यर्थः ॥

राम इति। परिसरम् = प्रान्तभूमिम्, समीपमित्यर्थः। अपसरामि = दूरं गच्छामि।

सीतेति। सहकारशाखाम्—सहकारस्य = आम्रवृक्षस्य शाखाम् = विटपम्; सकौतुकम् = सविनोदम्। नखशिखाविलिखितैः—नखानाम् = नखराणाम् शिखाभिः = अग्रभागैः विलिखितैः = चिह्नितैः, कोमलदलैः = नवीनपत्रैः, किसलयैरिति यावत्, सम्भाव्यते = ज्ञायते, विदग्धेन = रसिकजनेन, सम्भाविता = सत्कृता, गृहीतेति यावत्। निजचापलताशंकितेन—निजा = स्वकीया या चापलता = धनुर्लता, नमनीयत्वेन धनुषि लतात्वारोपः, तस्याः आशंकितेन = आशंकायुक्तेन, भ्रमयुक्तेनेत्यर्थः, मन्मथेन = मदनेन ('मदनो मन्मथो मारः' इत्यमरः)।

राम इति। सम्भावयति = उत्प्रेक्षते। अन्यथा = भिन्नप्रकारेण वितर्कः = कल्पना, अस्तीति शेषः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मत्वा चापं शशिमुखि निजं मुष्टिना पुष्पधन्वा
तन्वीमेनां तव तनुलतां मध्यदेशे बभार ।
यस्मादत्र त्रिभुवनवशीकारमुद्रानुकारा-
स्तिस्रो भान्ति त्रिवलिकपटादङ्गुलीसन्धिरेखाः ॥ १७ ॥

सखी—भर्तृदारिके, इयं वासन्ती लता । इदं च पश्य;—

वासन्तीरसबिन्दुं सुन्दरमिन्दिन्दिरा इह चरन्ति ।
चिरमन्दिरमरविन्दं मन्दं मन्दं परिहरन्ति ॥ १८ ॥

(सीता तदेव पठति ।)

रामः—किमिदानीं लतान्तरवर्णनया । नन्वियमेव —

निर्मुक्तशैशवदशा-शिशिरा नवीन-
सम्प्राप्तयौवनवसन्तमनोरमश्रीः ।
उन्मीलितस्तननवस्तबका निकाम-
मेणीदृशस्तनुलता तनुते मुदं नः ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे शशिमुखि ! पुष्पधन्वा, तन्वीम्, एनाम्, तव, तनुलताम्, निजम्, चापम्, मत्वा, मुष्टिना, मध्यदेशे, बभार; यस्मात्, अत्र, त्रिवलिकपटात्, त्रिभुवन-वशीकारमुद्रानुकाराः, तिस्रः, अंगुलीसन्धिरेखाः, भान्ति ॥ १७ ॥

चूतलतिकायां मन्मथस्य न निजचापभ्रान्तिरपितु तव शरीरलतायामित्याश-येनाह—मत्वेति । हे शशिमुखि—शशीव = चन्द्रः इव मुखम् = आननम् यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, हे चन्द्राननेत्यर्थः, पुष्पधन्वा—पुष्पम् = प्रसूनम् धनुः = चापः यस्य सः, काम इत्यर्थ, तन्वीम् = अतिकृशाम्, एनाम् = अत्रोपस्थिताम्, तव = भवत्याः, तनु-लताम् = शरीरयष्टिम्, निजम् = स्वकीयम्, चापम् = धनुः, मत्वा = ज्ञात्वा, मुष्टिना = संपिण्डितेन हस्तेनेत्यर्थः, मध्यदेशे = मध्यभागे, कटिप्रदेशे इत्यर्थः, बभार = विधृतवान् । अमुमेवार्थं समर्थयतीति यस्मादिति—यस्मात् = येन कारणेनेत्यर्थः, अत्र = तव शरीरे, त्रिवलिकपटात्—त्रिवलीनां = कपटात्, मिषात् उदरस्य कृशत्वज्ञापनार्थं त्रिवल्युल्लेखः, त्रिभुवनवशीकारमुद्रानुकाराः—त्रिभुवनस्य = त्रिलोक्याः वशीकारस्य = स्वाधीनतासम्पाद-नस्य मुद्राः = प्रयोगचिह्नानि तासाम् अनुकाराः = अनुरूपाः, तिस्रः = त्रिसंख्याकाः, अंगुलीसन्धिरेखाः—अंगुलीनाम् = करशाखानाम् सन्धयः = मिलनभागाः तेषां रेखाः = लेखाः, चिह्नानीत्यर्थः, भान्ति = शोभन्ते । अत्र प्रथमार्द्धे भ्रान्तिमानलंकारः, उत्तरार्द्धे त्वपह्नुतिः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥' १७ ॥

अन्वयः—इह, इन्दिन्दिराः, सुन्दरम्, वासन्तीरसबिन्दुम्, चरन्तिः चिरमन्दिरम्, अरविन्दम्, मन्दम्, मन्दम्, परिहरन्ति ॥ १८ ॥

वासन्तीलतासु आकृष्टान् भ्रमरान् वर्णयन्नाह—वासन्तीति । इह = अस्मिन् प्रदेशे, इन्दिन्दिराः = भ्रमराः, सुन्दरम् = मनोहरम्, निर्मलमित्यर्थः, वासन्तीरसबिन्दुम्—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हे चन्द्रमुखि, कामदेव ने पतली इस तुम्हारी शरीरलता को (लता के समान पतले शरीर को) अपना धनुष समझ कर (अपने हाथ की) मुट्ठी से (शरीर के) बीचोबीच पकड़ लिया; जिस कारण से इस (शरीर) में, उदर की रेखाओं के बहाने से, तीनों लोकों को वश में करने की मुद्राओं के समान, तीन अंगुलियों के बीच की रेखाएँ उभर आई हैं ॥ १७ ॥

सखी—स्वामिपुत्रि, यह वासन्ती लता है। और यह भी देखें—

यहाँ भौंरे सुन्दर, वासन्तीलता के रस की बूँद को पी रहे हैं, (और) बहुत दिनों के (अपने) आश्रय-स्थल कमल को धीरे-धीरे छोड़ते जा रहे हैं ॥ १८ ॥

(सीता (भी) वही कहती हैं)

राम—सम्प्रति दूसरी लता के वर्णन से क्या (लाभ)? अरे, यह—

बाल्यकालरूप शिशिरऋतु को व्यतीत करनेवाली, हाल में ही प्राप्त यौवनरूप वसन्त की मनोहारिणी शोभा से सम्पन्न, उठनेवाले स्तन रूप पुष्प-गुच्छ से युक्त, मृगनयनी (सीता) की (यह) देहलता (ही) हमारे हर्ष को पर्याप्तरूप से बढ़ा रही है ॥ १९ ॥

वासन्त्याः = माधवीलतायाः रसबिन्दुम् = मकरन्दपृषतम्, चरन्ति—पिबन्ति; अतः निरमन्दिरम् = चिरकालवासस्थानम्, अरविन्दम् = कमलम्, मन्दं मन्दम् = शनैः शनैः, परिहरन्ति = त्यजन्ति। नूतनागतस्वादतत्परता दृश्यते प्राणिलोके इति भ्रमराणां वासन्त्यामनुरागातिशयः। अत्र वृत्त्यनुप्रासो नामशब्दालंकारः। वृत्तमत्र आर्या जातिः ॥ १८ ॥

अन्वयः—निर्मुक्तशैशवदशाशिशिरा, नवीनसम्प्राप्तयौवनवसन्तमनोरमश्रीः, उन्मीलितस्तननवस्तबका, एणीदृशः, (एषा), तनुलता, नः, मुदम्, निकामम्, तनुते ॥ १९ ॥

सीतायाः शरीरलतां वर्णयन्नाह—**निर्मुक्तेति**। निर्मुक्तशैशवदशाशिशिरा—निर्मुक्ता—परित्यक्ता, व्यतीतेत्यर्थः, शैशवदशा = बाल्यावस्था एव शिशिरः = शिशिरर्तुः यस्याः सा, नवीनसम्प्राप्तयौवनवसन्तमनोरमश्रीः—नवीनम्=नूतनम् सम्प्राप्तम्=अधिगतम् यौवनम् = युवावस्था एव वसन्तः = ऋतुराजः तस्य मनोरमा=चित्तहारिणी श्रीः = शोभा यस्यां सा, उन्मीलितस्तननवस्तबका—उन्मीलितौ = उद्गतौ स्तनौ = कुचौ एव नवौ = नवीनौ स्तबकौ = पुष्पगुच्छौ यस्याः सा, एणीदृशः—मृगनयनायाः, सीतायाः इत्यर्थः, एषा तनुलता = देहवल्ली, नः = अस्माकम्, मुदम् = हर्षम्, निकामम् = अत्यर्थं, यथा स्यात्तथा, तनुते = विस्तारयति। व्यतीते च शिशिरे प्राप्ते च वसन्ते यथा प्राप्तयौवना लता पुष्पगुच्छैः चेतः प्रसादयति, तथैव व्यपगतशैशवा समागतयौवनेयं सीता अचिरोद्गताभ्यां स्तनाभ्यां शोभितया स्वशरीरलतयाऽस्माकं मनो विकासयतीति तात्पर्यम्। अत्र परम्परितरूपकमलङ्कारः। वसन्ततिलका च वृत्तम् ॥ १९ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—भर्तृदारिके, पश्य। इयमसौ वासन्ती लता स्वयमेव सहकारपोतमालिङ्गितुं पुरःसरति।

सीता—(सप्रणयकोपम्) अये अलीकजल्पिनि, इदानीं तव परिसरं परिहृत्यान्यत्र गमिष्यामि।

[अये अलिअजप्पिणि, दाणिं तुह परिसरं परिहरिअ अण्णदो गमिस्सम्।]

रामः—

अमलमृणालकाण्डकमनीयकपोलरुचे
स्तरलसलीलनीलनलिनप्रतिफुल्लदृशः।
विकसदशोकशोणकरकान्तिभृतः सुतनो-
र्मदलुलितानि हन्त ललितानि हरन्ति मनः॥ २०॥

सीता—(विलोक्य सकौतुकम्। अहो,

विकसितपेशलोत्पलोत्पलाशपुञ्जश्यामलो
महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोमकोमलः।
लतागृहे कोऽयमनङ्गरूपखण्डनो
विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः॥

[अम्मो,

[विसट्टपेसलुप्पलुप्पलासपुञ्जसामलो
महेससोम्मसेहरप्फुरन्तसोमकोमलो।
लदाघरम्मि को इमो अणङ्गरूअखण्डणो
विलोअणाण देइ मे सुहं सिहण्डमण्डणो॥ २१॥]

सखीति। सहकारपोतम्—सहकारस्य = आम्रस्य पोतम् = लघुवृक्षम्। पुरःसरति = अग्रे गच्छति। स्त्रीणां स्वयं कान्ताभिमुखपरिसरणं कामप्राबल्यद्योतकमिति। वस्तुतः सखी लताव्याजेन सीतामुपहसतीति कविहृदयम्॥

सीतेति। अलीकजल्पिनि—अलीकम् = असत्यम् जल्पति = बहु वदतीति तच्छीला तत्सम्बुद्धौ। परिसरम् = प्रान्तभूमिम्, सामीप्यमिति यावत्॥

अन्वयः—हन्त! अमलमृणालकाण्डकमनीयकपोलरुचेः, तरलसलीलनीलनलिनप्रतिफुल्लदृशः, विकसदशोकशोणकरकान्तिभृतः, सुतनोः, मदलुलितानि, ललितानि, मनः, हरन्ति॥ २०॥

सीतायाः सौन्दर्यं वर्णयन्नाह—अमलमृणालेति। हन्त = प्रसन्नतासूचकमिदमव्ययपदम्, अमलमृणालकाण्डकमनीयकपोलरुचेः—अमलः = स्वच्छः यः मृणालस्य = विसस्य ('मृणाले तु विसं विशम्' इति द्विरूपकोशः) काण्डः = दण्डः तद्वत् कमनीया = मनोज्ञा कपोलयोः = गण्डयोः ('गण्डौ कपोलौ' इत्यमरः) रुचिः = आभा यस्याः सा तस्याः, तरलसलीलनीलनलिनप्रतिफुल्लदृशः—तरले = चञ्चले सलीले = सविलासे ये नीले = नीलवर्णे नलिने = कमले इव प्रतिफुल्ले = विकसिते दृशौ = नेत्रे यस्याः सा तस्याः, विकसदशोकशोणकरकान्तिभृतः—विकसन् = विकाशं गच्छन् यः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—स्वामिपुत्रि, देखिए। वही यह वासन्ती लता आम के छोटे से वृक्ष को आलिङ्गित करने के लिए स्वयं ही आगे बढ़ रही है।

विशेष—सखी लता के बहाने से रामचन्द्र की ओर सीता के जाने की बात पर मजाक उड़ा रही है। और यही सत्य भी है कि सीता वासन्ती लता को नहीं बल्कि रामचन्द्र को ही देखने के लिए आगे बढ़ रही है। यही कारण है कि वे सखी की बात के रहस्य को समझ कर बनावटी रूप से उस पर नाराज हो उठती हैं।

सीता—(प्रेम भरे क्रोध के साथ) व्यर्थ बकवास करनेवाली, अब तुम्हारे साथ को छोड़कर (मैं) अन्यत्र चली जाती हूँ।

राम—वाह ! स्वच्छ भिसाड़ (कमल की जड़) के टुकड़े के समान मनोहर गालोंवाली, चञ्चल तथा विलासपूर्ण नीले कमलों के सदृश विकसित नेत्रों से सम्पन्न, खिलते हुए अशोक (पुष्प) के तुल्य लाल रङ्ग की हाथों की शोभा को धारण करनेवाली सुन्दरी (सीता) की मदभरी श्रृङ्गार-चेष्टाएँ मन को लुभा लेती हैं ॥ २० ॥

सीता—(देखकर, उत्कण्ठा के साथ)।

खिले हुए सुन्दर नीले कमल के पत्रों के समूह के समान श्याम, शङ्कर के सुखद शेखर में प्रकाशित चन्द्रमा के समान कोमल, कामदेव के स्वरूप को मात देनेवाला, मयूर के पंख की कलगी लगाये हुए, लता-भवन में (विराजमान) यह कौन (पुरुष) मेरे नेत्रों को आनन्दित कर रहा है ? ॥ २१ ॥

अशोकः = वञ्जुलः ('वकुलो वञ्जुलोऽशोके' इत्यमरः) तद्वत् शोणा=अरुणा करयोः= हस्तयोः कान्तिः = शोभा तां बिभर्ति = धारयति इति तस्याः, सुतनोः = कमनीयशरीरायाः, सीतायाः इत्यर्थः, मदलुलितानि—मदेन = यौवनभावेन लुलितानि = भरितानि, ललितानि = विलासाः, श्रृङ्गारचेष्टाः इत्यर्थः, ('विलासविब्बोकविभ्रमा ललितं तथा' इत्यमरः), मनः = चेतः, हरन्ति = आकर्षन्ति। अत्रोपमाऽलङ्कारः। नर्दटकं वृत्तम्: तल्लक्षणं यथा—

'यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्दटकम् ॥' २० ॥

अन्वयः—विकसितपेशलोत्पलोत्पलाशपुञ्जश्यामलः, महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोमकोमलः, अनङ्गरूपखण्डनः, शिखण्डमण्डनः, लतागृहे, अयम्, कः, मे, विलोचनयोः, सुखम्, ददाति ॥ २१ ॥

सीता रामस्य सौन्दर्यं वर्णयन्त्याह—विकसितेति। विकसितेत्यादिः—विकसितानि= प्रफुल्लानि पेशलानि = चारूणि ('चारौ दक्षे च पेशल' इत्यमरः) यानि उत्पलानि = नीलकमलानि तेषमुत् पलाशाः = उत्पत्राणि तेषां पुञ्जः = समूहः तद्वत् श्यामलः=श्यामवर्णः, महेशसौम्येत्यादिः—महेशस्य = शिवस्य सौम्यः = सुन्दरः यः शेखरः = मौलिः तस्मिन् स्फुरन्=प्रकाशमानः यः सोमः = चन्द्रः तद्वत् कोमलः = मृदुगात्रः, अनङ्गरूपखण्डनः— अनङ्गस्य = कामस्य रूपम् = सौन्दर्यमित्यर्थः तस्य खण्डनः = अतिशयिता, ततोऽप्यधिकसुन्दर इत्यर्थः, शिखण्डमण्डनः – मयूरपिच्छाधारी, लतागृहे = लतामण्डपे, अयम् = एषः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—भर्तृदारिके, कथय कथं लतालोकनाद्विरतासि ।

(सीतानाकर्णितकेन तदेव पञ्चमस्वरं पठति ।)

सखी—(उपसृत्य) कथमियमन्यचित्तेव लक्ष्यते । क्व पुनश्चित्तमस्याः । (रामं दृष्ट्वा । साकूतम् ।) अये, इदमस्याश्चित्तगजबन्धनालानम् । (पुनः सीतां हस्ते धृत्वा) भर्तृदारिके, प्रणयमधुरोऽपि सखीजनः किमवधीर्यते । अथवोचितमिदम् । अधुना हि तवायं हृदयमधिवसति ।

सीता—(स्वगतम्) कथमवगतास्म्यनया । (इति लज्जां नाटयति ।)

[कहं अवगदह्मि इमाए ।]

सखी—(स्वगतम्) कथमियं लज्जते । तदन्यतो नयामि । (प्रकाशम्) कथमद्यापि हृदयं न मुञ्चति ते प्रणयकोपः ।

सीता—(स्वगतम्) कोपमुद्दिश्यानया भणितं न पुनरिमम् । (प्रकाशम्) हला, कथं तुभ्यं कुपिष्यामि । केवलमन्यचित्ततया न संभावितासि ।

[कोवमुद्दिसिअ इमाए भणिदं ण उण इमम् । हला, कहं तुह कुविस्सं । केवलमण्णचित्तदाए ण संभाविदासि ।]

सखी—क्व तर्हि दत्तचित्तासि ।

सीता—आरामे ।

[आराममि ।]

सखी—(विहस्य) अहो ते चातुर्यं यत आकारप्रकटनेनैवाकारगुप्तिं कृतवत्यसि ।

(सीता सलज्जमधोमुखी तिष्ठति)

कः = कः युवा, मे = मम, सीतायाः इत्यर्थः, विलोचनयोः = नेत्रयोः, मुखम् = आनन्दम्, ददाति = वितरति । नीलोत्पलदलश्यामश्चन्द्र इव सौम्यः कामादप्यधिकमनोज्ञः कः एव मे चेत आनन्दयतीति भावः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । पञ्चचामरं वृत्तम्; तल्लक्षणं यथा—

'प्रमाणिका पदद्वयं वदन्ति पञ्चचामरम् ॥' २१ ॥

सखीति । भर्तृदारिके = स्वामिपुत्रि, लतालोकनात्—लतायाः = वल्ल्याः आलोकनात् = दर्शनात्, विरता = विश्रान्ता ॥

सखीति । अन्यचित्ता— अन्यस्मिन् = अपरस्मिन् चित्तम् = चेतः यस्याः सा, अन्यत्र दत्तावधानेत्यर्थः । चित्तगजबन्धनालानम्—चित्तम् = हृदयम् एव गजः = हस्ती तस्य बन्धनाय = संयमनाय आलानम् = बन्धनस्तम्भः ('आलानं बन्धनस्तम्भे' इत्यमरः), चित्ताकर्षकः इत्यर्थः । प्रणयमधुरः—प्रणयेन = प्रेम्णा मधुरः = स्निग्धः । अवधीर्यते = तिरस्क्रियते । तवायं हृदयमधिवसति—यतोऽयं तव हृदये निवसन् तव

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखी—स्वामिपुत्रि, बतलाइए, लता को देखने से रुक क्यों गयी हैं ?

(सीता न सुनने का अभिनय करती हुई उसी को पञ्चम स्वर से पढ़ती है)

सखी—(पास में जाकर) क्यों यह अन्यमनस्क-सी मालूम पड़ रही है ? तो इसका मन कहाँ पर (है) ? (राम को देखकर अभिप्रायपूर्वक) अरे, यह इसके चित्तरूपी हाथी के बन्धन-स्तम्भ हैं (अर्थात् यह इसके चित्त को आकृष्ट करनेवाले व्यक्ति हैं) । (फिर सीता को हाथ से पकड़कर) राजकुमारि, प्रेम के कारण मधुर सखी भी क्या तिरस्कृत की जाती है ? अथवा यह ठीक (भी) है, क्योंकि सम्प्रति यह तुम्हारे हृदय में निवास करते हैं । (अतः तुम्हारे व्यवहारों पर तुम्हारा नहीं बल्कि इनका अधिकार है) ।

सीता—(अपने आप) क्या इसके द्वारा समझ ली गयी हूँ (अर्थात् क्या इसने मेरे भावों को समझ लिया है) ? (ऐसा सोचकर लज्जा का अभिनय करती है ।)

सखी—क्या यह लज्जित हो रही है ? तो इसको दूसरी ओर ले चलती हूँ (अर्थात् इसका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करती हूँ)। (प्रकट रूप में) क्या अभी भी प्रणयकोप तुम्हारे हृदय को नहीं छोड़ रहा है ?

सीता—(अपने आप) कोप के विषय में इस (सखी) के द्वारा कहा गया है न कि इनके (विषय में) । (प्रकटरूप में) सखि, कैसे तुम पर क्रुद्ध होऊँगी । केवल दूसरी ओर मन लग जाने के कारण तुम्हारा सम्मान नहीं किया गया (अर्थात् तुम्हारी बातों का जवाब नहीं दिया गया) ।

सखी—तो कहाँ (अपने) चित्त को लगायी हैं ?

सीता—आराम (बगीचा) में ।

सखी—(हँसकर) वाह, तुम्हारी चतुरता ! जो कि 'आ' (इस) अक्षर को कहकर (तुमने) अपने आकार (वास्तविक स्वरूप) को ही छिपा लिया है ।

(सीता लज्जापूर्वक नीचे की ओर मुँह करके खड़ी रहती है)

विशेषः—वस्तुतः सीता का मन तो रामचन्द्र में लगा हुआ है । किन्तु सखी के पूछने पर उन्होंने 'राम में मेरा मन लगा हुआ है' ऐसा न कहकर 'आराम में मेरा मन लगा हुआ है'—ऐसा कह दिया है । किन्तु सखी तो पुरानी उस्ताद ठहरी । उसने मजाक में कह ही दिया कि—वाह ! तुम कितनी चालाक हो जो कि (राम के पहले) 'आ' लगाकर अपने असली रूप को छिपा ली हो ।

राज्यं करोति. अतः सर्वेषु व्यवहारेषु अयमेवोत्तरदायी न त्वमतो नायं तव दोष इति भावः ।

सीतेति । इमम् = हृदयाकर्षकं राममित्यर्थः । सम्भाविता = सत्कृता, उत्तरितेति यावत् ।।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः— उत्तरङ्गय कुरङ्गलोचने लोचने कमलगर्वमोचने ।
अस्तु सुन्दरि कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरमम्बरम् ॥ २२ ॥

सखी—(सप्रणयस्मितम्) भर्तृदारिके, अलमालिजनेऽपि हृदयापलापेन । ननु विदितं मया ।

अत्र ते सखि शिखण्डमण्डने पुण्डरीकरमणीयलोचने ।
श्यामतामरसदामकोमले रामनामनि मनो मनोभवे ॥ २३ ॥

सीता —हला, पश्य पश्य ।

मदनवधूनूपुररवरमणीयं किमपि किमपि कूजन् ।
माकन्दमुकुलमधुरसमधुरमुखो मधुकरो भ्रमति ॥२४॥

[हला, पेक्ख पेक्ख ।]

[मअणवहूणेउररवरमणिज्जं किंपि किंपि कूजन्तो ।
माअन्दमुउलमहुरसमहुरमुहो महुअरो भमइ ॥]

(पुनः स्वगतम्)

अयि पिबतं लोचने प्रियजनवदनारविन्दमकरन्दम् ।
अयि तरले विचारयतं पुनः क युवां कायं च ॥२५॥
[अइ पिबद लोअणाइं पिअजणवअणारविन्दमअरन्दम् ।
अइ तरलाइं विआरह पुण कह तुझे कह इमो अ ॥]

अन्वयः—हे कुरङ्गलोचने, कमलगर्वमोचने, लोचने, उत्तरङ्गय; हे सुन्दरि, अम्बरम्, कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरम्, अस्तु ॥ २२ ॥

सीताया मुखोन्नतय आह—उत्तरङ्गयेति । हे कुरङ्गलोचने—कुरङ्गस्य = हरिणस्य लोचने = नेत्रे इव लोचने यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, कमलगर्वमोचने—कमलानाम् = उत्पलानाम् गर्वः = मदः, सौन्दर्याभिमानः इत्यर्थः, तस्य मोचने = अपहारके, नीलकमलविशाले इत्यर्थः, लोचने = नेत्रे, उत्तरङ्गय = उन्नामय । हे सुन्दरि = हे शोभने, अम्बर = आकाशम्, कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरम्—कलिन्दनन्दिन्याः= यमुनायाः वीचीनाम् = तरङ्गाणाम् डम्बरेण = समूहेन गभीरम् = गहनम्, व्याप्तमिति यावत्, अस्तु = भवतु । ते नेत्रोन्नमनेन तत्कान्त्याऽऽकाशस्तथैव सञ्जातोऽस्तु यथा प्रसृतैर्यमुनातरङ्गैरिति भावः । अनेन सीतानयनयोः शोभना श्यामकान्तिः रमणीयता च प्रतिपादिता । अत्र उपमा व्यतिरेकतद्‌गुणानां सङ्करालङ्कारः । रथोद्धता वृत्तम्; तल्लक्षणं यथा—'रान्नराविह रथोद्धता लगौ ॥' २२ ॥

सखीति । आलिजने = सखीजने । हृदयापलापेन—हृदयस्य = मनसः, हृद्‌गतभावस्येत्यर्थः, अपलापेन = गोपनेन । विदितम् = ज्ञातम् ॥

अन्वयः—हे सखि, शिखण्डमण्डने, पुण्डरीकरमणीयलोचने, श्यामतामरसदामकोमले, अत्र, रामनामनि, मनोभवे, ते, मनः ॥ २३ ॥

अत्रेति । हे सखि = हे आलि, शिखण्डमण्डने—शिखण्डः = बर्हम् मण्डनम् = अलङ्कारः यस्य तस्मिन्, पुण्डरीके = कमले इव रमणीये = मनोहरे लोचने = नेत्रे यस्य

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—हे मृगनयनी, कमलों के घमण्ड को चूर-चूर कर देनेवाली (अपनी) आँखों को ऊपर उठाओ। हे सुन्दरि, (तुम्हारी आँखों को ऊपर उठाने के कारण) आकाश यमुना की तरङ्गों के समूह से व्याप्त हो जाय ॥ २२ ॥

विशेष—सीता जब अपनी काली-कजरारी आँखों को आसमान की ओर उठायेगी तो उस समय उन (आँखों) की आभा से आसमान ऐसा प्रतीत होने लगेगा मानो उसमें यमुना का नीला जल चारो ओर फैल गया हो ॥ २२ ॥

सखी—(प्रेमपूर्वक मुस्कराकर) स्वामिपुत्रि, सखीजन के साथ भी हृदय (के भावों) को छिपाना व्यर्थ है। मैंने तो जान लिया है।

हे सखि, मोरपङ्ख से विभूषित, कमल के समान मनोहर नेत्रवाले, नीले कमलों की माला के सदृश कोमल इस राम नामक कामदेव में तुम्हारा मन लगा है ॥ २३ ॥

सीता—सखि, देखो, देखो—

कामदेव की पत्नी (रति) के नूपुर की झङ्कार के समान रमणीय तथा अवर्णनीय ढङ्ग से शब्द करता हुआ, आम के मुकुलों के मकरन्द (को पीने) से मधुर मुखवाला भौंरा घूम रहा है।

हे (मेरे) नेत्रों, प्रिय व्यक्ति (राम) के मुख-कमल के रस को पिओ, (इधर-उधर चञ्चलता मत करो)। हे चञ्चलों, (इस समय के बीत जानेपर) फिर तुम दोनों कहाँ ? और यह (अति सुन्दर व्यक्ति) कहाँ ?' यह (भी जरा) सोच लो ॥ २५ ॥

तस्मिन्, श्यामतामरसदामकोमले—श्यामानि = नीलवर्णानि यानि तामरसानि = कमलानि, नीलकमलानीत्यर्थः, तेषां दाम = माला तद्वत् कोमले = मृदुले, अत्र = अस्मिन्, अङ्गुल्या निर्दिष्टे इत्यर्थः, रामनामनि—रामः = रामचन्द्रः नाम = अभिधानम् यस्य तस्मिन्, रामसंज्ञके इत्यर्थः, मनोभवे = कामदेवे, कामे इव सुन्दरे रामे इत्यर्थः, ते = तव, मनः = चेतः, संलग्नमस्तीति शेषः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। रथोद्धता वृत्तम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—मदनवधूनूपुररवरमणीयम्, किमपि, किमपि, कूजन्, माकन्दमुकुलमधुरसमधुरमुखः, मधुकरः, भ्रमति ॥ २४ ॥

मदनेनेति। मदनवधूनूपुररवरमणीयम्—मदनस्य = कामदेवस्य वधूः = स्त्री, रतिरित्यर्थः, तस्याः नूपुराणाम् = मञ्जीराणाम् रवः = शब्दः इव रमणीयम् = मनोहरम् यथा स्यात्तथा, किमपि किमपि = अवर्णनीयमव्यक्तं यथा तथा, कूजन् = शब्दं कुर्वन्, माकन्दमुकुलमधुरसमधुरमुखः—माकन्दस्य = आम्रस्य मुकुलानाम् = कुड्मलानाम् मधुरसः = मकरन्दः तेन मधुरम् = मिष्टम् मुखम् = आननम् यस्य तादृशः, मधुकरः = भ्रमरः, भ्रमति = पर्यटति। सीता सखीं भ्रमराभिमुखीं कृत्वा राममवलोकयितुमिच्छतीति ज्ञेयम्। वृत्त्यनुप्रासः। आर्याजातिः वृत्तम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—अयि लोचने, प्रियजनवदनारविन्दमकरन्दम्, पिबतम्; अयि तरले, 'पुनः, युवाम्, क्व, अयम्, च, क्व' (इति) विचारयतम् ॥ २५ ॥

अयीति। अयीत्युन्मुखीकरणे, लोचने = नेत्रे, प्रियजनवदनारविन्दमकरन्दम्—प्रियजनस्य = प्रियव्यक्तेः, रामस्येत्यर्थः, वदनम् = मुखमेव अरविन्दम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(इति रामं नयनाञ्चलेन सलीलमालोकते)

रामः—(निर्वर्ण्य)

सर्वस्वं नवयौवनस्य भवनं भोगस्य भाग्यं दृशां
सौभाग्यं मदविभ्रमस्य जगतः सारं फलं जन्मनः ।
साकूतं कुसुमायुधस्य हृदयं रामस्य तत्त्वं रतेः
शृङ्गारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत्किंचिदालोकितम् ॥ २६ ॥

(सीता स्वगतं पुनस्तामेव गाथां पठति)

सखी —अयि भर्तृदारिके, पश्य ।

दलदमलकोमलोत्पलपलाशशङ्काकुलोऽयमलिपोतः ।
तव लोचनयोरनयोः परिसरमनुवेलमनुसरति ॥ २७ ॥

सीता—(सहर्षमात्मगतम्) अपि लोचने बद्धपट्पदे ननु सुखोपश्रुतिरियम् ।
[अपि लोअणाइं बद्धसप्पदाइं णं सुहोपसुदीयम् ।]

कमलम् तस्य मकरन्दम् = रसम् , मुखसौन्दर्यमित्यभिप्रायः पिबतम् = धयतम् , पश्यत-मित्यर्थः; अयि तरले = चञ्चले, पुनः = मुहुः, व्यतीते च साम्प्रतिके काले, युवाम् = मदीये लोचने, क्व = कुत्र, स्थितिं करिष्यतः इति शेषः, अयम् = अतिशयमनोज्ञः रामश्च, क्व = कुत्र स्थास्यति, (इति = एतदपि), विचारयतम् = शोचतम् । यदि प्राप्तं कालं तिरस्कृत्य चञ्चलतां कुरुथ तर्हि जनोऽयं पुनर्दुर्लभदर्शनो भूत्वा युवयोः पश्चात्तापं जन-यिष्यतीति भावः । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वृत्तमार्याजातिः ॥ २५ ॥

अन्वयः—नवयौवनस्य, सर्वस्वम् ; भोगस्य, भवनम् ; दृशाम् , भाग्यम् ; मदविभ्र-मस्य, सौभाग्यम् ; जगतः, सारम् ; जन्मनः, फलम् ; कुसुमायुधस्य, साकूतम् ; रामस्य, हृदयम् ; रतेः, तत्त्वम् ; शृङ्गारस्य, रहस्यम् ; उत्पलदृशः, तत् , किञ्चित् , आलो-कितम् , (अस्ति) ॥ २६ ॥

सीतायाः नयनाञ्चलेनालोकितं वर्णयन्नाह—सर्वस्वमिति । नवयौवनस्य—नवम् = नूतनम् यत् यौवनम् = युवावस्था तस्य, सर्वस्वम् = निखिलम् , प्राणभूतमिति यावत् , भोगस्य = कामैषणापूरणस्य, भवनम् = आश्रयस्थानम् , दृशाम् = दृष्टीनाम् , भाग्यम् , एतद्दर्शनं विना नेत्राणि वञ्चितानीति भावः, मदविभ्रमस्य = यौवनमदविला-सस्य, सौभाग्यम् = सुभगत्वम् , जगतः = संसारस्य, सारम् = तत्त्वम् , जन्मनः = शरीर-धारणस्य, फलम् = परिणामः, एतदवलोकनं विना जन्म निरर्थकं गतमिति भावः, कुसुमायुधस्य = कामस्य, आकूतेन = अभिप्रायेण सहितं साकूतम् = साभिप्रायं निवास-स्थानमित्यर्थः, अत्रोषित्वा कामो जगज्जेतुमिच्छतीति कविहृदयम् , रामस्य = रामचन्द्रस्य, ममेति यावत् , हृदयम् = चेतः, हृदयवशीकरणमिति यावत् , रतेः = रमणस्य प्रेम्णो वा, तत्त्वम् = पराकाष्ठा, शृङ्गारस्य = आदिरसस्य, रहस्यम् = तत्त्वम् , एतद्विना शृङ्गारं

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(ऐसा कह कर राम को कटाक्ष से हाव-भावपूर्वक देखती है)

राम—(ध्यान से देखकर) चढ़ती हुई जवानी का सर्वस्व, भोग का आश्रयस्थान, नेत्रों का भाग्य, (यौवन) मद के विलास का सौभाग्य, संसार का सार, जन्म का सुन्दर फल, कामदेव का साभिप्राय (निवासस्थान), राम का हृदय, रति का तत्त्व तथा शृङ्गार का रहस्य कमलनयनी (सीता) का वह (यह) अनिर्वचनीय कटाक्षपूर्वक देखना (है) ॥ २६ ॥

(सीता अपने आप ही फिर उसी श्लोक को कहती है)

सखी—हे स्वामिपुत्रि, देखिए—नीले खिलते हुए निर्मल एवं कोमल कमल के पत्र (पंखुड़ी) की आशङ्का से व्यग्र यह भौंरे का बच्चा तुम्हारे इन नेत्रों के पास-पास निरन्तर उड़ रहा है ॥ २७ ॥

सीता—(बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने आप) क्या (मेरे) नेत्रों ने भ्रमर को वशीभूत कर लिया है ?—(तब तो) यह सुनना आनन्ददायक है ।

निरर्थकमिति, उत्पलदृशः—उत्पले = कमले इव दृशौ = नेत्रे यस्यास्तस्याः, कमललोचनायाः इत्यर्थः, तत् = सम्प्रत्येव पूर्वानुभूतम् , किञ्चित् = अनिर्वचनीयम् , असामान्यमिति यावत् , आलोकितम् = नयनाञ्चलेन सलीलमवलोकनम् , कटाक्षपातः इति यावत् , अस्तीति शेषः । अत्र रूपकमलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । वृत्तलक्षणं यथा;—

'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ २६ ॥

अन्वयः—दलदमलकोमलोत्पलपलाशशङ्काकुलः, अयम् , अलिपोतः, तव, अनयोः, लोचनयोः, परिसरम् , अनुवेलम् , अनुसरति ॥ २७ ॥

सखी भ्रमरव्याजेन रामं तच्चेष्टाञ्च वर्णयति—दलदमलेति । दलदमलकोमलोत्पलपलाशशङ्काकुलः—दलत् = विकसत् अमलम् = स्वच्छम् , कान्तिभरितमिति यावत् , कोमलम् = मृदुलम् यत् उत्पलम् = नीलकमलम् तस्य पलाशस्य = पत्रस्य शङ्कया = भ्रान्त्या आकुलः = व्यग्रः, अयम् = एषः, अलिपोतः = भ्रमरशावकः, तव = सीतायाः, अनयोः = एतयोः, लोचनयोः = नेत्रयोः, परिसरम् = प्रान्तप्रदेशम् , समीपमित्यर्थः, अनुवेलम् = प्रतिक्षणम् , अनुसरति = अनुगच्छति । त्वदीये कमललोचने दृष्ट्वा नीलकमलशङ्कयैवायं तव वदनसरोजमनुसरतीति भावः । वस्तुतः सख्या इयमुक्तिर्भ्रमरव्याजेन रामं प्रति उद्दिष्टेत्यपि बोध्यम् । भ्रान्तिमान् अलङ्कारः । वृत्तम् आर्याजातिः ॥ २७ ॥

सीतेति । अपीति प्रश्ने । बद्धषट्पदे—बद्धः = आकृष्टः, वशीकृतः इत्यर्थः, षट्पदः = भ्रमरः याभ्यां ते । सुखोपश्रुतिः—सुखस्य = आनन्दस्य जनिका उपश्रुतिः = श्रवणम् । रामरूपो भ्रमरो मन्नेत्राभ्यां वशीकृत इत्येतत् हर्षजनकमित्येतदपीति ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—(सप्रत्याशम्)

अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः
स्नपयति तरलाक्षी यत्र मां नेत्रपातैः ।
अपि भवतु सदायं सन्मुहूर्तः
(विमृश्य । सविषादम्)
कुतो वा
मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा विधातुः ॥ २८ ॥

(प्रविश्य)

चेटी—भर्तृदारिके, भट्टिनीभिराज्ञतास्मि, यत्किल वत्सा जानकी झटिति गृह्यमानीय विचित्राभरणैर्मण्ड्यताम् । येन तस्याः सानन्दं वदनारविन्दं विलोकयामः ।

[भट्टदारिए, भट्टिणीहिं आण्णत्तह्मि । जं किर वत्सा जाणई झत्ति घरमाणीअ विचित्ताहरणेहिं मण्डीअदु । जेण तीए साणन्दं वअणारविन्दं पुलोअह्म ।]

सीता—हण्डे, कथं स्नेहमुग्धा ममाम्बाः ।

[हण्डे, कहं सिणेहमुद्धाओ मह अम्बाओ ।]

चेटिका—भर्तृदारिके, कथं न मुग्धास्तवाम्बाः ।

[भट्टदारिए, कहं ण मुद्धाओ तुह अम्बाओ ।]

सीता—कथं पुनर्मुग्धा ममाम्बाः ।

[कहं उण मुद्धाओ मह अम्बाओ ।]

चेटिका—यास्त्वां निसर्गलावण्यचन्द्रलेखां नेपथ्यलक्ष्मीलाञ्छनेनालंकर्तुमिच्छन्ति । तथा च ।

अयि तव मुखलेखा चन्द्रबिम्बे सस्नेहा
दशनकिरणलक्ष्मीरच्छज्योत्स्नासदृक्षा ।
कुवलयदलद्रोणीकन्दरायां वहन्ती
तरलबहलमिश्रा दुग्धधारेव दृष्टिः ॥ २९ ॥

अन्वयः—तरलाक्षी, अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः, नेत्रपातैः, यत्र, माम्, स्नपयति, सदा, अपि, अयम्, सन्मुहूर्तः, भवतु । वा, कुतः ? हा ! विधातुः, सृष्टयः, मधुरविधुरमिश्राः, (सन्ति) ॥ २८ ॥

सीताकटाक्षपातं वर्णयन्नाह—अमृतमयेति । तरलाक्षी—तरले = लोले अक्षिणी = नेत्रे यस्याः सा, अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः—अमृतमयः = अमृतभरितः यः पयोधिः = सागरः तस्य क्षीरवत् = दुग्धवत् दुग्धधवला इत्यर्थः ये कल्लोलाः = महातरङ्गाः ते इव लोलाः = चञ्चलाः, चञ्चलैर्दुग्धधवलैश्चेत्यर्थः, नेत्रपातैः = दृष्टिपातैः, कटाक्षक्षेपैरित्यर्थः, यत्र = यस्मिन् मुहूर्ते, माम् = रामम्, स्नपयति = प्रक्षालयति, कटाक्षैर्मामवलोकयतीत्यर्थः, सदा = सर्वदा, अपि, अयम् = एषः, सन्मुहूर्तः = शोभनः समयः, भवतु = अस्तु । सांसारिकभावानामस्थिरतां विचार्य पुनराह—कुतो वेति । वा = अथवा, कुतः = कस्मादित्थं भवितुं शक्नोतीति शेषः । असम्भावनायां कारणमाह—हा = खेदद्योतकमव्ययपदमिदम्, विधातुः = ब्राह्मणः, सृष्टयः = रचनाः, मधुरविधुर-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—(अभिलाषापूर्वक)

चञ्चल नेत्रोंवाली (यह सीता) अमृत के समुद्र के दूध के समान बड़ी-बड़ी तरङ्गों के सदृश कटाक्षों (दृष्टिपातों) से जिस (मुहूर्त) में मुझे नहला रही है सदा ही यह मुहूर्त बना रहे (अर्थात् सीता जैसे सम्प्रति अपने कटाक्षों से मुझे देख रही है, इसी तरह सर्वदा देखती रहे) ।

(विचार कर, खेदपूर्वक)

अथवा (यह) कहाँ से (हो सकता है) ? खेद की बात है, विधाता की सृष्टियाँ सुख एवं दुःख (संयोग एवं वियोग) से मिश्रित (हैं) ॥ २८ ॥

(प्रवेश करके)

चेटी—स्वामिपुत्रि, रानियों के द्वारा मुझे आज्ञा मिली है कि—बेटी जानकी शीघ्र घर लाकर विचित्र आभूषणों से सजायी-सवाँरी जाय। जिससे उसके मुखकमल को (हम लोग) आनन्द के साथ देखें ।

सीता—सेविके, क्या मेरी माताएँ स्नेह-परवश (हो रही हैं) !

चेटिका—स्वामिपुत्रि, आप की माताएँ क्यों नहीं मुग्ध (भोली-भाली) हैं ? (अर्थात् निश्चय ही वे भोली हैं) ।

सीता—कैसे मेरी माताएँ भोली-भाली हैं ?

चेटी—जो स्वभावतः सौन्दर्ययुक्त चन्द्रमा की कला (स्वरूपा) आप को सजावट के सौन्दर्यरूप लाञ्छन् से अलङ्कृत करना चाहती हैं । जैसे कि—

हे स्वामिपुत्रि, आपकी मुखरेखा चन्द्रमण्डल में स्नेह करनेवाली है (अर्थात् आपकी मुखरेखा चन्द्रबिम्ब के समान है) । दाँतों की चमक की शोभा निर्मल चाँदनी के सदृश है । आँख नीलकमल के पत्ते की द्रोणी (छोटी नौका) के मध्य भाग में बहती हुई चञ्चल एवम् अधिक मीठी दुग्ध-धारा जैसी (है) ॥ २९ ॥

मिश्राः—मधुरेण = माधुर्यभावेन, सुखेनेत्यर्थः, विधुरेण = वैधुर्यभावेन, दुःखेनेत्यर्थश्च, मिश्राः = पूर्णाः, सुखदुःखमिलिता इत्यर्थः, सन्तीति शेषः । 'कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥' इति कालिदासोक्तिरत्रानुसन्धेया । मालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ २८ ॥

चेटीति । भट्टिनीभिः = राज्ञीभिः । विचित्राभरणैः = मणिमण्डितैराभरणैरित्यर्थः ॥

सीतेति । हण्डे = नीचां परिचारिकां प्रति सम्बोधनपदमिदम् । स्नेहमुग्धाः—स्नेहेन = वात्सल्यभावेन मुग्धाः = विवेकशून्याः, परवशाः इत्यर्थः ॥

चेटिकेति । निसर्गलावण्यचन्द्रलेखाम्—निसर्गेण = स्वभावेन लावण्यम् = शरीरकान्तिः यस्याः सा निसर्गलावण्या, सा चासौ चन्द्रलेखा=चान्द्री कला, चन्द्रकलासदृशीं भवतीमिति भावः, नेपथ्यलक्ष्मीलाञ्छनेन—नेपथ्यस्य = अलङ्करणादिधारणरूपस्य संस्कारस्य लाञ्छनेन = लक्षणेन, कलङ्केनेति भावः । प्रकृत्या सुभगां त्वां ताः यदलङ्करणैरलङ्कर्तुमिच्छन्त्यतः मुग्धा एवेति भावः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तदागच्छ । गच्छामो निजगृहमेव ।

[जा तुमं णिसग्गलावण्णचन्दलेहां णेवच्छलच्छीलञ्छणेणालंकिदुमिच्छन्ति । तहा अ ।]

अइ तुह मुहलेहा चन्दबिम्बे सणेहा
दसणकिरणलच्छी अच्छजोह्लासरिच्छी ।
कुवलयदलदोणीकन्दराए वहन्ती
तरलबहलमिट्ठी दुद्धधारे व्व दिट्ठी ॥

ता आअच्छ । गच्छह्म णिअघरं जेव्व ।

(इति निष्क्रान्ताः स्त्रियः)

रामः—(सविषादम्) कथं नयनपथमतिक्रान्तैव कान्ता । (पुनः सप्रत्याशम्)

अप्याविरस्तु भूयोऽपि मम लोचनयोरियम् ।
दिवसेऽन्तर्हिता नक्तं चन्द्रिकेव चकोरयोः ॥ ३० ॥

लक्ष्मणः—आर्य, इयमाविरस्ति ।

रामः—(सहर्षम्) कथं पुनः प्राप्ता प्रेयसी । (विलोक्य) न तावन्नूनं किमप्यन्यदभिसन्धाय तदिदमुक्तं वत्सेन । (उच्चैः) वत्स, केयमाविरस्ति ।

लक्ष्मणः— मुग्धस्य केलिविजितस्मरचापयष्टे-
रातन्वती रुचिमतीव सुधाकरस्य ।
रागोद्धुरा स्फुटमुदञ्चिततारकश्रीः
संध्याविरस्ति ननु कापि पतिंवरेव ॥ ३१ ॥

अन्वयः—अयि, तव, मुखलेखा, चन्द्रबिम्बे, सस्नेहा; दशनकिरणलक्ष्मीः, अच्छज्योत्स्नासदृक्षा; दृष्टिः, कुवलयदलद्रोणीकन्दरायाम्, वहन्ती, तरलबहलमिष्टा, दुग्धधारा, इव, (अस्ति) ॥ २९ ॥

सीताशरीरे अलंकारादीनां निरर्थकतां प्रदर्शयन्नाह—अयीति । अयि = हे भर्तृदारिके, तव=भवत्याः, मुखलेखा—वदनरेखा, कान्तिमत् वदनमित्यर्थः, चन्द्रबिम्बे=चन्द्रमण्डले, सस्नेहा = प्रणयवती; समानशीलव्यसनेषु सख्यमिति वचनात् चन्द्रमण्डलतुल्येति यावत् । दशनकिरणलक्ष्मीः—दशनानाम् = दन्तानाम् किरणानाम् = ज्योत्स्नानाम् लक्ष्मीः = शोभा, द्युतिरिति यावत् , अच्छज्योत्स्नासदृक्षा—अच्छा = स्वच्छा या ज्योत्स्ना= चन्द्रिका तया सदृक्षा = समाना, दृष्टिः = नेत्रम्, कुवलयदलद्रोणीकन्दरायाम्—कुवलयदलस्य = नीलकमलपत्रस्य द्रोणी = नौकासदृशी पुटरचना, 'दोना' इति हिन्दीभाषायाम् , तस्याः कन्दरायाम् , = मध्यभागे, वहन्ती = प्रवहमाना, तरलबहलमिष्टा—तरला = लोला बहलमिष्टा = सुमधुरा, दुग्धधारा = क्षीरलहरी, इव = यथा, अस्तीति शेषः । मधुराकृतिसम्पन्नायास्तवालंकरणेन किमपि प्रयोजनमिति तात्पर्यार्थः । अत्रोपमालङ्कारः । वृत्तञ्च मालिनी ॥ २९ ॥

राम इति । नयनपथम्—नयनयोः = नेत्रयोः पन्थाः = मार्गः इति नयनपथस्ताम् , अतिक्रान्ता = अतीत्य गता, कान्ता = प्रेयसी ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तो आइए, अपने घर ही चले। (ऐसा कहकर स्त्रियाँ निकल गयीं)।

राम--(खेद के साथ) क्या प्रिया आँखों की पहुँच से ओझल ही हो गयी ? (फिर आशापूर्वक)।

जैसे दिन में छिपी हुई चाँदनी रात्रि में चकोरों के जोड़े के (नेत्रों के सामने प्रकट होती है, उसी तरह) यह (सीता) मेरे नेत्रों के (समक्ष) फिर से प्रकट हो ॥ ३० ॥

लक्ष्मण—आर्य, यह प्रकट हो गयी है।

रामः—(बड़ी प्रसन्नता के साथ) क्या (मेरी) प्रेयसी फिर से प्राप्त हो गयी (अर्थात् लौट आयी) ? (देखकर) नहीं, निश्चय ही कुछ दूसरा ही लक्ष्य करके प्रिय (लक्ष्मण) के द्वारा यह (वचन) कहा गया है। (सुनाकर) वत्स, यह कौन प्रकट हुई है ?

लक्ष्मण—निःसन्देह, अत्यन्त सुन्दर, खिलवाड़ में ही (अर्थात् अनायास ही) कामदेव की धनुर्लता को जीतनेवाले, चन्द्रमा की (पक्ष में—वर की) कान्ति को (पक्ष में—अनुराग को) बढ़ाती हुई, लालिमा से भरपूर (पक्ष में—अनुराग से युक्त), स्पष्ट रूप से ताराओं की शोभा को बढ़ानेवाली (पक्ष में—आँख की पुतलियों की शोभा को प्रदर्शित करनेवाली) सन्ध्या किसी पतिम्वरा युवती (पति का वरण करनेवाली युवती) की तरह प्रकट हुई है ॥ ३१ ॥

अन्वयः—दिवसे, अन्तर्हिता, चन्द्रिका, नक्तम्, चकोरयोः, इवः, इयम्, मम, लोचनयोः, भूयः, अपि; आविरस्तु ॥ ३० ॥

अप्याविरस्त्विति। दिवसे = दिने, अन्तर्हिता = तिरोहिता, चन्द्रिका = नक्तम् = रात्रौ, चकोरयोः = चन्द्रिकापायिपक्षिविशेषयोः, इव = यथा; इयम् = मम प्रेयसी सीता, मम—निजभक्तस्य रामस्येत्यर्थः, लोचनयोः, समक्षमिति शेषः, भूयोऽपि = मुहुरपि, आविरस्तु = प्रकटिता स्यात्। पुनरपि मम नेत्रयोः समक्षं दृष्टा स्यादित्यभिप्रायः। उपमालङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—ननु, मुग्धस्य, केलिविजितस्मरचापयष्टेः, सुधाकरस्य, रुचिम्, अतीव, आतन्वती, रागोद्धुरा, स्फुटम्, उदञ्चिततारकश्रीः, सन्ध्या, कापि, पतिम्वरा, इव, आविरास्ते ॥ ३१ ॥

लक्ष्मणः सन्ध्यां वर्णयन्नाह—मुग्धस्येति। नन्विति निश्चये, मुग्धस्य = प्रकृत्या सुन्दरस्य, केलिविजितस्मरचापयष्टेः—केल्या=क्रीडया, आनायासेनेत्यर्थः विजिता= पराजिता स्मरस्य = कामदेवस्य चापयष्टिः = धनुर्लता येन असौ तस्य, वक्रतायां कामोद्दीपने च ऐन्दवी कला कुसुमचापमप्यतिशाययतीतिभावः, सुधाकरस्य = चन्द्रमसः, पतिम्वरापक्षे—कान्तस्य, रुचिम् = कान्तिम्, पतिम्वरापक्षे—अनुरागम्, अतीव=अत्यर्थम्, आतन्वती = विस्तारयन्ती, रागोद्धुरा—रागेण = रक्तवर्णेन, पक्षे—अनुरागेण, उद्धुरा, उद्धता, स्फुटम् = स्पष्टं यथा स्यात्तथा, उदञ्चिततारकश्रीः—उदञ्चिता = प्रकाशिता

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—वत्स, एवमेतत् । तथा हि ।

कृत्वा प्रबुद्धकमलामखिलां त्रिलोकी-
मम्भोनिधेर्विशति गर्भमसाविदानीम् ।
अन्तःप्रसुप्तहरिनाभिसरोजबोध-
कौतूहलीव भगवानरविन्दबन्धुः ॥ ३२ ॥

लक्ष्मणः—आर्य, दृश्यतामयमीषन्मुकुलितराग इव गगनाभोगः ।

रामः—एवमेतत् । इदानीं हि

प्राचीमालम्बमाने घनतिमिरचये बान्धवे बन्धकीनां
सम्प्राप्ते च प्रतीचीं शशिकरनिकरे वैरिणि स्वैरिणीनाम् ।
अर्धश्यामोपलार्धस्फटिकमिव दिशामन्तरालं विधत्ते
कालिन्दीजह्नुकन्यामिलदमलजलस्यन्दसंदोहमैत्रीम् ॥ ३३ ॥

तारकाणाम् = नक्षत्राणाम् श्रीः = कान्तिः यया सा, पक्षे—उदञ्चिता = प्रदर्शिता तारकयोः = कनीनिकयोः श्रीः = सौन्दर्यम् यया तादृशी, सन्ध्या = सान्ध्यवेला, कापि = अतिसुन्दरी, अनिर्वचनीयेत्यर्थः, पतिंवरा = स्वयम्वरा युवती, इव = यथा, आविरस्ति = प्रकटिता जातेत्यर्थः । अत्र श्लेषोपमयोः सङ्करालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—असौ, भगवान्, अरविन्दबन्धुः, अखिलाम्, त्रिलोकीम्, प्रबुद्धकमलाम्, कृत्वा, अन्तःप्रसुप्तहरिनाभिसरोजबोधकौतूहली, इव, इदानीम्, अम्भोनिधेः, गर्भम्, विशति ॥ ३२ ॥

सूर्यास्तमयं वर्णयन्नाह—कृत्वेति । असौ = जगज्जीवनदायको विश्वपूज्यः इत्यर्थः, भगवान् = सर्वं कर्तुं समर्थः, अरविन्दबन्धुः—अरविन्दानाम् = कमलानाम् बन्धुः = हितकर्ता, सूर्यः इत्यर्थः; कमलानां विकासकत्वेन सूर्यः कमलबन्धुरुच्यते; अखिलाम्=निखिलाम्, समग्रामिति यावत्, त्रिलोकीम् = त्रिजगतीम्, प्रबुद्धकमलाम्—प्रबुद्धानि = विकसितानि कमलानि = सरोजानि यस्यां सा तादृशीम्, कृत्वा = विधाय, अन्तःप्रसुप्तहरिनाभिसरोजबोधकौतूहली—अन्तः = अभ्यन्तरे, सागराभ्यन्तरे इत्यर्थः, प्रसुप्तः = कृतशयनः यः हरिः = विष्णुः तस्य नाभौ = नाभिकुहरे यत् सरोजम् = कमलम् तस्य बोधे = विकासे कौतूहली = उत्कण्ठितः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्; इदानीम् = सम्प्रति, अम्भोनिधेः = सागरस्य, गर्भम् = अभ्यन्तरम् विशति = प्रविशति, गच्छतीति यावत् । जगति नीलकमलानि प्रबोध्याधुना सागरशायिनो विष्णोर्नाभिकुहरे निर्गतं कमलं प्रबोद्धुं व्रजतीति भावः । उत्प्रेक्षा अलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तमिति ॥ ३२ ॥

लक्ष्मण इति । ईषन्मुकुलितरागः—ईषत् = किञ्चित् मुकुलितः = प्रकटितः रागो यस्मिन् सः, गगनाभोगः—गगनस्य = आकाशस्य आभोगः = विस्तारः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—प्रिय बन्धु, ऐसा ही है । सम्प्रति तो—

यह भगवान् सूर्य सम्पूर्ण त्रिलोकी को विकसित कमलों से युक्त बनाकर (अर्थात् त्रिलोकी के कमलों को विकसित करके) (समुद्र के) भीतर सोये हुए विष्णु की नाभि में स्थित कमल को विकसित करने में उत्कण्ठित के समान सम्प्रति सागर के गर्भ में प्रवेश कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

लक्ष्मण—आर्य, देखिये । यह आकाशमण्डल हल्की लालिमा से युक्त-सा (हो रहा है) ।

राम—हाँ ऐसा ही है । क्योंकि सम्प्रति—व्यभिचारिणी स्त्रियों के हितकर्ता घने अन्धकार के पूर्व दिशा में प्रविष्ट होने पर तथा कुलटाओं (व्यभिचारिणियों) के वैरी चन्द्रमा की किरणों के पश्चिम दिशा में प्राप्त होने पर (दिखलाई पड़नेपर) आधा नीलमणि से तथा आधा स्फटिक मणि से युक्त-सा दिशाओं का मध्यभाग, यमुना और गंगा के सङ्गम के स्वच्छ जल के समूह की समानता को व्यक्त कर रहा है ॥ ३३ ॥

अन्वयः—बन्धकीनाम्, बान्धवे, घनतिमिरचये, प्राचीम्, आलम्बमाने; स्वैरिणीनाम्, वैरिणि, शशिकरनिकरे, च, प्रतीचीम्, सम्प्राप्ते, अर्धश्यामोपलार्धस्फटिकम्, इव, दिशाम्, अन्तरालम्, कालिन्दीजह्नुकन्यामिलदमलजलस्यन्दसन्दोहमैत्रीम्, विधत्ते ॥ ३३ ॥

लक्ष्मणोक्तौ सान्ध्यवेलां वर्णयन्नाह—प्राचीमिति । बन्धकीनाम् = स्वैरिणीनाम्, कुलटानामित्यर्थः ('पुंश्चली चर्षिणी बन्धक्यसती कुलटेत्वरी । स्वैरिणी', इत्यमरः), बान्धवे = हितसम्पादके, कुलटाः सञ्जातेऽन्धकारे एव स्वकार्यं साधयन्ति । अतः अन्धकारः तासां बन्धुरिति; घनतिमिरचये = गाढान्धकारे, प्राचीम् = पूर्वां दिशम्, आलम्बमाने = कृताश्रयणे सति, स्वैरिणीनाम् = कुलटानाम्, वैरिणि = शत्रौ, शशिकरनिकरे = चन्द्रकिरणसमूहे, च = अपि, रात्रौ उद्गते च चन्द्रे कुलटानां स्वैरं प्रियमिलनार्थं गमनमवरुध्यते जनदर्शनाशङ्कयेति चन्द्रचन्द्रिकाचयस्तासां शत्रुरितिः, प्रतीचीम् = पश्चिमाशाम्, सम्प्राप्ते=आश्रयति सति; अर्धश्यामोपलार्धस्फटिकम्—अर्धम् = अर्धभागः श्यामोपलः = नीलमणिः यस्य तत्, एवञ्च अर्धम्=अर्धभागः स्फटिकः=स्फटिकमणिः, धवलमणिरित्यर्थः यस्य तत् तादृशमिव, दिशाम् = काष्ठानाम्, ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः) अन्तरालम् = मध्यभागः, कालीन्दीत्यादिः—कालिन्दी = यमुना जह्नुकन्या = जाह्नवी, गङ्गा इत्यर्थः, तयोः मिलन् = सङ्गमं गच्छन् अमलानाम् = निर्मलानाम् जलानाम् = सलिलानाम् स्यन्दानाम् = प्रवाहानाम् सन्दोहस्य = समूहस्य, मैत्रीम् = सादृश्यम्, विधत्ते = सम्पादयति । आकाशे एकस्यां दिशि अन्धकारस्य अपरस्यां दिशि कौमुद्याः स्थितिस्तथैव प्रतिभाति यथा अंगुलीयके अर्धभागे कृष्णमणेरर्धभागे स्फटिकमणेस्तथा प्रयागे सङ्गतयोर्यमुनागङ्गयोः सत्ता प्रतिभातीति दिक् । अत्रोपमालङ्कार । स्रग्धरा वृत्तम् । वृत्तलक्षणं यथा;—

'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥' ३३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनः सहर्षमङ्गुल्या दर्शयन्)

एतत्कोककुटुम्बिनीजनमनःशल्यं चकोराङ्गना-
चञ्चूकोटिकपाटयोर्घटितयोरुद्घाटिनी कुञ्चिका ।
दग्धस्यापि नवाङ्कुरः स्मरतरोरार्द्रागसां प्रेयसी-
मानोद्दामगजाङ्कुशो विजयते मुग्धं सुधांशोर्वपुः ॥ ३४ ॥

लक्ष्मणः—

कल्लोलक्षिप्तपङ्कत्रिपुरहरशिरःस्वःस्रवन्तीमृणालं
कर्पूरक्षोदजालं कुसुमशरवधूसीधुभृङ्गारनालम् ।
एतद्दुग्धाब्धिबन्धोर्गगनकमलिनीपत्रपानीयबिन्दो-
रन्तस्तोषं न केषां किसलयति जगन्मण्डनं खण्डमिन्दोः ॥३५॥

अन्वयः—कोककुटुम्बिनीजनमनःशल्यम्, घटितयोः, चकोराङ्गनाचञ्चूकोटिकपाटयोः, उद्घाटिनी, कुञ्चिका, दग्धस्य, अपि, स्मरतरोः, नवाऽङ्कुरः, आर्द्राऽऽगसाम्, प्रेयसीमानोद्दामगजांकुशः, सुधांशोः, मुग्धम्, एतत्, वपुः, विजयते ॥ ३४ ॥

चन्द्रोदयं वर्णयन्नाह—एतदिति । कोककुटुम्बिनीजनमनःशल्यम्—कोकानाम् = चक्रवाकानाम् ('कोकश्चक्रवाको' इत्यमरः) कुटुम्बिनीजनानाम् = स्त्रीणाम् मनसः = हृदयस्य शल्यम् = शङ्कुः, शङ्कुरूपः इत्यर्थः, रात्रौ पतिवियोगात् चक्रवाकीनां चेतसि चन्द्रः शल्यमिव पीडां जनयतीति भावेन सुधांशोर्वपुः शल्यमुच्यते; घटितयोः = (दिने) सम्पुटितयोः, चकोराङ्गनाचञ्चूकोटिकपाटयोः—चकोराणाम् = चन्द्रिकापायिनां पक्षिविशेषाणाम् अङ्गनाः = पत्न्यः तासां चञ्चूकोटी = त्रोट्यग्रे—एव कपाटे = अररे तयोः, उद्घाटिका, कुञ्चिका = उद्घाटनयन्त्रम्; चकोराश्चन्द्रिकापायिन इति दिने मौनं समालम्ब्य दुःखेन तिष्ठन्ति तथा आगते चन्द्रे हर्षेण शब्दं कुर्वन्ति चन्द्रिकां पातुं मुखव्यादानमिति चन्द्रवपुः तच्चञ्चुकपाटोद्घाटिका कुञ्चिका निगद्यते । दग्धस्य = भस्मीभूतस्य, अपि = च, स्मरतरोः—स्मरः = कामः एव तरुः = वृक्षः तस्य, नवाऽङ्कुरः = अभिनवोद्गतोऽङ्कुरः, आर्द्रागसाम्—आर्द्रम् = नवीनम् आगः = अपराधः, परस्त्रीदर्शनप्रेमालापरूपः इत्यर्थः, येषां तादृशानां जनानाम्, प्रेयसीमानोद्दामगजांकुशः—प्रेयस्यः = वल्लभाः तासां मानः = प्रणयकोपः एव उद्दामः = मदोद्धतः गजः = हस्ती तस्य अङ्कुशः = सृणिः, नियामकः इत्यर्थः, सञ्जाते च चन्द्रचन्द्रिकासंस्पर्शे कामिन्यः मानं परित्यज्य पत्युन्मुखाः भवन्तीति दिक्, सुधांशोः = चन्द्रस्य, मुग्धम् = प्रकृतिमनोज्ञम्, एतत् = इदम्, दृश्यमानमित्यर्थः, वपुः = मण्डलम्, विजयते = सर्वोत्कर्षेण वर्तते । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—कल्लोलक्षिप्तपङ्कत्रिपुरहरशिरःस्वःस्रवन्तीमृणालम्, कर्पूरक्षोदजालम्, कुसुमशरवधूसीधुभृङ्गारनालम्, दुग्धाब्धिबन्धोः, गगनकमलिनीपत्रपानीयबिन्दोः, इन्दोः, जगन्मण्डनम्, एतत्, खण्डम्, केषाम्, अन्तस्तोषम्, न, किसलयति ॥ ३५ ॥

लक्ष्मणश्चन्द्रोदयं वर्णयन्नाह—कल्लोलेति । कल्लोलेत्यादिः—कल्लोलैः = महातरङ्गैः क्षिप्तः = प्रक्षालितः पङ्कः = कर्दमः, कलङ्करूपः कर्दमः इत्यर्थः, यस्य तत्

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(फिर प्रसन्नताके साथ अँगुली से दिखलाते हुए)

चक्रवाकों (चकवाओं) की स्त्रीजनों के हृदय का काँटा; वन्द, चकोरों की स्त्रियों के चोंच के अग्रभागरूप किवाड़ों को खोलनेवाली कुञ्जी; जलकर राख हुए भी कामरूपी वृक्ष का नवीन अंकुर; सद्यः अपराध करनेवाले (पुरुषों) की प्रियतमाओं के मान रूप मदमस्त गज के लिए अंकुश, चन्द्र का सुन्दर यह शरीर अत्यन्त उत्कृष्टता के साथ प्रकाशित हो रहा है ॥ ३४ ॥

विशेष—कोककुटुम्बिनीजनमनःशल्यम्—रात्रि में चकई-चकवा परस्पर एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। ऐसा उन्हें श्राप है। ऐसी अवस्था में चन्द्रमा चकईजनों के हृदय में काँटा जैसा लगता है।

चकोराङ्गनाचञ्चूकोटीत्यादिः—चकोर तीतर की जाति का एक पक्षी है। कहते हैं कि चन्द्रमा की किरणें ही इसका आहार हैं। दिनभर उनका मुख बन्द रहता है। रात्रि में चन्द्र-किरणों को पीने के लिए ही खुलता है। अतः चन्द्रमा का मण्डल उनके मुखरूप कपाट को खोलने की कुञ्जी है।

नवाङ्कुरः—चन्द्रमा को देखकर काम बढ़ता है। अतः चन्द्रमा मानो कामरूपी वृक्ष का अङ्कुर है, यद्यपि काम को भगवान् शङ्कर ने भस्म कर दिया था।

प्रेयसी गजाङ्कुशः—पति अपराध करता है। अतः प्रेयसी मानकर बैठती है। (अर्थात् नाराज हो जाती है)। किन्तु चन्द्र को देखकर उसका मन काम से छट-पटाने लगता है। वह अपने पति से मिलने के लिए आतुर हो उठती है। उसका मान गल जाता है। अतः चन्द्रमा मानिनी स्त्रियों के मानरूपी हाथी को वश में करने के लिए अङ्कुश है ॥ ३४ ॥

लक्ष्मण—बड़ी-बड़ी लहरियों से धुल गया है (कलङ्करूप) कीचड़ जिसका ऐसा, शङ्कर के शिर पर स्थित आकाशगङ्गा के मृणाल (भिसाड़) के तुल्य; कर्पूर के चूर्ण की ढेर के सदृश, कामदेव की पत्नी (रति) के मदिरा (पीने) के पात्र के समान; क्षीरसागर के बन्धु (सम्बन्धी), आकाश रूप कमललता के पत्ते पर स्थित जल की बूँद के सदृश चन्द्रका लोकभूषण वह टुकड़ा किस के मन में सन्ताप नहीं उत्पन्न करता? (अर्थात् सबके मन में सन्ताप उत्पन्न करता है) ॥ ३५ ॥

तासां त्रिपुरहरस्य = शिवस्य शिरसि = मस्तके या स्वःस्रवन्ती = आकाशगङ्गा तस्याः मृणालम् = बिसखण्डम्, कर्पूरक्षोदजालम्—कर्पूरस्य = घनसारस्य ('कर्पूरमस्त्रियाम् । घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताभ्रो हिमवालुका' इत्यमरः) क्षोदाः = चूर्णाः ('क्षोदश्चूर्णे' इत्यमरः) तेषां जालम् = समूहः, समूहसदृशमित्यर्थः, कुसुमशरेत्यादिः—कुसुमशरस्य = कामदेवस्य या वधूः = अङ्गना, रतिरित्यर्थः, तस्याः सीधुभृङ्गारनालम्—सुरापानपात्र-मित्यर्थः, दुग्धाब्धिबन्धोः—दुग्धाब्धिः = क्षीरसागरः तस्य बन्धुः = सुहृद् तस्य, सागरा-दुत्पत्तेश्चन्द्रः सागरबन्धुः कथ्यते; गगनकमलिनीपत्रपानीयबिन्दोः—गगनम् = आकाशम् एव कमलिनीपत्रम् = कमललतापर्णम् (पुरइन इति भाषायाम्) तस्मिन् पानीयबिन्दुः = जलकण[illegible]स्य, आकाशकमलिनीपत्रे जलबिन्दुरूपस्येत्यर्थः, इन्दोः = चन्द्रस्य, जगन्म-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—वत्स, अलमतिप्रसङ्गेन। तदेहि। सायन्तनत्रिदशार्चनोचितकुसुमोपायनेन भगवन्तं गाधिनन्दनमुपास्महे।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति द्वितीयोऽङ्कः

ण्डनम्—जगताम् = लोकानाम् मण्डनम् = आभूषणभूतम्, एतत् = इदं पुरोदृश्यमानम्, खण्डम् = अंशः, केषाम् = केषां जनानाम्, अन्तस्तोपम् = चेतसि प्रसन्नताम्, न = नहि, किसलयति = पल्लवयति ? अपि तु सर्वेषां मनसि मुदमातनुते इति काकुध्वनिः। अत्र रूपकालङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ २५ ॥

राम इति। सायन्तनत्रिदशार्चनोचितकुसुमोपायनेन—सायं भवं सायन्तनम् = सान्ध्यम् तस्मिन् त्रिदशानाम् = देवानाम् अर्चनम् = पूजनम् तस्य उचितानि = योग्यानि कुसुमानि = पुष्पाणि तेषाम् उपायनेन = उपहारेण। गाधिनन्दनम् = विश्वामित्रम् ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां प्रसन्नराघवव्याख्यायां रमाख्यायां द्वितीयोऽङ्कः ॥

———

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—वत्स, अधिक वर्णन बन्द किया जाय। तो आओ। सायंकाल के देवपूजन के योग्य फूलों के उपहार से भगवान् विश्वामित्र की सेवा करें।

(इस प्रकार सब निकल जाते हैं)

॥ दूसरा अङ्क समाप्त ॥

———

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वामनकः)

वामनकः—(आत्मानं विलोक्य । सविस्मयम् ।) अहो अङ्गानां मे तुङ्गत्वम् । अपि नामेदृशैरङ्गैरत्र सञ्चरता मया द्वारशिखरं भज्यते । तत्कुब्जो भूत्वा सञ्चरिष्यामि ।

[अहो अङ्गाणं मे तुङ्गत्तणम् । अवि णाम ईरिसेहि अङ्गेहिं एत्थ संचरन्तेण मए दुआरसिहरं भज्जीअदि । ता खुज्जो भविअ संचरिस्सम् ।]

(तथा करोति ।)

(प्रविश्य)

कुब्जकः—वयस्य वामनक, इदानीं सकलगुणसंयुक्तोऽसि त्वम् ।

[वअस्स वामणअ, दाणिं सअलगुणसंजुत्तो सि तुमं ।]

वामनकः—कथमिव ।

[कहं विअ ।]

कुब्जकः—प्रथममेव वामन इदानीं पुनः कुब्जत्वं प्राप्तः ।

[पढमं जेव्व वामणो दाणिं उण खुज्जत्तणं पत्तो ।]

वामनकः—(सक्रोधम्) अये मूर्ख, कथमात्मनः कुब्जत्वं परस्मिन्नारोपयसि । ननु त्वमेव कुब्जकः । मया पुनर्द्वारशिखरभङ्गाशङ्कितेनात्मनि कुब्जत्वमारोपितम् ।

[अए मुरुक्ख, कहं अत्तणो खुज्जत्तणं परम्मि आरोवेसि । णं तुमं जेव्व खुज्जओ । मए उण दुआरसिहरभङ्गसङ्किदेण अप्पम्मिखुज्जत्तणमारोविदम् ।]

कुब्जकः—(विहस्य) कथं वितस्तिमात्रेण तवाङ्गेन द्वारशिखरं भङ्क्ष्यते । (पुनः सक्रोधम्) अरे अलीकवाचाल, केन तव कथितमहं कुब्जक इति ।

[कहं विअत्थिमेत्तएण तुह अङ्गेण दुआर सिहरं भज्जिस्सदि । अरे अलीअवाआल, केण तुह कहिदं अहं खुज्जओ त्ति ।]

वामनकः—नन्वनेनैव दृप्तवृषभककुदसदृशेन पृष्ठस्थितेन मांसस्तबकेनोद्घाहितेन ।

[णं इमिणा जेव्व दरिअवुसहकउदसरिसेण पुट्ठट्ठिदेण मंसत्थवएण उव्वाहिएण ।]

कुब्जकः—(विहस्य) अये मतिशून्य, कथमयं मांसस्तबकोऽपि पुनः सौभाग्य-लक्ष्म्या उपधानगेन्दुकः ।

[अए मदिसुण्ण, कहं इमो मंसत्थवओ वि उण सोहग्गलच्छीए उवहाणगेण्डुओ ।]

वामनकः—(साशङ्कम्) अरे, शनैर्जल्प । अस्मादृशानामन्तःपुरचारिणां सौभाग्य-वृत्तान्तमाकर्ण्य भर्ता कुपिष्यति ।

[अरे, सणिअं जप्प । अम्हारिसाणं अन्तेउरचारिणं सोहग्गवुत्तन्तं आअण्णिअ भट्टा कुविस्सदि ।]

वामनक इति । द्वारशिखरभङ्गाशङ्कितेन—द्वारस्य = प्रवेशमार्गस्य शिखरः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तीसरा अङ्क

(तदनन्तर बौना प्रवेश करता है)

वामनक—(बौना)—(अपने को देखकर आश्चर्यपूर्वक) मेरे अङ्गों की ऊँचाई आश्चर्यजनक है। ऐसे अङ्गों से भ्रमण करते हुए मेरे द्वारा कदाचित् दरवाजे का शिखर (ऊपरी भाग) न टूट जाय। तो कुबड़ा होकर भ्रमण करूँगा। (वैसा ही करता है)

(प्रवेश करके)

कुब्जक—(कुबड़ा)—मित्र वामनक, अब तुम सभी गुणों से युक्त हो गये हो।

वामनक—किस तरह ?

कुब्जक—पहले से ही वामन थे और अब कुबड़े भी हो गए हो।

वामनक—(क्रोध के साथ) रे मूर्ख, अपना कुबड़ापन दूसरे पर कैसे आरोपित करते हो ? अरे, तुम्ही कुबड़े हो। दरवाजे के ऊपरी भाग के टूटने की आशङ्का से मेरे द्वारा अपने आपमें कुबड़ापन मढ़ लिया गया है (अर्थात् दरवाजे के ऊपरी हिस्से के टूटने के भय से मैं स्वयं ही कुबड़ा बन गया हूँ)।

कुब्जक—(हँसकर) बित्ते भर के तुम्हारे अङ्ग (शरीर) से कैसे दरवाजे का शिखर टूट जायगा ? (फिर क्रोध के साथ) अरे व्यर्थ बकवास करने वाला, किसने तुम्हें बतलाया कि मैं कुबड़ा हूँ।

वामनक—गर्वीले सांड़ के ककुद (डिल्ला = भारतीय बैल के कन्धे का उभार) के सदृश पीठ पर वर्तमान ढोये जाते हुए इसी मांस के लोथड़े के द्वारा (कहा गया है)।

कुब्जक—(हँसकर) अरे निर्बुद्धि, किस तरह यह मांस का लोथड़ा भी पुनः सौभाग्यलक्ष्मी की तकिया है (अर्थात् यह साधारण मांस का लोथड़ा नहीं अपितु सौभाग्यलक्ष्मी के विश्राम के लिए तकिया है)।

वामनक—(आशङ्कापूर्वक) अरे, धीरे बोलो। रनिवास में रहनेवाले हम जैसे लोगों के सौभाग्य की बात को सुनकर स्वामी (राजा जनक) क्रुद्ध होंगे।

ऊर्ध्वभागः तस्य भङ्गः = मर्दनम् तेन आशङ्कितः = भीतः तेन। आरोपितः = कृत्रिमतया गृहीतः ॥

वामनक इति। दृप्तवृषभककुदसदृशेन—दृप्तः = यौवनमदगर्वितः इत्यर्थः वृषभः = बलीवर्दः तस्य ककुदः = स्कन्धोपरिस्थितः मांसपिण्डः तेन सदृशस्तेन, पृष्ठस्थितेन—पृष्ठे = स्कन्धे इत्यर्थः स्थितेन = वर्तमानेन, मांसस्तबकेन—मांसस्य = पिशितस्य स्तबकेन = पिण्डेन ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कुब्जकः—अलं भीरुत्वेन । इदानीं ध्यानगृहे वर्तते भर्ता ।

[अलं भीरुत्तणेण । दाणिं धाणघरम्मि वट्टदि भट्टा ।]

वामनकः—न खलु न खलु । अद्य किल कस्यापि प्राघूणिकस्य महर्षेरागमनं प्रतिपालयन्बाह्यमण्डपे वर्तते ।

[ण हु ण हु । अज्ज किर कस्सावि पाहुणकस्स महेसिणो आगमणं पडिवालअन्तो बाहिरमण्डवे वट्टदि ।]

कुब्जकः—हा हताः स्मः ।

[हा हदह्म ।]

वामनकः—किमिति ।

[किंति ।]

कुब्जकः—ननु प्रथममेवैकेन महर्षिणा याज्ञवल्क्येनोपदिष्टोऽयं राजा अक्षिमीलनै रात्रीर्गमयति । इदानीं पुनरनेनोपदिष्टोऽन्तःपुरमेव परिहरिष्यति । ततः किमयमस्माभिः क्षपणक इव कर्पटपेटकैः करिष्यति ।

[णं पढमं जेव्व एक्केण महेसिणा जण्णवक्केण उवदिट्ठो इमो राआ अच्छिमीलणेहिं रत्तिओ गमेदि । दाणिं उण इमिणा उवदिट्ठो अन्तेउरं जेव्व परिहरिस्सदि । तदो किं इमो अह्मेहिं खवणो व्व कप्पडपेडएहिं करिस्सदि ।]

वामनकः—सत्यमेतत् । यद्ययं महर्षिरस्माकं राज्ञ उपदेशार्थमागतो भवेत् । अयं पुनर्हरधनुर्दर्शनार्थम् ।]

[सच्चं एदं । जइ इमो महेसी अह्माणं रण्णो उवदेसत्थं आअदो भवे । इमो उण हरधणुदंसणत्थम् ।]

कुब्जकः—किमस्य महर्षेर्होमाग्निधूमश्यामलितलोचनस्य हरचापदर्शनेन । तत्तर्कयामि क्षत्रियब्राह्मणोऽयमिति ।

[किं इमस्स महेसिणो होमग्गिधूमसामलिअलोअणस्स हरचावदंसणेण । ता तक्केमि खत्तिअबह्मणो इमो त्ति ।]

वामनकः—(विहस्य) कथं तनुरिव मतिरपि ते वक्रा यदेवं तर्कयसि । सत्यं क्षत्रियब्राह्मणोऽयमिति ।

[कहं तणु व्व मदीवि तुह वङ्कुणी जं एवं तक्केसि । सच्चं खत्तिअबह्मणो इमो त्ति ।]

कुब्जकः—तत्कोऽप्यनर्थः संभाव्यते यत्किल चिरतपस्याकर्षितोऽयं तीव्रं प्रेक्षमाणः क्षत्रियब्राह्मण ऋजुमतेरस्माकं राजर्षे राज्यं ग्रहीतुमागत इति ।

[ता को वि अणत्थो संभाविअदि जं किर चिरतवस्साकरिसिदो इमो तिव्वं पेक्खमाणो खत्तिअबह्मणो रुजुमदिणो अह्माणं राएसिणो रज्जं गहीदुं आअदो त्ति ।]

वामनक इति । प्राघूणिकस्य = अतिथेः । प्रतिपालयन् = प्रतीक्षां कुर्वन् । बाह्यमण्डपे = गृहस्य बहिर्भागे ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कुब्जक—डरने की आवश्यकता नहीं। महाराज इस समय ध्यान-घर में हैं।

वामनक— नहीं, निश्चय ही नहीं। आज तो किसी अतिथि महर्षि के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बाहरी मण्डप में बैठे हैं।

कुब्जक—दुःख की बात है (तब तो हमलोग) मारे गए।

वामनक—क्यों ?

कुब्जक—अरे, पहले से ही एक महर्षि याज्ञवल्क्य के द्वारा उपदेश दिये गए यह राजा (जनक) आँखें मूद कर रातें विताते हैं। सम्प्रति इनके द्वारा उपदेश पाकर रनिवास ही छोड़ देंगे। तब जीर्णवस्त्रों की सन्दूकों से क्षपणक के समान यह राजा हमलोगों से क्या करेंगे ? (अर्थात् जैसे नग्न बौद्ध या जैन साधु लगोंटियों की पेटी से कोई मतलब नहीं रखता उसी तरह यह राजा भी हमलोगों से कुछ भी प्रयोजन नहीं रखेंगे)।

वामनक—यह (बात) सच होती यदि यह महर्षि हमारे राजा को उपदेश देने के लिए आए होते। किन्तु यह तो शङ्कर के धनुष को देखने के लिए (आए हैं)।

कुब्जक—हवन की गई अग्नि के धुँए से श्याम नेत्र वाले इस महर्षि के शिवधनुष को देखने से क्या (प्रयोजन है) ? अतः (मैं) अनुमान करता हूँ कि यह क्षत्रिय-ब्राह्मण (जन्म से क्षत्रिय तथा कर्म से ब्राह्मण) हैं।

वामनक—(हँस कर) शरीर की ही तरह तुम्हारी बुद्धि भी कैसी टेढ़ी है, जो ऐसी कल्पना करते हो। सच ही यह क्षत्रिय ब्राह्मण हैं।

कुब्जक—तब तो किसी अनर्थ की सम्भावना है, जो कि बहुत दिनों की तपस्या से खिन्न, तीखी निगाह से देखते हुए, यह क्षत्रिय-ब्राह्मण सरल मति वाले हमारे राजा के राज्य को ग्रहण करने के लिए आए हुए हैं।

कुब्जक इति। उपदिष्टः = शिक्षितः, अक्षिमीलनैः = नेत्रनिमीलनैः, योगोचिताऽभ्यासैरित्यर्थः। क्षपणक इव = बौद्धसंन्यासीव जैनसंन्यासीव वा, कर्पटपेटकैः = जीर्णवस्त्रपेटिकाभिः, प्राचीनवस्त्रसङ्कलनैरित्यर्थः। नग्नशीलत्वाद्यथा क्षपणका वस्त्रसञ्चयापेक्षां न कुर्वन्ति तथैव प्रयोजनाभावादयं राजाऽपि अस्मान् परिहरिष्यतीत्यर्थः॥

कुब्जक इति। होमाग्निधूमश्यामलितलोचनस्य—होमस्य = हवनस्य यः अग्निः = वह्निः तस्य यो धूमः तेन श्यामलिते = कृष्णीकृते लोचने = नेत्रे यस्य तादृशस्य, किम् = किं प्रयोजनमित्यर्थः। क्षत्रियब्राह्मणः = पूर्वं क्षत्रियः पश्चाद्ब्राह्मणः, जन्मना क्षत्रियः कर्मणा ब्राह्मण इत्यर्थः॥

वामनक इति। तनुरिव = शरीरमिव, मतिरपि = बुद्धिरपि, वक्रा = कुटिला, यत् = यस्मात्, एवम् = इत्थम्, तर्कयसि = कल्पनां करोषि। वक्रार्थः वक्रबुध्यैवावबुध्यते अत एव त्वमेवं सम्भावयसीत्यर्थः॥

कुब्जक इति। अनर्थः = विपत्तिः, चिरतपस्याकर्षितः—चिरम् = बहुकालम् या तपस्या = तपश्चरणम् तया कर्षितः = अनुभूतक्लेशः, तीव्रम् = तीक्ष्णम्, प्रेक्षमाणः = अवलोकयन्, ऋजुमतेः = सरलबुद्धेः॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

वामनकः—शान्तं पापम्। ईदृशं मा जल्प। अयं हि चिरतपस्यापरितोषितस्य ब्रह्मणो वाचा क्षत्रियत्वं परिहृत्य ब्राह्मणत्वं प्राप्तः।

[सन्तं पावम्। ईरिसं मा जप्प। अअं हि चिरतवस्सापरितोसिदस्स बह्मणो वाआए खत्तिअत्तणं परिहरिअ बह्मणत्तणं पत्तो।]

कुब्जकः—कथं तनुरिव मतिरपि तव वामनी यदीदृशालीकलोकवृत्तान्तेऽपि प्रत्याय्यते। यदि कस्यापि वाचा क्षत्रियो ब्राह्मणो भवति तर्हि मम वाचा त्वमपि ब्राह्मणो भवसि।

[कहं तणु व्व मदीवि तुह वामणी जं एरिसअलीअलोअवुत्तन्ते वि पत्तिआअदि। जइ कस्सवि वाआए खत्तिओ बह्मणो होइ ता मह वाआए तुमं वि बह्मणो होसि।]

वामनकः—अरे बालिश, कथं तव गोमुखस्य भगवतश्चतुर्मुखस्यापि नास्त्यन्तरम्।

[अरे बालिस, कहं तुह गोमुहस्स भअवदो चउम्मुहस्सवि णत्थि अन्तरम्।]

कुब्जकः—यद्ययं शुद्धब्रह्मणस्तत्किमस्य चापचिन्तया।

[जइ इमो सुद्धबह्मणो ता किं इमस्स चावचिन्ताए।]

वामनकः—अस्ति कारणम्। तस्य पार्श्वे तत एव गृहीतचापविद्यौ द्वौ क्षत्रियकुमारौ वर्तेते। ताभ्यां दर्शयिष्यति चापमिति।

[अत्थि कारणं। तस्स पासम्मि तदो जेव्व गहिअचावविज्जा दोण्णि खत्तिअकुमारा वट्टन्ति। ताणं दंसइस्सदि चावं ति।]

कुब्जकः—तच्छुद्धाशयोऽयम्।

[ता सुद्धासओ इमो।]

वामनकः—अथ किम्।

[अह इं।]

कुब्जकः—तत्कथय तावदस्मिन्नलीकदूषणारोपेण ननु मम पापमुत्पन्नं न वेति।

[ता कहेहि दाव इमस्सिं अलीअदूसणारोवेण णं मह पावं उप्पण्णं ण वेत्ति।]

वामनकः—पापमिति किं भण्यते। ननु महापापमुत्पन्नम्।

[पावं ति किं भणीअदि णं महापावं उप्पण्णम्।]

कुब्जकः—अरे मूर्ख, न जानासि धर्मस्य तत्त्वम्। संबन्धिजने परिहासवचनानि न खलु पापकारणानि।

[अरे मुरुख, ण आणासि धम्मस्स तत्तम्। संबन्धिअणे परिहासवअणाइ ण हु पावकारणाइं।]

वामनकः—कथं पुनरयं तव सम्बन्धिजनः।

[कहं उण इमो तुह संबन्धिअणो।]

वामनक इति। जल्प = कथय। चिरतपस्यापरितोषितस्य—चिरम् = बहुकालं-या तपस्या = तपश्चरणम् तया परितोषितस्य = सन्तुष्टस्य, ब्रह्मणः = सृष्टिकर्तुः, वाचा

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

वामनक—पाप शान्त हो। ऐसा मत कहो। यह तो बहुत दिनों की तपस्या से सन्तुष्ट हुए ब्रह्मा के कहने से क्षत्रिय जाति को छोड़ कर ब्राह्मण जाति को प्राप्त किये हैं।

कुब्जक—क्या शरीर की ही तरह तुम्हारी मति भी बौनी (है), जो कि इस प्रकार के झूठे लोक-वृत्तान्त पर भी विश्वास करती है। यदि किसी के कहने से क्षत्रिय ब्राह्मण होता है तो मेरे कहने से तुम भी ब्राह्मण हो जाओ।

वामनक—अरे मूर्ख, बैल की तरह मुँह वाले तुम में और ब्रह्मा में क्या अन्तर नहीं है?

कुब्जक—यदि वह शुद्ध ब्राह्मण हैं तो इन्हें धनुष की चिन्ता से क्या (लाभ)?

वामनक—कारण है। उनके पास उन्हीं से धनुर्विद्या को सीखे हुए दो क्षत्रिय-कुमार हैं। (ये) उन्हें धनुष दिखलाएँगे।

कुब्जक—तो (यह) पवित्र हृदय वाले (हैं)?

वामनक—और क्या? (अर्थात् निश्चित ही यह पवित्र हृदय वाले हैं)।

कुब्जक—अच्छा तो बतलाओ, इन पर झूठा दोष मढ़ने से मुझको पाप लगा कि नहीं?

वामनक—पाप ही क्या कहते हो? निश्चय ही महापाप उत्पन्न हुआ।

कुब्जक—अरे मूर्ख, (तुम) धर्म के रहस्य को नहीं जानते हो। सम्बन्धी व्यक्ति के विषय में मजाक में कहे गये वचन निश्चय ही पाप के जनक नहीं होते।

वामनक—यह तुम्हारे सम्बन्धी व्यक्ति कैसे (हुए)?

=वाण्या, क्षत्रियत्वम्=क्षत्रियजातिम्, परिहृत्य=परित्यज्य, ब्राह्मणत्वम्=ब्राह्मण-जातिम् ॥

वामनक इति। बालिश = मूर्ख, ('मूर्खवैधेयबालिशाः' इत्यमरः), गोमुखस्य—गोः = वृषभस्य मुखम् = आननम् इव मुखम् = आननम् यस्य तस्य, चतुर्मुखस्य=ब्रह्मणः, अन्तरम्=भेदः ॥

कुब्जक इति। पार्श्वे = समीपे, तत एव = तस्मादेव, गृहीतचापविद्यौ—गृहीता=अधीता चापविद्या=धनुर्विद्या याभ्यां तौ ॥

वामनक इति। तत्=तस्मात्, शुद्धाशयः—शुद्धः=पवित्रः आशयः=अभिप्रायः यस्य तादृशः ('अभिप्रायश्छन्द आशयः' इत्यमरः) ॥

कुब्जक इति। अलीकदूषणारोपेण—अलीकम् = मिथ्या दूषणस्य = दोषस्य आरोपेण=उपन्यासेन। अयं कपटेन मम भर्तुः साम्राज्यमादातुमागत इति रूपेण दोषेणेत्यर्थः ॥

कुब्जक इति। तत्त्वम् = रहस्यम्। परिहासवचनानि = नर्मवाक्यानि, पाप-कारणानि—पापस्य=दुरितस्य कारणानि=जनकानि ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कुब्जकः—अरे, न जानासि। अस्यापि द्वौ कुमारौ, अस्माकमपि द्वे कुमार्यौ। तत्तर्कयामि संबन्धिजनो भविष्यतीति।

[अरे, ण आणासि। अस्स वि दोण्णि कुमारा, अह्माणं वि दोण्णि कुमारीओ। ता तक्केमि संबन्धिअणो हविस्सदि त्ति।]

वामनकः—(विहस्य) कथमस्माकमीदृशं पुण्यम्।

[कहं अह्माणं एरिसं पुण्णम्।]

(नेपथ्ये)

ताटङ्किना झटिति ताडितताटकेन
रामेण पद्मरमणीयविलोचनेन।
क्रीडाशिखण्डकधरेण सलक्ष्मणेन
साकं मुनिः कुशिकसूनुरितोऽयमेति ॥ १ ॥

वामनकः—(सहर्षविस्मयम्) अहो, या खलु सकललोकभीषणा राक्षसी ताटकेति श्रूयते सानेन यदि ताडिता तदस्मिन्हरचापारोपणमपि संभाव्यते। तदेहि। इमं कर्णसुधारसं भट्टिनीभ्यः समर्पयामः।

[अहो, जा किर सअललोअभीसणा रक्खसी ताडएत्ति सुणीअदि सा इमिणा जइ ताडिदा ता इमस्सिं हरचावारोवणं वि संभावीअदि। ता एहि। इमं कण्णसुहारसं भट्टिणीणं समप्पह्म।]

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति प्रवेशकः ॥

(ततः प्रविशति रामलक्ष्मणानुगतो विश्वामित्रः)

विश्वामित्रः—(अङ्गुल्या दर्शयन्।) वत्स रामभद्र,

अन्वयः—ताटङ्किना, झटिति, ताडितताटकेन, पद्मरमणीयविलोचनेन, क्रीडाशिखण्डकधरेण, सलक्ष्मणेन, रामेण, साकम्, अयम्, मुनिः, कुशिकसूनुः, इतः, एति ॥ १ ॥

ताटङ्किनेति। ताटङ्कः = कर्णाभूषणम् अस्ति अस्येति ताटङ्की तेन, कर्णाभूषणधारिणेत्यर्थः, झटिति = शीघ्रमेव, ताडितताटकेन—ताडिता = हता ताटका = ताटकाख्या राक्षसी येन तादृशेन, पद्मरमणीयविलोचनेन—पद्मवत् = कमलवत् रमणीये = शोभने विलोचने = नेत्रे यस्य तादृशेन, क्रीडाशिखण्डकधरेण—क्रीडायै = मनोरञ्जनाय शिखण्डकम् = काकपक्षम्, मयूरपिच्छमिति यावत्, धरति = बालेषु स्थापयतीति तेन, काकपक्षधारिणेत्यर्थः, सलक्ष्मणेन = लक्ष्मणानुयातेन, रामेण = रामचन्द्रेण, साकम् = सह, अयम् = एषः, मुनिः = महर्षिः, कुशिकसूनुः = विश्वामित्रः, इतः = अस्यां दिशीत्यर्थः, एति = आगच्छति। वसन्ततिलका वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥' १ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कुब्जक—अरे, नहीं जानते हो। इनके (साथ) भी दो कुमार (हैं), हमारी भी दो कुमारियाँ (हैं)। अतः सोचता हूँ कि (ये हमारे) सम्बन्धी व्यक्ति होंगे।

वामनक—(हँसकर) हमारा ऐसा भाग्य कहाँ?

(पर्दे के पीछे)

कान के आभूषण को पहने हुए, शीघ्र ही ताटका (नामक राक्षसी) को मारनेवाले, कमल के सदृश सुन्दर आँखोंवाले, मनोरञ्जन के लिए मोरपङ्ख को धारण करनेवाले, लक्ष्मण के सहित राम के साथ यह मुनि विश्वामित्र इधर (ही) आ रहे हैं ॥ १ ॥

वामनक—(प्रसन्नता एवम् आश्चर्य के साथ) आश्चर्य है, सम्पूर्ण लोकों को भयभीत करनेवाली जो ताटका नामक राक्षसी सुनी जाती थी वह यदि इन (राम) के द्वारा मारी गई है तो शङ्कर के धनुष को चढ़ाने की भी सम्भावना इनमें की जा सकती है। तो आओ, इस कर्णामृतरस (अर्थात् कानों को प्रिय लगनेवाले इस वृत्तान्त) को रानियों से कहें।

(ऐसा कह कर चले जाते हैं)

॥ प्रवेशक समाप्त ॥

विशेष—**प्रवेशक**—परिचायक, निम्नपात्रों (नौकर चाकर) द्वारा अभिनीत विष्कम्भक (इसमें श्रोता को रङ्गमञ्च पर अप्रस्तुत घटना का आगे होनेवाली बातों की जानकारी के लिए ज्ञान कराना आवश्यक है); (विष्कम्भक की भाँति यह नाटक की कथा तथा कथावस्तु के अवान्तर भेदों को जो या तो अङ्कों के अन्तराल में घटित हो चुके हैं या अन्त में होनेवाले हैं, जोड़ देता है; यह पहले अङ्क के आरम्भ या अन्तिम अङ्क के अन्त में कभी प्रयुक्त नहीं होता) ॥

(तदनन्तर जिसके पीछे-पीछे राम और लक्ष्मण चल रहे हैं ऐसे विश्वामित्र प्रवेश करते हैं)

विश्वामित्र—(अँगुली से दिखलाते हुए) वत्स रामचन्द्र,

वामनक इति। सकललोकभीषणा—सकलान् = समग्रान् लोकान् = जनान् भीषयतीति = भयं ददातीति तादृशी, सर्वजनभयङ्करीति यावत्। कर्णसुधारसम्—कर्णयोः = श्रोत्रयोः सुधारसम् = अमृतस्यन्दम्, भट्टिनीभ्यः = राज्ञीभ्यः ॥

प्रवेशक इति। साहित्यदर्पणे प्रवेशकलक्षणं यथा—

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥' इति ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

एतत्तर्कय चक्रवाकहृदयाश्वासाय तारागण-
ग्रासाय स्फुरदिन्दुमण्डलपरीहासाय भासां निधिः ।
दिक्कान्ताकुचकुम्भकुङ्कुमरसन्यासाय पङ्केरुहो-
ल्लासाय स्फुटवैरिकैरववनत्रासाय विद्योतते ॥ २ ॥

रामः—(अञ्जलिं बद्ध्वा)

लालयन्तमरविन्दवनानि क्षालयन्तमभितो भुवनानि ।
पालयन्तमथ कोककुलानि ज्योतिषां पतिमहं महयामि ॥ ३ ॥

विश्वामित्रः—(स्वगतम्) अपि नाम मयोपनीयमानं वत्सरामभद्रमचिरादेव जनकस्तनूजया संभावयिष्यति ।

लक्ष्मणः—आर्य, पश्य ।

यावन्नीरनिधेः प्रभातसमयः प्रोद्धृत्यलोकत्रयी-
माणिक्यं रविबिम्बमम्बरवणिग्वीथीपथे न्यस्यति ।
तावत्कर्तुमिवास्य मूल्यमुचितं पद्माकरेण स्वयं
लक्ष्मीर्लब्धविकाशपङ्कजकरन्यस्ता पुरः स्थाप्यते ॥ ४ ॥

अन्वयः—भासाम्, निधिः, चक्रवाकहृदयाश्वासाय, तारागणग्रासाय, स्फुरदिन्दुमण्डलपरीहासाय, दिक्कान्ताकुचकुम्भकुंकुमरसन्यासाय, पङ्केरुहोल्लासाय, स्फुटवैरिकैरववनत्रासाय, विद्योतते, एतत्, तर्कय ॥ २ ॥

सूर्योदयं वर्णयन्नाह—एतदिति । भासाम् = ज्योतिषाम्, निधिः = आकरः, सूर्यः इत्यर्थः, चक्रवाकहृदयाश्वासाय—चक्रवाकानाम् = कोकानाम् ('कोकश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः' इत्यमरः) हृदयस्य = चेतसः आश्वासाय = सान्त्वनाप्रदानाय, रात्रौ चक्रवाकमिथुनानि वियुज्यन्ते सूर्योदये सम्मिलन्तीति सूर्यस्य तदाश्वासनं सिद्धमेवेति; तारागणग्रासाय—तारागणस्य = नक्षत्रमण्डलस्य ग्रासाय = विलीनीकरणाय, स्फुरदिन्दुमण्डलपरीहासाय—स्फुरत् = भासमानम् यदिन्दुमण्डलम् = चन्द्रबिम्बः ('बिम्बोऽस्त्री मण्डलम्' इत्यमरः) तस्य परीहासाय = उपहासाय, ग्लपनायेत्यर्थः; दिक्कान्तेत्यादिः—दिशः = काष्ठाः एव कान्ताः = सुन्दर्यः तासां कुचकुम्भेषु = स्तनकलशेषु कुंकुमरसस्य = काश्मीरजद्रवस्य न्यासाय = स्थापनाय, स्वस्वर्णाभप्रकाशैः रञ्जनायेत्यर्थः; पङ्केरुहोल्लासाय-पङ्केरुहाणाम् = कमलानाम् उल्लासाय = विकाशाय, स्फुटवैरिकैरववनत्रासाय—स्फुटम् = विकसितम् यत् कैरववनम् = कुमुदवनम् तस्य त्रासाय = भीत्यै, संकोचायेत्यर्थः, अस्तङ्गते च सूर्ये कुमुदानि विकसन्तीति तानि सूर्यरिपवः इति; विद्योतते = प्रकाशते, एतत् = इत्थम्, तर्कय = विचारयेत्यर्थः । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥' २ ॥

अन्वयः—अरविन्दवनानि, लालयन्तम्; भुवनानि, अभितः, क्षालयन्तम्; अथ, कोककुलानि, पालयन्तम्, ज्योतिषाम्, पतिम्, अहम्, महयामि ॥ ३ ॥

लालयन्तमिति । अरविन्दवनानि—अरविन्दानाम् = कमलानाम् वनानि = पुञ्जानि, लालयन्तम् = विलासयन्तम् (लड् विलासे, डलयोरभेदः), करस्पर्शेन विकास-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रभाओं का आकर (अर्थात् सूर्य) चकवा (नामक पक्षियों) के हृदय को आश्वासन देने के लिए, तारागणों को छिपा देने के लिए, चमकते हुए चन्द्रमण्डल का उपहास करने के लिए, दिशाओं रूप सुन्दरियों के स्तनकलशों पर कुंकुम के रस का लेप करने के लिए (अर्थात् दिशाओं में सुनहला प्रकाश फैलाने के लिए), कमलों को विकसित करने के लिए, विकसित शत्रुरूप कुमुदवन को (कोइनी–बेरा के समूह को) भय दिखलाने के लिए (अर्थात् संकुचित करने के लिए), प्रकाशित हो रहे हैं—ऐसा सोचो ॥ २ ॥

राम—(हाथ जोड़कर) कमलों के वन को दुलारनेवाले (अर्थात् विकसित करनेवाले), लोकों को चारों ओर से निर्मल करनेवाले और चक्रवाक पक्षियों के समूह का पालन करनेवाले (अर्थात् रक्षा करनेवाले), ग्रहों के अधिपति (सूर्य) को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

विश्वामित्र—(अपने आप) क्या जनक मेरे द्वारा लाये गये वत्स रामचन्द्र को शीघ्र ही (अपनी) पुत्री (के दान) से सम्मानित करेंगे ?

लक्ष्मण—आर्य, देखिये—

जब तक प्रातःकाल, समुद्र से निकाल कर त्रिलोकी के लाल (माणिक्य) सूर्यमण्डल को आकाशरूप बाजार के मार्ग पर रखता है, तब तक मानों इसका उचित मूल्य करने के लिए स्वयं पद्माकर (सरोवर) के द्वारा विकसित कमलरूप हाथ में रखी गई लक्ष्मी (शोभा, सम्पत्ति) आगे रख दी जाती है ॥ ४ ॥

यन्तमित्यर्थः; भुवनानि = जगन्ति, अभितः = परितः, क्षालयन्तम् = निर्मलानि कुर्वन्तम्, प्रकाशयन्तमित्यर्थः; अथ = तथा, कोककुलानि = चक्रवाकसमूहान्, चक्रवाकमिथुनानीति भावः, पालयन्तम् = रक्षन्तम्; रात्रौ चक्रवाकाः प्रियाभिः वियुज्यन्ते, न भवेच्चेत्सूर्योदयस्तदा ते म्रियेरन्निति भावः; एतादृशं ज्योतिषाम् = ग्रहाणाम्, पतिम् = स्वामिनम्, अहम् = रामचन्द्रः, महयामि = पूजयामि, प्रणमामीत्यर्थः। अत्र स्वागतावृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'स्वागता रनभगैर्गुरुणा च ॥' ३ ॥

अन्वयः—यावत्, प्रभातसमयः, नीरनिधेः, प्रोद्धृत्य, लोकत्रयीमाणिक्यम्, रविबिम्बम्, अम्बरवणिग्वीथीपथे, न्यस्यति, तावत्, अस्य, उचितम्, मूल्यम्, कर्तुम्, इव, स्वयम्, पद्माकरेण, लब्धविकासपङ्कजकरन्यस्ता, लक्ष्मीः, पुरः, स्थाप्यते ॥ ४ ॥

सूर्योदयजन्यं पद्मविकासं वर्णयन्नाह—यावन्नीरनिधेरिति । यावत् = यस्मिन्नेवकाले, प्रभातसमयः—प्रभातस्य = प्रातःकालस्य समयः = वेला, नीरनिधेः = वारिधेः, प्रोद्धृत्य = निःसार्य, लोकत्रयीमाणिक्यम्—लोकत्रय्याः = त्रिलोक्याः माणिक्यम् = रत्नम्, रविबिम्बम् = सूर्यमण्डलम्, अम्बरवणिग्वीथीपथे—अम्बरम् = आकाशम् एव वणिग्वीथ्याः = आपणस्य पन्थाः = मार्गः तस्मिन्, न्यस्यति = स्थापयति, विक्रेतुमिति शेषः, तावत् = तस्मिन्नेव काले, अस्य—रविरत्नस्य, उचितम् = योग्यम्, मूल्यम् = अवक्रयम् ('मूल्यं वस्नोऽप्यवक्रयः' इत्यमरः), कर्तुमिव = विधातुमिव, स्वयं पद्मा-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्रः—(सहर्षमात्मगतम्) अये वत्सलक्ष्मणेनैव दत्तमुत्तरम् । देवताधिष्ठितानि हि मुग्धवचनानि भवन्ति ।

रामः—(मुनिं प्रति) भगवन्, कथमियं बहुनरकरितुरङ्गमतरङ्गितापि राजधानी तपोवनभूमिरिव प्रशान्तपावनी विभाव्यते ।

विश्वामित्रः—क इह विस्मयः । नन्विह जनकः प्रतिवसति यस्यायं भगवान्याज्ञवल्क्यो गुरुः ।

रामः—सोऽयं भगवानस्य गुरुर्यः किल योगीश्वर इति ख्यायते ।

विश्वामित्रः—वत्स, स एवायं ।

पादोपजीवनाद्भानोः प्रबोधमुपलभ्य यः ।
अभूद्योगीश्वरख्यातेः सद्म पद्ममिव श्रियः ॥ ५ ॥

तदेहि । राजभवनमुपसर्पामः । (इति निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

पयोभिः सिच्यन्तां बहलविलसत्कुङ्कुमरसैः
प्रसूनैः कीर्यन्तां परिमलमिलल्लोलमधुपैः ।
चतुष्कैः पूर्यन्तामविरललसन्मौक्तिकगणै-
र्मुदा पौरस्त्रीभिर्नगरपथरथ्याङ्गणभुवः ॥ ६ ॥

करेण = कमलाकरेण, सरसेत्यर्थः, लब्धविकासपङ्कजकरन्यस्ता—लब्धः = प्राप्तः विकासः = प्रफुल्लता येन तादृशं यत् पङ्कजम् = कमलम् तदेव करः = हस्तः तत्र न्यस्ता = स्थापिता, लक्ष्मीः = शोभा, मूल्यभूतं धनमपि, पुरः = अग्रे, स्थाप्यते = न्यस्यते । सञ्जाते च सूर्योदये तत्क्षणमेव कमलविकासः सञ्जात इति भावः । परञ्च सूर्योदयसमकालं कमलविकासस्य साहित्ये एव दर्शनं न तु व्यवहारे । अत्र रूपकोत्प्रेक्षयोः सङ्करः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४ ॥

विश्वामित्र इति । देवताधिष्ठितानि—देवताभिः = देवैः अधिष्ठितानि = कृताश्रयाणि, प्रेरितानीत्यर्थः, मुग्धवचनानि—मुग्धानाम् = बालानाम् वचनानि = वाक्यानि । 'वत्सरामभद्रमचिरादेव जनकस्तनूजया सम्भावयिष्यति ?' इति विश्वामित्रप्रश्नः । लक्ष्मणकथने प्रभातसमयो विश्वामित्रः, रविबिम्बं रामचन्द्रः, पद्माकरो जनकः लक्ष्मीस्तु जानकीत्येवं विचार्य मुनिस्तत्र प्रश्नसमाधानं विचारयतीति बोध्यम् ॥

राम इति । बहुनरकरितुरङ्गमतरङ्गिता—बहवः = अनेके ये नराः = मानवाः करिणः = गजाः तुरङ्गमाः = अश्वाः तैः तरङ्गिता = उद्वेलिता, व्याप्तेति यावत्; प्रशान्तपावनी—प्रशान्ता = कोलाहलवर्जिता पावनी = पूतकर्त्री च ॥

अन्वयः—भानोः, पादोपजीवनात्, श्रियः, सद्म, पद्मम्, इव; प्रबोधम्, उपलभ्य, यः; योगीश्वरख्यातेः, सद्म, अभूत् ॥ ५ ॥

याज्ञवल्क्यस्य महत्त्वातिशयं वर्णयन्नाह—**पादोपजीवनादिति ।** भानोः = सूर्यस्य, पादोपजीवनात्—पादानाम् = याज्ञवल्क्यपक्षे – चरणानाम्, आदरे बहुवचनम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्र—(बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने आप) वाह, वत्स लक्ष्मण के द्वारा ही (मेरे प्रश्न का) उत्तर दे दिया गया। क्योंकि भोले-भाले बालकों के वचन देवताओं के द्वारा प्रेरित हुआ करते हैं।

राम—(मुनि के प्रति) भगवन्, अनेक मनुष्य, हाथी तथा घोड़ों से भरी हुई भी यह राजधानी किस तरह तपोवन की भूमि की तरह प्रशान्त एवं पवित्र करनेवाली मालूम पड़ रही है।

विश्वामित्र—इसमें क्या आश्चर्य? अरे, यहाँ जनक निवास करते हैं जिसके गुरु यह भगवान् याज्ञवल्क्य हैं।

राम—जो योगीश्वर कहे जाते हैं। वही भगवान् (याज्ञवल्क्य) इनके गुरु हैं!

विश्वामित्र—बेटा, वही यह (हैं)।

सूर्य के पाद (कमल के पक्ष में–किरण तथा याज्ञवल्क्य के पक्ष में–चरण) की सेवा से, लक्ष्मी के निवास-स्थान कमल की तरह, जो प्रबोध (कमल के पक्ष में—विकास तथा याज्ञवल्क्य के पक्ष में–ज्ञान) को प्राप्त करके 'योगीश्वर' इस प्रसिद्धि के आश्रय हुए हैं (अर्थात् योगीश्वर कहलाये हैं) ॥ ५ ॥

तो आओ, राजभवन चलें। (ऐसा कह कर निकल गये)

(पर्दे के पीछे)

पुर की स्त्रियों के द्वारा प्रसन्नता के साथ नगर के मार्ग, गलियाँ और आँगन की भूमियाँ अत्यन्त सुन्दर कुङ्कुम के रसों से युक्त (अर्थात् रसों से मिश्रित) जलों से सींची जाँय, सुगन्ध से आकृष्ट चञ्चल भौंरों से युक्त फूलों से व्याप्त की जाँय, अत्यन्त सघन, सुशोभित मोतियों की मालाओं से चौराहे भर दिये जाँय (अर्थात् अलङ्कृत कर दिए जाँय) ॥ ६ ॥

कमलपक्षे—किरणानाम्, उपजीवनात् = सेवनात्; श्रियः = लक्ष्म्याः, सद्म = निवासस्थानम्, पद्ममिव = कमलमिव; प्रबोधम् = कमलपक्षे—विकासम्, याज्ञवल्क्यपक्षे—ज्ञानम्, उपलभ्य = प्राप्य, यः = महर्षिः, योगीश्वरख्यातेः—योगीश्वरः इति ख्यातेः = प्रसिद्धेः, सद्म = आश्रयस्थानम्, आश्रयः इत्यर्थः, अभूत् = सञ्जातः। यथा सूर्यकिरणस्पर्शं प्राप्य कमलं विकासं गच्छति तथैव सूर्यचरणसेवनादयं याज्ञवल्क्यः ज्ञानं प्राप्य योगीश्वरः सञ्जातः इत्यर्थः। अत्र श्लेषोपमयोः सङ्करः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—पौरस्त्रीभिः, मुदा, नगरपथरथ्याङ्गणभुवः, बहलविलसत्कुङ्कुमरसैः, पयोभिः, सिच्यन्ताम्; परिमलमिलल्लोलमधुपैः, प्रसूनैः, कीर्यन्ताम्; अविरललसन्मौक्तिकगणैः, चतुष्कैः, पूर्यन्ताम् ॥ ६ ॥

नगरसंस्काराय पुरुषा राजाज्ञामुद्घोषयन्ति—**पयोभिरिति**। पौरस्त्रीभिः = नगरस्त्रीभिः, मुदा = हर्षेण, नगरपथरथ्याङ्गणभुवः—नगरस्य = पुरस्य पन्थानः = राजमार्गाः रथ्याः = प्रतोल्यः अङ्गणानि = पौराणां मनोविनोदाय निर्मितानि लौहादिपरिवृतानि गोष्ठीस्थानानि तेषां भुवः = भूमयः, बहलविलसत्कुङ्कुमरसैः—बहलम् = पर्याप्तं यथा तथा विलसन्तः = शोभमानाः कुङ्कुमरसाः = कश्मीरजद्रवाः येषु तादृशैः, पयोभिः=

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्रः—नूनमस्मदभ्यागमनसानन्दस्य शतानन्दस्य वाक्यपरिस्पन्दः। (विलोक्य) अहो अस्य रभसातिशयो यदयं कृतमपि नगरपरिष्कारं पुनरादिशति।

(प्रविश्य)

शतानन्दः—भगवन्, अभिवादये।

विश्वामित्रः—सौम्य, आयुष्मान्भूयाः।

शतानन्दः—भगवन् अयमसौ जनको राजा भगवन्तं प्रतीक्षते।

विश्वामित्रः—(विलोक्य) अये स एष जनकः।

> अङ्गैरङ्गीकृता यत्र षड्भिः सप्तभिरष्टभिः।
> त्रयी च राजलक्ष्मीश्च योगविद्या च दीव्यति॥ ७॥

(ततः प्रविशति जनकः)

जनकः—(कृताञ्जलिर्भूत्वा)

> यः काञ्चनमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये।
> वर्णोत्कर्षं गतः सोऽयं विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥ ८॥

(उत्पत्य) भगवन्, अयं ते समीहितसंपल्लतासमुद्रमारामः प्रणामः।

जलैः, सिच्यन्ताम् = आर्द्रीक्रियन्ताम्; परिमलमिलल्लोलमधुपैः—परिमलेन = सुगन्धेन (कारणेन) मिलन्तः = सङ्गच्छन्तः लोलाः = चञ्चलाः मधुपाः = भ्रमराः येषु तादृशैः, प्रसूनैः = पुष्पैः, कीर्यन्ताम् = प्रक्षिप्यन्ताम्; अविरललसन्मौक्तिकगणैः—अविरलम् = अनिबिडं यथा स्यात्तथा लसन्तः = शोभमानाः मौक्तिकगणाः = मुक्तामालाः येषु तादृशैः, चतुष्कैः = चतुष्पथैः, पूर्यन्ताम् = सज्जीक्रियन्ताम्। शिखरिणी वृत्तम्॥ ६॥

विश्वामित्र इति। अस्मदभ्यागमनसानन्दस्य—अस्माकम् अभ्यागमनेन = अत्र सम्प्राप्त्या सानन्दस्य = प्रसन्नस्य, शतानन्दस्य = जनकपुरोहितस्य, वाक्यपरिस्पन्दः—वाक्यस्य = वचनस्य परिस्पन्दः = सञ्चारः। रभसातिशयः—रभसस्य = हर्षस्य ('रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः) अतिशयः = आधिक्यम्॥

अन्वयः—यत्र, षड्भिः, सप्तभिः, च, अष्टभिः, अङ्गैः, अङ्गीकृता, (क्रमशः), त्रयी, च, राजलक्ष्मीः, च, योगविद्या, दीव्यति॥

विश्वामित्रो जनकं वर्णयन्नाह—अङ्गैरिति। यत्र = यस्मिन् जनके, षड्भिः = षट्संख्यकैः, शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तज्योतिश्छन्दोभिरित्यर्थः, सप्तभिः = सप्तसंख्यकैः, स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलैरित्यर्थः, च = तथा, अष्टभिः = अष्टसंख्यकैः, यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधिभिरित्यर्थः, अङ्गैः = अवयवैः, अङ्गीकृता = संयुक्ता, (क्रमशः = यथासंख्यमित्यर्थः), त्रयी = वेदविद्या, च = तथा, राजलक्ष्मीः = राजश्रीः, योगविद्या = चित्तवृत्तिनिरोधविद्या च, दीव्यति = विलसति। अत्र यथासंख्यमलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ ७॥

अन्वयः—यः, काञ्चनम्, इव, आत्मानम्, तपोमये, अग्नौ, निक्षिप्य, वर्णोत्कर्षम्, गतः, अयम्, सः, मुनीश्वरः, विश्वामित्रः॥ ८॥

यः काञ्चनमिव। यः = विश्वामित्रः, काञ्चनम् = सुवर्णम्, इव = यथा,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्र—निश्चय ही, हम लोगों के आने से आनन्दित (जनक के पुरोहित) शतानन्द के वाक्य का (यह) सञ्चार है (अर्थात् शतानन्द का यह वचन है)। (देखकर) इनके हर्ष की अधिकता आश्चर्यजनक है, जो कि यह (पहले से ही) किये गये नगर के परिस्कार (सजावट) को फिर से आदेश दे रहे हैं।

(प्रवेश करके)

शतानन्द—भगवन्, मैं प्रणाम कर रहा हूँ।

विश्वामित्र—सौम्य (भले मानस), चिरञ्जीवी बनो।

शतानन्द—भगवन्, यह राजा जनक आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

विश्वामित्र—(देख कर) अरे, यह वही जनक हैं—

जिनमें छः (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष), सात (स्वामी अमात्य, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना) और आठ (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) अङ्गों से युक्त (क्रमशः) त्रयी (वेद) राजलक्ष्मी और योगविद्या प्रकाशित हो रही है ?

(तदनन्तर जनक प्रवेश करते हैं)

जनक—(हाथ जोड़कर)

जो सुवर्ण की तरह अपने-आप को तपस्यारूप अग्नि में रख कर वर्ण (सुवर्ण के पक्ष में रङ्ग और विश्वामित्र के पक्ष में—जाति) के उत्कर्ष को प्राप्त हुए हैं; यह वही मुनि-श्रेष्ठ विश्वामित्र हैं ॥ ८ ॥

विशेष—विश्वामित्र जाति के क्षत्रिय थे। तपस्या करके वे ब्राह्मण हुए थे। यह उनकी वर्णोत्कृष्टता रही ॥ ८ ॥

(पास में जाकर) भगवन्, अभीष्ट सम्पत्तिरूप लताओं की उत्पत्ति के लिए उद्यान-स्वरूप (मेरा) यह प्रणाम आप की (सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है) (अर्थात् सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाला मेरा यह प्रमाण आप की सेवा में प्रस्तुत है)।

आत्मानम् = स्वम्, तपोमये = तपस्यारूपे, अग्नौ = वह्नौ, निक्षिप्य = प्रक्षिप्य, स्थाप्येत्यर्थः, वर्णोत्कर्षम्—वर्णस्य—सुवर्णपक्षे—रक्तिम्नः, रङ्गस्येत्यर्थः, विश्वामित्रपक्षे—जातिश्रेष्ठताम्, ब्राह्मणत्वमित्यर्थः, गतः = प्राप्तः, अयम् = एषः, सः = वर्णेनोत्कृष्ट इत्यर्थः, मुनीश्वरः = मुनिराजः, विश्वामित्रः = कौशिकः, अस्तीति क्रियाशेषः। अत्र संसृष्टिरलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ८ ॥

उपसृत्येति। समीहितसम्पल्लतासमुद्गमारामः—समीहिताः=अभीप्सिताः याः सम्पदः= श्रियः एव लताः = वल्लर्यः तासां समुद्गमस्य = प्रादुर्भावस्य आरामः = उद्यानम्, प्रणामः = प्रणतिः। सकलमनोरथसम्पादकः एषः मे प्रणामस्तव पुरतो विलसतीत्यभिप्रायः।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्रः—राजर्षे, वसुंधरासुनासीर सीरध्वज, अप्रतिहतमनोरथो भूयाः ।

(इति यथोचितमुपविशन्ति)

जनकः—भगवन्, अधुना सुनासीरधारणत्वमधःकरणं मे ।

विश्वामित्रः—कथमिव ।

जनकः—संप्रति तदीयामपि पदवीमतीत्य वर्ते ।

गाधिनन्दन न नन्दनजन्मा तादृशः स हरिचन्दनशाखी ।
यादृशो मम भवत्पदपद्मद्वन्द्ववन्दनविधिः सुखहेतुः ॥ ९ ॥

विश्वामित्रः—अहो ते प्रणयातिशयो यः सहजप्रमोदसुखाम्बुधिनिमग्नोऽप्यस्मत्समागमजन्मनः सुखशीकरान्बहु मन्यसे ।

जनकः—भगवन्, अस्मद्विधानां राज्यरागोपरक्तचेतश्चन्द्रमसां कुतस्त्योऽयं सहजानन्दचन्द्रिकोद्भेदः ।

विश्वामित्रः—मैवं भोः,

ज्याघातः कार्मुकस्य श्रयति करतलं कण्ठमोङ्कारनाद-
स्तेजो भाति प्रतापाभिधमवनितले ज्योतिरात्मीयमन्तः ।
राज्यं सिंहासनश्रीः शममपि परमं वक्ति पद्मासनश्री-
र्येषां ते यूयमेते निमिकुलकुमुदानन्दचन्द्रा नरेन्द्राः ॥ १० ॥

विश्वामित्र इति । वसुधासुनासीर = वसुधायाम् = पृथिव्याम् सुनासीरः = इन्द्रः तत्सम्बुद्धौ, सीरध्वज—सीरः = हलम् ('लाङ्गलं हलम् ॥ गोदारणं च सीर' इत्यमरः) ध्वजे = पताकायाम् यस्य सः सीरध्वजः = जनकः तत्सम्बुद्धौ, अप्रतिहतमनोरथः—अप्रतिहतः = अविहतः, सफल इति यावत्, मनोरथः = अभिलाषा यस्य तादृशः ॥

जनक इति । सुनासीरसाधारणत्वम्—सुनासीरेण = इन्द्रेण साधारणत्वम् = साम्यम्, मे = मम, अधःकरणम् = लाघवम् अस्तीति शेषः ॥

जनक इति । तदीयाम् = इन्द्रसम्बन्धिनीम्, पदवीम् = प्रतिष्ठाम्, अतीत्य = अतिक्रम्य, वर्ते = स्थितोस्मीत्यर्थः ॥

अन्वयः—हे गाधिनन्दन, नन्दनजन्मा, सः, हरिचन्दनशाखी, तादृशः, सुखहेतुः, न; यादृशः, मम, भवत्पदपद्मद्वन्द्ववन्दनविधिः, (सुखहेतुः, अस्ति) ॥ ९ ॥

गाधिनन्दनेति । हे गाधिनन्दन = हे विश्वामित्र, नन्दनजन्मा—नन्दने = नन्दननामके देववने जन्म = उत्पत्तिः यस्य सः, सः = जगत्प्रसिद्धः, हरिचन्दनशाखी हरिचन्दनवृक्षः, देवतरुरित्यर्थः, तादृशः = तथाविधः, सुखस्य = आनन्दस्य हेतुः = कारणम्, न = नास्ति; यादृशः = यथाविधः, मम = मे, भवत्पदपद्मद्वन्द्ववन्दनविधिः—भवतः = श्रीमतस्तव पदम् = चरणमेव पद्म = कमलम् = पङ्कजम्, तस्य द्वन्द्वम् = युगलम् तस्य वन्दनविधिः = प्रणामप्रकारः, सुखहेतुरस्तीति शेषः । अत्र यमकालङ्कारः । वृत्तञ्च स्वागता ॥ ९ ॥

विश्वामित्र इति । सहजप्रमोदसुखाम्बुधिनिमग्नः—सहजम् = स्वाभाविकम् यत् प्रमोदसुखम् = परमानन्दः तस्य अम्बुधिः = सागरः तस्मिन् निमग्नः = ब्रुडितः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्र—राजर्षे, पृथिवी पर के इन्द्र ! सीरध्वज ! सफल मनोरथ वाले होओ (अर्थात् तुम्हारे मनोरथ सफल हों) ।

(इस प्रकार यथायोग्य बैठ जाते हैं)

जनक—भगवन्, इस समय इन्द्र की समानता मेरी छोटाई (है) (अर्थात् इन्द्र के साथ तुलना करना मेरा अपमान है ।)

विश्वामित्र—कैसे ?

जनक—इस समय (मैं) उस (इन्द्र) की प्रतिष्ठा को भी लाँघकर स्थित हूँ (अर्थात् इस समय मैं इन्द्र से भी श्रेष्ठ हूँ) ।

हे गाधिपुत्र, नन्दन (नामक देवताओं के उपवन) में उत्पन्न जगत्प्रसिद्ध हरिचन्दन-वृक्ष (भी) वैसा सुखकारक नहीं है जैसा (कि) मेरे लिए आपके चरण-कमल के युगल की वन्दन-विधि (सुखकारक है) ॥ ९ ॥

विश्वामित्र—आपके प्रेम की अधिकता आश्चर्यजनक है, जो (कि आप) स्वाभाविक परमानन्द के सागर में निमग्न होकर भी हमारे मिलन से होनेवाले सुख के कणों को बहुत मान रहे हैं ।

जनक—भगवन् , राज्य विषयक अभिलाषा से ग्रस्त चित्तरूपी चन्द्रमावाले हम जैसे लोगों को स्वाभाविक आनन्द (ब्रह्मानन्द) रूप चन्द्रिका का प्रादुर्भाव कहाँ से हो सकता है ।

विश्वामित्र—अरे, ऐसा न कहें—

जिन लोगों के धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) के आघात का चिह्न (घट्टा) करतल का (और) ओङ्कार–शब्द कण्ठ का आश्रयण करता है। प्रताप नामक तेज भूतल में (तथा) आत्मिक तेज अन्तःकरण में प्रकाशित होता है। सिंहासन की शोभा राज्य को पद्मासन की शोभा अत्युत्कृष्ट शान्ति को भी बतलाती है। वैसे यह आप लोग निर्भिवंशरूप कुमुद के आनन्द (विकाश) के लिए चन्द्र तुल्य हैं ॥ १० ॥

लीनः इत्यर्थः; अस्मत्समागमजन्मनः—अस्माकं समागमाज्जन्म येषां तान् , सुखशीकरान्=सुखविन्दून् ॥

जनक इति । अस्मद्विधानाम्—अस्माकं विधा=प्रकारः इव विधा येषां तेषाम् , राज्यरागोपरक्तचेतश्चन्द्रमसाम्—राज्यरागः=राज्यविषयिणी अभिलाषा तेन उपरक्तम्=ग्रस्तम् चेतः=चित्तम् एव चन्द्रमाः येषाम् तेषाम् ; अस्मद्विधानाम्=अस्मत्सदृशानाम् , सहजानन्दचन्द्रिकोद्भेदः—सहजः=स्वाभाविकः यः आनन्दः=सुखम् , ब्रह्मानन्द इत्यर्थः, स एव चन्द्रिका=कौमुदी तस्याः उद्भेदः=उत्पत्तिः । यथा राहुग्रस्ते चन्द्रमसि न भवति कौमुद्युद्भेदस्तथैव राज्यरागेण ग्रस्ते अस्माकं मनसि कुतः स्वाभाविकानन्दानुभूतिरित्यर्थः । वीतरागाणां मनस्येव सहजप्रकाशोद्भेद इति भावः ॥

अन्वयः—येषाम् , कार्मुकस्य, ज्याघातः, करतलम् , ओङ्कारनादः, कण्ठम् , श्रयतिः, प्रतापाभिधम् , तेजः, अवनितले, आत्मीयम् , ज्योतिः, अन्तः, भाति; सिंहासनश्रीः, राज्यम् , पद्मासनश्रीः, परमम्, शमम् , अपि, वक्तिः, ते एते, यूयम् ,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शतानन्दः—सत्यमेतत् । एते हि

वाराङ्गनाकरतरङ्गितचामरोर्मि-
श्वेतातपत्रशतपत्त्रिणि राजहंसाः ।
क्रीडन्ति राज्यसरसि स्वरसं च धीरा
योगीन्द्रचन्द्रसुगमे पथि सञ्चरन्ति ॥ ११ ॥

लक्ष्मणः—(अपवार्य) आर्य, राजानोऽप्यमी ब्रह्मविद्याचतुरा इति चित्रीयते मे चेतः ।

रामः—वत्स किमिह चित्रम् । ननु

छत्रच्छाया तिरयति न यद्यन्न च स्प्रष्टुमीष्टे
दृप्यद्गन्धद्विपमदमषीपङ्कनामा कलङ्कः ।
लीलालोलः शमयति न यच्चामराणां समीरः
स्फीतं ज्योतिः किमपि तदमी भूभुजः शीलयन्ति ॥ १२ ॥

निमिकुलकुमुदानन्दचन्द्राः, नरेन्द्राः, (स्थ) ॥ १० ॥

ज्याघात इति । येषाम् = निमिकुलकुमुदानन्दचन्द्राणाम् , कार्मुकस्य = धनुषः, ज्याघातः—ज्यायाः = प्रत्यञ्चायाः आघातः = घर्षणम् , घर्षणजन्यः किणः इत्यर्थः, करतलम् = हस्ततलम् , ओङ्कारनादः—ओङ्कारस्य = प्रणवस्य नादः = ध्वनिः, कण्ठम् = गलप्रदेशम् , श्रयति = आश्रयति । एकत्र वीरकर्म विलसत्यपरत्र योगाभ्यासः समुल्लसतीति भावः प्रतापाभिधम्—प्रतापः = शौर्यम् अभिधा = संज्ञा यस्य तत् , अवनितले = भूतले, आत्मीयम् = परमात्मसम्बन्धि, ज्योतिः = तेजः, अन्तः = अभ्यन्तरे, हृदये इत्यर्थः, भाति = प्रकाशते । जगति प्रतापो हृदि ब्रह्मसाक्षात्कारश्च विद्योतते इत्यभिप्रायः । सिंहासनश्रीः—राजासनशोभा, राज्यम् = राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम् = राजभावम् , पद्मासनश्रीः = कमलासनश्रीः, परमम् = अतिश्रेष्ठम् , शमम् = इन्द्रियादिदमनम् , अपि, वक्ति = कथयति, ज्ञापयतीत्यर्थः; एकत्र राज्यसञ्चालनमास्तेऽपरत्र योगाभ्यासश्चेति भावः; ते = तादृशाः, एते = इमे, यूयम् = भवन्तः जनकादयः, निमिकुलकुमुदानन्दचन्द्राः—निमिकुलम् = निमिवंशः एव कुमुदम् = कैरवः तस्य आनन्दाय = आह्लादाय, विकासायेत्यर्थः, चन्द्राः = चन्द्रमसः, चन्द्रतुल्याः इति भावः, नरेन्द्राः = राजानः, स्थेति शेषः । यूयं स्ववंशकीर्तिप्रस्तारका राजानः स्थ इति भावः । अत्र रूपकालङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—धीराः, (एते), राजहंसाः, वाराङ्गनाकरतरङ्गितचामरोर्मिश्वेतातपत्रशतपत्त्रिणि, राज्यसरसि, स्वरसम् , क्रीडन्ति; (तथा) योगीन्द्रचन्द्रसुगमे, पथि, च, सञ्चरन्ति ॥ ११ ॥

विश्वामित्रकथनमेव समर्थयन्नाह—वाराङ्गनेति । धीराः = धैर्यशालिनः, (एते = इमे), राजहंसाः = श्रेष्ठाः राजानः, वाराङ्गनाकरेत्यादिः—वाराङ्गनाः = वारयोषितः, वेश्याः इति यावत् , तासां करैः = हस्तैः तरङ्गितानि = सञ्चालितानि चाम-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शतानन्द—यह सत्य है। क्योंकि—

धैर्यशाली (ये) राजहंस (श्रेष्ठ राजा लोग) वाराङ्गनाओं के हाथों से डुलाए गये चामररूप तरङ्गों तथा श्वेत छत्ररूप कमलोंवाले राज्यरूप सरोवर में यथेच्छ क्रीडा किया करते हैं, (तथा) अतिमहान् योगियों के लिए सुगम मार्ग पर भी विचरण करते हैं ॥ ११ ॥

लक्ष्मण—(अलग से) आर्य, ये राजा लोग भी वेदान्तविद्या में निपुण हैं, यह देखकर (इति) मेरा मन आश्चर्यचकित हो रहा है।

विशेष—(१) अपवारित (२) जनान्तिक। जब एक पात्र दूसरे पात्र की ओर घूमकर केवल उसी को सुनाकर कुछ कहता है तो वह सम्वाद अपवारित कहा जाता है। बातचीत करने की यह शैली लोक में भी सर्वत्र देखी जाती है। साहित्यदर्पण में इसका लक्षण इस प्रकार है—

'तद्भवेदपवारितं रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते ॥'

राम—वत्स, इसमें आश्चर्य (विलक्षणता) क्या है ? अरे,

ये (मिथिला के) राजा लोग अत्यन्त महान् उस अनिर्वचनीय ज्योति का (अर्थात् ब्रह्म का) चिन्तन किया करते हैं, जिसको (राज—) छत्र की छाया आच्छादित नहीं करती है, जिसको मतवाले मद बहानेवाले हाथियों का स्याही के सदृश मद का कीचड़ नामक कलङ्क छूता नहीं है, जिसको विलासपूर्वक चञ्चल चामरवायु बुझा नहीं सकता है ॥ १२ ॥

राणि = प्रकीर्णकानि ('चामरं तु प्रकीर्णकम्' इत्यमरः) एव ऊर्मयः = तरङ्गाः यस्मिन् तत् तादृशञ्च तत् श्वेतातपत्रमेव = राजच्छत्रमेव शतपत्रम् = कमलं यस्मिन् तत् तस्मिन्, राज्यसरसि—राज्यम् = साम्राज्यमेव सरः = जलाशयस्तस्मिन्, स्वरसम् = यथेच्छम्, क्रीडन्ति = विहरन्ति; तथा योगीन्द्रचन्द्रसुगमे—योगीन्द्राः = योगिराजाः तेषु चन्द्राः = श्रेष्ठाः तैः सुगमे = सुगमनयोग्ये, पथि = मार्गे, च = अपि, सञ्चरन्ति = गच्छति। एते राजानः राज्यकार्येषु प्रवीणास्तथा योगिराजराजसञ्चरणयोग्ये योगमार्गे चापि तथैव विहरन्तीति संक्षिप्ताभिप्रायः। अत्र रूपकालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ११ ॥

लक्ष्मण इति। ब्रह्मविद्याचतुराः—ब्रह्मविद्यायाम् = वेदान्तविद्यायाम् चतुराः = प्रवीणाः, इति = इत्थं दृष्ट्वेत्यर्थः, मे = मम, चेतः = चित्तम्, चित्रीयते = विस्मयं प्रतिपद्यते। घोरायाः सांसारिकतायाः विरक्तायाः ब्रह्मानुशीलनभावनायाश्चैकत्रासम्भवादिति चेतो विस्मयाविष्टमिति भावः ॥

अन्वयः—अमी, भूभुजः, स्फीतम्, तत्, किमपि, ज्योतिः, शीलयन्ति; यत्, छत्रच्छाया, न, तिरयति; यत्, दृप्यद्गन्धद्विपमदमषीपङ्कनामा, कलङ्कः, च, स्प्रष्टुम्, न, ईष्टे; यत्, लीलालोलः, चामराणाम्, समीरः, न, शमयन्ति ॥ १२ ॥

छत्रच्छायेति। अमी = एते, भूभुजः = राजानः, स्फीतम् = महत्, तत् = तादृशम्, किमपि = अनिर्वचनीयम्, वक्तुमशक्यमित्यर्थः ज्योतिः = प्रकाशम् पारमात्मिकं ज्योतिरित्यर्थः, शीलयन्ति = ध्यायन्ति यत् = ज्योतिः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्रः—आङ्गिरसोचितमात्थ राजहंसा इति। सकलकुवलयोत्तंसा राजहंसा अमी।

जनकः—भगवन्, इदमस्मत्प्राचीनेषु शोभते न तु मयि कतिपयग्रामटिकास्वामिनि।

विश्वामित्रः—मैवं भोः,

अवनिमवनिपालाः सङ्घशः पालयन्ता-
मवनिपतियशस्तु त्वां विना नापरस्य।
जनक कनकगौरीं यत्प्रसूता तनूजां
जगति दुहितृमन्तं भूर्भवन्तं वितेने॥ १३॥

जनकः—भगवन्, नूतनशतभुवननिर्माणनिपुणस्य भगवतः कियतीयमभिनववचनचातुरी नाम। स खलु भवान्यस्य

शलाकीकृत्य त्वां दृशमसमकोपारुणरुचिं
सुरश्रेणीचित्रं गगनतलभित्तौ रचयतः।
सुधांशोर्भानोश्च प्रथमरचितं बिम्बयुगलं
सुधालाक्षासान्द्रद्रवभरितपात्रद्वयमभूत्॥ १४॥

छत्रच्छाया—छत्रस्य=आतपत्रस्य, छाया=अनातपः, न तिरयति=न आच्छादयति; यत्=ज्योतिः, दृप्यद्गन्धद्विपमदमषीपङ्कनामा—दृप्यन्तः=माद्यन्तः, ये गन्धद्विपाः=मदस्राविणो गजाः तेषां मदः=दानवारि एव मषीपङ्कः = मसीकर्दमः नाम = संज्ञा यस्य तादृशः, कलङ्कः = लाञ्छनम् ('कलङ्काङ्कौ लाञ्छनम्' इत्यमरः), च = अपि, स्प्रष्टुम् = स्पर्शं कर्तुम्, न = नहि, ईष्टे = समर्थो जायते; लीलालोलः—लीलया = विलासेन लोलः = चञ्चलः, सञ्चालितः इत्यर्थः, चामराणाम् = चमरीरोमगुच्छानाम्, समीरः = वायुः, न = नहि, शमयति = निर्वापयति। यत्र सांसारिका इमे भावा शक्तिहीनाः सञ्जायन्ते तादृशमान्तरं ज्योतिरेते ध्यायन्तीति गलितार्थः। विशेषोक्तिरत्रालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ गो गयुग्मम्' ॥ १२॥

विश्वामित्र इति। 'आङ्गिरस' इति शतानन्दस्य सम्बोधनम्। उचितम् = समीचीनं यथा स्यात्तथा, आत्थ = कथयसीत्यर्थः। सकलकुवलयोत्तंसाः—सकलस्य = समग्रस्य कोः = पृथिव्याः ('गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी' इत्यमरः), वलयस्य = मण्डलस्य उत्तंसाः = भूषणानि, अलङ्कारस्वरूपाः इत्यर्थः॥

जनक इति। प्राचीनेषु = पूर्वजेषु, चक्रवर्तिष्वित्यर्थः। कतिपयग्रामटिकास्वामिनि—कतिपयाः = स्वल्पसंख्याः याः ग्रामटिकाः = लघुग्रामाः तासां स्वामी = पालकः तस्मिन्, लघुराज्ये इत्यर्थः, मयि = जनके॥

अन्वयः—सङ्घशः, अवनिपालाः, अवनिम्, पालयन्ताम्; तु, अवनिपतियशः, त्वाम्, विना, अपरस्य, न, (अस्ति); हे जनक, यत्, कनकगौरीम्, तनूजाम्, प्रसूता, भूः, जगति, भवन्तम्, दुहितृमन्तम्, वितेने॥ १३॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्र—आङ्गिरस !

(ये) राजहंस (हैं)—ऐसा (आपने) ठीक ही कहा। ये सम्पूर्ण भूमण्डल के अलङ्कार रूप राजश्रेष्ठ हैं।

जनक—भगवन्, यह (बात) हमारे पूर्वजों के विषय में (कही जाने पर) सुन्दर लगती है, न कि कुछ छोटे-छोटे गाँवों के स्वामी मेरे विषय में।

विश्वामित्र—ऐसा नहीं है;

बहुत से राजा लोग पृथिवी की रक्षा (भले ही) करें, किन्तु पृथिवी के पति (होने) का यश तुम्हारे बिना दूसरे को नहीं (है)। हे जनक, जो कि सुवर्ण के समान पीत वर्णवाली पुत्री (सीता) को उत्पन्न करनेवाली पृथिवी ने (इस) संसार में आपको (ही सीता के समान) पुत्री का पिता बनाया है ॥ १३ ॥

जनक—भगवन्, नवीन सैकड़ों भुवनों के निर्माण में निपुण आपके लिए नूतन वचनों (को बनाकर बोलने) की यह चतुरता क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं)। आप तो ऐसे हैं कि—

अनुपम कोप के कारण रक्तवर्ण अपनी आँख को शलाका (चित्र बनाने का ब्रश) बनाकर आकाशरूप भीत (आधार) में देवताओं की कतारों के चित्र को बनानेवाले (जिसके लिए) पहले से निर्मित चन्द्रमा तथा सूर्य के मण्डल की जोड़ी चूना एवं लाक्षा (लाख) के गाढ़े रस से भरे हुए दो (रङ्ग) पात्र (से) हो गये ॥ १४ ॥

अवनिमिति। सद्बशः = बहुशः, अवनिपालाः = भूपालाः, अवनिम् = पृथिवीम्, पालयन्ताम् = रक्षन्तु। अनादरोक्तिरियम्। तु = किन्तु; अवनिपतियशः—अवनेः = पृथिव्याः पतिः = भर्ता तस्य यशः = कीर्तिः, भूपतित्वयशः इत्यर्थः, त्वाम् = भवन्तम्, विना = विहाय, अपरस्य = अन्यस्य, न = न वर्तते इत्यर्थः; हे जनक = हे विदेहराज, यत् = यस्मात्, कनकगौरीम्—कनकवत् = सुवर्णवत् गौरीम् = पीतवर्णाम्, तनूजाम् = पुत्रीम्, प्रसूता = जनितवती, भूः = पृथिवी, जगति = संसारे, भवन्तम् = श्रीमन्तं त्वाम्, दुहितृमन्तम् = प्रशस्तकन्याजनकम्, वितेने = कृतवती। पृथिवी कन्यारत्नं सीतामुत्पाद्य भर्त्रे तुभ्यं यत् समर्पितवती तज्ज्ञायते त्वमेव तया पतित्वेन वृतः इति भावः। मालिनी वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ १३ ॥

जनक इति। नूतनशतभुवननिर्माणनिपुणस्य—नूतनानि = नवीनानि यानि शतभुवनानि = शतसंख्याकानि भुवनानि तेषां निर्माणे = रचने निपुणस्य = प्रवीणस्य, भवतः = श्रीमतः तत्र, इयम् = एषा, अभिनववचनचातुरी—अभिनवानि = नूतनानि यानि वचनानि = वाक्यानि तत्र चातुरी = नैपुण्यम्, कियती कियन्मूल्या, नामेति प्रश्ने ॥

अन्वयः—असमकोपाऽरुणरुचिम्, स्वाम्, दृशम्, शलाकीकृत्य, गगनतलभित्तौ, सुरश्रेणीचित्रम्, रचयतः (यस्य), प्रथमरचितम्, सुधांशोः, भानोः, च, बिम्बयुगलम्, सुधालाक्षासान्द्रद्रवभरितपात्रद्वयम्, अभूत् ॥ १४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शतानन्दः—राजर्षे, सत्यमात्थ। किमुच्यतेऽसौ भगवान्।

त्रिशङ्कोः स्वर्लोकादवनितलपातं रचयितुं
सुनासीरे कोपाद्विकसितपदाब्जे विकसितः।
यदीयोऽसौ नव्यत्रिदशनगरारम्भरभसः
सुरस्तोमे भक्त्या मुकुलितकराब्जे मुकुलितः॥ १५॥

लक्ष्मणः—(अपवार्य) आर्य, कथमेवंविधं भगवतः प्रतापितभुवनत्रयं तपोभिधानं तेजः।

रामः—अपि न विदितं ते राजर्षेरिदम्।

रोषाभिभूतपुरुहूतपदाभिभूतं
दृष्ट्वा त्रिशङ्कुमथ कोपविपाटलश्रीः
आकुञ्चलीकृतकराम्बुजराजिरम्या
संध्येव दृष्टिरमरैर्यदुपासितास्य॥ १६॥

शलाकीकृत्येति। असमकोपारुणरुचिम्—असमः = अनुपमः यः कोपः = क्रोधः तेन अरुणा = रक्ता रुचिः = कान्तिः यस्याः सा ताम्, कोपारुणामित्यर्थः, स्वाम् = स्वकीयाम्, दृशम् = दृष्टिम्, शलाकीकृत्य—अशलाकां शलाकां कृत्वेति शलाकीकृत्य = चित्रनिर्माणकूर्चिकां कृत्वा, गगनतलभित्तौ—गगनतलम् = आकाशतलम् एव भित्तिः = कुड्यम्, आधारः इत्यर्थः, तस्मिन्, सुरश्रेणीचित्रम्—सुराणाम् = देवानाम् श्रेणी = पंक्तिः तस्याः चित्रम् = आलेख्यम्, रचयतः = निर्मातुं प्रवर्तमानस्य, यस्येति पदं गद्यादादेयम्, यस्य तवेत्यर्थः, प्रथमरचितम् = पूर्वनिर्मितम्, सुधांशोः = चन्द्रस्य, भानोः = सूर्यस्य, च, बिम्बयुगलम् = मण्डलद्वयम्, सुधालाक्षासान्द्रद्रवभरितपात्रद्वयम्—सुधायाः = स्वच्छलेखनद्रव्यस्य लाक्षायाश्च = रक्तद्रव्यस्य च यः सान्द्रः=घनः द्रवः = रसः तेन भरितम्—पूर्णम् पात्रद्वयम् = पात्रयुगलम्, अभूत् = जातम्। अभिनवस्वर्लोकनिर्माणप्रवृत्तस्य विश्वामित्रस्य तन्नेत्रं लेखनकूर्चिका, आकाशमाधारः, सुराः लेखनीयपदार्थाः, चन्द्रमण्डलं सुधापात्रम्, सूर्यमण्डलं रक्तद्रव्यपात्रमिव जातमित्यर्थः। अत्र रूपकालङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी'॥ १४॥

अन्वयः—स्वर्लोकात्, त्रिशङ्कोः, अवनितलपातम्, रचयितुम्, सुनासीरे, कोपात्, विकसितपदाब्जे, (सति), विकसितः, यदीयः, असौ, नव्यत्रिदशनगरारम्भरभसः, सुरस्तोमे, भक्त्या, मुकुलितकराब्जे, (सति), मुकुलितः॥ १५॥

जनकोक्तिं समर्थयन्नाह—त्रिशङ्कोरिति। स्वर्लोकात् = स्वर्गात्, त्रिशङ्कोः = तन्नाम्नो रघुवंशोत्पन्नस्य एकस्य राज्ञः, अवनितलपातम्—अवनितले = भूतले, पातम् = पतनम्, रचयितुम् = विधातुम्, सुनासीरे = इन्द्रे, कोपात् = क्रोधात्, महान् पापी अयं कथं सदेहं स्वर्गमागत इति कोपात्, विकसितपदाम्भोजे—विकसितम् = प्रफुल्लम्, सञ्चालितमित्यर्थः, पदाम्भोजम् = चरणकमलं यस्य तादृशे सति, चरणप्रहारोद्यते

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विशेष—एक बार देवताओं के ऊपर क्रुद्ध हुए विश्वामित्र ने एक नये स्वर्ग के निर्माण का सङ्कल्प किया। अत्यन्त क्रोध के साथ अपनी लाल-लाल आँखें वे जिधर घुमाते थे, उधर ही आसमान में नये-नये देवताओं की कतारें निर्मित होती जाती थीं। यही कारण है कि उनकी आँख को शलाका कहा गया है। उस समय सूर्य का लाल बिम्ब लाल लाक्षारङ्ग का पात्र तथा चन्द्रमा का बिम्ब चूने का पात्र-सा प्रतीत होता था ॥ १४ ॥

शतानन्द—राजर्षि जी, (आपने) सत्य कहा। यह भगवान् क्या कहे जायँ (अर्थात् इन भगवान् के विषय में क्या कहना)?

स्वर्ग से त्रिशंकु को भूतल पर गिराने के लिए इन्द्र के क्रोधपूर्वक चरण उठाने पर विकसित जिनका वह नवीन देव-नगर (स्वर्ग) बनाने का उत्साह, देव-मण्डल के भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ने पर मुकुलित हो गया (कम हो गया) ॥ १५ ॥

लक्ष्मण—(अलग से) आर्य, क्या भगवान् (विश्वामित्र) का त्रिलोकी को सन्तप्त करनेवाला तप नामक ऐसा तेज है?

राम—क्या राजर्षि (विश्वामित्र) की यह (बात) तुम्हें मालूम नहीं?

त्रिशंकु को क्रुद्ध इन्द्र के चरण से तिरस्कृत देख कर तदनन्तर कोप से लालरङ्ग-वाली, (देवताओं के) जोड़े गये हस्त कमलों की पंक्ति से मनोहर इनकी दृष्टि सन्ध्या की भाँति जो कि देवताओं के द्वारा पूजित हुई ॥ १६ ॥

इति भावः, विकसितः = प्रफुल्लितः, प्रवृद्ध इत्यर्थः, यदीयः = यत्सम्बन्धी, यस्येत्यर्थः, असौ = तादृशः, नव्यत्रिदशनगरारम्भरभसः—नव्यम् = नूतनम् यत् त्रिदशानाम् = देवानाम् नगरम् = पुरम्, स्वर्ग इति भावः, तस्य यः आरम्भः = निर्माणोपक्रमः तस्मिन् रभसः = वेगः ('रभसो वेगहर्षयोः' इत्यमरः), सुरस्तोमे = देवसमूहे, भक्त्या = श्रद्धया, प्रभावं दृष्ट्वोत्पन्नया श्रद्धयेत्यर्थः, मुकुलितकराब्जे—मुकुलितानि = कुड्मलीकृतानि करा-ब्जानि = हस्तकमलानि यस्य तादृशे सति, मुकुलितः = संकुचितः, समासङ्गतः इति भावः। विश्वामित्रः त्रिशङ्कुं सशरीरं स्वर्लोकं प्रेषयामास। इन्द्रः कोपेन चरणप्रहारेण तं पातयितुं प्रवृत्तः। इति क्रुद्धो महर्षिरपरं स्वर्लोकं रचयितुमुद्यतः। भीताः देवाः बद्ध-करसम्पुटास्तमस्तुवन्। ततः शान्तो विश्वामित्र इति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेयाऽत्र। रूपकाऽलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ १५ ॥

लक्ष्मण इति। प्रतापितभुवनत्रयम्—प्रतापितम = सन्तापितम् भुवन-त्रयम् = लोकत्रयम् येन तादृशम्, तपोभिधानम्—तप एव अभिधानम् = संज्ञा यस्य तत्, तेजः = प्रतापः अस्तीति शेषः ॥

अन्वयः—त्रिशङ्कुम्, रोषाऽभिभूतपुरुहूतपदाऽभिभूतम्, दृष्ट्वा, अथ, कोप-विपाटलश्रीः, आकुड्मलीकृतकराम्बुजराजिरम्या, अस्य, दृष्टिः, सन्ध्या, इव, यत्, अमरैः, उपासिता ॥ १६ ॥

विश्वामित्रस्य महिमानं वर्णयन्नाह—रोषेति। त्रिशंकुम् = तन्नामानं राजा-नम्, रोषाभिभूतपुरुहूतपदाभिभूतम्—रोषेण = कोपेन अभिभूतः = आक्रान्तः, क्रुद्धः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्रः—राजर्षे, अपि तावद्रत्नगर्भागर्भसंभवं कन्यारत्नमलंकुरुते त्वाम् ।

जनकः—भगवन्, भवत्प्रसादादधुना जामातृरत्नमप्यलङ्करिष्यते । (राममवलोक्य । सकौतुकम् ।) भगवन्,

सकलजनविलोकनोत्सवानामयमयनं कतरः पुरः कुमारः ।
हरितमणिमयूखहारिणो यः कलयति कल्पतरोः प्ररोहलीलाम् ॥ १७ ॥

शतानन्दः—भगवन्, अयं च कतरो यः खल्वस्यैव

नीलनीरजदलोज्ज्वलकान्तेरन्तिके स्फुरति काञ्चनगौरः ।
लोचनस्य सुदृशः श्रवणाग्रे सन्निविष्ट इव चम्पकगुच्छः ॥ १८ ॥

विश्वामित्रः—नाम्ना तावद्रामलक्ष्मणावेतौ ।

जनकः—अहो कर्णामृतम् ।

शतानन्दः—(निर्वर्ण्य) भगवन्,

इत्यर्थः, यः पुरुहूतः = इन्द्रः तस्य पदेन = चरणेन अभिभूतम् = तिरस्कृतम्, ताडितमित्यर्थः, दृष्ट्वा = अवलोक्य, अथ = अनन्तरम्, कोपविपाटलश्रीः—कोपेन = क्रोधेन विपाटला = रक्तवर्णा श्रीः = कान्तिः यस्याः सा, आकुड्मलीकृतकराम्बुजराजिरम्या—आकुड्मलीकृतानि = ईषन्मुकुलितानि, प्रणामकाले बद्धानीत्यर्थः, कराम्बुजानि = हस्तकमलानि तेषां राजिभिः = पंक्तिभिः रम्या = मनोहरा, अस्य = विश्वामित्रस्य, दृष्टिः = नेत्रम्, सन्ध्या = सान्ध्यवेला, इव = यथा, यत्, अमरैः = देवैः, उपासिता = वन्दिताऽभूत्, सन्ध्यामपि जनाः अञ्जलिं बद्ध्वा उपासते । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १६ ॥

विश्वामित्र इति । अपीति प्रश्ने, रत्नगर्भागर्भसम्भवम्—रत्नगर्भा = पृथिवी तस्याः गर्भात् = कुक्षेः, अभ्यन्तरादित्यर्थः, सम्भवः = उत्पत्तिः यस्य तादृशम्, कन्यारत्नम् = रत्नस्वरूपा कन्येत्यर्थः । रत्नगर्भागर्भात् कन्यारत्नस्यैवोत्पत्तिः समीचीनेति भावः ॥

अन्वयः—सकलजनविलोकनोत्सवानाम्, अयनम्, पुरः, (स्थितः), अयम्, कुमारः, कतरः ? यः, हरितमणिमयूखहारिणः, कल्पतरोः, प्ररोहलीलाम्, कलयति ॥ १७ ॥

रामं दृष्ट्वा जनकः पृच्छति—सकलेति । सकलजनविलोकनोत्सवानाम्—सकलाः = समग्राः ये जनाः = प्राणिनः तेषां विलोकनस्य = दर्शनस्य, दृष्टेरित्यर्थः, उत्सवानाम् = आनन्दानाम्, अयनम् = आधारः, पुरः = अग्रे स्थितः, अयम् = एषः, कुमारः = बालकः, कतरः = कः, कस्य पुत्रः कस्य देशस्य राजकुमारः इत्यर्थः ? यः = यः कुमारः, हरितमणिमयूखहारिणः—हरितः = नीलवर्णः यः मणिः = रत्नम् तस्य मयूखः = कान्तिः, किरणः इत्यर्थः, इव हारी = मनोहरः तस्य, कल्पतरोः = देववृक्षस्य,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्र—राजर्षे, पृथिवी के गर्भ से उत्पन्न हुई रत्नरूप कन्या (सीता) क्या आपको अलंकृत करती है ?

जनक—भगवन्, अब आपकी कृपा से रत्नसरीखा दामाद भी (हमें) अलंकृत करेगा।

(राम को देखकर, उत्कण्ठा के साथ)

भगवन्,

सम्पूर्ण प्राणियों की दृष्टि के आनन्द का आधार, सामने (स्थित) यह कुमार कौन (है) ? जो (कि) नीलमणि की कान्ति के सदृश, कल्पतरु के अंकुर की शोभा को धारण कर रहा है ॥ १७ ॥

शतानन्द—भगवन्, यह कौन है ? जो कि—

नील कमल के पत्र के समान स्वच्छ कान्तिवाले (इन्हीं) के समीप सुवर्ण के सदृश पीतवर्ण (जो कुमार) सुन्दरी के लोचन के (समीप) कान के अग्रभाग में पहने गये चम्पा के (पुष्प) गुच्छ की तरह शोभित हो रहा है ॥ १८ ॥

विश्वामित्र—नाम से ये दोनों राम और लक्ष्मण हैं (अर्थात् इनका नाम राम और लक्ष्मण है)।

जनक—अहा, कान के लिए अमृत है (अर्थात् सुनने में ये नाम बड़े अच्छे हैं)।

शतानन्द—(ध्यान से देखकर) भगवन्,

प्ररोहलीलाम्—प्ररोहस्य = अङ्कुरस्य लीलाम् = शोभामित्यर्थः, कलयति = धारयति। कल्पतरुप्ररोहसादृश्येन रामस्य कोमलता श्यामलता सकलजनमनोरथपूरकता च सूचितेति ज्ञेयम्। अत्रोपमाऽलङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि नु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥' १७ ॥

अन्वयः—नीलनीरजदलोज्ज्वलकान्तेः, (अस्य, एव) अन्तिके, काञ्चनगौरः, (यः), सुदृशः, लोचनस्य, श्रवणाग्रे, सन्निविष्टः, चम्पकगुच्छः, इव, स्फुरति ॥ १८ ॥

लक्ष्मणं प्रति पृच्छति—नीलनीरजेति। नीलनीरजदलोज्ज्वलकान्तेः—नीलम् = श्यामम् यत् नीरजम् = कमलम् तस्य दलम् = पत्रम् तद्वत् उज्ज्वला = स्वच्छा कान्तिः = शोभा यस्य तस्य, अस्यैवेति पदद्वयं गद्यभागादानेयम्, रामस्यैवेत्यर्थः, अन्तिके = समीपे, काञ्चनगौरः—काञ्चनवत् = सुवर्णवत् गौरः = पीतवर्णः, (यः = अपरः कुमारः), सुदृशः = सुन्दर्याः, लोचनस्य = नेत्रस्य, नीलवर्णस्य नेत्रस्येत्यर्थः, श्रवणाग्रे = कर्णप्रान्ते, सन्निविष्टः = संस्थापितः, धृतः इत्यर्थः, चम्पकगुच्छः = हेमपुष्पस्तवकः, गौरवर्णाभः इति भावः, इव = यथा, स्फुरति = प्रकाशते, शोभते इति यावत्। अत्रोपमालङ्कारः। स्वागता वृत्तम् ॥ १८ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

एतयोरहमुदाररूपयोरुल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः ।
कामपि स्वजनतां विभावये कौस्तुभामृतमयूखयोरिव ॥ १९ ॥

जनकः—

एतयोः प्रकृतिरम्यरूपयोरुल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः ।
आन्तरः स्फुरति कोऽपि संनिधिः प्रत्यगात्मपरमात्मनोरिव ॥ २० ॥

विश्वामित्रः—अयि योगीश्वरशिष्य, ईदृशेषु गभीरेष्वभिनवोदन्तपीयूषप्रवेशन्तेषु भवत एव मनो निमज्जति । स्वजनभावे पुनरनयोर्वयमपि साक्षिणः ।

जनकः—तत्किं भ्रातरावेतौ ।

विश्वामित्रः—अथ किम् ।

जनकः—(सहर्षं निर्वर्ण्य) ।

तनुश्रिया निर्जितचम्पकोत्पलौ सुवर्णनीलोत्पलकोशकोमलौ ।
अहो दृशामुत्सवदानदक्षिणौ सुलक्षणौ लक्ष्मणलक्ष्मणाग्रजौ ॥ २१ ॥

अन्वयः—अहम्, उदाररूपयोः, उल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः, एतयोः, कौस्तुभामृतमयूखयोः, इव, काम्, अपि, स्वजनताम्, विभावये ॥ १९ ॥

एतयोरिति । अहम् = शतानन्दः, उदाररूपयोः—उदारम् = मनोज्ञम् रूपम् = आकृतिः ययोस्तयोः, उल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः—उल्लसन्ती = शोभमाना सहजस्य = स्वाभाविकस्य सौहृदस्य = स्नेहस्य श्रीः = शोभा ययोस्तयोः, एतयोः = पुरःस्थितयोः कुमारयोः; कौस्तुभामृतमयूखयोः—कौस्तुभम् = हरिमणिः अमृताः मयूखाः = किरणाः यस्य सोऽमृतमयूखश्च = चन्द्रश्च तयोः, इव = यथा, कामपि = अनिर्वचनीयामित्यर्थः, लोकोत्तरामिति यावत्, स्वजनताम् = परस्परसम्बन्धभावम्, विभावये = तर्कयामि, यथा चन्द्रकौस्तुभयोः कोऽप्यनिर्वचनीयः सम्बन्धो विद्योतते तथैव एतयोः कुमारयोरप्यस्तीति सम्भावयामि, उपमाऽलङ्कारः । रथोद्धता वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' ॥ १९ ॥

अन्वयः—प्रकृतिरम्यरूपयोः, उल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः, एतयोः, प्रत्यगात्मपरमात्मनोः, इव, कोऽपि, आन्तरः, सन्निधिः, स्फुरति ॥ २० ॥

शतानन्दोक्तिं समर्थयन्नाह जनकः—एतयोरिति । प्रकृतिरम्यरूपयोः—प्रकृत्याः = स्वभावेन रम्यम् = मनोहरम् रूपम् = आकृतिः ययोस्तयोः, उल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः—उल्लसन्ती = शोभमाना सहजस्य = स्वाभाविकस्य सौहृदस्य = स्नेहस्य श्रीः = शोभा ययोस्तयोः, एतयोः = अनयोः कुमारयोः, प्रत्यगात्मपरमात्मनोः—प्रत्यगात्मा = जीवः परमात्मा = ईश्वरः तयोः, इव = यथा, आत्मपरमात्मनोरिवेत्यर्थः, कोऽपि विलक्षणः, आन्तरः = आभ्यन्तरः, मूलरूपेणेत्यर्थः, सन्निधिः = सामीप्यम्, एकरूपतेति यावत्, स्फुरति = विद्योतते । एतौ जीवात्मपरमात्मनोरिव प्रतिभात इति भावः । उपमालङ्कारः । रथोद्धता वृत्तम् ॥ २० ॥

विश्वामित्र इति । योगीश्वरशिष्य—योगीश्वरस्य = योगिराजस्य, याज्ञवल्क्यस्येत्यर्थः, शिष्यः तत्सम्बुद्धौ, जनकसम्बोधनमिदम्, गम्भीरेषु = दुरवगाहेषु, अभि-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मैं अत्यन्त सुन्दर स्वाभाविक सौहार्द की शोभा से सम्पन्न इन दोनों (कुमारों) की, कौस्तुभ मणि तथा चन्द्रमा की तरह, विलक्षण (अनिर्वचनीय) आत्मीयता (है इस बात) को सोच रहा हूँ ॥ १९ ॥

जनक—स्वभावतः मनोहर स्वाभाविक सौहार्द की शोभा से सम्पन्न इन दोनों (कुमारों) की, आत्मा और परमात्मा की तरह, कोई (अनिर्वचनीय) आभ्यन्तरिक (भीतरी, आपसी) समीपता (एक रूपता) शोभित हो रही है ॥ २० ॥

विश्वामित्र—हे योगीश्वर (याज्ञवल्क्य) के शिष्य, इस प्रकार के गम्भीर नूतन वृत्तान्तरूप जलाशयों में आपका ही मन डूबता है। किन्तु इन दोनों की बन्धुता (भाईपन) में हम लोग भी प्रमाण हैं (अर्थात् इतना तो हम लोग जानते ही हैं कि ये दोनों भाई-भाई हैं) ।

जनक—तो क्या ये दोनों भाई-भाई हैं ?

विश्वामित्र—और क्या ?

जनक—(हर्ष के साथ देखकर)

अहा, लक्ष्मण के बड़े भाई (राम) और लक्ष्मण शरीर की कान्ति से चम्पा और नीलकमल को जीतनेवाले (अर्थात् चम्पा और नीलकमल से भी अधिक गौर तथा श्याम), सुवर्ण तथा नीलकमल के कोश (भीतरी भाग) की तरह कोमल, नेत्रों को आनन्द प्रदान करने में निपुण, सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न (हैं) ॥ २१ ॥

नवोदन्तपीयूषवेशन्तेषु—अभिनवाः = नवीनाः ये उदन्ताः = वार्ताः आत्मपरमात्मैक्यरूपा इत्यर्थः. ते एव पीयूषम् = अमृतम् तस्य वेशन्तेषु = सरस्सु । स्वजनभावे = बन्धुभावे, साक्षिणः = प्रमाणम् । एतौ भ्रातराविति वयमपि जानीमः, किन्तु अनयोरैक्यरूपं सूक्ष्मं तत्त्व तु त्वमेव जानासीति भावः ॥

अन्वयः—अहो, लक्ष्मणलक्ष्मणाग्रजौ, तनुश्रिया, निर्जितचम्पकोत्पलौ, सुवर्णनीलोत्पलकोशकोमलौ, दृशाम् , उत्सवदानदक्षिणौ, सुलक्षणौ, (स्तः) ॥ २१ ॥

तनुश्रियेति । अहोऽतिहर्षेऽव्ययम्, लक्ष्मणलक्ष्मणाग्रजौ—लक्ष्मणश्च = सुमित्रानन्दनश्च लक्ष्मणाग्रजश्च = रामश्चेति तौ, तनोः = शरीरस्य श्रिया = कान्त्या इति तनुश्रिया = शरीरकान्त्या, निर्जितचम्पकोत्पलौ—निर्जिते = विजिते, अधरीकृते इत्यर्थः, चम्पकोत्पले—हिमपुष्पकनीलकमले ('चाम्पेयश्चम्पके हिमपुष्पकः' इत्यमरः) याभ्यां तौ, चम्पको गौरवर्णेन लक्ष्मणेन नीलोत्पलं श्यामेन रामेणेत्येव क्रमः सर्वत्र कर्तव्यः, सुवर्णनीलोत्पलकोशकोमलौ—सुवर्णम् = हिरण्मयम् नीलोत्पलस्य = श्यामकमलस्य कोशः = उदरभागश्च तौ इव कोमलौ = मृदुलौ, दृशाम् = नेत्राणाम, उत्सवदानदक्षिणौ—उत्सवदाने = आनन्दप्रदाने दक्षिणौ = निपुणौ, सुलक्षणौ = सुन्दरलक्षणसम्पन्नौ, स्तः इतिक्रियाशेषः । अत्र व्यतिरेकोपमाऽनुप्रासयथासंख्यानां सङ्करः । वंशस्थं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा,—

'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ' ॥ २१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुना रामं विलोक्य । सकौतुकम ।) भगवन्, किमेतत् ।

यथाहं निःसीमोत्सवसुभगभोगे भवकथा-
पथातीते चेतःप्रणयिनि रमे पुंसि परमे ।
तथैवास्मिन्बाले दलदमलनीलोत्पलदलो-
दरश्यामे रामे नयनपदवीमागतवति ॥ २२ ॥

विश्वामित्रः—(स्वगतम्) उचितमेतत् । न खलु सकललोकलोचनानन्दकरः शीतकरः शङ्करशिरःशयालोः कलानिधेरपरं तत्त्वम् । (प्रकाशम्) राजर्षे, स एष सौन्दर्यातिशयस्य महिमा ।

जनकः—कः पुनराभ्यां पुत्रवतां मौलिमा णिक्यमारोपितः ।

विश्वामित्रः—

किं शीतांशुमरीचयः किमु सुरस्रोस्विनीवीचयः
किं वा केतकसूचयः किमथवा चन्द्रोपलानां चयः ।
इत्थं जातकुतूहलाभिरभितः सानन्दमालोकिताः
कान्ताभिस्त्रिदिवौकसां दिशि दिशि क्रीडन्ति यत्कीर्तयः ॥ २३ ॥

अन्वयः—अहम्, यथा, निःसीमोत्सवसुभगभोगे, भवकथापथातीते, चेतःप्रणयिनि, परमे, पुंसि, रमे; तथैव, दलदमलनीलोत्पलदलोदरश्यामे, नयनपदवीम्, आगतवति, रामे, (रमे) ॥ २२ ॥

रामस्य ब्रह्मरूपतां विमर्शयन्नाह—यथाऽहमिति । अहम् = जनकः, यथा = येन प्रकारेण, निःसीमोत्सवसुभगभोगे—निर्गता = दूरीभूता सीमा = परिधिः यस्मात्तादृशः निःसीमः = देशकालादिपरिच्छेदरहितः यः उत्सवः = आनन्दः तेन सुभगः = मनोहरः भोगः = आस्वादः यस्य तस्मिन्, भवकथापथातीते—भवकथायाः = संसारवार्तायाः पन्थाः = मार्गः तस्मात् अतीतः = दूरवर्ती तस्मिन्, यावत्पर्यन्तं संसारो निगद्यते तस्मात्पर इत्यर्थः, चेतःप्रणयिनि = मनसैकध्येये, चित्तवृत्तिप्रतिबिम्बिते इत्यर्थः, परमे = उत्तमे, पुंसि = पुरुषे, ब्रह्मणीत्यर्थः, रमे = रमणं करोमि, तथैव = तेनैव प्रकारेण, दलदमलनीलोत्पलदलोदरश्यामे - दलत् = विकसत् अमलम् = निर्मलम् यत् नीलोत्पलम् = नीलकमलम् तस्य दलम् = पत्रम् तस्य उदरमिव = मध्यभाग इव श्यामः = नीलवर्णः तस्मिन्, नयनपदवीम्—नयनयोः = नेत्रयोः पदवीम् = मार्गम्, दृष्टिविषयमित्यर्थः, आगतवति = प्राप्ते; दृष्टे इति यावत्, रामे = श्रीरामचन्द्रे, रमे इति शेषः। मत्कृते ब्रह्म इव चित्तानुरञ्जकोऽयमिति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् । वृत्तलक्षणं यथा—

'रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ॥ २२ ॥

विश्वामित्र इति । सकललोकलोचनानन्दकरः—सकलाः = समग्राः ये लोकाः = जनाः तेषां लोचनानाम् = नेत्राणाम् आनन्दकरः = आह्लादकः, शीताः = शैत्ययुक्ताः कराः = अंशवः यस्य असौ शीतकरः = चन्द्रः, शङ्करशिरःशयालोः—शङ्करस्य = शिवस्य शिरसि = मस्तके शयालुः = स्थितः तस्य, कलानिधेः = चन्द्रमसः, अपरम् = भिन्नम्, तत्त्वम् = वस्तु नास्तीति वाक्यसङ्गतिः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनः राम को देखकर, उत्कण्ठा के साथ) भगवन्, यह क्या ?

मैं, जिस प्रकार निःसीम आनन्द के कारण मनोहर रसास्वादवाले, सांसारिक परिधि (मार्ग) से परे, मनोरञ्जक, परम पुरुष (अर्थात् ब्रह्म) में आनन्द का अनुभव करता हूँ; उसी तरह विकसित होते हुए निर्मल नीलकमल के मध्य भाग की तरह श्याम, नेत्रों के सम्मुख आये हुए राम में (आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ) ॥ २२ ॥

विश्वामित्र—(अपने आप) यह ठीक है। सम्पूर्ण प्राणियों के नेत्रों को आनन्दित करनेवाला चन्द्रमा शङ्कर के सिर पर स्थित चन्द्रमा से भिन्न दूसरा तत्त्व नहीं है (अर्थात् जैसे चन्द्रमा शङ्कर के शिर पर स्थित चन्द्रमा से भिन्न नहीं है, उसी तरह राम भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है)। (प्रकट रूप में) राजर्षि, यह अतिशय सुन्दरता की महिमा है।

जनक—तो इन दोनों (पुत्रों) के द्वारा कौन (व्यक्ति) पुत्रवालों के मुकुटरत्न पर बिठा दिया गया है ? (अर्थात् वह कौन व्यक्ति है, जिसने पुत्ररूप में इन्हें पाकर पुत्रवाले लोगों में सर्वाधिक सौभाग्यशाली होने का गौरव प्राप्त किया है ?)।

विश्वामित्र—क्या (ये) चन्द्रमा की किरणें हैं ? (अथवा) क्या (ये) आकाशगङ्गा की तरङ्गें है ? अथवा क्या (ये) केतकी (की कलियों) के नुकीले अग्रभाग हैं ? अथवा क्या (यह) चन्द्रकान्तमणियों का समूह है ? इस प्रकार उत्पन्न कुतूहलवाली देवस्त्रियों के द्वारा चारों ओर आनन्दपूर्वक देखी गयी जिन (दशरथ) की कीर्तियाँ चारों दिशाओं में खेलती हैं (ये उन्हीं दशरथ के पुत्र हैं—यह आगे आयेगा) ॥ २३ ॥

जनक इति। पुत्रवताम् = सुतवताम्, पितॄणामित्यर्थः, मौलिमाणिक्यम् = शिरोरत्नम्, आरोपितः = स्थापितः ॥

अन्वयः—किम्, शीतांशुमरीचयः ? किमु, सुरस्रोतस्विनीवीचयः ? वा, किम्, केतकसूचयः ? अथवा, किम्, चन्द्रोपलानाम्, चयः ? इत्थम्, जातकुतूहलाभिः, त्रिदिवौकसाम्, कान्ताभिः, अभितः, सानन्दम्, आलोकिताः, यत्कीर्तयः, दिशि दिशि, क्रीडन्ति ॥ २३ ॥

जनकप्रश्नोत्तरं वक्तुकामः दशरथस्य कीर्तिं वर्णयन्नाह—किमिति। किमिति प्रश्ने, शीतांशुमरीचयः—शीतांशोः = चन्द्रस्य मरीचयः = रश्मयः ? किमु इति वितर्के, सुरस्रोतस्विनीवीचयः—सुरस्रोतस्विन्याः = आकाशगङ्गायाः वीचयः = तरङ्गाः ? वा = अथवा, किं केतकसूचयः—केतकानाम् = केतककुड्मलानाम् सूचयः = तीक्ष्णाग्रभागाः ? अथवा, किं चन्द्रोपलानाम् = चन्द्रकान्तमणीनाम्, चयः = समूहः ? सर्वत्रास्तीति क्रियान्वयः; इत्थम् = अनेन प्रकारेण, जातकुतूहलाभिः—जातः = उत्पन्नः कुतूहलः = जिज्ञासेत्यर्थः यासु ताभिः, त्रिदिवौकसाम् = देवानाम्, कान्ताभिः = ललनाभिः, अभितः = परितः, सानन्दम् = साह्लादं यथास्यात्तथा, आलोकिताः = दृष्टाः, यत्कीर्तयः—यस्य = दशरथस्य कीर्तयः = यशांसि, दिशि दिशि = प्रतिदिशम्, वीप्सायां द्विरुक्तिः, क्रीडन्ति = खेलन्ति; (तस्य दशरथस्येमौ कुमारौ स्तः इत्यग्रिमेणान्वयः)। साहित्ये कीर्तेः शुक्लरूपता प्रतिपादिता। अतः सर्वत्र शुक्लोपमानैरेव तस्याः उपमेयतेति बोध्यम्। शुद्धसन्देहालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—वत्स, नूनमयं सकलगुणावदातस्तातः प्रस्तूयते ।

लक्ष्मणः—अपि नाम भूयोऽपि प्रस्तोष्यते ।

विश्वामित्रः—अपि च—

यस्योद्यद्भुजदण्डचण्डिमवलत्कोदण्डलीलायितै-
निष्पीते दनुजेन्द्रचन्द्रवदनाभ्रूवल्लरीविभ्रमे ।
लक्ष्मीमस्रविपाटलक्षतमयीमालम्बते केवलं
पौलोमीकरजाङ्कुरव्यतिकरादाखण्डलीयं वपुः ॥ २४ ॥

अपि च—

तस्य पद्मवनबान्धववंशोत्तंसमांसलमहामणिमौलेः ।
कायकान्तिपरिभूतमनोजौ ताविमौ दशरथस्य कुमारौ ॥ २५ ॥

जनकः—(सहर्षम्)

यद्बाहू वहतः पराक्रमहृतां प्रत्यर्थिसीमन्तिनी-
चक्षुः कज्जलकालिकामिवधनुर्मौर्वीकिणश्यामिकाम् ।
यद्दोर्दुर्मदकर्मकार्मुकगुणप्रोत्तालकोलाहलै-
र्वैरिस्त्रीकलमेखलाकलकलाः पीता इवास्तं गताः ॥ २६ ॥

राम इति । सकलगुणावदातः—सकलैः = समग्रैः गुणैः = प्रशस्तभावैः अवदातः = धवलः, तातः = पिता, प्रस्तूयते = प्रशंसया उपस्थाप्यते ॥

अन्वयः—यस्य, उद्यद्भुजदण्डचण्डिमवलत्कोदण्डलीलायितैः, दनुजेन्द्रचन्द्रवदनाभ्रूवल्लरीविभ्रमे, निष्पीते, आखण्डलीयम्, वपुः, केवलम्, पौलोमीकरजाङ्कुरव्यतिकरात्, अस्रविपाटलक्षतमयीम्, लक्ष्मीम्, आलम्बते ॥ २४ ॥

पुनस्तत्प्रतापं वर्णयन्नाह—यस्योद्यदिति । यस्य = दशरथस्य, उद्यद्भुजदण्डेत्यादिः—उद्यन् = पराक्रमाय तत्परो भवन् यो भुजदण्डः = बाहुदण्डः तस्य चण्डिम्ना = उद्धतत्वेन वलत् = वक्रीभवत् यत् कोदण्डम् = धनुः तस्य लीलायितैः = क्रीडाभिः, बाणवर्षणैरित्यर्थः, दनुजेन्द्रचन्द्रवदनाभ्रूवल्लरीविभ्रमे—दनुजेन्द्राणाम् = दानवेन्द्राणाम् याः चन्द्रवदनाः = सुन्दर्यः तासां भ्रूवल्लर्यः = भ्रूकुटिलताः तासां विभ्रमे = विलासे, कटाक्षपातादिके इत्यर्थः, निष्पीते = विनाशिते सतिः, वैधव्यात् दनुजस्त्रीणां कामविकारे विनष्टे इत्यर्थः, आखण्डलीयम् = इन्द्रसम्बन्धि, इन्द्रस्येत्यर्थः, वपुः = शरीरम्, केवलम् = एकमात्रम्, पौलोमीकरजाङ्कुरव्यतिकरात्—पौलोमी = इन्द्रपत्नी शची तस्याः करजाङ्कुराणाम् = हस्तांगुलिनखाग्राणाम्, व्यतिकरात् = संसर्गात्, अस्रविपाटलक्षतमयीम्—अस्रैः = रुधिरैः विपाटलानि = रक्तवर्णानि यानि क्षतानि = व्रणानि तन्मयीम् = तत्स्वरूपाम्, लक्ष्मीम् = शोभाम्, आलम्बते = धारयति । यदस्त्रप्रभावेन निरस्तशत्रुः इन्द्रः कामक्रीडायां केवलं स्वप्रेयसीनखक्षतैरेव व्रणपूर्णो भवति न तु शत्रुप्रहारैरिति भावः । अत्र पर्यायोक्तमलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—पद्मवनबान्धववंशोत्तंसमांसलमहामणिमौलेः, तस्य, दशरथस्य, कायकान्तिपरिभूतमनोजौ, इमौ, तौ, कुमारौ, (स्तः) ॥ २५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—वत्स, निश्चय ही यह सम्पूर्ण गुणों से उज्ज्वल पिताजी वर्णित किये जा रहे हैं (अर्थात् पिताजी की प्रशंसा हो रही है)।

लक्ष्मण—क्या फिर भी वर्णित किये जायँगे ?

विश्वामित्र—और भी—

जिनके (लड़ने के लिए सर्वदा) उठे हुए बाहुदण्ड की प्रचण्डता के साथ चारों ओर घूमते हुए महान् धनुष की लीलाओं के द्वारा दैत्यसुन्दरियों की भ्रूलताओं के विलास के (अर्थात् आँख की कामुक क्रीड़ाओं के) पी लिये जाने पर (अर्थात् नष्ट कर दिये जाने पर), इन्द्र का शरीर केवल इन्द्राणी की हस्तांगुलियों के नाखूनों के सम्पर्क से (अर्थात् लगने से उत्पन्न) रुधिर से लाल व्रण (खरोंच) रूप शोभा को धारण करता है ॥ २४ ॥

विशेष—इन्द्र देवताओं के राजा हैं। शत्रु दैत्यों को मार कर देवों की रक्षा करना उनका एकमात्र कार्य है। किन्तु उनके इस कार्य को दशरथ ही पूरा कर दिये। इन्द्र के शरीर पर एक भी अस्त्र-शस्त्र का घाव नहीं लगा। अतः इन्द्र अब केवल अपनी पत्नी के साथ काम-क्रीडा ही करते हैं और उन्हीं के नाखूनों के खरोंचों से उनका शरीर भी व्रण युक्त होता है ॥ २४ ॥

और भी—

कमलों के वनों के बन्धु (अर्थात् सूर्य) के कुल के आभूषण स्वरूप महान् महामणिरूप राजाओं के शिरोभूत (अर्थात् सूर्यकुल के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ), जगद्विदित महाराज दशरथ के, शरीर की कान्ति से कामदेव को (भी) तिरस्कृत करनेवाले प्रसिद्ध ये दोनों कुमार हैं ॥ २५ ॥

जनक—(प्रसन्नता के साथ)

जिस (दशरथ) के बाहु, पराक्रम से छीनी गयी, शत्रुओं की स्त्रियों की आँखों के काजल की कालिमा की तरह, धनुष की प्रत्यञ्चा के घट्टे (घर्षणजन्य व्रण) की कालिमा को धारण करते हैं ? जिनके बाहुओं के उद्धत कर्म के कारण धनुष की प्रत्यञ्चा के भयङ्कर कोलाहलों के द्वारा शत्रुओं की स्त्रियों की मनोहर करधनी के कल-कल (शब्द), पी लिए गये की तरह, नष्ट हो गये ? ॥ २६ ॥

तस्येति । पद्मवनबान्धववंशोत्तंसमांसलमहामणिमौलेः– पद्मवनस्य = कमलसमूहस्य बान्धवः = बन्धुः, सूर्यः इत्यर्थः, विकासकत्वात्सूर्यः कमलबन्धुः कथ्यते, तस्य वंशः = कुलम् तस्य उत्तंसाः = शिरोभूषणभूताः इत्यर्थः मांसलाः = विशालाः महामणयः = महारत्नसदृशाः इत्यर्थः तेषु मौलिः = शिरोभूतः, प्रधान इत्यर्थः, तस्य, तस्य = जगद्विदितस्य, दशरथस्य = दशरथनाम्नः अजपुत्रस्य, कायकान्तिपरिभूतमनोजौ— कायस्य = शरीरस्य कान्त्या = प्रभया परिभूतः = तिरस्कृतः मनोजः = कामः याभ्यां तौ, इमौ = पुरोवर्तिनौ एतौ, तौ = प्रसिद्धौ, कुमारौ = सुतौ, स्त इति क्रियाशेषः । अत्र व्यतिरेकालङ्कारः । स्वागता वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा;—

"स्वागता रनभगैर्गुरुणा च" ॥ २५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च—

यस्येन्द्रारिजयश्रिया सह झटित्याकृष्यमौर्वीलतां
साकं भूवलयेन चापवलयं दोर्मण्डले बिभ्रति ।
पौलोमीकुचकुम्भसीमनि रहः पश्यन्नखाङ्कं नवं
धत्ते चेतसि केवलं न तु करे कोदण्डमाखण्डलः ॥ २७ ॥

तपनकुलशिरःकिरीटकोटिस्फुरदरुणोत्पलकुड्मलस्य तस्य ।
दशरथनृपतेरिमौ मृगाङ्कप्रतिमसुरेखमुखाम्बुजौ तनूजौ ॥ २८ ॥

विश्वामित्रः—अथ किम् ।

जनकः—अहो धन्यता दशरथस्य, यस्य द्वे अपि तनयावलोकनशीतले दृशौ ।

अन्वयः—यद्बाहू, पराक्रमहृताम्, प्रत्यर्थिसीमन्तिनीचक्षुःकज्जलकालिकामिव, धनुर्मौर्वीकिणश्यामिकाम्, वहतः; यद्दोर्दुर्मदकर्मकार्मुकगुणप्रोत्तालकोलाहलैः, वैरिस्त्रीकलमेखलाकलकलाः, पीताः, इव, अस्तम्, गताः ॥ २६ ॥

दशरथप्रताप वर्णयन्नाह—यद्बाहू इति । यद्बाहू—यस्य = दशरथस्य बाहू = भुजौ, पराक्रमहृताम्—पराक्रमेण = शौर्येण हृताम् = आच्छिद्य गृहीताम्, प्रत्यर्थिसीमन्तिनीचक्षुःकज्जलकालिकाम्—प्रत्यर्थिनाम् = शत्रूणाम् याः सीमन्तिन्यः = सुन्दर्यः तासां चक्षुषाम् = नेत्राणाम् कज्जलस्य = अञ्जनस्य कालिकामिव = कृष्णतामिव, धनुर्मौर्वीकिणश्यामिकाम्—धनुषः = चापस्य मौर्व्याः = प्रत्यञ्चायाः किणः = घर्षणजन्यग्रन्थिः तस्य श्यामिकामिव = कालिमानमिव, वहतः = धारयतः ? यद्दोर्दुर्मदकर्मकार्मुकगुणप्रोत्तालकोलाहलैः—यस्य = दशरथस्य दोष्णोः = बाह्वोः दुर्मदम् = सगर्वम् यत् कर्म = कार्यम् तेन कार्मुकगुणस्य = धनुषः प्रत्यञ्चायाः प्रोत्तालाः = उन्नताः कोलाहलाः = कलकलाः तैः, वैरिस्त्रीकलमेखलाकलकलाः—वैरिस्त्रीणाम् = शत्रुललनानाम कलाः = मनोहराः ये मेखलायाः = रशनायाः कलकलाः = कलकलशब्दाः, पीताः इव = निगीर्णाः इव, अस्तम = अभावम्, गताः = प्राप्ताः, विनष्टाः इति यावत् । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—यस्य, दोर्मण्डले, इन्द्रारिजयश्रिया, सह, झटिति, मौर्वीलताम्, आकृष्य, भूवलयेन, साकम्, चापवलयम्, बिभ्रति, (सति); आखण्डलः, रहः, पौलोमीकुचकुम्भसीमनि, नवम्, नखाङ्कम्, पश्यन्, केवलम्, चेतसि, कोदण्डम्, धत्ते, करे, तु न, (धत्ते) ॥ २७ ॥

यस्येन्द्रारीति । यस्य = दशरथस्य, दोर्मण्डले—बाहुमण्डले, बाहौ इत्यर्थः, इन्द्रारिजयश्रिया—इन्द्रस्य = देवराजस्य अरेः = शत्रोः दैत्यस्येत्यर्थः जयश्रिया = विजयलक्ष्म्या, सह = साकम्, झटिति = शीघ्रम , मौर्वीलताम् = प्रत्यञ्चाम्, आकृष्य = आतत्य, भुवः = पृथिव्याः वलयेन = मण्डलेन, साकम् = सह, चापवलयम् = धनुर्मण्डलम्, बिभ्रति = धारयति सति; आखण्डलः = इन्द्रः, रहः = एकान्ते, पौलोमीकुचकुम्भसीमनि—पौलोम्याः = इन्द्राण्याः कुचकुम्भयोः = स्तनकलशयोः सीमनि = प्रान्त-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विशेष—दशरथ ने अपने कुछ शत्रुओं को हरा कर उनकी स्त्रियों को बन्दी बना लिया था। कुछ शत्रुओं का वध कर दिया था। बन्दी बनाई गयी शत्रु-स्त्रियों ने कज्जल आदि से तथा मारे गये शत्रु की विधवा स्त्रियों ने करधनी आदि आभूषणों से प्रसाधन छोड़ दिया है। कवि की उत्प्रेक्षा है कि दशरथ के हाथ में प्रत्यञ्चा की रगड़ से पड़ा काला घट्टा (किण) नहीं है, अपितु बन्दी स्त्रियों का जबर्दस्ती छीना गया काजल लगा हुआ है। शत्रु की स्त्रियों ने वैधव्य के कारण करधनी पहनना नहीं छोड़ा है, अपितु दशरथ के धनुष की प्रत्यञ्चा ने उनके शब्दों को पी लिया है। अतः उनकी कटि में अब करधनी के शब्द नहीं सुनाई पड़ते ॥ २६ ॥

और भी—

जिस (दशरथ) के बाहुमण्डल के, दैत्यों के ऊपर (प्राप्त) विजय-श्री के साथ शीघ्र ही प्रत्यञ्चा को खींच कर, पृथिवी-मण्डल के साथ धनुर्मण्डल (अर्थात् चढ़े हुए धनुष) को धारण करने पर, इन्द्र एकान्त में इन्द्राणी के स्तन-कलशों के समीपवाले भाग पर सद्यः किये गये नखक्षत (नाखून के खरोंच) को देखते हुए केवल चित्त में ही धनुष को धारण करते हैं। हाथ में नहीं (धारण करते) ॥ २७ ॥

सूर्यवंश के शिर पर स्थित मुकुट के अग्रभाग में प्रकाशित रक्त-कमल की कली के सदृश (अर्थात् सूर्यवंशियों में सबसे श्रेष्ठ) उन दशरथ महाराज के चन्द्रमा के सुन्दर मुखकमलवाले ये दोनों कुमार (हैं)? ॥ २८ ॥

विश्वामित्र—और क्या ?

जनक—वाह, दशरथ धन्य हैं; जिनके दोनों नेत्र पुत्रदर्शन से शीतल हैं।

भागे, नवम् = नूतनम्, नखांकम् = नखक्षतम्, पश्यन् = अवलोकयन्, केवलम् = एकमात्रम्, चेतसि = चित्ते, कोदण्डम् = धनुः, धत्ते = धारयति, करे = हस्ते, तु, न = धारयतीत्यर्थः। इन्द्रस्चापाकारं वक्रं नखक्षतं दृष्ट्वा चित्ते धनुषः स्मृतिं करोति किन्तु प्रयोजनाभावात् करे धनुर्न करोतीति भावः। अत्र सहोक्तिरलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—तपनकुलशिरःकिरीटकोटिस्फुरदरुणोत्पलकुड्मलस्य, तस्य, दशरथनृपतेः, मृगाङ्कप्रतिमसुरेखमुखाम्बुजौ, इमौ, कुमारौ, (स्तः) ? ॥ २८ ॥

तपनकुलेति । तपनकुलेत्यादिः—तपनस्य = सूर्यस्य कुलम् = वंशः तस्य शिरःकिरीटस्य = उत्तमाङ्गमुकुटस्य कोटयः = अग्रभागाः तासु स्फुरत् = प्रकाशमानम् यदरुणोत्पलम् = रक्तकमलम् तस्य यत् कुड्मलम् = मुकुलम् तस्य, लक्षणया तत्सदृशस्येत्यर्थः, तस्य = जगद्विदितस्य, दशरथनृपतेः = दशरथस्य राज्ञः, मृगाङ्कप्रतिमसुरेखमुखाम्बुजौ—मृगाङ्कः = चन्द्रः प्रतिमा = प्रतिकृतिः यस्य तत् मृगांकप्रतिमम् = चन्द्रतुल्यम् सुरेखम् = सुन्दरम् मुखाम्बुजम् = मुखकमलम् ययोस्तौ तादृशौ, इमौ = एतौ, कुमारौ = पुत्रौ, स्तः इति शेषः। अत्रोपमालङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥' २८ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शतानन्दः—दिशौ च ।

विश्वामित्रः—ननु दिश इति वक्तव्यम् ।

शतानन्दः—तत्किमन्यावपि कुमारौ दशरथस्याङ्कं भूषयतः ।

विश्वामित्रः—अथ किम् । यौ खलु भरतशत्रुघ्नौ प्रतिबिम्बाविव रामलक्ष्मणयोः ।

शतानन्दः—नूनममी ऋष्यश्रृङ्गचरुभागानां विलासाः ।

जनकः—दशरथभागधेयानां च ।

विश्वामित्रः—एवमेतत् । अवधिः खलु भाग्यवतां राजा दशरथः ।

जनकः—महात्मवतां च ।

विश्वामित्रः—तत्किमस्माभिरुच्यताम् । भवतोर्महिम्नि भवन्तावेव साक्षिणौ ।

जनकः—कतरोऽहं दशरथस्य महिमाभोगमनुभवितुं कासार इव सागरस्य ।

विश्वामित्रः—शोभन्त एव विनयमधुराणामधरीकृतात्ममहिमानः कामं सत्यविधुरा अपि वाचः । अथवा समुचितमेवैतत् । यतः—

> जज्ञिवान्दशरथः स हि राजा राममिन्दुमिव सुन्दरगात्रम् ।
> लोकलोचनविगाहनशीलां त्वं पुनः कुमुदिनीमिव सीताम् ॥ २९ ॥

लक्ष्मणः—(अपवार्य) आर्य, इन्दुकुमुदिनीदृष्टान्तेन किमपि संविधानं सूचितं भगवता !

रामः—(सप्रणयकोपम्) अलमलीकालापितया ।

जनकः—(स्वगतम्) कथमनया भङ्ग्या किमपि सूचितं मुनिना । तत्किमनेन रभसवशंवदेन विस्मृतमेव शांभवं धनुः । (प्रकाशम्) भगवन्, अनेन भगवतो वक्र-कमनीयेन वाग्विलासेन द्वितीयेनेव हरकार्मुकेण किमपि कौतुकितोऽस्मि ।

जनक इति । महिमाभोगम्–महिम्नः = महत्त्वस्य = आभोगम् = विस्तारम्, कासारः = सरः ('कासारः सरसी सरः' इत्यमरः) ॥

विश्वामित्र इति । विनयमधुराणाम्—विनयेन = नम्रतया मधुराः = मनोहराः तेषाम्, अधरीकृतात्ममहिमानः—अधरीकृतः = नीचीकृतः आत्मनः = स्वस्य महिमा = महत्त्वम् याभिस्ताः, सत्यविधुराः = सत्यविहीनाः, अनृता इति यावत्, वाचः=वाण्यः ॥

अन्वयः—सः, हि, राजा, दशरथः, इन्दुम्, इव, सुन्दर-गात्रम्, रामम्, (तथा) त्वम्, पुनः, कुमुदिनाम्, इव, लोकलोचनविगाहनशीलाम्, सीताम्, जज्ञिवान् ॥ २९ ॥

जज्ञिवानिति । सः = जगति विदितः, हीति पादपूर्तौ, राजा = भूपालः, दशरथः = रामपिता, इन्दुम् = चन्द्रम्, इव = यथा, सुन्दरगात्रम् = दर्शनीयशरीरम्, रामम् = रामचन्द्रम्, (तथा) त्वम् = जनकः, पुनः = अपि, कुमुदिनीम् = कैरवलताम्, इव=यथा, लोकलोचनविगाहनशीलाम्–लोकस्य=जनसमूहस्य लोचनेपु=नेत्रेषु विगाहनम्= अवगाहनम् शीलम् = स्वभावः यस्यास्तादृशीम्, सीताम् = जानकीम्, यज्ञिवान् = उत्पादितवान् । चन्द्रसुन्दरस्य रामस्योत्पादनात्तः सागर इव कुमुदिनीतुल्यायाः सीतायाः उत्पादनात्त्वं कासार इवासीति व्यङ्ग्यम् । कुमुदिनीचन्द्रयोरिव सीतारामचन्द्रयोः सम्बन्धः स्वाभाविकः शाश्वतिकश्चेत्यपि गम्यते । उपमालङ्कार । स्वागता चात्र वृत्तम् ॥ २९ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शतानन्द—(न केवल नेत्र ही अपितु) दोनों दिशाएँ (पार्श्व भाग) भी (शीतल हैं) ।

विश्वामित्र—अरे, चारों दिशाएँ (शीतल हैं)—ऐसा कहना चाहिये ।

शतानन्द—तो क्या और भी दो कुमार दशरथ की गोद को अलंकृत करते हैं ?

विश्वामित्र—और क्या ? जो कि राम और लक्ष्मण के प्रतिबिम्ब के सदृश भरत और शत्रुघ्न हैं (वे भी दशरथ की गोद को अलंकृत करते हैं)।

शतानन्द—निश्चय ही ये (सब लड़के) ऋष्यशृङ्ग (ऋषि) के चरु भाग के विलास हैं (अर्थात् अग्नि में हवन की गयी आहुति के परिणाम हैं) ।

जनक—दशरथ के भाग्यों के भी (विलास हैं) ।

विश्वामित्र—हाँ ऐसा ही है । राजा दशरथ भाग्यवानों की अन्तिमसीमा हैं (अर्थात् सबसे अधिक भाग्यवान् हैं) ।

जनक—महिमाशाली व्यक्तियों की भी (अन्तिम सीमा हैं) ।

विश्वामित्र—तो हम लोगों के द्वारा क्या कहा जाय ? आप दोनों की महिमा के विषय में आप दोनों ही प्रमाण हैं ।

जनक—जिस तरह छोटा तालाब समुद्र के विस्तार का अनुभव नहीं कर सकता उसी तरह दशरथ की महिमा की विशालता का अनुभव करने में मैं कौन हूँ ?

विश्वामित्र—विनय के कारण मीठे स्वभाववाले व्यक्तियों के अपनी महिमा को कम बतलानेवाले सत्य से रहित वचन भी वस्तुतः शोभित ही होते हैं । अथवा यह उचित ही है । क्योंकि—

उन राजा दशरथ ने चन्द्र के समान सुन्दर शरीरवाले राम को (और) आपने भी कुमुदिनी की तरह लोगों के नेत्रों को आकृष्ट करनेवाली सीता को पैदा किया है ॥ २९ ॥

लक्ष्मण—(अलग से) आर्य, चन्द्रमा और कुमुदिनी के दृष्टान्त से भगवान् (विश्वामित्र] के द्वारा कोई घटना सूचित की गयी है ।

राम—(प्रेमपूर्वक क्रोध के साथ) व्यर्थ बकवास करने की आवश्यकता नहीं है ।

जनक—(अपने आप) क्या इस गोलमोल कथन (वक्रोक्ति) के माध्यम से मुनि (विश्वामित्र) के द्वारा कुछ सूचित किया गया है ? तो क्या हर्ष के अधीन (अर्थात् अत्यन्त हर्षित) इनके द्वारा शंकर का धनुष भुला ही दिया गया ? (प्रकट रूप में) भगवन्, दूसरे शिवचाप के सदृश टेढ़े तथा मनोहर आपके इस वचन-विलास से कुछ उत्कण्ठित हो रहा हूँ ।

राम इति । अलम् = व्यर्थम्, अलीकालापितया—अलीकम् = मिथ्या आलापितया = भाषितया ।

जनक इति । भङ्ग्या = वक्रोक्त्या, किमपि = अप्रस्तुतमित्यर्थः, सीतारामपरिणयस्वरूपं वस्त्वित्यर्थः । रभसवशंवदेन—रभसस्य = हर्षस्य ('रभसो वेगहर्षयोः'

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्रः—(स्वगतम्) कथमनया परिपाट्या हरचापरोपणमुद्भावयति। भवतु। (प्रकाशम्) राजर्षे, साधु स्मारितोऽस्मि। अतीव मे कौतुकं वृषभकेतुकार्मुकावलोकने। तेन तदानयनायादिश्यन्तां पुरुषाः। अथवा किमन्यैः। रामभद्र एवादिश्यताम्।

जनकः—(सविस्मयम्) भगवन्, कथं मुग्ध इव दुग्धमुखमपि राममिन्दुकिरीटकार्मुकानयनार्थमादिशसि। न जानासि किम् ?

एतत्तद्दुर्विगाहं तुहिनगिरिमयं कार्मुकं यत्र जज्ञे
मौर्वी दर्वीकराणां पतिरुदधिसुतानायकः सायकश्च।
दोर्दण्डैश्चन्द्रमौलेर्नतमपि यदभूदुन्नतं कार्मुकाणां
बाष्पाम्भोवृष्टये च त्रिपुरमृगदृशामैशमप्यैन्द्रमासीत्॥ ३०॥

विश्वामित्रः—जानामि।

सेवायातसमस्तखेचरकरक्रीडाचलच्चामर-
श्रेणीमारुतपानपीननिविडज्यापन्नगाकर्षिणा।
गाढाकुञ्चनजृम्भमाणतुहिनस्यन्दैर्यदीयैः श्रमः
संत्यक्तः पुरवैरिणापि तदिदं शैलेन्द्रसारं धनुः॥ ३१॥

इति विश्वः) वशंवदेन = पराधीनेन, हर्षाभिभूतेनेत्यर्थः। शाम्भवम् = शिवसम्बन्धि। वक्रकमनीयेन—वक्रः = कुटिलः अतएव कमनीयः = सुन्दरः तेन, वाग्विलासेन = वचनप्रस्तावेन। कौतुकितः = उत्कण्ठितः॥

विश्वामित्र इति। परिपाट्या = कथनरीत्या, हरचापारोपणम्—हरस्य = शिवस्य चापस्य = धनुषः आरोपणम् = मौर्व्या संयोजनम्, उद्भावयति = स्मारयतीत्यर्थः। वृषभकेतुकार्मुकावलोकने—वृषभः = वृषः केतौ = ध्वजे यस्य सः वृषभकेतुः = शिवः तस्य कार्मुकस्य = धनुषः अवलोकने = दर्शने॥

जनक इति। मुग्ध इव = अज्ञ इव, दुग्धमुखम् = बालकमित्यर्थः, इन्दुकिरीटकार्मुकानयनार्थम्—इन्दुः = चन्द्रः किरीटे = मुकुटे यस्य स इन्दुकिरीटः = शिवः तस्य कार्मुकम् = धनुः तस्य आनयनार्थम् = आनेतुम्॥

अन्वयः—एतत्, तत्, दुर्विगाहम्, तुहिनगिरिमयम्, कार्मुकम्, (अस्ति); यत्र, दर्वीकराणाम्, पतिः, मौर्वी: उदधिसुतानायकः, सायकः, जज्ञे; यत्, चन्द्रमौलेः, दोर्दण्डैः, नतम्, अपि, कार्मुकाणाम्, उन्नतम्, अभूत्; त्रिपुरमृगदृशाम्, बाष्पाम्भोवृष्टये, ऐशम्, अपि, ऐन्द्रम्, आसीत्॥ ३०॥

शिवधनुर्महिमानं वर्णयन्नाह—एतदिति। एतत् = अत्र वर्तमानम्, तत् = जगद्विदितम्, दुर्विगाहम् = उत्तोलने सञ्चालने च कठिनम्, तुहिनगिरिमयम् = हिमालयनिर्मितम्, हिमालयात्सारं गृहीत्वा निर्मितमित्यर्थः, कार्मुकम्=धनुः, अस्तीति शेषः; यत्र = यस्मिन् धनुषि, दर्वीकराणाम् = सर्पाणाम् ('सर्पः·····भुजङ्गो·····दर्वीकरः' इत्यमरः), पतिः = स्वामी, वासुकिरित्यर्थः, मौर्वी = प्रत्यञ्चा, तथा, उदधिसुतानायकः—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्र—(अपने आप) क्या (बातचीत के) इस तरीके से (सीता के साथ विवाह करने के पूर्व) शङ्कर के धनुष को चढ़ाने की प्रस्तावना कर रहे हैं ? (प्रकट रूप में) राजर्षि जी, ठीक याद दिलाया गया हूँ। शङ्कर के धनुष को देखने में मेरी प्रबल उत्कण्ठा है। अतः उसको लाने के लिए लोगों को आदेश दिया जाय। अथवा दूसरे लोगों से क्या (मतलब) ? रामभद्र को ही (शिवधनु लाने का) आदेश दिया जाय।

जनक—(आश्चर्य के साथ) भगवन्, अत्यन्त भोलेभाले (व्यक्ति) की तरह (आप भी) क्यों दुधमुँहे राम को भी शङ्कर के धनुष को लाने के लिए आदेश दे रहे हैं ? क्या नहीं जानते हैं ?

यह वह दुर्विगाह्य (उठाने तथा चलाने में कठिन), हिमालय पर्वत से निर्मित धनुष (है), जिसमें सर्पराज (वासुकि) प्रत्यञ्चा तथा लक्ष्मीपति (विष्णु) बाण बने थे। जो शङ्कर के भुजदण्डों से नत होकर भी धनुषों में उन्नत (श्रेष्ठ) हुआ था। (तथा) त्रिपुराऽसुर की सुन्दरियों के अश्रुजल की वर्षा के लिए शिव का (धनुष) होता हुआ भी इन्द्र का (अर्थात् इन्द्रधनुष के तुल्य) हो गया था ॥ ३० ॥

विशेष—ऐन्द्रमपि—बादलों में इन्द्रधनुष के निकलने पर वृष्टि होती है। आकाश में त्रिपुरासुरों के विनाश के अनन्तर उनकी स्त्रियाँ रो-रोकर आँखों से अश्रुधारा बहाने लगीं। अतः उस समय शङ्कर का धनुष इन्द्रधनुष-सा हो गया था ॥ ३० ॥

सेवा के लिए आये हुए सम्पूर्ण देवताओं के हाथों से क्रीडापूर्वक चलाये गये चामरों की पंक्तियों के वायु के पीने से मोटे तथा घन (कठोर) प्रत्यञ्चारूप सर्प को खींचनेवाले शङ्कर के द्वारा भी जिस (धनुष) को दृढ़ता के साथ झुकाने से अधिक बढ़े हुए हिम-प्रवाहों (की शीतलता) से परिश्रम दूर किया गया, वही यह हिमालय का साररूप धनुष है ॥ ३१ ॥

उदधिसुतायाः = लक्ष्म्याः नायकः = पतिः, विष्णुरिति यावत्, सायकः = बाणः, जज्ञे = जातः। यत् = शिवधनुः, चन्द्रमौलेः = शङ्करस्य, दोर्दण्डैः = भुजदण्डैः, नतम् = नम्रीकृतम्, आकृष्टमिति यावत्, अपि, कार्मुकाणाम् = कोदण्डानाम्, उन्नतम् = श्रेष्ठम्, अभूत् = जातम्। तथा, त्रिपुरमृगदृशाम् = त्रिपुराऽसुरस्त्रीणाम्, बाष्पाम्भोवृष्ट्ये = अश्रुजलवर्षणाय, ऐशस्येदमैशम् = शिवसम्बन्धि, शिवस्येत्यर्थः, अपि, इन्द्रस्येदमैन्द्रम् = आखण्डलम्, आसीत् = अभूत्। उन्नतमैन्द्रं धनुर्यथा वृष्ट्यै भवति तथोदग्रमप्यैशं धनुः त्रिपुरसुन्दरीनेत्रजलवर्षणाय जातमिति भावः। अत्र विरोधाभासो नामालङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' ॥ ३० ॥

अन्वयः— सेवायातसमस्तखेचरकरक्रीडाचलच्चामरश्रेणीमारुतपानपीननिबिडज्याफणाकर्षिणा, पुरवैरिणा, अपि, यदीयैः, गाढाकुञ्चनजृम्भमाणतुहिनस्यन्दैः, श्रमः, समपास्तः; तत्, इदम्, शैलेन्द्रसारम्, धनुः, (अस्ति) ॥ ३१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनकः—तत्कथमस्यानयनाय रामायादिशसि ।

विश्वामित्रः—न केवलमानयनाय, किंत्वानमनाय । (रामं प्रति) वत्स, बध्यतां परिकरः । इदं च

मारीचमारीचतुरं सुबाहोरपवारणम् ।
न्यस्यतां लक्ष्मणकरे ताटकाताडनं धनुः ॥ ३२ ॥

जनकः—कथमसंभावनीयमेवोद्भावयसि ।

विश्वामित्रः—कथमिदं न विदितं ते । अनेन हि

प्राप्य चापनिगमानितः क्रमात्संप्रताप्य विशिखैर्निशाचरान् ।
अस्मदीयमखरक्षणक्रिया दक्षिणेन गुरुदक्षिणीकृता ॥ ३३ ॥

जनकः—(विमृश्य । निःश्वस्य च ।) भगवन्, अस्त्येतत् । किन्तु

मारीचमुख्यरजनीचरचक्रचूडा-
चञ्चन्मरीचिचयचुम्बितपादपीठः ।
अत्राभवद्विफलबाहुबलावलेपो
वीरः शशाङ्कमुकुटाचलचालनोऽपि ॥ ३४ ॥

धनुषः महत्त्वं कथयन्नाह—सेवायातेति । सेवायातेत्यादिः—सेवायै = परिचर्यायै, शिवस्य परिचर्यायै इत्यर्थः, आयाताः = आगताः समस्ताः = निखिलाः ये खेचराः = देवाः तेषां करैः = हस्तैः क्रीडया = सलीलं सञ्चालनपद्धत्या चलन्ति = सञ्चालितानि इत्यर्थः यानि चामराणि = प्रकीर्णकानि तेषां श्रेणयः = पंक्तयः तासां मारुतस्य = वायोः पानेन = पानकर्मणा पीनः = स्थूलः अत एव निबिडः = घनः यः ज्यापन्नगः = मौर्वीरूपः सर्पस्तमाकर्षतीति तच्छीलस्तेन, पुरवैरिणाऽपि = शिवेनाऽपि, यदीयैः = कार्मुकसम्बन्धिभिः, गाढाकुञ्चनजृम्भमाणतुहिनस्यन्दैः—गाढम् = दृढम् यथा-स्यात्तथा आकुञ्चनेन = आनमनेन जृम्भमाणाः = वेगेनोत्पद्यमानाः ये तुहिनस्य = हिमस्य स्यन्दाः = प्रवाहाः तैः, कारणभूतैरित्यर्थः, श्रमः = धनुरानमनजन्या श्रान्तिः, सन्त्यक्तः = परित्यक्तः, दूरीकृत इत्यर्थः, तत् = तादृशम्, इदम् = एतत्, शैलेन्द्रसारम् = हिमालयसार-भूतम्, धनुः = कार्मुकम्, अस्तीति शेषः । रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥३१॥

अन्वयः—मारीचमारीचतुरम्, सुबाहोः, अपवारणम्, ताटकाताडनम्, धनुः, लक्ष्मणकरे, न्यस्यताम् ॥ ३२ ॥

भङ्ग्यन्तरेण रामचन्द्रवीर्यं जनकं बोधयन्नाह—मारीचेति । मारीचमारी-चतुरम्—मारीचस्य = मारीचनाम्नः राक्षसस्य मारी = मारणक्रिया तस्यां चतुरम् = निपुणम्, सुबाहोः = तन्नामकस्य राक्षसस्य, अपवारणम् = निवारकम्, ताटका-ताडनम्—ताटकायाः = तदभिधानायाः राक्षस्याः ताडनम् = ताडनसाधनम्, धनुः = चापम्, लक्ष्मणकरे = लक्ष्मणस्य हस्ते, न्यस्यताम् = दीयताम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—इतः, क्रमात्, चापनिगमान्, प्राप्य, विशिखैः, निशाचरान्, सम्प्रताप्य, दक्षिणेन, (अनेन), अस्मदीयमखरक्षणक्रिया, गुरुदक्षिणीकृता ॥ ३३ ॥

प्राप्येति । इतः = मत्सकाशात्, क्रमात् = यथोचितक्रमेण, चाप-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनक—तो क्यों इस (धनुष) को लाने के लिए राम को आदेश दे रहे हैं ?

विश्वामित्र—न केवल ले आने के लिए अपितु झुकाने के लिए (भी आदेश दे रहा हूँ)। (राम के प्रति) बेटे, कटिवस्त्र (फेंटा) बाँधो। और यह—

मारीच को मारने की क्रिया में चतुर, सुबाहु का निवारण करनेवाला (तथा) ताटका को मारनेवाला धनुष लक्ष्मण के हाथ में दे दो ॥ ३२ ॥

जनक—कैसे (आप) असम्भव (बात) की ही प्रस्तावना कर रहे हैं ?

विश्वामित्र—क्या यह आप को ज्ञात नहीं (है)।

यहाँ से (अर्थात् मुझसे) क्रमपूर्वक धनुर्वेद को पढ़कर, बाणों से निशाचरों को सन्तप्त करके (मार के), चतुर (इन राम) के द्वारा हमारे यज्ञ की रक्षा रूप क्रिया (ही) गुरुदक्षिणा के रूप में प्रदान की गयी ॥ ३३ ॥

जनक—(सोचकर तथा लम्बी श्वांस लेकर) भगवन्, यह ठीक है। किन्तु—

मारीच आदि राक्षसों के समूह के मुकुटों की चमकती हुई किरणों के समूहों से चुम्बित (पूजित) पाद पीठ वाला, वीर, शिवपर्वत कैलास को हिला देने वाला (रावण) भी इस (धनुष) में, निरर्थक हो गया है बाहुबल का घमण्ड जिसका ऐसा हो चुका है (अर्थात् इस धनुष को उठाने में फेल हो चुका है) ॥ ३४ ॥

निगमान् = धनुर्वेदान्, प्राप्य = अधीत्य, विशिखैः = बाणैः, निशाचरान् = राक्षसान्, सम्प्रताप्य = मारयित्वेत्यर्थः, दक्षिणेन = अनुकूलेन चतुरेण वा, (अनेन = रामेण), अस्मदीयमखरक्षणक्रिया—अस्मदीयमखस्य = मम यज्ञस्य रक्षणक्रिया = रक्षणकार्यम्, गुरुदक्षिणीकृता—गुरवे = आचार्याय, मह्यमित्यर्थः, दक्षिणीकृता = दक्षिणारूपेण समर्पिता। मत्तो धनुर्वेदान् प्राप्य नैपुण्येन मदीयमखस्य रक्षणं कुर्वन् निशाचरान् जघानेति वक्तव्याभिप्रायः। अतो नायं साधारणो बालको मन्तव्य इति। रथोद्धता वृत्तम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः— मारीचमुख्यरजनीचरचक्रचूडाचञ्चन्मरीचिचयचुम्बितपादपीठः, वीरः, शशाङ्कमुकुटाचलचालनः, अपि, अत्र, विफलबाहुबलावलेपः, अभवत् ॥ ३४ ॥

धनुरुत्तोलनासम्भवं प्रदर्शयन्नाह—**मारीचमुख्येति**। मारीचमुख्येत्यादिः—मारीचः मुख्यः = आदिः येषान्ते तादृशाः ये रजनीचराः = राक्षसाः तेषां चक्रम् = समूहः तस्य चूडासु = मुकुटेषु चञ्चन्त्यः = प्रकाशमानाः याः मरीचयः = रश्मयः ताभिः चुम्बितम् = स्पृष्टम् पादपीठम् = चरणन्यासासनम् यस्य तादृशः, वीरः = शूरः, शशाङ्कमुकुटाचलचालनः—शशाङ्कः = चन्द्रः मुकुटे = शेखरे यस्य सः शशाङ्कमुकुटः = शिवः तस्य अचलः = पर्वतः तस्य चालनः = चालकः, उत्तोलकः इत्यर्थः, रावणः इति यावत्, अपि, अत्र = अस्मिन् धनुषि, विफलबाहुबलावलेपः—विफलः = निष्फलः बाहुबलस्य = भुजबलस्य अवलेपः = दर्पः यस्य सः तादृशः, अभवत् = जातः। अत्र रावणोऽपि निष्फलः सञ्जातोऽतः मारीचादीनां सामान्यराक्षसानां घातुके रामे मदीयः सन्देहः प्रादुर्भवतीति भावः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्रः—किमेतावता। नन्वत एव राममादिशामि। (रामं प्रति) वत्स, उत्तिष्ठ! कुमुदिनीकान्तकलाकिरीटकार्मुकरोपणप्रवीणतया सम्प्रीणयास्मान्।

जनकः—(स्वगतम्)

यस्य ख्याता जगति सकले निस्तमिस्रा तपःश्री-
मिथ्योत्कण्ठः कथमिह भवेदेष गाधेस्तनूजः।
बालो रामः किमपि गहनं कार्मुकं चन्द्रमौले-
र्दोलारोहं कलयति मुहुस्तेन मे चित्तवृत्तिः॥ ३५॥

(पुनः पृथिवीमालोक्य)

रतिरिव जननेत्रानन्दिनी नन्दिनी ते
कुसुमशर इवायं रूपसारः कुमारः।
यदि तु धनुरपीदं प्राप्तमेतस्य हस्तं
कुसुममयमिव स्यात्सम्भृतः सम्प्रदायः॥ ३६॥

शतानन्दः—राजर्षे, किमेतन्मूढ इव मुहुर्मुहुरालोकसे। अनुवर्तस्व महर्षेर्वचनम्।

जनकः—(प्रकाशम्) अनुवृत्तमेव। (रामं प्रति) वत्स, अनुष्ठीयतां गुरुवचनम्।

(राम उत्थाय परिकरं बध्नाति)

(प्रविश्य)

विश्वामित्र इति। कुमुदिनीकान्तकलाकिरीटकार्मुकरोपणप्रवीणतया—कुमुदिनीकान्तः = कैरवपतिश्चन्द्रः तस्य कला = अंशः किरीटे = मुकुटे यस्य सः तादृशः तस्य कार्मुकस्य = धनुषः रोपणे = आरोपणे प्रवीणता = निपुणता तया; प्रीणय = प्रसन्नान् कुरु॥

अन्वयः—सकले, जगति, यस्य, निस्तमिस्रा, तपःश्रीः, ख्याता; (एतादृशः), एषः, गाधेः, तनूजः, इह, कथम्, मिथ्योत्कण्ठः, भवेत्? रामः, बालः, (अस्ति); चन्द्रमौलेः, कार्मुकम्, किमपि, गहनम्, (वर्तते); तेन, मे, चित्तवृत्तिः, मुहुः, दोलारोहम्, कलयति॥ ३५॥

रामं प्रति विश्वामित्रोक्तिं विमृशति—यस्येति। सकले = समग्रे, जगति = संसारे, यस्य = गाधिपुत्रस्य, निस्तमिस्रा = शुभ्रा, तपःश्रीः = तपोलक्ष्मीः, ख्याता = प्रसिद्धा, (एतादृशः), एषः = पुरः स्थितः, गाधेः = तदाख्यस्य राजर्षेः, तनूजः = पुत्रः, विश्वामित्र इत्यर्थः; इह = रामस्य धनुरुन्नमने इत्यर्थः, कथम् = कस्मात्, मिथ्योत्कण्ठः—मिथ्या = व्यर्था उत्कण्ठा = अभिलाषा यस्य तादृशः, भवेत् = स्यात्? रामः = रामचन्द्रः, धनुरुन्नमनाय विश्वामित्रेणाऽऽदिष्टो यः इत्यर्थः, बालः = कुमारः, अस्तीति शेषः, चन्द्रमौलेः = शिवस्य, कार्मुकम् = धनुः, किमपि = अनिर्वचनीयं यथास्यात्तथा, गहनम् = गभीरम्, वर्तते इति शेषः; तेन = तस्मात्, मे = मम, चित्तवृत्तिः = अन्तःकरणवृत्तिः, मुहुः = वारम्वारम्, दोलारोहम् = अस्थिरतामित्यर्थः, कलयति = प्राप्नोति। कदाचिद्विश्वामित्रमाहात्म्यं विमृश्य रामो धनुरुत्तोलयिष्यतीति विश्वसिति कदाचिच्च

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विश्वामित्र—इतने से क्या (हुआ) ? अरे, इसी लिए तो राम को आदेश दे रहा हूँ। (राम के प्रति) बेटा, उठो। कुमुदिनी के पति (चन्द्रमा) की कला को मुकुट पर धारण करने वाले (भगवान् शङ्कर) के धनुष को चढ़ाने की प्रवीणता के द्वारा हम लोगों को प्रसन्न करो।

जनक—(अपने आप)

सारे संसार में जिसकी निर्मल तपोलक्ष्मी प्रसिद्ध हैं, (ऐसे) यह गाधि के पुत्र (विश्वामित्र) इस विषय में कैसे व्यर्थ उत्कण्ठित होंगे ? राम बालक (है), शङ्कर का धनुष अनिर्वचनीय रूप से पार पाने में (उठाए जाने में) कठिन (है)। अतः मेरी चित्तवृत्ति बारम्बार झूले पर झूल रही है (अर्थात् कुछ निश्चय नहीं कर पा रही है) ॥ ३५ ॥

(फिर पृथ्वी की ओर देखकर)

लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने वाली रति के समान आपकी पुत्री सीता है)। यह कुमार (भी) कामदेव के समान अत्यन्त सुन्दर (है)। यह धनुष यदि इनके हाथ में प्राप्त होकर पुष्पों से बना हुआ सा हो जाय तो सारी बातें (रति, कामदेव और उसका पुष्प धनुष रूप बातें) पूर्ण (हो जाँय) ॥ ३६ ॥

शतानन्द—राजर्षे, क्यों यह अज्ञ की तरह (आप) बार-बार देख ही रहे हैं ? महर्षि (विश्वामित्र) के वचन का अनुसरण (पालन) कीजिए।

जनक—(प्रकट रूप में) (यह) अनुसरण ही किया। (राम के प्रति) बेटा, गुरु के वचन का पालन करो।

(राम उठ कर कमर कस कर बाँधते हैं)

(प्रवेश करके)

धनुषो गहनतां विभाव्य रामो नैतदुत्तोलयिष्यतीत्यविश्वासं करोतीति। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—जननेत्रानन्दिनी, रतिः, इव, ते, नन्दिनी, (अस्ति); अयम्, कुमारः, कुसुमशरः, इव, रूपसारः, (वर्तते); इदम्, धनुः, यदि, एतस्य, हस्तम्, प्राप्य, कुसुममयम्, इव, स्यात्; तु, सम्प्रदायः, सम्भृतः, (भवेत्) ॥ ३६ ॥

रतिरिवेति । जननेत्रानन्दिनी—जनानाम् = लोकानाम् नेत्राणि = लोचनानि आनन्दयति = आह्लादयतीति तच्छीला, रतिरिव = कामवधूरिव, ते = तव, नन्दिनी = पुत्री, अस्तीति शेषः; अयम् = एषः, कुमारः = बालकः, कुसुमशरः = पुष्पशरः, कामः इत्यर्थः, इव = यथा, रूपसारः—रूपस्य = सौन्दर्यस्य सारः = तत्त्वम्, वर्तते इति शेषः; इदम् = एतत् शिवसम्बन्धि, धनुः = कार्मुकम्, कुसुममयम् = पुष्पमयम्, इव, स्यात् = भवेत्; तु = तर्हि, सम्प्रदायः = आम्नायः, रतेः कामपत्नीत्वं कामस्य च कुसुममयचापधरत्वमित्येवं रूपः, सम्भृतः = पूर्णः, भवेदिति शेषः। अत्रोपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ ३६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रतिहारी—जयतु जयतु देवः। कोऽपि ब्राह्मणो देवस्य दर्शनार्थी द्वारदेशे तिष्ठति। तत्किं प्रवेश्यताम्।

[जेदु जेदु देवो। को वि बह्मणो देवस्स दंसणत्थी दुआरदेसम्मि चिट्ठदि। ता किं पवेसीअदु।

जनकः—आः, इदमपि किं जनकः प्रष्टव्यः।

प्रतिहारी—तथा। (इति निर्गत्य तेन सह प्रविशति।)

जनकः—ब्रह्मन्, प्रणम्यसे।

मुनिः—राजन्, सुमतिर्भूयाः।

जनकः—(स्वगतम्) अन्यादृशीयमाशीःपरिपाटी। भवतु। (प्रकाशम्) मुने, इहास्यताम्।

मुनिः—संदेशहरः खल्वस्मि।

जनकः—कस्यायम्। कीदृशो वा संदेशः।

मुनिः—पीत्वा कज्जलकालिमानमखिलं क्ष्मापालनारीदृशां
नीत्वा स्फीतयशोट्टहासमहसा लोकत्रयं शुभ्रताम्।
चण्डीशं चरितैरनेकविभवैरद्यापि यः सेवते
हे वैदेह स जामदग्न्यपरशुस्त्वामेतदाभाषते॥ ३७॥

जनकः—(स्वगतम्) अहो गर्वाङ्कुरस्य वक्रता। भवतु। (प्रकाशम्) किं तत्।

मुनिः—कस्मैचिद्देहि कन्यां नरपतिशिशवे दीर्घमायुर्लभस्व
व्यावर्तस्वाप्रियान्नः पुरमथनधनुःकर्षणालापपापात्।
नो चेदन्योऽस्त्युपायस्तव कलुषमर्षीपङ्कसंक्षालनाया-
मस्मद्विस्तारिधाराज्वलबहलपयःपूरदूरावगाहः॥ ३८॥

अन्वयः—हे वैदेह, यः क्ष्मापालनारीदृशाम्, अखिलम्, कज्जलकालिमानम्, पीत्वा, स्फीतयशोऽट्टहासमहसा, लोकत्रयम्, शुभ्रताम्, नीत्वा, अद्य, अपि, अनेकविभवैः, चरितैः, चण्डीशम्, सेवते; सः, जामदग्न्यपरशुः, त्वाम्, एतत्, आभाषते॥ ३७॥

सन्देशहरः परशुद्वारा परशुरामं वर्णयन्नाह—पीत्वेति। हे वैदेह = हे विदेहराज जनक, यः = जामदग्न्यपरशुः, क्ष्मापालनारीदृशाम्—क्ष्मापालाः = भूपालाः तेषां नार्यः = स्त्रियः तासां दृशाम् = नेत्राणाम्, अखिलम् = सम्पूर्णम्, कज्जलकालिमानम् = कज्जलस्य = अञ्जनस्य कालिमानम् = कृष्णिमानम्, पीत्वा = आचम्य, स्फीतयशोऽट्टहासमहसा—स्फीतम् = समृद्धम् यत् यशः = कीर्तिः तदेव अट्टहासः = उच्चैर्हास्यम् तस्य महसा = प्रकाशेन, लोकत्रयम् = त्रिलोकीम्, शुभ्रताम् = धवलताम्, नीत्वा = प्रापय्य, अद्यापि = साम्प्रत्यपि, कृते क्षत्रियनाशे सत्यपि, अनेकविभवैः = बहुविधैः, चरितैः = चरित्रैः, कार्यैरित्यर्थः, चण्डीशम् = शम्भुम्, सेवते = आराधयति, सः = जगद्विदितः तादृशः, जामदग्न्यपरशुः = परशुरामपरश्वधः, त्वाम् = भवन्तम्, कृतधनुरारोपणानुष्ठानमित्यर्थः, एतत् = इदम्, आभाषते = कथयति। अत्र पर्यायोक्तमलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमिति॥ ३७॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्रतिहारी—महाराज जय हो जय हो। महाराज को देखने का इच्छुक कोई ब्राह्मण दरवाजे पर स्थित हैं। तो क्या (उन्हें भीतर) ले आऊँ ?

जनक—ओह ? क्या यह भी जनक से पूछना है ?

प्रतिहारी—जैसी आज्ञा। (ऐसा कह कर निकलकर पुनः उसके साथ प्रवेश करती है)।

जनक—ब्राह्मण (देवता), प्रणाम कर रहा हूँ।

मुनि—राजन्, सुन्दर (दुरुस्त) बुद्धिवाले होओ।

जनक—(अपने आप) आशीर्वाद देने का यह दूसरा ही तरीका है। अच्छा। (प्रकट रूप में) मुने, यहाँ बैठिए।

मुनि—(मैं) सन्देश लानेवाला (अर्थात् सन्देशवाहक) हूँ।

जनक—यह किसका और कैसा सन्देश है ?

हे जनक, जो राजाओं की स्त्रियों के नेत्रों की सम्पूर्ण कज्जल की कालिमा पीकर बढ़े हुए यशरूपी अट्टहास के प्रकाश से त्रिलोकी को धवल बनाकर आज भी अनेक तरह से सम्पन्न चरित्रों से शङ्कर की उपासना करता है, वह परशुराम का परशु (फरसा, गड़ासा) आपको यह कह रहा है ॥ ३७ ॥

विशेष—परशुराम के परशु ने सम्पूर्ण राजाओं को मार डाला था। अतः उनकी विधवाओं ने आँखों में काजल लगाना आदि प्रसाधन छोड़ दिया। यही परशु के द्वारा उन स्त्रियों के आँखों के काजल का पीना है ॥ ३७ ॥

जनक—(अपने आप) गर्व के अंकुर की आश्चर्यजनक वक्रता है (अर्थात् कैसा टेढ़ा घमण्ड है ?)। ठीक है। (प्रकट रूप में) वह (कथन) क्या है ?

मुनि—(बिना धनुष-यज्ञ के ही) किसी राजकुमार को (अपनी) कन्या (सीता) दे दीजिए (और) लम्बी आयु प्राप्त कीजिए। हमारे लिए अप्रिय, शङ्कर के धनुष को खींचने की चर्चा रूप पाप से हट जाइए। अन्यथा आप के पापरूप काले कीचड़ को धोने में (के लिए) हमारे (परशु) की आगे बढ़ी हुई धारा की नोक रूप पर्याप्त जलधार में अत्यधिक बूड़ना (ही) दूसरा उपाय है (अर्थात् धनुषयज्ञ की बात छोड़कर इसी तरह अपनी कन्या किसी को दे दीजिये अन्यथा हमारे परशु से मारे जाइएगा) ॥३८॥

अन्वयः—कस्मैचित्, नरपतिशिशवे, कन्याम्, देहि, (तथा) दीर्घम्, आयुः, लभस्व; नः, अप्रियात्, पुरमथनधनुःकर्षणालापपापात्, व्यावर्तस्व; नो चेत्, तव, कलुषमषीपङ्कसंक्षालनायाम्, अस्मद्विस्तारिधाराञ्चलबहलपयःपूरदूरावगाहः, (एव), अन्यः, उपायः, अस्ति ॥ ३८ ॥

सन्देशं कथयति—**कस्मैचिदिति**। धनुरुद्यमनारोपणं विनैव, कस्मैचित् = यस्मै कस्मैचिदित्यर्थः, नरपतिशिशवे = राजकुमाराय, कन्याम् = पुत्रीम्, सीतामित्यर्थः, देहि = समर्पय; तथा दीर्घम् = महत्, आयुः=जीवनम्, लभस्व = प्राप्नुहि, अस्मत्प्रसादाद्दीर्घमायुः प्राप्नुहीत्यर्थः। नः = अस्माकम्, अप्रियात् = अनभीष्टात्, पुरमथनधनुःकर्षणालापपापात्— पुरमथनः = त्रिपुरारिः शङ्करः तस्य धनुः = कोदण्डम् तस्य

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनकः—(विहस्य) तन्ममापि प्रतिसंदेशः कथनीयस्तस्य ।

मुनिः—कीदृशोऽसौ ।

जनकः—

त्वं मित्त्रं मम जामदग्न्यपरशो येनैतदाभाष्यसे
सम्प्रत्येव यथाप्रतिश्रुतमियं कन्या मया दीयते ।
तेनेह स्वयमेत्य धूर्जटिधनुर्धौरेयदोःसंपदो
जामातुः पुरतश्चिराय भवता धाराजलं त्यज्यताम् ॥ ३९ ॥

मुनिः—तथास्तु । (इति निष्क्रान्तः)

जनकः—आङ्गिरसोपक्षिप्तस्तावदयं जामदग्न्येन निजकोपानलस्फुलिङ्गः ।

शतानन्दः—किमेतावता । अतिगम्भीरभुजसारकासारकैरवारामः खलु रामः ।

विश्वामित्रः—राजर्षे, के पुनरमी परितः स्फुरन्मणिमौलयः परःसहस्रा दृश्यन्ते ।

कर्षणस्य = आरोपणस्य आलापः = चर्चा एव पापम् = कल्मषम् तस्मात्, व्यावर्तस्व= आत्मानं निवर्तस्व । धनुषः आरोपणादिचर्चैव पापजनयित्री आरोपणस्य वार्ता तु दूरे तिष्ठतु इति भावः । नो चेत् = अन्यथा, यदि आत्मानं तस्मान्न निवारयसि तदेत्यर्थः, तव = भवतः, कलुषमषीपङ्कसंक्षालनायाम्—कलुषम्=पापम् एव मषीपङ्कः = कृष्णकर्दमः कज्जलकर्दमो वा तस्य संक्षालनायाम् = प्रक्षालनक्रियायाम्, अस्मद्विस्तारिधाराञ्चलबहलपयःपूरदूरावगाहः—अस्माकं परशोरिति शेषः विस्तारिणी = प्रसारिणी या धारा = अग्रभागः तस्याः अञ्चलम् = प्रान्तभागः एव बहलम् = अधिकम् यत् पयः= जलम् तस्य पूरः = प्रवाहः तत्र दूरम् = पर्याप्तं यथा स्यात्तथा अवगाहः = निमज्जनम्, एवेति शेषः, अन्यः = अपरः, उपायः = प्रतीकारः अस्ति । धनुर्यज्ञं विहाय साधारणरीत्या यस्मै कस्मै कन्यां देहि । इत्थं शिवधनुरुद्यमनादिचर्चाजनितं पापं परिहर । प्रथमोऽयं पन्थाः । एनं पन्थानमननुसृत्य यदि धनुर्यज्ञं विस्तारयसि तदा तव पापप्रायश्चित्तस्य संक्षालनाय परशुना तव वधं करिष्यामीति भावः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥३८॥

अन्वयः—हे जामदग्न्यपरशो, त्वम्, मम, मित्रम्, (असि); येन, एतत्, आभाष्यसे; सम्प्रति, एव, यथाप्रतिश्रुतम्, मया, इयम्, कन्या, दीयते; तेन, इह, स्वयम्, एत्य, धूर्जटिधनुर्धौरेयदोःसम्पदः, जामातुः, पुरतः, भवता, चिराय, धाराजलम्, त्यज्यताम् ॥३९॥

जनकः प्रतिसन्दिशति—त्वं मित्रमिति । हे जामदग्न्यपरशो—जामदग्न्यस्य = परशुरामस्य परशुः = परश्वधः तत्सम्बुद्धौ हे जामदग्न्यपरशो=हे परशुरामकुठार । त्वम् = भवान्, मम = जनकस्य, मित्रम् = सखा, असीति शेषः, येन = यस्मात् कारणात्, एतत् = इदम्, वक्ष्यमाणमित्यर्थः, आभाष्यसे = कथ्यसे, सन्दिश्यसे इत्यर्थः; सम्प्रति = अधुना, एवेति विलम्बव्यवच्छेदार्थम्, यथाप्रतिश्रुतम् = यथाप्रतिज्ञातम्, मया = जनकेन, इयम् = एषा, कन्या = कुमारी सीता, दीयते = समर्प्यते; तेन = तस्मात् कारणात्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनक—(जोर से हँसकर) तो उनके लिए मेरा भी प्रतिसन्देश (जवाब) कहना है ।

मुनि—वह (जवाब) कैसा है ?

'हे जामदग्न्य के परशो, तुम हमारे मित्र हो, जिससे यह कहे जा रहे हो। (अर्थात् मित्र के नाते मैं तुमसे कह रहा हूँ)। अभी ही (अपनी) की गयी प्रतिज्ञा के अनुसार मेरे द्वारा यह कन्या (सीता) दी जा रही है। अतः यहाँ स्वयं आकर शङ्कर के धनुष को धारण करने में समर्थ बाहुरूपी सम्पत्तिवाले (हमारे) दामाद के सामने तुम बहुत दिनों तक धाराजल को छोड़ो (अर्थात् हमेशा के लिए धाराजल को छोड़ दो—यह भी अर्थ है) ॥३९॥'

मुनि—ठीक है। (ऐसा कहकर निकल गया)।

जनक—शतानन्द, परशुराम के द्वारा तो यह (अपने) क्रोध रूपी आग की चिनगारी सूचित की गयी है (अर्थात् शिवधनुष टूटने पर परशुराम क्रुद्ध होंगे—यह उन्होंने सन्देश से सूचित कर दिया है)।

शतानन्द—इससे क्या ? राम, निश्चय ही, अत्यन्त गम्भीर भुजबलरूपी तालाब के कुमुद-वन हैं।

विश्वामित्र—राजर्षे, चारों ओर चमचमाते हुए मणियों से युक्त मुकुटवाले हजारों की संख्या में ये कौन दिखलायी पड़ रहे हैं ?

इह = अत्र, स्वयम् = आत्मना, एत्य = आगत्य, धूर्जटिधनुर्धौरेयदोःसम्पदः—धूर्जटेः = शिवस्य धनुषः=चापस्य धौरेयौ = धारणशीलौ यौ दोषौ = भुजौ एव सम्पत् = सम्पत्तिः यस्य तस्य, अगद्धिदितभुजबलस्येत्यर्थः, जामातुः = भाविनः कन्यापतेः, पुरतः = समक्षम्, भवता = त्वया, चिराय = चिरकालपर्यन्तम्, धाराजलम्—धारा = तीक्ष्णः अग्रभागः एव जलम् = सलिलम्, त्यज्यताम् = विसृज्यताम्। हे परशुरामकुठार ! शीघ्रमेव मम भावी जामाता त्वदीयं गर्वमपनेष्यतीति भावः। पर्यायोक्तमलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥३९॥

जनक इति। आङ्गिरस = शतानन्दस्य वंशपरिचायकं सम्बोधनपदमिदम्, उपक्षिप्तः = सूचितः, प्रस्तावितः इत्यर्थः, निजकोपानलस्फुलिङ्गः—निजः = स्वकीयः यः कोपानलः = क्रोधाग्निः तस्य स्फुलिङ्गः = कणिका ॥

शतानन्द इति। अतिगम्भीरभुजसारकासारकैरवारामः— अतिगम्भीरः = अतीवदुरवगाहः यः भुजसारः = बाहुबलम् स एव कासारः = सरोवरः तस्य ये कैरवाः = कुमुदानि तस्य आरामः = वनम्। अनेन विशेषणेन परशुरामकोपानलनिवारकत्वं सूचितम् ॥

विश्वामित्र इति। स्फुरन्मणिमौलयः—स्फुरन्तः = प्रकाशमानाः मणयः = रत्नानि मौलिषु = मस्तकेषु येषान्ते तादृशाः, परःसहस्राः = सहस्रात् पराः इत्यर्थः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनकः—

श्रीकण्ठकार्मुकनिरस्तभुजावलेपा
नानादिगन्तजगतीपतयः किलामी ।
अभ्यर्थनां मम किमप्यभिवर्तमाना
गृह्णन्ति कानिचिदहानि नरेन्द्रपूजाम् ॥ ४० ॥

विश्वामित्रः—वत्स रामभद्र, तदेषामेव पश्यतां कौतुकमस्माकं पूरय ।

(रामो विश्वामित्रं प्रणम्य निष्क्रान्तः)

जनकः—आङ्गिरसापरिशीलितसन्निवेशस्य वत्सरामस्य भवता प्रत्यन्तरीभूयताम्। आदिश्यतां कञ्चुकी च करकलितकमलमालाया जानक्याः स्वयंवराङ्गणावतरणाय ।

शतानन्दः—तथास्तु । (इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—जयतु देवः अनुष्ठित एव देवादेशः ।

विश्वामित्रः—(विलोक्य । सहर्षम्) आः, कथमुद्गतमेव रामचन्द्रयशःपताकाकेतुदण्डेन हरकोदण्डेन । (पुनः सविस्मयम्) अये,

राघवेण शिशुनापि किलायं लीलयैव नमितो हरचापः ।
दूरमुल्लसति यस्य समन्तादम्बरेऽपि गमितो गुणघोषः ॥ ४१ ॥

लक्ष्मणः—भगवन्, एवमेतत् । तथा हि—

अन्वयः—श्रीकण्ठकार्मुकनिरस्तभुजावलेपाः, अमी, नानादिगन्तजगतीपतयः, मम, अभ्यर्थनाम्, किमपि, अभिवर्तमानाः, कानिचित्, अहानि, नरेन्द्रपूजाम्, गृह्णन्ति, किल ॥४०॥

श्रीकण्ठेति । श्रीकण्ठकार्मुकनिरस्तभुजावलेपाः—श्रीकण्ठस्य = शिवस्य कार्मुकेन = कोदण्डेन निरस्तः = दूरीकृतः भुजाऽवलेपः = बाहुबलदर्पः येषान्ते, अमी= एते दृश्यमानाः, नानादिगन्तजगतीपतयः—विभिन्नदेशभूपालाः, मम = जनकस्य, अभ्यर्थनाम् = प्रार्थनाम्, किमपि = कथमपीत्यर्थः, अभिवर्तमानाः = स्वीकुर्वन्तः, कानिचित् = कियन्तिचन, अहानि = नरेन्द्रपूजाम् = राजसत्कारम्, गृहणन्ति = स्वीकुर्वन्ति, किलेति निश्चये । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥४०॥

जनक इति । अपरिशीलितसन्निवेशस्य—अपरिशीलिताः = पूर्वं न दृष्टाः इत्यर्थः अपरिचिताः इति यावत्, सन्निवेशाः = अत्रत्याः प्रदेशाः यस्य तस्य, वत्सरामस्य = प्रियरामचन्द्रस्य, प्रत्यन्तरीभूयताम् = सहायरूपेण उपसर्पताम् । कञ्चुकी= राजान्तःपुरचारी वृद्धो विद्वान् धर्मशीलो ब्राह्मणः, करकलितकमलमालायाः—करयोः= हस्तयोः कलिता = गृहीता कमलानाम् = पङ्कजानाम् माला = स्रक् यया तादृशी तस्याः, स्वयम्वराङ्गणावतरणाय—स्वयम्वराङ्गणे = स्वयंवरस्थाने अवतरणाय = आनयनाय ॥

विश्वामित्र इति । उद्गतमेव = उत्थितमेव, रामचन्द्र-यशःपताकाकेतु-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनक—शङ्कर के धनुष के द्वारा दूर कर दिया गया है भुजाओं का घमण्ड जिनका ऐसे ये अनेक दिशाओं के राजा लोग मेरी प्रार्थना को किसी तरह से स्वीकार करते हुए कुछ दिन राजसत्कार ग्रहण कर रहे हैं ॥४०॥

विश्वामित्र—बेटा रामभद्र, तो इनके सामने ही (धनुष उठाकर हम लोगों की उत्कण्ठा को पूरी करो ।

(रामचन्द्र विश्वामित्र को प्रणाम करके निकल गये)

जनक—शतानन्द, (यहाँ के) स्थानों से अपरिचित वत्स राम के लिए (आप) मार्ग प्रदर्शक हो जाइए। और हाथ में कमल की माला लिए हुई सीता को स्वयम्वर-स्थान में उतारने के लिए कञ्चुकी को आदेश दिया जाय ।

शतानन्द—ऐसा ही हो । (ऐसा कहकर निकल गये) ।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज विजयी बनें । महाराज की आज्ञा पूरी कर ही दी गयी ।

विश्वामित्र—(देखकर प्रसन्नता के साथ) अहा ! क्या रामचन्द्र के यश की (चारों ओर लहरानेवाली) पताका का दण्ड रूप शङ्कर का धनुष उठ ही गया ? (फिर आश्चर्य के साथ) अरे,

बालक होते हुए भी रामचन्द्र के द्वारा यह शङ्कर का धनुष बिना परिश्रम से ही झुका दिया गया होगा (क्योंकि) जिस (धनुष) की आकाश में भी पहुँचायी गयी, प्रत्यञ्चा की टङ्कार चारों ओर दूर-दूर तक फैल रही है ॥४१॥

लक्ष्मण—भगवन्, यह ऐसा ही है (अर्थात् आप का कहना सही है) । जैसे कि—

दण्डेन— रामचन्द्रस्य = श्रीरामस्य यशः = कीर्तिः एव पताका = ध्वजः तस्याः केतु-दण्डेन = आधारभूतेन दण्डेनेत्यर्थः, हरकोदण्डेन = शङ्करचापेन । हरचापारोपणानन्तरं रामचन्द्रस्य कीर्तिः दिग्दिगन्तव्याप्ता भविष्यतीति शिवधनुषः रामकीर्तेर्दण्डत्वमुचित-मेवेति ॥

अन्वयः—शिशुना, अपि, राघवेण, अयम् , हरचापः, लीलया, एव, नमितः, किल; यस्य, अम्बरे, अपि, गमितः, गुणघोषः, समन्तात्, दूरम् , उल्लसति ॥४१॥

चापभञ्जनं वर्णयन्नाह—राघवेणेति । शिशुना = बालकेन, अपि = च, राघवेण = रामचन्द्रेण, अयम् = एषः, अत्र स्थापित इत्यर्थः, हरचापः = शिवधनुः, लीलया = क्रीडया, अनायासेनेत्यर्थः, एव, नमितः = वक्रीकृतः, आरोपितः इत्यर्थः; किलेति सम्भावनायाम् ('वार्तासम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः); यस्य = यस्य धनुषः, अम्बरे = आकाशे, अपि, गमितः = प्रापितः, गुणघोषः = ज्याटङ्कारः, समन्तात् = सर्वत्र, दूरम् = बहुदूरपर्यन्तम् , उल्लसति = प्रसरतीति भावः । निश्चितमेव रामचन्द्रेण धनुरारोपितमत एव तस्य टङ्कृतिः श्रूयते इति भावः । स्वागता वृत्तम् ॥४१॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पूर्णा एव पुरारिचापकपटच्छन्नाचलग्रामणी-
गूढानेकगुहागभीरकुहरस्फारप्रतिध्वानिभिः ।
मौर्वीभूतभुजङ्गराजवदनश्रेणीविसर्पद्वचः-
प्रारब्धार्ययशःप्रशस्तिसदृशैर्ज्याघातघोषैर्दिशः ॥ ४२ ॥

जनकः—आः किमुच्यते दिशः पूर्णा इति । ननु

एतैः श्रीकण्ठकोदण्डचञ्चन्मौर्वीभवै रवैः ।
चिरात्प्रतिज्ञया साकं पूर्णो मम मनोरथः ॥ ४३ ॥

प्रतिहारी—(कञ्चुकिनं प्रति) आर्य, पश्य पश्य कौतुकम् । सीतारामाभ्यां मिलित्वा पुनर्हरचापारोपणं समग्रीक्रियते ।

[अज्ज, पेक्ख पेक्ख कोदूहलम् । सीदारामेहिं मिलिअ उण हरचावारोवणं समग्गीकरीअदि ।

कञ्चुकी—(सकौतुकम्) कथमिव । (विमृश्य विहस्य च) आं, ज्ञातम् ।

करकिसलयलीलाचारु चण्डीशचापे
दशरथतनयेन स्वैरमाकृष्यमाणे ।
रससरसविकासी सीतया पुङ्खितोऽसौ
कुवलयदलदामश्यामकान्तिः कटाक्षः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—पुरारिचापकपटच्छन्नाचलग्रामणीगूढानेकगुहागभीरकुहरस्फारप्रतिध्वानिभिः, मौर्वीभूतभुजङ्गराजवदनश्रेणीविसर्पद्वचःप्रारब्धार्ययशःप्रशस्तिसदृशैः, ज्याघातघोषैः, दिशः, पूर्णाः, एव ॥४२॥

लक्ष्मणोऽपि तदेववर्णयन्नाह—पूर्णा एवेति । पुरारिचापेत्यादिः—पुरारिः = शङ्करः तस्य चापः = धनुः तस्य कपटेन = छलेन छन्नः = प्रच्छन्नः यः अचलग्रामणीः= पर्वतराजः, हिमालयः इत्यर्थः, तस्य गूढाः = गुप्ताः अनेकाः = बहवः गुहाः = गह्वराणि तासां गभीराणि = लम्बायमानानि इत्यर्थः, यानि कुहराणि = छिद्राणि तेषु स्फारम् = प्रचुरम् यथा स्यात्तथा, प्रतिध्वानिभिः = प्रतिशब्दं कुर्वाणैः, मौर्वीभूतेत्यादिः—मौर्वीभूतः= प्रत्यञ्चाभूतः यः भुजङ्गराजः = सर्पराजः, शेषः इति यावत्, तस्य वदनानाम् = मुखानाम् श्रेणी = पंक्तिः तस्याः विसर्पन्ति = दूरं गच्छन्ति वचांसि = वचनानि तैः प्रारब्धा = प्रक्रान्ता या आर्यस्य=पूज्यस्य रामस्य यशःप्रशस्तिः = कीर्तिगानम् तत्सदृशैः = तत्तुल्यैः, ज्याघातघोषैः = प्रत्यञ्चाघातशब्दैः, दिशः = काशाः, ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः), पूर्णाः=भरिताः एवेति निश्चये । अपह्नुतिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥४२॥

अन्वयः—श्रीकण्ठकोदण्डचञ्चन्मौर्वीभवैः, एतैः, रवैः, चिरात्, प्रतिज्ञया, साकम्, मम, मनोरथः, पूर्णः ॥४३॥

एतैरिति । श्रीकण्ठकोदण्डचञ्चन्मौर्वीभवैः—श्रीकण्ठस्य = शङ्करस्य कोदण्डः = धनुः तस्य चञ्चन्ती=चलायमाना, आकृष्य त्यक्तेति भावः, या मौर्वी=प्रत्यञ्चा तद्भवैः = तदुत्पन्नैः, एतैः=श्रूयमाणैः, रवैः = शब्दैः, चिरात् = बहोः कालात्, कृतया इति शेषः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शङ्कर के धनुष के कपट (बहाने) से गुप्त रूप से स्थित हिमालय की गुप्त अनेक गुफाओं के गहरे सुराखों (छिद्रों) में जोर से प्रतिध्वनित होनेवाले, प्रत्यञ्चा बने हुए शेषनाग के फनों की पंक्ति से निकले हुए वचनों से प्रारम्भ की गयी आर्य (राम) की कीर्ति—प्रशंसा के समान, प्रत्यञ्चा के आघात (खींचकर छोड़ने) की ध्वनियों से दिशाएँ भर ही गयीं ॥४२॥

जनक—ओह ! क्या कह रहे हो दिशाएँ पूर्ण हो गयी ? अरे,

शङ्कर के धनुष की खींचकर छोड़ी गयी प्रत्यञ्चा से उत्पन्न इन शब्दों से बहुत समय से की गयी प्रतिज्ञा के साथ मेरी अभिलाषा पूरी हो गयी ॥४३॥

प्रतिहारी—द्वाररक्षिका—(कञ्चुकी के प्रति) आर्य, देखिए (यह) आश्चर्य। सीता और राम के द्वारा मिलकर फिर से शङ्कर के धनुष का चढ़ाया जाना सम्पन्न किया जा रहा है।

कञ्चुकी—(उत्कण्ठा के साथ) कैसे ? (विचार कर और हंसकर) अच्छा समझ गया।

दशरथपुत्र (राम) के द्वारा शङ्कर के धनुष के, किसलय (कोपल) के सदृश हाथ की लीला से सुन्दरतापूर्वक अपनी इच्छा के अनुसार, खींचे जाने पर सीता के द्वारा अनुराग के कारण सरस तथा प्रफुल्लित, नीलकमल के पत्तों की माला की तरह श्यामकान्तिवाला यह (अपना) कटाक्ष बाण बनाया गया (अर्थात् बाण की तरह धनुष से संयुक्त किया गया) ॥ ४४ ॥

प्रतिज्ञया = प्रणेन साकम्=सह, मम=जनकस्य, मनोरथः=अभिलाषोः, पूर्णः = सम्पन्नः। सहोक्तिरलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥४३॥

अन्वयः—दशरथतनयेन, चण्डीशचापे, करकिसलयलीलाचारु, स्वैरम्, आकृष्यमाणे, (सति), सीतया, रससरसविकासी, कुवलयदलदामश्यामकान्तिः, असौ, कटाक्षः, पुङ्खितः ॥ ४४ ॥

प्रतिहार्या कथनमनुमोदयन्नाह—करकिसलयेति। दशरथतनयेन—दशरथस्य = अयोध्यानृपतेः अजपुत्रस्य तनयेन = पुत्रेण, चण्डीशचापे—चण्डीशस्य = शिवस्य चापे = धनुषि, करकिसलयलीलाचारु—करकिसलयस्य = हस्तपल्लवस्य लील्या= क्रीडया चारु = शोभनं यथा स्यात्तथा, हस्तलाघवेनेत्यर्थः, स्वैरम् = यथेच्छम्, आकृष्यमाणे = आरोप्यमाणे, सतीति शेषः, सीतया = जानक्या, रससरसविकासी—रसेन = अनुरागेण सरसः = आर्द्रः तथा विकासी = प्रफुल्लः, कुवलयदलदामश्यामकान्तिः—कुवलयदलनाम् = नीलकमलपत्राणाम् दाम = माला इव श्यामकान्तिः = श्यामाभः, असौ = एषः, कटाक्षः = अपाङ्गदर्शनम्, पुङ्खितः=बाणभावं प्रापितः, बाण इव धनुषि योजितः इत्यर्थः। अनेन रामेणाऽनायासं धनुरुत्तोलितस्तथा सीतया तदा तस्मिन् सानुरागं कटाक्षः पातितः इति च सूचितः। उपमाऽलङ्कारः। मालिनी वृत्तम्। वृत्तलक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ ४४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः—भगवन्, अत्यद्भुतं वर्तते । नन्वयं

भिन्दन्निद्रां मुरारेः सकलभुजभृतां म्लानयन् शौर्यदर्पं
छिन्दन्दिक्कुम्भिकर्णाञ्चलचलनकलः कम्पयन्कूर्मराजम् ।
आर्यश्लाघागभीरः प्रलयजलधरध्वानधिक्कारधीर-
ष्टाङ्कारः कृष्यमाणत्रिपुरहरधनुर्भङ्गभूराविरस्ति ॥ ४५ ॥

प्रतीहारी—

त्रैलोक्यं लङ्घयन्गिरिगभीरगुहासुप्तजाग्रत्सिंह-
स्फारोन्मीलत्कण्ठस्तनितप्रतिरवोद्गारपूर्यमाणे ।
ब्रह्माण्डे भज्यमाने बहुविकटकटत्कारप्राग्भारभीमो-
ऽहो भज्यच्चण्डीश्वरधनुष्टणत्कार उद्गच्छति ॥ ४६ ॥

[तेल्लोक्कं लङ्घअन्तो गिरिगहिरगुहासुत्तजग्गन्तसीह-
प्फारुम्मिल्लन्तकण्ठत्थणिदपडिरवुग्गारपूरिज्जमाणे ।
ब्रह्मण्डे भज्जमाणे बहुविअडकडक्कारपब्भारभीमो
अम्मो भज्जन्त चण्डीसरधणुहटणक्कारओ उग्गमेइ ॥]

कञ्चुकी—पश्य कौतुकम्—

अन्वयः—मुरारेः, निद्राम्, भिन्दन्; सकलभुजभृताम्, शौर्यदर्पम्, म्लानयन्; दिक्कुम्भिकर्णाञ्चलचलनकलाम्, छिन्दन्; कूर्मराजम्, कम्पयन्; आर्यश्लाघागभीरः, प्रलयजलधरध्वानधिक्कारधीरः, कृष्यमाणत्रिपुरहरधनुर्भङ्गभूः, टाङ्कारः, आविरस्ति ॥ ४५ ॥

धनुष्टङ्कारं वर्णयन्नाह—भिन्दन्निति । मुरारेः = श्रीविष्णोः, निद्राम् = स्वापम्, भिन्दन् = विनाशयन्; सकलभुजभृताम् = सकलाः = समग्राः ये भुजभृतः = बाहुशालिनः, वीराः इत्यर्थः, तेषाम्, शौर्यदर्पम्—शौर्यस्य = वीरतायाः दर्पम् = अभिमानम्, म्लानयन् = म्लानं कुर्वन्; धनुषोऽनन्यचालितत्वात् वीराणां दर्पभङ्गो बोध्यः। दिक्कुम्भिकर्णाञ्चलचलनकलाम्—दिक्कुम्भिनाम् = दिग्गजानाम् कर्णाञ्चलानाम् = श्रवणप्रान्तानाम् चलनस्य = स्फुरणस्य कलाम् = शिल्पम्, छिन्दम् = विनाशयन्; भयङ्करशब्दश्रवणकाले कर्णस्थिरत्वस्य प्रकृत्यौचित्या तथाविधत्वं बोध्यम् । कूर्मराजम् = धराधारभूतं कच्छपराजम्, कम्पयन् = भयेन कम्पितं कुर्वन्; आर्यश्लाघागभीरः—आर्यस्य = पूज्यस्य रामचन्द्रस्य श्लाघया = प्रशंसया गभीरः = सम्पन्नः, भरित इति यावत्; प्रलयजलधरध्वानधिक्कारधीरः—प्रलयजलधरस्य = प्रलयमेघस्य, संवर्तकादेरित्यर्थः, ध्वानम् = शब्दः तस्य धिक्कारे = न्यक्कारे धीरः = समर्थः, कृष्यमाणत्रिपुर-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मण—भगवन् , अत्यन्त आश्चर्य है। यह—विष्णु की निद्रा को भङ्ग करता हुआ, सम्पूर्ण वीरों की वीरता के घमण्ड को मलिन बनाता हुआ (मर्दित करता हुआ), दिग्गजों के कर्ण-प्रान्त (कान के छोर) के हिलने की कला को समाप्त करता हुआ (क्योंकि कान खड़ा करके वे शब्द सुन रहे हैं), (पृथ्वी को धारण करनेवाले) कच्छपराज को हिलाता हुआ, आर्य (राम) की प्रशंसा से गम्भीर (सम्पन्न), प्रलयकालीन बादलों के गर्जन को तिरस्कृत करने में योग्य, खींचे गये शङ्कर के धनुष के टूटने से उत्पन्न टङ्कार (गड़गड़ शब्द) बढ़ रहा है ॥ ४५ ॥

प्रतिहारी—आश्चर्य है। तीनों लोकों को लाँघता हुआ, पर्वतों की गहरी गुफाओं में निद्रा से जगे हुए सिंहों द्वारा भयङ्कर की गयी कण्ठ-ध्वनि की प्रतिध्वनि के उद्गार से व्याप्त ब्रह्माण्ड के विदीर्ण होने पर, अत्यन्त भयानक शब्द के विस्तार से भयङ्कर, टूटते हुए शङ्कर के धनुष का गड़गड़ शब्द प्रादुर्भूत हो रहा है (बढ़ रहा है) ॥ ४६ ॥

कञ्चुकी—विलक्षणता देखिए—

हरधनुर्भङ्गभूः—कृष्यमाणम् = आरोप्यमाणम् यत् त्रिपुरहरस्य = शिवस्य धनुः = कोदण्डः तस्य यो भङ्गः = त्रोटनम् तस्मात् भवतीति भूः = उत्पन्नः, टङ्कारः = टङ्कृतिः, आविरस्ति = प्रसरतीत्यर्थः । स्रग्धरा वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" ॥४५॥

अन्वयः—अहो ! त्रैलोक्यम् , लङ्घयन् , गिरिगभीरगुहासुप्तजाग्रत्सिंहस्फारोन्मीलत्कण्ठस्तनितप्रतिरवोद्गारपूर्यमाणे, ब्रह्माण्डे, भज्यमाने, बहुविकटकटत्कारप्राग्भारभीमः, भज्यच्चण्डीश्वरधनुष्टणत्कारः, उद्गच्छति ॥ ४६ ॥

त्रैलोक्यमिति । अहो इति आश्चर्यद्योतकमव्ययपदम् , त्रैलोक्यम् = त्रिलोकीम् , लङ्घयन् = अतीत्य गच्छन् ; गिरिगभीरगुहासुप्तजाग्रत्सिंहस्फारोन्मीलत्कण्ठस्तनितप्रतिरवोद्गारपूर्यमाणे—गिरीणाम्—पर्वतानाम् गभीरासु=दीर्घासु गुहासु=कन्दरासु प्रसुप्ताः = शयिताः ततः शब्दं श्रुत्वा जाग्रतः = निद्रां परित्यज्य उत्थिताः ये सिंहाः = केशरिणः तेषां स्फारम्=विकटम् उन्मीलत्=प्रकटीभवत् यत् कण्ठस्तनितम्=गलगर्जितम् , तस्य प्रतिरवोद्गारेण = प्रतिध्वनिना पूर्यमाणे = व्याप्ते, ब्रह्माण्डे = संसारे, भज्यमाने = विदीर्यमाणे, बधिरताङ्गते इत्यर्थः; बहुविकटकटत्कारप्राग्भारभीमः—बहुविकटः = अतिभयङ्करः यः कटत्कारः = कटदिति ध्वनिः तस्य प्राग्भारेण = विस्तारेण भीमः = भयङ्करः, भज्यच्चण्डीश्वरधनुष्टणत्कारः—भज्यत् = त्रुट्यत् यत् चण्डीश्वरस्य = शङ्करस्य धनुः = चापम् तस्य टणत्कारः = टणदिति शब्दः, उद्गच्छति = सर्वत्र प्रसरतीत्यर्थः । धनुर्भङ्गध्वनिना त्रैलोक्यं परिव्याप्तमित्यर्थः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ४६ ॥

१२

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

क्रीडाभग्नमृगाङ्कमौलिधनुषं सीतार्पितां वक्षसा
विभ्राणं कमलस्रजं निजगृहं श्रृङ्गारवीरश्रियोः ।
रामं व्रीडवशादवाञ्चितमुखं भूमीभुजां पश्यतां
चेतः क्रोधविषादविस्मयमुदामूर्मीः समालिङ्गति ॥ ४७ ॥

(प्रविश्य)

शतानन्दः—राजर्षे, विषीद वा प्रसीद वा । इदं यथादृष्टमुपवर्ण्यते ।

ज्यावल्लीं ललिताङ्गुलीकिसलयैराकर्णमाकर्षतो
न भ्रूभङ्गुरतां गता रघुशिशोर्भग्नं धनुर्धूर्जटेः ।
नाहङ्कारतरङ्गितो ध्वनिरभूत्कण्ठेऽस्य दीर्घद्युतु-
ष्टङ्कारस्तु चकार तारतरलः शब्दाद्वितीयं जगत् ॥ ४८ ॥

जनकः—कथं पुनरेतावतीमतिभूमिमवगाहमानोऽपि वत्सो रामभद्रो भवता न निवारितः ।

अन्वयः—क्रीडाभग्नमृगाङ्कमौलिधनुषम्, सीतार्पिताम्, कमलस्रजम्, वक्षसा, विभ्राणम्, श्रृङ्गारवीरश्रियोः, निजगृहम्, व्रीडवशात्, अवाञ्चितमुखम्, रामम्, पश्यताम्, भूमीभुजाम्, चेतः, क्रोधविषादविस्मयमुदाम्, ऊर्मीः, समालिङ्गति ॥ ४७ ॥

रामस्य विनयमन्येषां नृपाणां चित्तवृत्तीश्च वर्णयन्नाह—**क्रीडाभग्नेति** । क्रीडाभग्नमृगाङ्कमौलिधनुषम्—क्रीडया = खेलया, अनायासेनेत्यर्थः, भग्नम् = खण्डितम् मृगाङ्कमौलेः = शशाङ्कशेखरस्य शङ्करस्य धनुः = चापम् येन तादृशम्, सीतार्पिताम्—सीतया = जानक्या अर्पिताम् = दत्ताम्, परिधापितामित्यर्थः, कमलस्रजम्—कमलानाम् = पङ्कजानाम् स्रजम् = मालाम्, वक्षसा = वक्षस्थलेन, बिभ्राणम् = धारयन्तम्, श्रृङ्गारवीरश्रियोः = रत्युत्साहयोरित्यर्थः, निजगृहम् = स्वाश्रयस्थलम्, व्रीडवशात्—व्रीडनं व्रीडः, भावे घञ्, व्रीडस्य = लज्जायाः वशात् = पारतन्त्र्यात्, अतिविनीतत्वाल्लज्जानुभूतिः, अवाञ्चितमुखम्—अवाञ्चितम् = नम्रीकृतम् मुखम् = आननम् येन स तादृशम्, रामम् = श्रीरामचन्द्रम्, पश्यताम् = अवलोकयताम्, भूमीभुजाम् = भूपालानाम्, धनुरुत्तोलने निष्फलनामत्र स्थितानां राज्ञामित्यर्थः, चेतः = चित्तम्, क्रोधविषादविस्मयमुदाम्—क्रोधः = कोपः धनुरुत्तोलने रामसामर्थ्यं दृष्ट्वा कोपः, विषादः = खेदः, स्वाशक्तिं विचार्य खेदः इत्यर्थः, विस्मयः = आश्चर्यम्, रामस्य सामर्थ्यं दृष्ट्वा विस्मयोत्पत्तिर्ज्ञेया, मुत् = आनन्दः, सीतारामयोर्योग्यतां दृष्ट्वा आनन्दोत्पत्तिः, तेषाम्, ऊर्मीः = तरङ्गान्, समालिङ्गति = स्पृशति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४७ ॥

शतानन्द इति । विषीद = धनुर्भङ्गं श्रुत्वा रुष्टो भव, वा = अथवा, प्रसीद = योग्यजामातृप्राप्त्या प्रसन्नो भव ॥

अन्वयः—ललिताङ्गुलिकिसलयैः, ज्यावल्लीम्, आकर्णम्, आकर्षतः, रघुशिशोः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शशाङ्कशेखर (शङ्कर) के धनुष को बिना परिश्रम के ही तोड़नेवाले, सीता के द्वारा पहनायी गयी कमलमाला को छाती से धारण करनेवाले, शृङ्गारलक्ष्मी (रति) और वीरलक्ष्मी (उत्साह) के आधारभूत, लज्जावश नीचे मुख किये हुए राम को देखनेवाले राजाओं का चित्त क्रोध, खेद, आश्चर्य और प्रसन्नता की तरङ्गों को आलिङ्गित कर रहा है (अर्थात् राजाओं का चित्त क्रुद्ध, खिन्न, आश्चर्यचकित तथा प्रसन्न हो रहा है) ॥ ४७ ॥

(प्रवेश करके)

शतानन्द—राजर्षे, अप्रसन्न होइए अथवा प्रसन्न होइए। वह जैसा देखा गया है वैसा वर्णन किया जा रहा है—

पल्लवों के सदृश सुकोमल अँगुलियों से धनुष की डोरी रूप लता को कान तक खींचनेवाले राघव बालक (राम) की भौंह (भी) टेढ़ी नहीं हुई (किन्तु) शङ्कर का धनुष (ही) टूट गया। इनके कण्ठ में (धनुष उठाने के) अहंकार के कारण उत्पन्न (हूँ— ऐसा) शब्द (भी) नहीं हुआ किन्तु जोर से बढ़ते हुए इन (राम) के द्वारा टूटते हुए धनुष के टङ्कार ने संसार को शब्द से भर दिया ॥ ४८ ॥

जनक—तो इतनी अधिक सीमा तक पहुँचनेवाले भी वत्स रामभद्र आपके द्वारा क्यों नहीं रोके गये गये ?

भ्रूः, भङ्गुरताम् , न, गता; (किन्तु), धूर्जटेः, धनुः, भग्नम्; अस्य, कण्ठे, अहङ्कारतरङ्गितः, ध्वनिः, न, अभूत् ; तु, तारतरलः, अस्य, दीर्यद्धनुष्टङ्कारः, जगत् , शब्दाद्वितीयम् , चकार ॥ ४८ ॥

ज्यावल्लीमिति। ललिताङ्गुलिकिसलयैः—ललिताः = सुकोमलाः याः अंगुल्यः = करशाखाः किसलयानीव = नूतनपत्राणीव तैः, सुकोमलांगुलिभिरित्यर्थः, ज्यावल्लीम् = प्रत्यञ्चालताम् , आकर्णम् = श्रोत्रं यावत् , आकर्षतः = आनयतः, रघुशिशोः = राघवबालकस्य, रामस्येत्यर्थः, भ्रूः = भ्रूकुटिः, भंगुरताम् = वक्रताम् , न गता = न प्राप्ता; (किन्तु), धूर्जटेः = शिवस्य, धनुः = कोदण्डः, भग्नम् = त्रुटितम् ; अस्य = रामस्य, कण्ठे = गलप्रदेशे, अहङ्कारतरङ्गितः = गर्वजनितः, ध्वनिः = हुँ इति शब्दः, न अभूत् = न जातः, तु = किन्तु, तारतरलः = तारेण = उच्चध्वनिना तरलः = वर्धमानः, अस्य = रामस्य, रामद्वारेत्यर्थः, दीर्यद्धनुष्टङ्कारः—दीर्यतः = भज्यमानस्य धनुषः = चापस्य टङ्कारः = ध्वनिः, जगत् = संसारम् , शब्दाद्वितीयम्—शब्दे = ध्वनिविषये अद्वितीयम् = अनुपमम् , शब्दपूर्णमित्यर्थः, चकार = विदधौ। अत्रोपमालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४८ ॥

जनक इति। एतावतीम् = इयतीम् , अतिभूमिम् = अतिमर्यादाम् , जनकस्य धनुरुत्तोलनमानमनञ्च केवलमभीप्सितमासीन्न तु तस्य भञ्जनमतो भञ्जनकर्मणि तत्परो रामभद्रः कथन्न त्वया निवारित इत्याशयः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शतानन्दः—कथङ्कारं वारयामः ।

यावत्कन्दुकलाञ्छनाञ्चितकरः शोणाब्जनालाकृतिः
कौसल्यार्पितमङ्गलप्रतिसरो वत्सस्य दोःकन्दलः ।
किञ्चिच्चञ्चति तावदेव हि दलच्चण्डीशचापोच्छल-
च्छब्दैकार्णवमग्नमेतदखिलं जातं त्रिलोकीतलम् ॥ ४९ ॥

जनकः—तदलं कालातिपातेन । याच्यतामनुमतिर्भगवतो विश्वामित्रस्य जानकीराम-भद्रयोः पाणिसंघट्टनाय ।

शतानन्दः—

सद्योविघट्टमानेन धनुषैव पिनाकिनः ।
ननु संघट्टितौ पाणी जानकीरामभद्रयोः ॥ ५० ॥

तदूर्मिलालक्ष्मणयोरेव पाणिसंघट्टनाय भगवानभ्यर्थनीयः ।

विश्वामित्रः—(विहस्य) अस्त्वेतत् । परं तु—

पाणीञ्जनककन्यानां पीडयद्भिः सहानुजैः ।
सीताया रामभद्रो मे पाणिपीडनमिच्छति ॥ ५१ ॥

अन्वयः—यावत्, कन्दुकलाञ्छनाञ्चितकरः, शोणाब्जनालाकृतिः, कौशल्यार्पितमङ्गलप्रतिसरः, वत्सस्य, दोःकन्दलः, किञ्चित्, चञ्चति; तावत्, एव, हि, एतत्, अखिलम्, त्रिलोकीतलम्, दलच्चण्डीशचापोच्छलच्छब्दैकार्णवमग्नम्, जातम् ॥ ४९ ॥

वारणावसरस्याऽभावं दर्शयति—यावदिति । यावत् = यदैव, कन्दुकलाञ्छनाञ्चितकरः—कन्दुकस्य = गेन्दुकस्य = लाञ्छनेन चिह्नेन, आघातजन्यव्रणेनेत्यर्थः, अञ्चितः = शोभितः करः = हस्तः यस्य तादृशः, शोणाब्जनालाकृतिः—शोणम् = रक्तम् यत् अब्जम् = कमलम् तस्य नालस्य दण्डस्य इव आकृतिः = आकारः यस्य सः, कौशल्यार्पितमङ्गलप्रतिसरः—कौशल्यया = रामजनन्या अर्पितः = दत्तः, बद्ध इति यावत्, मङ्गलप्रतिसरः = माङ्गलिकसूत्रम् यस्मिन् सः । वत्सस्य = स्नेह्यस्य रामस्य, दोःकन्दलः = नवीनाङ्कुर इव कोमलः बाहुः, किञ्चित् = स्वल्पम्, चञ्चति = प्रसरति, तावदेव = तदैव, हीति निश्चये, एतत् = इदम्, अखिलम् = समग्रम्, त्रिलोकीतलम् = त्रिभुवनम्, दलच्चण्डीशचापोच्छलच्छब्दैकार्णवमग्नम्—दलत् = भग्नतां गच्छन् यः चण्डीशस्य = भवानीपतेः, शिवस्येत्यर्थः, चापः = धनुः तस्मात् उच्छलन् = प्रादुर्भवन्, यः शब्दः = ध्वनिः स एव एकः = अद्वितीयः अर्णवः = सागरः तस्मिन् मग्नम् = ब्रुडितम्, जातम् = अभूत् । रामेण चापस्य स्पर्शे आनमने च नासीत्कालभेदोऽतः नाधिगतो मया वारणावसरः इति भावः । अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४९ ॥

जनक इति । कालातिपातेन—कालस्य = समयस्य अतिपातेन = यापनेन । पाणिसंघट्टनाय = हस्तसम्मेलनाय, विवाहायेत्यर्थः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

शतानन्द—कैसे रोकें ?

जब तक गेंद के चिह्न से युक्त हाथ (हथेली) वाला, लाल कमल के दण्ड के समान आकार वाला, कौशल्या के द्वारा बाँधे गए मङ्गल सूत्र से युक्त, वत्स (राम) का नवीन अंकुर के समान (कोमल) बाहु कुछ ही चला, तभी ही यह सम्पूर्ण त्रिलोकी टूटते हुए शङ्कर के धनुष से उत्पन्न शब्द रूप, महान् सागर में डूब गयी (अर्थात् राम ने जभी अपना हाथ धनुष पर फेरा तभी वह टूट गया—अतः रोकने का अवसर ही न मिला) ॥ ४९ ॥

विशेष—कन्दुककलाञ्छनाञ्चितकरः—यह विशेषण देकर राम को अभी भी गेंद खेलने वाला बालक ही बतलाने में तात्पर्य है। इससे राम की प्रौढ़ता के स्थान पर बचपन ही सूचित होता है ॥

जनक—तो (अब) समय बिताना व्यर्थ है। जानकी और रामभद्र के पाणिग्रहण (विवाह) के लिए भगवान् विश्वामित्र से आज्ञा माँगिए।

शतानन्द—अभी-अभी टूटनेवाले शङ्कर के धनुष के द्वारा ही जानकी और रामचन्द्र के हाथ (परस्पर) मिला दिये गये (हैं) ॥ ५० ॥

तो ऊर्मिला और लक्ष्मण के ही पाणिग्रहण (विवाह) के लिए भगवान् (विश्वामित्र) प्रार्थनीय हैं।

विश्वामित्र—(प्रसन्नता के साथ) ऐसा हो। किन्तु—जनक की कन्याओं के हाथों को ग्रहण करनेवाले (अर्थात् जनक की कन्याओं के साथ विवाह करनेवाले) भाइयों के साथ (ही) हमारे रामभद्र सीता के पाणिग्रहण को (करना) चाहते हैं ॥ ५१ ॥

अन्वयः—सद्यः, विघट्टमानेन, पिनाकिनः, धनुषा, एव, जानकीरामभद्रयोः, पाणी, संघट्टितौ, ननु ॥ ५० ॥

सद्य इति। सद्यः = अधुनैव, विघट्टमानेन = विभागं गच्छता, पिनाकिनः = शिवस्य, धनुषा=चापेन, जानकीरामभद्रयोः = सीतारामचन्द्रयोः, पाणी=हस्तौ, संघट्टितौ= संयोजितौ, नन्विति निश्चये, हरचापभञ्जनेनैवानयोर्विवाहः सम्पन्नः इति भावः। विरोधाभासालङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५० ॥

अन्वयः—जनककन्यानाम्, पाणीन्, पीडयद्भिः, अनुजैः, सह, मे, रामभद्रः, सीतायाः, पाणिपीडनम्, इच्छति ॥ ५१ ॥

पाणीनीति। जनककन्यानाम् = जनकपुत्रीणाम्, माण्डव्यादीनामिति भावः, पाणीन् = करान्, पीडयद्भिः = स्वीकुर्वद्भिः, विवाहसंस्कारे वरकन्ययोः पाणिमेलनं प्रधानतमं कर्तव्यमिति धर्मशास्त्रम्, अनुजैः = लघुबन्धुभिः, सह = साकम्; मे = मम, रामभद्रः = भद्रस्वभावो रामः, सीतायाः = जानक्याः, पाणिपीडनम् = पाणिग्रहणम्, विवाहमित्यर्थः, इच्छति = वाञ्छति। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनकः—(सहर्षम्) कथं माण्डवीश्रुतकीर्तिभ्यां भरतशत्रुघ्नयोरपि परिणयमनुसन्धत्ते भगवान् ।

विश्वामित्रः—अथ किम् ।

जनकः—तद्गृहीतमिदमधिशेखरमाज्ञाकुसुमं भगवतः । तदागच्छत । समीहितं निष्पादयामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

जनक इति । अधिशेखरम् = शिरोभूषणे, मौलौ इत्यर्थः, आज्ञाप्रसूनम् = आदेशकुसुमम् । भवतः आज्ञा शिरसा गृहीतेत्यर्थः । समीहितम् = अभीप्सितम् , रामादीनां सीतादिभिः सह विवाहरूपमभीप्सितमित्यर्थः ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाटिकृतायां प्रसन्नराघवव्याख्यायां रमाख्यायां तृतीयोऽङ्कः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जनक—(प्रसन्नता के साथ) क्या माण्डवी और श्रुतकीर्ति के साथ भरत तथा शत्रुघ्न के भी विवाह को देखना चाहते हैं आप ?

विश्वामित्र—और क्या ?

जनक—तो आप का यह आज्ञारूप कुसुम शिरमौर पर ग्रहण कर लिया गया (अर्थात् आप की आज्ञा शिरोधार्य है)। अतः आइए, अभीष्ट (विवाह रूप कार्य) को सम्पन्न करें ॥

(इस तरह सब निकल गये)

॥ तीसरा अङ्क समाप्त ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

चतुर्थोऽङ्कः

(नेपथ्ये ध्रुवा गीयते)

मणिमयमङ्गलदीपो जनकनरेन्द्रस्य मण्डपे ज्वलति ।
चण्डानिलोऽपि प्राप्तो यस्मिन्विफलागमो भवति ॥ १ ॥
[मणिमयमङ्गलदीवो जणअनरेन्दस्स मण्डवे जलइ ।
चण्डाणिलो वि पत्तो जस्सि विमलाअमो होइ ॥]

(पुनर्नेपथ्ये)

अरे क्षत्रियाः, अपसरत लोचनपथात् । नन्वयं

कुर्वन्कोपादुदञ्चद्रविकिरणसटापाटलैर्दृष्टिपातै-
रद्यापि क्षत्रकण्ठच्युतरुधिरसरित्सिक्तधारं कुठारम् ।
तीव्रैर्निःश्वासपातैः पुनरपि भुवनोत्पातमासूचयद्भि-
र्गर्जन्मौर्वीकचापस्त्रिभुवनविजयी जामदग्न्यः समेति ॥ २ ॥

(ततः प्रविशति जामदग्न्यः)

जामदग्न्यः—(साटोपं परिक्रम्य) अहो धृष्टता जनकस्य । यदयं हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते । (परशुं विलोक्य)

अन्वयः—जनकनरेन्द्रस्य, मण्डपे, मणिमयमङ्गलदीपः, ज्वलति; यस्मिन्, प्राप्तः, चण्डानिलः, अपि, विफलागमः, भवति ॥ १ ॥

नेपथ्य इति । नेपथ्ये = वेशादिरचनास्थाने, ध्रुवा = विशिष्टा गीतिः, तल्लक्षणं कथितं राजशेखरेण—

"प्रथयति पात्रविशेषान् सामाजिकजनमनांसि रञ्जयति ।
अनुसन्दधाति च रसान्नाट्यविधाने ध्रुवा गीतिः ॥" इति॥

मणिमयेति । जनकनरेन्द्रस्य = राज्ञः जनकस्य, मण्डपे = जनाश्रये ('मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः' इत्यमरः), विवाहार्थं निर्मिते नूतने भवने इत्यर्थः, मणिमयमङ्गलदीपः— मणिमयः = रत्ननिर्मितः मङ्गलदीपः = माङ्गलिकः प्रदीपः, ज्वलति = प्रकाशते; यस्मिन्= यस्मिन् दीपविषये, मणिमयत्वात्, प्राप्तः = आगतः, चण्डानिलः = प्रबलवायुः, अपि = का कथा क्षीणवायोरित्यपिना व्यज्यते, विफलागमः —विफलः = निष्फलः आगमः = प्राप्तिः यस्य तादृशः, निर्वापयितुमसमर्थः इत्यर्थः, भवति = सम्पद्यते । अत्र मणिमयमङ्गलदीपपदेन रामश्चण्डानिलपदेन परशुरामो विफलागमपदेन परशुरामक्रोधवैफल्यञ्च सूच्यते । अत्र अतिशयोक्त्यलङ्कारः । गाथा (आर्या) जाति वृत्तम् ॥ १ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

चतुर्थ अङ्क

(पर्दे के पीछे ध्रुवा गीति गायी जाती है)

जनक राजा के (यहाँ) विवाह-मण्डप में मणियों से बना हुआ माङ्गलिक दीपक जल रहा है, जिसके ऊपर बहकर आयी हुई प्रचण्ड हवा भी (उसे बुझाने में) निष्फल हो जाती है ॥ १ ॥

(फिर पर्दे के पीछे)

अरे क्षत्रियों, (यहाँ से) दिखलाई पड़नेवाले स्थानों से हट जाओ। अरे, यह—

क्रोध के कारण, उदय होते हुए सूर्य की किरणों के समूह के समान, लाल चितवनों से (देखने से) आज भी फरसे को क्षत्रियों की गर्दन से बहे हुए रक्त की नदी से स्नान की हुई है धार जिसकी ऐसा करते हुए, फिर से लोकोपद्रव को सूचित करनेवाले तीव्र निश्वासपातों से (युक्त), गर्जन करती हुई प्रत्यञ्चावाले धनुप को लिए हुए, तीनों लोकों को जीतनेवाले परशुरामजी (इधर) आ रहे हैं ॥ २ ॥

(इसके बाद परशुराम प्रवेश करते हैं)

जामदग्न्य—(गर्व के साथ घूमकर) जनक की ढिटाई आश्चर्यजनक है। जो कि यह शङ्कर के धनुष को चढ़ाने से कन्या (सीता) के विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं। (फरसे को देखकर)।

अन्वयः—कोपात्, उदञ्चद्रविकिरणसटापाटलैः, दृष्टिपातैः, अद्य, अपि, कुठारम्, क्षत्रकण्ठच्युतरुधिरसरित्सिक्तधारम्, कुर्वन्, पुनः, अपि, भुवनोत्पातम्, आसूत्रयद्भिः, तीव्रः, निश्वासपातैः, गर्जन्मौर्वीकचापः, त्रिभुवनविजयी, जामदग्न्यः, समेति ॥ २ ॥

जामदग्न्यं वर्णयन्नाह—कुर्वन्निति। कोपात् = क्रोधात्, हरचापारोपणश्रवणोत्पन्नक्रोधादित्यर्थः, उदञ्चद्रविकिरणसटापाटलैः—उदञ्चन् = उद्यन् यो रविः = सूर्यः तस्य किरणाः = रश्मयः तेषां सटाः = जालानि तद्वत् पाटलैः = ईषद्रक्तवर्णैः, दृष्टिपातैः = नेत्रपातैः, दर्शनैरित्यर्थः, अद्य = अधुना, अतीते व्यतीते युद्धे चापि, कुठारम् = परशुम्, क्षत्रकण्ठच्युतरुधिरसरित्सिक्तधारम्—क्षत्राणाम् = क्षत्रियाणाम् कण्ठेभ्यः = गलप्रदेशेभ्यः च्युता = निर्गता रुधिरसरित् = रक्तनदी तया सिक्ता = स्नाता धारा = तीक्ष्णाग्रभागः यस्य तादृशम्, कुर्वन् = विदधत्, पुनः = मुहुः, अपि = च, भुवनोत्पातम् = लोकोपद्रवम्, आसूत्रयद्भिः = प्रकाशयद्भिः, तीव्रैः = तीक्ष्णैः, निश्वासपातैः = श्वासनिर्गमैः, उपलक्षित इति शेषः; गर्जन्मौर्वीकचापः—गर्जन्ती = शब्दायमाना मौर्वी = प्रत्यञ्चा यस्मिन् स गर्जन्मौर्वीकः तादृशः चापः = धनुः यस्य सः, तथा त्रिभुवनविजयी = त्रिलोकीजेता, जामदग्न्यः = परशुरामः, समेति = आगच्छति। अतो हे क्षत्रियाः अस्य लोचनपथादपसरतेति सम्बन्धः। अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ २ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सकलनृपकठोरकण्ठपीठीबहलगलद्रुधिरौघधौतधारः ।
तदिदमजनकं जगद्विधत्ते परशुरयं जमदग्निनन्दनस्य ॥ ३ ॥

(विमृश्य)

उदितोऽर्जुनभुजविपिने ज्वलितस्तुङ्गेषु नृपतिवंशेषु ।
निमिकुलकमलकलापं कोपानल किं पुनः स्पृशसि ॥ ४ ॥

(पुनर्विचिन्त्य) अलमस्मिन्नुपेक्षया । मनोरथोपनीतजामातृभुजबलावलेपदुर्ललितः खल्वयम् । तथा हि—संदिष्टमनेनास्मत्परशोः । ('त्वं मित्रम्' ३।३९ इत्यादि पठति) अहो अस्य दुरवलेपः !

यस्योद्यद्घोरधाराच्छलदलितगलद्बाहुशाखासहस्र-
प्रोद्गच्छद्रक्तधारानिवहजितनवोन्मीलदर्कांशुजालः ।
क्ष्मापालः कार्तवीर्यः सुरपुरसुदृशां पुष्पिताशोकशाखि-
भ्रान्तिं दत्त्वापि चित्ते निजपुरसुदृशां शोकशाखी बभूव ॥५॥

अन्वयः—सकलनृपकठोरकण्ठपीठीबहलगलद्रुधिरौघधौतधारः, जमदग्निनन्दनस्य, अयम्, परशुः, तत्, इदम्, जगत्, अजनकम्, विधत्ते ॥ ३ ॥

सकलेति । सकलाः = समग्राः ये नृपाः = राजानः तेषां कठोराः = दृढाः याः कण्ठपीठ्यः = गलप्रदेशाः ताभ्यः बहलम् = पर्याप्तं यथा स्यात्तथा, गलन् = प्रवहमानः यः रुधिरौघः = रक्तप्रवाहः तेन धौता = प्रक्षालिता धारा = तीक्ष्णाग्रभागः यस्य सः, जमदग्निनन्दनस्य—जमदग्नेः नन्दनः = पुत्रः, परशुरामः इत्यर्थः, तस्य, अयम् = एषः, परशुः = कुठारः, तत् = विदितम्, इदम् = एतत्, जगत् = लोकम्, अजनकम् = जनकविरहितम्, विधत्ते = कुरुते, करिष्यतीत्यर्थः, वर्तमानसामीप्ये लट् । एकविंशतिवारं क्षत्रियान्निपात्याधुना मे कुठारः जनकं निपातयिष्यतीति भावः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥" ३ ॥

अन्वयः—हे कोपानल, अर्जुनभुजविपिने, उदितः (भूत्वा), तुङ्गेषु, नृपतिवंशेषु, ज्वलितः, (सन्), पुनः, किम्, निमिकुलकमलकलापम्, स्पृशसि ? ॥ ४ ॥

पुनः स्वप्रतापं वर्णयन्नाह—उदित इति । हे कोपानल = हे मम क्रोधाग्ने, अर्जुनभुजविपिने—अर्जुनस्य = सहस्रार्जुनस्य कार्तवीर्यस्येत्यर्थः, भुजानाम् = बाहूनाम् विपिने = वने, सहस्रार्जुनः सहस्रबाहुसम्पन्न आसीदिति पौराणिकी कथा, उदितः = उदयङ्गतः, प्रादुर्भूतः इत्यर्थः, भूत्वेति शेषः, तुङ्गेषु = उन्नतेषु, नृपतिवंशेषु नृपतीनाम् = राज्ञाम्, वंशेषु = कुलेषु, नृपतय एव वंशाः = वेणवस्तेषु वेत्यर्थः, ज्वलितः = प्रज्वलितः, सन्, पुनः = मुहुः, किमिति जिज्ञासायाम्, निमिकुलकमलकलापम्—निमिकुलम् = निमिवंशः एव कमलकलापः = जलजसमूहः तम्, शूरतादृष्ट्याऽतिसाधारणं कुलमित्यर्थः, स्पृशसि = श्रयसि, दग्धुमिति शेषः ? अत्र रूपकालङ्कारः । आर्याजाति वृत्तम् ॥ ४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(इक्कीस बार) सम्पूर्ण राजाओं के कठोर गले के प्रदेशों से अत्यधिक बहनेवाले रुधिर के प्रवाहों से धुली हुई धारवाला, परशुरामका यह फरसा (परशु) प्रसिद्ध इस लोक को जनक से विहीन बना दे रहा है ॥ ३ ॥

(सोचकर)

हे (मेरी) क्रोध रूपी आग, (तू) सहस्रार्जुन के बाहु वन में उत्पन्न (होकर) राजकुलों में प्रज्वलित (होती हुई) फिर क्या निमि के कुल रूपी कमल-समूह को छू रही है ! ॥ ४ ॥

(पुनः विचार कर) इसके विषय में उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यह (जनक अपने) मनोरथ के अनुसार प्राप्त दामाद की भुजाओं के बल के घमण्ड से गर्वीला हो रहा है। जैसा कि इसके द्वारा हमारे फरसे (परशु) के लिए संदेश भेजा गया था— ('त्वं विप्रम्' २।३९ इत्यादि पढ़ते हैं।) वाह रे ! इसका घमण्ड।

जिस (मेरे परशु) की उठायी गयी धारा के अगले भाग से काटे गये अतः गिरती हुई, डालियों के समान, हजारों बाहुओं से बहनेवाली खून की धाराओं के समूह से जीत लिया है प्रातःकाल उगनेवाले सूर्य के किरण-समूह को जिसने ऐसा-राजा कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन), स्वर्ग की स्त्रियों के चित्त में फूले हुए अशोक-वृक्ष (होने के) भ्रम को उत्पन्न करके भी अपने पुर की सुन्दरियों के लिए शोकवृक्ष (शोक का कारण) हो गया ॥ ५ ॥

पुनर्विचिन्त्येति। अस्मिन् = जनककुले, उपेक्षया = अवहेलनया। मनोरथोपनीत-जामातृभुजबलावलेपदुर्ललितः—मनोरथेन = अभिलाषया उपनीतः = प्राप्तः जामाता = दुहितुः पतिः तस्य भुजबलेन = बाहुदर्पेण यः अवलेपः = अभिमानः तेन दुर्ललितः = दुर्विनीतः, अयम् = जनकः। दुरवलेपः = अभिमानः ॥

अन्वयः—यस्य, उद्यद्घोरधाराञ्चलदलितगलद्बाहुशाखासहस्रप्रोद्गच्छद्रक्तधारा-निवहजितनवोन्मीलदर्कांशुजालः, क्ष्मापालः, कार्तवीर्यः, सुरपुरसुदृशाम्, चित्ते, पुष्पिता-शोकशाखिभ्रान्तिम्, दत्त्वा, अपि, निजपुरसुदृशाम्, शोकशाखी, बभूव ॥ ५ ॥

यस्योद्यदिति। यस्य = मम परशोः, उद्यदित्यादिः—उद्यत् = प्रोच्छलत्, तत्परतां गच्छदित्यर्थः, घोरम् = भयङ्करम् यत् धाराञ्चलम् = धाराग्रभागः तेन दलितम् = छिन्नम् अत एव गलत् = पतत् यद्बाहुशाखासहस्रम् = भुजविटपसहस्रम् तस्मात् प्रोद्गच्छन् = प्रवहमानः यो रक्तधारानिवहः = रक्तप्रवाहसमूहः तेन जितम् = अतिशयितम् नवोन्मीलतः = अचिरोदयमानस्य, प्राभातिकस्येत्यर्थः, अर्कस्य = सूर्यस्य अंशुजालम् = किरणसमवायः येन तादृशः, क्ष्मापालः = भूपालः कार्तवीर्यः = सहस्रार्जुनः, सुरपुरसुदृशाम् = सुराङ्गनानाम्, स्वर्गस्त्रीणामित्यर्थः, चित्ते = मनसि, पुष्पिताशोकशाखिभ्रान्तिम्—पुष्पितः = सञ्जातप्रसूनः यः अशोकशाखी = अशोकवृक्षः तस्य भ्रान्तिम् = सन्देहम्, किमयमशोकवृक्षः, इत्याकारकं सन्देहमित्यर्थः, दत्त्वाऽपि = उत्पाद्याऽपि, निजपुरसुदृशाम् = स्वनगरनारीणाम्, शोकशाखी = शोकवृक्षः, शोककारणमित्यर्थः, बभूव = सञ्जातः। विरोधाभासोऽत्रालङ्कारः। स्रग्धरावृत्तम् ॥ ५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च ।

येनावध्यत नर्मदाम्बुनिवहः संख्ये च लङ्केश्वर-
स्तद्यस्मिन्निरमज्जदर्जुनभुजक्षोणीरुहां मण्डलम् ।
क्षत्त्रस्त्रीनयनाम्बुपूरमिषतः खेलन्ति यत्कीर्तय-
स्तत्तादृक्परशुर्ममायमधुना धाराजलं मुञ्चति ॥ ६ ॥

(विलोक्य) कथमयं शतानन्दशिष्यस्ताण्ड्यायनः ।

(प्रविश्य)

ताण्ड्यायनः—भगवन्, अभिवादये ।

जामदग्न्यः—आयुष्मान्भूयाः । कथय तावत् । अपि नाम भवदुपाध्याययजमानस्य निवृत्ता हरचापारोपणश्रद्धा ।

ताण्ड्यायनः—निवृत्ता ।

जामदग्न्यः—(सहर्षम्) निवृत्ता ।

ताण्ड्यायनः—भगवन्, निवृत्ता सहैव चापेन ।

जामदग्न्यः—(ससम्भ्रमम्) किमात्थ सहैव चापेन निवृत्तेति ।

ताण्ड्यायनः—अथ किम् ।

जामदग्न्यः—स्फुटं कथय तावत्किं वृत्तमिति ।

ताण्ड्यायनः—कस्यचिद्

अखण्डचण्डिमोद्दण्डभुजदण्डनिपीडितम् ।
भगवन्भृगुमार्तण्ड भग्नं भर्गशरासनम् ॥ ७ ॥

जामदग्न्यः—(सक्रोधम्) कस्य ।

अन्वयः—येन, नर्मदाम्बुनिवहः, च, संख्ये, लङ्केश्वरः, अवध्यत; तत्, अर्जुनभुजक्षोणीरुहाम्, मण्डलम्, यस्मिन्, निरमज्जत्; यत्कीर्तयः, क्षत्त्रस्त्रीनयनाम्बुपूरमिषतः, खेलन्ति; तत्, तादृक्, अयम्, मम, परशुः, अधुना, धाराजलम्, मुञ्चति ॥ ६ ॥

येनावध्यतेति । येन = अर्जुनभुजक्षोणीरुहमण्डलेन, नर्मदाम्बुनिवहः— नर्मदायाः = रेवायाः अम्बुनिवहः = जलप्रवाहः, च = तथा, संख्ये = युद्धे, लङ्केश्वरः = रावणः, अवध्यत = बद्धः; तत् = तादृशम्, अर्जुनभुजक्षोणीरुहाम्—अर्जुनस्य = सहस्रार्जुनस्य भुजाः = बाहवः एव क्षोणीरुहाः = वृक्षाः तेषाम्, मण्डलम् = समूहः, यस्मिन् = मम परशौ, निरमज्जत = अब्रुडत्, शान्तोऽभूदित्यर्थः; यत्कीर्तयः—यस्य = परशोः कीर्तयः = यशांसि, क्षत्त्रस्त्रीनयनाम्बुपूरमिषतः—क्षत्त्रस्त्रीणाम् = क्षत्रियसुन्दरीणाम् नयनाम्बुपूरस्य = नेत्रजलप्रवाहस्य मिषतः = छलेन, खेलन्ति = क्रीडन्ति; तत् = जगत्प्रसिद्धम्, तादृक् = तादृशः, अयम् = एषः, मम = मदीयः, परशुः = कुठारः, अधुना = सम्प्रति, धाराजलम्— धारा = तीक्ष्णाग्रभागः एव जलम् = सलिलम्, मुञ्चति = त्यजति, जनकवधार्थं प्रचलतीत्यर्थः । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

और भी—

जिसके द्वारा नर्मदा (नदी) का जल-प्रवाह तथा संग्राम में रावण बाँध लिया गया था, वही सहस्रार्जुन के भुजारूपवृक्षों का (भी) समूह जिस (मेरे परशु) में डूब गया था; जिस (मेरे परशु) की कीर्तियाँ क्षत्रियों की स्त्रियों के नेत्रों के जल-प्रवाह (अश्रुप्रवाह) के बहाने (चारों ओर) खेल रही हैं; वही जगद्विदित, यह मेरा परशु सम्प्रति धारा रूप जल को छोड़ रहा है (अर्थात् जनक का विनाश करने के लिए धार आगे बढ़ा रहा है।) ॥ ६ ॥

(देखकर) क्या यह शतानन्द का शिष्य ताण्ड्यायन (है) ?

(प्रवेश करके)

ताण्ड्यायन—भगवन्, प्रणाम कर रहा हूँ।

जामदग्न्य—चिरञ्जीवी बनो। अच्छा, बतलाओ—क्या तुम्हारे गुरुजी के यजमान (जनक) की शङ्कर के धनुष को चढ़ाने की अभिलाषा समाप्त हो गयी ?

ताण्ड्यायन—समाप्त हो गयी।

जामदग्न्य—(प्रसन्नता के साथ) समाप्त हो गयी ?

ताण्ड्यायन—भगवन्, (वह तो) धनुष के साथ ही समाप्त हो गयी (पूरी हो गयी) !

जामदग्न्य—(आवेग के साथ) क्या कहा ? धनुष के ही साथ समाप्त हो गयी !

ताण्ड्यायन—और क्या ?

जामदग्न्य—अच्छा, साफ-साफ कहो, क्या हुआ ?

ताण्ड्यायन—किसी के;

हे भगवन्, भृगुवंश के सूर्य ! पूरी प्रचण्डता से उद्धत बाहुदण्ड से कस कर पकड़ा गया शङ्कर का धनुष टूट गया ॥ ७ ॥

जामदग्न्य—(क्रोध के साथ) किस के (भुजदण्ड से कस कर पकड़ा गया) ?

जामदग्न्य इति। अपि नामेति प्रश्ने, भवदुपाध्याययजमानस्य—भवतः = तव उपाध्यायस्य = आचार्यस्य यजमानः = शिष्यः तस्य, हरचापारोपणश्रद्धा—हरचापारोपणस्य = शिवधनुषः आरोपणस्य श्रद्धा = अभिलाषा ॥

अन्वयः—भगवन्, हे भृगुमार्तण्ड ! अखण्डचण्डिमोद्दण्डभुजदण्डनिपीडितम्, भर्गशरासनम्, भग्नम् ॥ ७ ॥

अखण्डेति। हे भगवन् = हे षड्विधैश्वर्यसम्पन्न, भृगुमार्तण्ड = भृगुवंशप्रकाशक, अखण्डचण्डिमोद्दण्डभुजदण्डनिपीडितम्—अखण्डः = समग्रः यः चण्डिमा = प्रचण्डता तेन उद्दण्डौ = उद्धतौ यौ बाहुदण्डौ = भुजदण्डौ ताभ्यां निपीडितम् = बलाद्धृतमित्यर्थः, भर्गशरासनम्—भर्गस्य = शङ्करस्य शरासनम् = धनुः भग्नम् = खण्डितम्। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

ताण्ड्यायनः—सुबाहुमारीचपुरःसरा अमी
निशाचराः कौशिकयज्ञघातिनः ।
वशे स्थिता यस्य

जामदग्न्यः—अलम् । अतः परं ज्ञातः खलु खलानामग्रणीर्निशाचरग्रामणीः ।

ताण्ड्यायनः—(स्वगतम्) कथं दशकण्ठेन धनुर्भग्नमिति प्रतीतं भवता । भवतु तावत् ।

जामदग्न्यः—(सक्रोधम्) अयमयमिदानीं

नृपशतसुकुमारकण्ठनाली कदनकलाकुशलः परश्वधो मे
दशवदनकठोरकण्ठपीठीकदनविनोदविदग्धतां दधातु ॥ ९ ॥

(विमृश्य) अथवा—

यः कर्तार्जुनभूरुहाद्भुतभुजाशाखासहस्रच्छिदां
दम्भोलेर्गिरिकूटपाटनपटोः शौण्डीर्यतो लज्जते ।
तस्यैतस्य परेतराजसदनद्वारः कुठारस्य मे
का श्लाघा दशकण्ठकण्ठकदलीकाण्डावली खण्डने ॥ १० ॥

अन्वयः—कौशिकयज्ञघातिनः, सुबाहुमारीचपुरःसराः, अमी, निशाचराः, यस्य, वशे, स्थिताः, (सन्तः), ॥ ८ ॥

धनुषो भङ्गारमाह—सुबाहिति । कौशिकयज्ञघातिनः—कौशिकस्य = विश्वामित्रस्य यज्ञम् = मखम् घातयन्तीति = विनाशयन्तीति कौशिकयज्ञघातिनः = विश्वामित्रयज्ञविघातकाः, सुबाहुमारीचपुरस्सराः—सुबाहुमारीचौ = तन्नामानौ राक्षसौ पुरःसरौ = अग्रेसरौ येषान्ते, अमी = प्रसिद्धास्ते, निशाचराः = राक्षसाः, यस्य = जनस्य, वशे = आधीन्ये, स्थिताः = वर्तमानाः, सन्तः इति शेषः, एतावत्पर्यन्तमपूर्णवचनं श्रुत्वा परशुरामेण ज्ञातं यद्धनुः रावणेन भग्नमिति ॥ ८ ॥

जामदग्न्य इति । खलानाम् = दुष्टानाम्, अग्रणीः = अग्रेसरः, निशाचरग्रामणीः—निशाचराणाम् = राक्षसानाम्, ग्रामणीः = मुख्यः ॥

अन्वयः—नृपशतसुकुमारकण्ठनालीकदनकलाकुशलः, मे, परश्वधः, दशवदनकठोरकण्ठपीठीकदनविनोदविदग्धताम्, दधातु ॥ ९ ॥

नृपशतेति । नृपशतसुकुमारकण्ठनालीकदनकलाकुशलः—नृपाणाम् = भूमिपालानाम् शतम् = शतसंख्याकः समवायः इत्यर्थः तस्य ये सुकुमाराः = कोमलाः कण्ठाः = गलप्रदेशाः एव नाल्यः = नाड्यः, कमलदण्डाः इत्यर्थः, तासां कदने = विनाशने, कर्तने इत्यर्थः, या कला=विधिः तत्र कुशलः = प्रवीणः, मे = मम परशुरामस्य, परश्वधः= कुठारः, दशवदनेत्यादिः—दशवदनः = रावणः तस्य कठोराः = कठिनाः कण्ठपीठ्यः = गलप्रदेशाः तासां कदने = खण्डने यः विनोदः = आनन्दः इत्यर्थः, तस्मिन् विदग्धताम् = प्रवीणताम्, दधातु = धारयतु । मम परशुरधुना रावणस्य कण्ठच्छेदनं करिष्यतीति भावः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

ताण्ड्यायन—विश्वामित्र के यज्ञ को विनष्ट करनेवाले सुबाहु और मारीच आदि वे प्रसिद्ध राक्षस जिसके वश में स्थित (होकर) ॥ ८ ॥

विशेष—ताण्ड्यायन के इस अधूरे ही वाक्य को सुनकर परशुराम ने समझा कि धनुष को रावण ने तोड़ा है ॥ ८ ॥

जामदग्न्य—बस, इसके बाद जान लिया कि निश्चय ही वह दुष्टों का अगुआ निशाचरों का राजा (रावण होगा)।

ताण्ड्यायन—(अपने आप) रावण ने धनुष तोड़ा है—क्या ऐसा भगवान् (परशुराम) ने समझ लिया। अच्छा।

जामदग्न्य—(क्रोध के साथ) सम्प्रति यह—सैकड़ों राजाओं के अत्यन्त कोमल कण्ठ रूप पोले डंठल को काटने की कला में प्रवीण मेरा फरसा (परशु) रावण के गर्दन के भाग को काटने में (मिलनेवाले) आनन्द की निपुणता को धारण करे ॥९॥

(सोचकर) अथवा—

सहस्रार्जुनरूप वृक्ष के अद्भुत बाहुरूप हजारों डालियों को काटने वाला जो (मेरा परशु) पर्वतों के समूह को विदारण करने में निपुण (अतएव) अहङ्कार करनेवाले (इन्द्र के) वज्र से लज्जित होता है। यमराज के गृह के द्वारभूत (अर्थात् यमराज के घर में प्रवेश कराने का कारण) जगद्विदित इस मेरे परशु के लिए रावण के कण्ठरूप केला के खम्भों को काटने में क्या प्रशंसा है? (अर्थात् कुछ भी प्रशंसा नहीं है)॥१०॥

विशेष—दम्भोलेः··लज्जते—इन्द्र के वज्र ने पर्वतों को काटा है और परशुराम के फरसे ने सहस्रार्जुन की भुजाओं को। अतः वज्र को अपने महान् कार्य पर अभिमान को देखकर परशु लज्जित होता है।—यह वीरता की प्रशंसा का एक प्रकार है ॥ १० ॥

परेतराजसदनद्वारः—परशु क्षत्रियों को काट-काटकर यमपुरी भेजता है। अतः वह यमपुरी या यम-गृह में लोगों के प्रवेश करने का दरवाजा = कारण है ॥ १० ॥

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥" ९ ॥

अन्वयः—अर्जुनभूरुहाद्भुतभुजाशाखासहस्रच्छिदाम्, कर्ता, यः, गिरिकूटपाटनपटोः, शौण्डीर्यतः, दम्भोलेः, लज्जते; परेतराजसदनद्वारः, तस्य, एतस्य, मे कुठारस्य, दशकण्ठकण्टकदलीकाण्डावलीखण्डने, का, श्लाघा ? ॥ १० ॥

पुनः परशोः प्रशंसां कुर्वन्नाह—यः कर्तेति। अर्जुनभूरुहेत्यादिः—अर्जुनः = कार्तवीर्यः सहस्रार्जुनः एव भूरुहः = वृक्षः तस्य अद्भुताः = आश्चर्यकराः भुजाः = बाहवः एव शाखाः = विटपाः ('विटपः पल्लवे पिङ्गे विस्तारे स्तम्बशाखयोः' इति विश्वः) तासां सहस्रम् = सहस्रसंख्याकः समवायः तस्य छिदाम् = छेदनम्, कर्तनमित्यर्थः, कर्ता = सम्पादकः, यः = परशुः, गिरिकूटपाटनपटोः—गिरिकूटस्य = पर्वतसमूहस्य पाटने = विदारणे पटोः = प्रवीणस्य, शौण्डीर्यतः = साहङ्कारस्य, दम्भोलेः = वज्रस्य ('वज्रमस्त्री··कुलिशं··'दम्भोलिः' इत्यमरः), लज्जते = त्रपते। परेतराजसदनद्वारः—परेतराजस्य =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनर्विचिन्त्य) तथाप्यनुचितमुदासितुमेतस्मिन्कृतागसि रक्षसि । तदिदानीम्

दक्षिणस्याम्बुधेर्मध्ये कृत्वा कोङ्कणमष्टमम् ।
मद्बाणजन्मा दहनो लङ्कातङ्काय जायताम् ॥ ११ ॥

(इति साटोपं परिक्रामति)

ताण्ड्यायनः—(स्वगतम्) दिष्ट्या स्वस्ति क्षत्रियकुलाय ।

(नेपथ्ये)

अहो नियोगिनः, कृतविवाहमङ्गलयोः सीतारामचन्द्रयोः स्वस्तिवाचनिका द्विजा आहूयन्ताम् ।

जामदग्न्यः—(परिवृत्य । सक्रोधम्) आः ब्रह्मबन्धो, कथमलीकदशकण्ठकीर्तिदानेन प्रतारितोऽस्मि । नन्वयमन्यः कोऽपि जनकजामाता ।

ताण्ड्यायनः—भगवन्, मम को वापराधः । अथोक्त एव भगवता भ्रान्तम्, मयापि संभ्रान्तम् ।

जामदग्न्यः—तन्निःशेषं तावत्कथय ।

ताण्ड्यायनः— शराग्रवर्तिनः
प्रतापलेशस्य गताः पराभवम् ॥ ८ ॥

(तथैव 'अखण्डचण्डिमा' ४।७ इत्यादि पठति)

जामदग्न्यः—कः पुनरयं मारीचदमनः ।

यमराजस्य द्वारः=गृहद्वारभूतस्य, यमगृहे प्रवेशकारणस्येत्यर्थः, तस्य=जगद्विदितस्य, एतस्य= अस्य, मे=मम, कुठारस्य = परशोः, दशकण्ठकण्ठकदलीकाण्डावलीखण्डने—दश-कण्ठः=रावणः तस्य कण्ठाः=स्तम्भाः तेषां खण्डने=छेदने, का=कीदृशी, श्लाघा= प्रशंसा ? न काऽपीति भावः । रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—दक्षिणस्य, अम्बुधेः, मध्ये, अष्टमम्, कोङ्कणम्, कृत्वा, मद्बाणजन्मा, दहनः, लङ्कातङ्काय, जायताम् ॥ ११ ॥

दक्षिणस्येति । दक्षिणस्य=दक्षिणादिक्स्थितस्य, अम्बुधेः=सागरस्य, मध्ये= अन्तराले, अष्टमम्=अष्टसंख्यापूरणम्, कोङ्कणम्=देशभेदम्, कृत्वा=निर्माय, मद्बा-णजन्मा—मम बाणात्=शरात् जन्म=उत्पत्तिः यस्य सः, दहनः=अग्निः, लङ्का-तङ्काय—लङ्कायाः आतङ्काय=भीत्यै, जायताम्=भवतु । अष्टमं कोङ्कणं कृत्वा लङ्कामपि दहत्विति भावः ॥ ११ ॥

अहो इति । नियोगिनः=कार्यकर्तारः जनाः, कृतविवाहमङ्गलयोः—कृतम्= सम्पादितम् विवाहस्य=उद्वाहस्य मङ्गलम्=माङ्गलिकं कृत्यं ययोस्तयोः, स्वस्तिवाच-निकाः=मङ्गलपाठकाः, द्विजाः=ब्राह्मणाः ॥

जामदग्न्य इति । ब्रह्मबन्धो=दुष्टब्राह्मण, निन्दितब्राह्मण इत्यर्थः ('ब्रह्मबन्धुर-धिक्षेपे' इत्यमरः); अलीकदशकण्ठकीर्तिदानेन—अलीकम्=असत्यं यथास्यात्तथा दशकण्ठस्य=रावणस्य कीर्तिदानेन=यशोगाथया, प्रतारितः=वञ्चितः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—इस दुधमुँहे (बालक) पर अधिक क्रोध न करें। अतः क्षमा करें।

जामदग्न्य—आह ! क्या कह रहे हो—(यह) 'दुधमुँहा' (है) ? यह तो विषमुँहा है।

लक्ष्मण—भगवन् (यदि मैं 'विषकण्ठ' अर्थात् शङ्कर हूँ तब तो) शङ्करजी के शिष्य (आप) के द्वारा विशेष रूप से क्षमा करनी चाहिए।

विशेष—परशुराम ने लक्ष्मण को विषकण्ठ कहा है जिसका अर्थ उनकी दृष्टि में 'विषमुँहा' है। किन्तु लक्ष्मण तो परशुराम को चिढ़ाने पर तुले हुए हैं। अतः उन्होंने 'विषकण्ठ' का अर्थ 'शङ्करजी' करके जवाब दिया है। शङ्करजी परशुराम के गुरु हैं। लक्ष्मण के कहने का भाव यह है कि यदि मैं विषकण्ठ = शङ्करजी हूँ तब तो आपको अवश्य ही क्षमा करनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार मैं आपका गुरु हो जाता हूँ॥

जामदग्न्य—आह ! क्या विषकण्ठ इस नाम की समानता के कारण तुम भी मेरे गुरु हो ?

लक्ष्मण—(हँस कर) दूसरे ही अभिप्राय से मैंने यह कहा है जो कि—

बाल चन्द्र के (अपनी) चूड़ा पर चढ़ने पर भी शङ्करजी के चित्त में क्या क्रोध का अङ्कुर उत्पन्न होता है ? (अर्थात् नहीं उत्पन्न होता) ॥ २७ ॥

तो आप उन (शङ्कर भगवान्) के शिष्य हैं। अतः विशेष रूप से क्षमा करने के योग्य हैं।

जामदग्न्य—(अपने आप) इस क्षत्रिय बालक की वचन बोलने की कला की निपुणता आश्चर्यजनक है। अच्छा। (प्रकट रूप में) तो यह मेरे द्वारा क्षमा की ही गई। किन्तु स्वभाव से ही निर्दय यह (मेरा) कुटार नहीं क्षमा कर रहा है। क्या इसको नहीं जानते हो ?

खेल ही खेल में किया है, दुर्धर्ष भुज-विलासवाले समस्त राजाओं का वध जिसने ऐसे परशु के (स्वाभाव को नहीं जानते हो ?); जिस (परशु) के द्वारा रक्त, हड्डी और केशों से चारों ओर व्याप्त करके दो प्रकार से भी पृथ्वी तीन वर्णवाली (क्षत्रियों के वध से—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा शूद्र केवल इन्हीं तीन जातिवाली और रक्त, हड्डी और केशों से—लाल, सफेद तथा काली रङ्गवाली) बना डाली गई ॥ २८ ॥

नैपुण्यम्। प्रकृतिकठोरः—प्रकृत्या = स्वभावेन कठोरः = निर्दयः। शीलम् = स्वभावम्॥

अन्वयः—क्रीडाविनिर्मितसुदुर्मददोर्विलासनिःशेषराजकवधस्य, परश्वधस्य, (शीलम्, न, वेत्सि ?); येन, कीलालकीकसकचैः, परितः, विचित्य, द्विधा, अपि, पृथिवी, त्रिवर्णा, विदधे ॥ २८ ॥

स्वपरशुपराक्रमं वर्णयन्नाह—क्रीडेति। क्रीडाविनिर्मितेत्यादिः—क्रीडया = खेलया, अनायासेनेत्यर्थः, कृतः = सम्पादितः; सुदुर्मदः = दुर्धर्षः दोष्णाम् = बाहूनाम् विलासः = क्रीडा यस्य तत् तादृशं यत् निःशेषम् = सम्पूर्णम् राजकम् = नृपसमूहः तस्य वधः = मारणम् येन तस्य, परश्वधस्य=कुठारस्य, (शीलम्=स्वभावम्, न वेत्सि=न जानासि ?),

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनः सामर्षम्) कथमस्य हरप्रसादपरशोः शीलमपरिशीलितं ते ।

यत्र क्रामति सङ्गराङ्गणभुवं दुर्वारधाराञ्चल-
क्षुण्णक्षत्रकिशोरकण्ठरुधिरैर्नीरेणुका भूरभूत् ।
तादृग्वीरवरस्वयंवरपरस्वर्लोककन्याकर-
क्रीडापुष्करदामरेणुभिरभूद्द्यौरेव रेणूत्कटा ॥ २९ ॥

लक्ष्मणः—भगवन्, एतत्सत्यम् । यत्किल भवत्कुठारधाराञ्चलविलसितेन नीरेणुका भूरभूदिति ।

जामदग्न्यः—(स्वगतम्) आः, कथं रेणुकावृत्तान्तेन मर्म विध्यति । भवतु । (प्रकाशम्) अये क्षत्रियपोत, अलमिह निरपराधे भवति मुधा परश्वधपातेन । तदयं मे प्रकृतिकठोरभाषिणं भवत्कण्ठमेव शातयति कुठारः ।

(नेपथ्ये)

अये जामदग्न्य, कथमतिप्रगल्भसे । तदिदमिदानीं भवच्छासनाय शरासनमानीयते ।

जामदग्न्यः—(विहस्य) कथमयं जनकः । (उच्चैः) अये याज्ञवल्क्यशिष्य, किं भवतः शरासनेन । पद्मासनमेवावलम्बस्व । (पुनः सोत्प्रासम्)

इति पूर्वेण सम्बन्धः); येन = परशुना, कीलालकीकसकचैः—कीलालेन = शोणितेन ('शोणितोऽम्भसि कीलालम्' इत्यमरः) रक्तवर्णेन; कीकसेन = अस्थिना श्वेतवर्णेन ('कीकसं कुल्यमस्थि चे'त्यमरः) कचेन = केशेन कृष्णवर्णेन च, द्विधा = प्रकारद्वयेन, अपि = च, पृथिवी = भूः, त्रिवर्णा = वर्णत्रयसहिता, क्षत्रियाणां नाशेन ब्राह्मणवैश्यशूद्रेति जातित्रययुक्ता तथा रक्तवर्णेन कीलालेन रक्तवर्णा श्वेतवर्णेन कीकसेन श्वेतवर्णा तथा कृष्णवर्णेन कचेन कृष्णवर्णा च विहितेत्यर्थः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २८ ॥

पुनः सामर्षमिति । हरप्रसादपरशोः—हरस्य = शङ्करस्य प्रसादेन प्राप्तः परशुः = कुठारः तस्य, शीलम् = स्वभावः, अपरिशीलितम् = अज्ञातम् ? ॥

अन्वयः—यत्र, सङ्गराङ्गणभुवम्, क्रामति, दुर्वारधाराञ्चलक्षुण्णक्षत्रकिशोरकण्ठरुधिरैः, भूः, नीरेणुका, अभूत्; तादृग्वीरवरस्वयंवरपरस्वर्लोककन्याकरक्रीडापुष्करदामरेणुभिः, द्यौः, एव, रेणूत्कटा, अभूत् ॥ २९ ॥

परशुस्वभावमेव वर्णयन्नाह—यत्र क्रामतीति । यत्र = यस्मिन् परशौ, सङ्गराङ्गणभुवम्—समराङ्गणभूमिम्, क्रामति = चलति सति, दुर्वारधाराञ्चलक्षुण्णक्षत्रकिशोरकण्ठरुधिरैः—दुर्वारेण = अमोघेन धाराञ्चलेन = तीक्ष्णाग्रभागेन क्षुण्णाः = खण्डिताः ये क्षत्रकिशोराणाम् = क्षत्रियकुमाराणाम् कण्ठाः = गलप्रदेशाः तेषां रुधिरैः = रक्तैः, भूः = पृथिवी, नीरेणुका—निर्गताः रेणवो यस्याः सा नीरेणुका = धूलिविहीना, अभूत् = आसीत् । तादृग्वीरवरेत्यादिः—तादृशाः = तादृशाः, युद्धे मया निहिता इत्यर्थः, ये वीरवराः = योद्धारः तेषां स्वयंवरपराः = स्वयंवरणतत्पराः याः स्वर्लोककन्याः = स्वर्गलोककुमार्यः तासां करेषु = हस्तेषु क्रीडया=विलासेन यत् पुष्करदामानि = कमलमालाः तेषां

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(फिर क्रोधपूर्वक) क्या शङ्कर की कृपा से प्राप्त इस परशु के स्वभाव से तुम अपरिचित हो ?

जिस (परशु) के संग्रामस्थल में घूमने पर (उसके) दुर्निवार नोक के अगले भाग से काटे गए क्षत्रिय-कुमारों के कण्ठ के रक्तप्रवाह से पृथिवी धूलि कणों से विहीन हो गई। (संग्राम में परशु के द्वारा मारे गए) वैसे वीरवरों के स्वयम्वरण करने में लगी हुई स्वर्गलोक की कन्याओं के करों में विलास के साथ (गृहीत) कमल-मालाओं के परागों से स्वर्ग ही धूलि-धूसरित हो गया ॥ २९ ॥

लक्ष्मण—भगवन्, यह सच है। निश्चय ही आपके कुठार की नोक के अग्रभाग के कार्य से पृथिवी रेणुका (परशुराम की माता) से विहीन हो गई।

विशेष—पिछले श्लोक में 'रेणुका' शब्द का प्रयोग परशुराम ने 'धूलिकण' के अर्थ में किया था। लक्ष्मण उसका अर्थ 'रेणुका = परशुराम की माता' करके उत्तर देते हैं। यहाँ स्मरणीय है कि परशुराम ने अपनी माँ रेणुका की गर्दन काट डाली थी ॥

जामदग्न्य—(अपने आप) आह ! क्या रेणुका की कथा से कोमल हृदय में छेद कर रहा है ? (अर्थात् हृदयस्थल को दुःखी कर रहा है ?)। अच्छा। (प्रकट रूप में) अरे क्षत्रिय बालक, निरपराध तुम्हारे ऊपर व्यर्थ ही कुठार से प्रहार करना निरर्थक है। तो यह मेरा कुठार स्वभाव से ही कठोर बोलनेवाले तुम्हारे कण्ठ को ही काट रहा है।

(पर्दे के पीछे से)

अरे जामदग्न्य, क्यों अधिक ढिठाई दिखला रहे हो ? तो सम्प्रति आपको दण्ड देने के लिए यह धनुष लाया जा रहा है।

जामदग्न्य—(हंसकर) क्या यह जनक (हैं) ? (ऊँचे स्वर से) अरे याज्ञवल्क्य के शिष्य, आपको धनुष से क्या (मतलब) ? पद्मासन (योगमुद्रा) ही धारण कीजिए। (फिर उपहास के साथ)

विशेष—**याज्ञवल्क्यशिष्य**—जनक के लिए प्रयुक्त यह सम्बोधन विशेष अर्थ रखता है। परशुराम का कहना है कि तुम धनुष क्या चलाओगे ? क्योंकि तुम कभी किसी वीर गुरु के शिष्य तो रहे नहीं। तुमने याज्ञवल्क्य की शिक्षा ग्रहण की है। अतः योगासन ही लगाओ। आगे के श्लोक में भी प्रायः ऐसा ही भाव व्यक्त किया गया है।

रेणुभिः धूलिभिः उत्कटा = व्याप्ता, अभूत् = आसीत्। पुनरुक्तवदाभासालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

लक्ष्मण इति। भवत्कुठारधाराञ्चलविलसितेन—भवतः = श्रीमतस्तव कुठारस्य = परशोः धाराञ्चलविलसितेन = तीक्ष्णाग्रांशकार्येण, नीरेणुका = भवज्जननीविहीना ॥

जामदग्न्य इति। रेणुकावृत्तान्तेन—रेणुकायाः = मम जनन्याः वृत्तान्तेन = कथया, मर्म = कोमलं जीवाधारकं हृदयस्थलम्। पोतः = बालकः। मुधा = व्यर्थम्। प्रकृतिकठोरभाषिणम्—प्रकृत्या = स्वभावेन कठोरभाषिणम् = कटुवक्तारम्, शातयति = खण्डयति ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

युष्माकं भोः सुघटितबहुन्यस्तपद्माक्षकण्ठा
मिथ्योत्कण्ठा किमिति समिति क्षत्रियश्रोत्रियाणाम् ।
तेऽन्ये चञ्चत्करतलचलच्चण्डनिस्त्रिंशधारा-
धौताराතिद्विपमदमषीपङ्कपूराः प्रवीराः ॥ ३० ॥

तदलं भवता । एतावेव तावत्क्षत्रियस्फुलिङ्गौ निर्वापयामि ।

(पुनर्नेपथ्ये)

अये जामदग्न्य, कथं तथा शमधनसमृद्धस्य जमदग्नेस्तनयोऽपि शमदुर्गतोऽसि संवृत्तः ।

जामदग्न्यः—कथमयमाङ्गिरसः । (उच्चैः) अये शतानन्द, कथय तावत् । इद-मेवंविधं शमाभिधानं कस्मादुपात्तम् । भगवतो गौतमाद्वा गोत्रभिदो वा ।

(नेपथ्ये)

आः क्षत्रियापुत्र, निजजननीकण्टताण्डवितकुठार कुलाङ्गार, कथं तपस्तुङ्गमाङ्गिरस-मपि कुलं कलङ्कयसि ।

जामदग्न्यः—आः पाप कुलपांसन पांसुलापुत्र, कथं भृगूणामग्रे तपस्ताण्डवं मण्डयसि ।

रामः—भगवन्, सकललोकविख्यातमिदं भृगूणामाङ्गिरसां च कुलम् । तपोविशेषस्तु भर्गशिष्यस्य । अत एव विज्ञापयामि ।

अन्वयः—भोः, सुघटितबहुन्यस्तपद्माक्षकण्ठाः ! क्षत्रियश्रोत्रियाणाम्, युष्माकम्, समिति, किमिति, मिथ्योत्कण्ठा, (जायते) ? चञ्चत्करतलचलच्चण्डनिस्त्रिंशधाराधौताराතिद्विप-मदमसीपङ्कपूराः, ते, अन्ये प्रवीराः, (सन्ति) ॥ ३० ॥

युष्माकमिति । भोः = हे, सुघटितबहुन्यस्तपद्माक्षकण्ठाः—सुघटितानि = सुनिर्मि-तानि बहूनि = अनेकानि न्यस्तानि = गृहीतानि यानि पद्माक्षाणि = पद्मबीजानि यस्मिन् सः, तादृशः कण्ठः = ग्रीवेत्यर्थः येषां ते तत्सम्बोधने, क्षत्रियश्रोत्रियाणाम्—क्षत्रियेषु = राजन्येषु श्रोत्रियाणाम् = वैदिकानाम्, योगाभ्यासरतानामिति भावः, युष्माकम् = भव-ताम्, समिति = युद्धे, किमिति = किमर्थम्, मिथ्योत्कण्ठा—मिथ्या = वितथा उत्कण्ठा= अभिलाषा, जायते इति शेषः ? चञ्चत्करेत्यादिः—चञ्चत् = चलत् यत् करतलम् = हस्त-तलम् तस्मिन् चलत् = भ्रमन् चण्डः = भयङ्करः यो निस्त्रिंशः = खड्गः तस्य धारा = तीक्ष्णाग्रभागः तया धौतः = प्रक्षालितः अरातीनाम् = शत्रूणाम् ये द्विपाः = हस्तिनः तेषां मदः = दानवारि एव मसीपङ्कः = कज्जलकर्दमः तस्य पूरः = समवायः प्रवाहो वा यैस्ते, ते = तादृशाः, अन्ये = त्वदितरे, प्रवीराः = योद्धारः, सन्तीति शेषः । अत्र रूपकालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ३० ॥

तदलमिति । क्षत्रियस्फुलिङ्गौ—क्षत्रियौ एव स्फुलिङ्गौ = अग्निकणौ, अग्निकण-सदृशौ वीरबालकौ इत्यर्थः ॥

पुनर्नेपथ्ये इति । शमधनसमृद्धस्य—शमः = शान्तिः, इन्द्रियदमनमित्यर्थः, एव धनम् = सम्पत्तिः तेन समृद्धस्य = सम्पन्नस्य । शमदुर्गतः—शमे = शान्तिविषये दुर्गतः= दरिद्रः; संवृत्तः = जातः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अरे सुन्दर गड़े गए पद्माक्षों को गले में धारण करनेवाले (जनक)। वेदाध्ययन करनेवाले आप (जैसे) क्षत्रियों को संग्राम के विषय में क्योंकर झूठ-मूट उत्कण्ठा (हो रही है)? चञ्चल करतल में चलनेवाली प्रचण्ड तलवार की धारा से धो दिया है शत्रुओं के हाथियों के मदरूप काले कीचड़ के प्रवाह को जिन्होंने ऐसे वे दूसरे (ही) वीर (हैं) ॥ ३० ॥

अतः आप शान्त रहें। सर्वप्रथम इन्हीं दोनों क्षत्रिय-चिनगारियों को (आग की चिनगारियों के सदृश इन दोनों बालकों को) बुझाता हूँ (सर्वदा के लिए शान्त कर देता हूँ)।

(फिर पर्दे के पीछे)

अरे जामदग्न्य, उस तरह शान्तिरूप सम्पत्ति से सम्पन्न जमदग्नि के पुत्र (होकर) भी शान्ति के विषय में दरिद्र कैसे बन गए हो?

जामदग्न्य—क्या यह आङ्गिरस (शतानन्द) हैं? (ऊँचे स्वर से) अरे शतानन्द, पहले यह बतलाओ (कि) इस प्रकार का यह शम (शान्ति) नामक (धन) किससे प्राप्त किया है? (अपने पिता) भगवान् गौतम से अथवा इन्द्र से?

विशेष—गोत्रभिदो वा। शतानन्द के पिता गौतम और माँ अहल्या थी। इन्द्र ने अहल्या के साथ धोखे से व्यभिचार किया था। इसी बात को स्मरण दिलानेवाला तीक्ष्ण व्यंग्य भरा परशुराम का कथन है।

(पर्दे के पीछे)

अरे क्षत्रिय की कन्या के पुत्र, अपनी माता की गर्दन पर कुठार (फरसा) का प्रहार करनेवाले, कुलनाशक, क्या तपस्या से समृद्ध आङ्गिरस के कुल को भी कलङ्कित कर रहे हो?

विशेष—क्षत्रियापुत्र—परशुराम की माता रेणुका क्षत्रिय की लड़की थीं।

परशुराम—आह पापिन्, कुल के कलङ्क, व्यभिचारिणी स्त्री (अहल्या) के पुत्र, क्या भृगुवंशियों के सामने तपस्या का आडम्बर रच रहे हो?

राम—भगवन्, भृगुओं तथा आङ्गिरसों का यह कुल सम्पूर्ण लोकों में प्रसिद्ध है। उस में भी तपस्या की उच्चता (की दृष्टि) से शिवजी के शिष्य (परशुराम का कुल विशेष प्रसिद्ध है)। यही कारण है कि निवेदन कर रहा हूँ।

जामदग्न्य इति। गौतमात् = स्वपितुः, गोत्रभिदः = इन्द्रात्, स्वमातुः दूषकादिन्द्रादिति व्यंग्यार्थः ॥

नेपथ्य इति। क्षत्रियापुत्र—क्षत्रियायाः = क्षत्रियकन्यायाः पुत्रः तत्सम्बोधने। परशुराममातृ रेणुकायाः क्षत्रियात्वादियमुक्तिः; निजजननीकण्ठताण्डवितकुठार—निजजनन्याः = स्वमातुः कण्ठे = ग्रीवायां ताण्डवितः = सञ्चारितः कुठारः येन सः तत्सम्बुद्धौ; कुलाङ्गार—कुलस्य = वंशस्य अङ्गारः = स्फुलिङ्गः, नाशक इत्यर्थः; तपस्तुङ्गम् = तपोभिः = तपश्चरणैः तुङ्गम् = समृद्धम् ॥

राम इति। सकललोकनिख्यातम्—सकलेषु = समग्रेषु लोकेषु = भुवनेषु विख्यात-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तपःशान्तं चेतः स्फटिकमणिमालापरिकरः
कुशाः कुण्डी दण्डः सततमुटजावासनिरतिः ।
मुनीनामेतद्वः समुचितमुदग्रं न वचनं
न वक्रभ्रूभङ्गो न शरधनुषी नापि परशुः ॥ ३१ ॥

(पुनः सविस्मयम्) भवानेव तावद्विचारयतु ।

क परशुरशुभस्ते कुत्र गोत्रं पवित्रं
क धनुरिदमुदग्रं निर्मलं कुत्र शीलम् ।
घनसमरकराला कुत्र नाराचहेला
कुशकिसलयलीला कुत्र वा पर्णशाला ॥ ३२ ॥

जामदग्न्यः—कथमन्यमिव मां प्रणतिपात्रं मुनिमात्रं मन्यसे । स एव जामदग्न्यः खल्वहं

क्षुण्णक्षत्रकठोरकण्ठविगलत्कीलालधारासरि-
न्निर्वृत्ताभिषवस्य कृत्तशिरसां केशान्कुशान्कुर्वतः ।
गृह्णन्रक्तजलाञ्जलीन्पितृगणो यस्य क्षणं विस्मितः
सन्तोषेण जुगुप्सया करुणया त्रासेन हासेन च ॥ ३३ ॥

म् = प्रसिद्धम्, भृगूणाम् = युष्माकमित्यर्थः, आङ्गिरसाम् = शतानन्दादीनामित्यर्थः । भर्गशिष्यस्य—भर्गस्य = शिवस्य शिष्यः = विद्यार्थी तस्य । विज्ञापयामि = निवेदयामि ॥

अन्वयः—चेतः, तपःशान्तम्; स्फटिकमणिमालापरिकरः; कुशाः; कुण्डी; दण्डः; सततम्, उटजावासनिरतिः; एतत्, वः, मुनीनाम्; न, उदग्रम्, वचनम्, न, वक्रभ्रूभङ्गः, न, शर-धनुषी; न, परशुः, अपि, (समुचितः) ॥ ३१ ॥

तपःशान्तमिति । चेतः = चित्तम्, तपःशान्तम्—तपसा = तपस्यया शान्तम्=शमसम्पन्नम्, स्फटिकमणिमालापरिकरः—स्फटिकमणीनाम् = स्फटिकरत्नानाम् माला तस्यां परिकरः=यत्नः, कुशाः=दर्भाः, कुण्डी=कमण्डलुः, दण्डः=पलाशखण्डः; सततम्=निरन्तरम, उटजावासनिरतिः—उटजावासे=पर्णशालानिवासे निरतिः=अभिरुचिः, एतत्=इदं सर्वम्, वः = युष्माकम्, मुनीनाम् = ऋषीणाम्, समुचितम् = समीचीनम्, वर्तते इति शेषः । न = न तु, उदग्रम् = उद्वेजकम्, वचनम् = भाषणम्, न=न तु, वक्रभ्रूभङ्गः—वक्रस्य= कुटिलस्य भ्रुवः = भ्रूकुट्याः भङ्गः = कुटिलता, न, शरधनुषी = बाणचापे, न, परशुः = कुठारः, अपि = च, समुचितानीति शेषः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—अशुभः, परशुः, क ? पवित्रम्, ते, गोत्रम्; कुत्र ? उदग्रम्, इदम्, धनुः, क ? निर्मलम्, शीलम्, कुत्र ? घनसमरकराला, नाराचहेला, कुत्र ? वा, कुशकिसलयलीला, पर्णशाला, कुत्र ? ॥ ३२ ॥

क्व परशुरिति । अशुभः = अमङ्गलसूचकः, परशुः = कुठारः, क्व = कुत्र ? पवित्रम् = निर्मलम्, ते = तव, गोत्रम् = कुलम्, कुत्र = क्व ? एकत्रोभयं न सङ्गच्छते इति भावः । उदग्रम् = उद्दण्डम्, भयङ्करमित्यर्थः, इदम् = एतत्, धनुः = चापम्, क = कुत्र ? निर्मलम् = निष्कलुषम्, शीलम् = स्वभावः, मुनिस्वभाव इत्यर्थः, कुत्र =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

चित्त तपस्या से शान्त, स्फटिक मणि की मालाको ग्रहण करने में तत्परता, कुश, कमण्डलु, दण्ड (तथा) निरन्तर पर्णशाला मे निवास की अभिरुचि—यह (सब कुछ) आप मुनियों के लिए उचित है। न (तो) तीखा वचन, न टेढ़ी भौंह, न बाण-धनुष (और) न परशु भी (उचित) है॥

(फिर आश्चर्य के साथ) आप ही जरा सोचें—अशुभ (यह) परशु कहाँ ? (और) पवित्र आप का कुल कहाँ ? भयङ्कर यह धनुष कहाँ ! (और) पवित्र स्वभाव कहाँ ! भयानक युद्ध में कठोर बाणलीला कहाँ ? तथा कुशों एवं पल्लवों के विलासवाली कुटिया कहाँ ? (अर्थात् दोनों तरह की इन बातों में सङ्गति नहीं बैठती) ॥ ३२ ॥

जामदग्न्य—क्या दूसरे की तरह मुझको प्रणाम करने का पात्र साधारण मुनि समझते हो ? यह मैं वह जामदग्न्य हूँ—

काटे गए क्षत्रियों की कठोर गर्दनों से प्रवाहित रक्तप्रवाहवाली नदी में स्नान करने वाले, काटे गए शिरों के केशों को (तर्पण का) कुश बनानेवाले जिस (मेरे) पितर लोग खून की जलाञ्जलियों (तर्पण की अञ्जलियों) को ग्रहण करते हुए सन्तोष से, घृणा से, दया से, भय से, हँसी से भी क्षण भर के लिए आश्चर्य चकित हो गए ॥ ३३ ॥

क्व ? घनसमरकराला—घनः = भीतिजनक इत्यथः यः समरः = सङ्ग्रामः तत्र कराला= भयङ्करी, नाराचहेला—नाराचानाम् = बाणानाम् हेला = खेल, कुत्र = क्व ? वा = तथा, कुशकिसलयलीला—कुशकिसलयानाम् = दर्भपल्लवानाम्, लीला = विलासः यस्यां तादृशी, पर्णशाला = पर्णकुटी, कुत्र = क्व ? सर्वथा विरुद्धमेतद्द्वयमित्यर्थः। अतः भवतः कृते न रोचते इत्यभिप्रायः। विषमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—क्षुण्णक्षत्रकठोरकण्ठविगलत्कीलालधारासरिन्निर्वृत्ताभिषवस्य, कृत्तशिरसाम्, केशान्, कुशान्, कुर्वतः, यस्य, पितृगणः, रक्तजलाञ्जलीन्, गृह्णन्; सन्तोषेण, जुगुप्सया, करुणया; त्रासेन, हासेन, च, क्षणम्, विस्मितः ॥ ३३ ॥

स्वपौरुषं वर्णयन्नाह—क्षुण्णेति। क्षुण्णक्षत्रेत्यादिः—क्षुण्णाः=खण्डिताः क्षत्राणाम्= क्षत्रियाणाम् ये कठोराः=कठिनाः कण्ठाः=ग्रीवादेशाः तेभ्यः विगलन्ती=प्रवहमाना कीलाल-धारा=रक्तौघा या सरित्=नदी, तस्यां निर्वृत्तः=सम्पादितः अभिषवः=स्नानम् येन सः तस्य, कृत्तशिरसाम्—कृत्तानि = खण्डितानि यानि शिरांसि = मस्तकानि तेषाम्, केशान् = कचान्, कुशान् = दर्भान्, कुर्वतः = विदधतः, कुशस्थाने केशान् गृह्णतः इत्यर्थः, यस्य=यस्य ममेत्यर्थः, पितृगणः = पितृसमुदायः, रक्तजलाञ्जलीन्—रक्तस्य = रुधिरस्य जलाञ्जलीन् = निवापाञ्जलीन्, तर्पणाञ्जलीनित्यर्थः, गृह्णन् = पिबन्, सन्तोषेण = स्ववैर-निर्यातनजन्यया प्रीत्या, जुगुप्सया = घृणया शोणितदर्शनजन्यया करुणया = प्राणि-हिंसादर्शनजन्यया दयया, त्रासेन = बहुमृतदर्शनजन्यया भीत्या, हासेन = सन्तोषजन्येन हासेनेत्यर्थः, च = अपि, क्षणम् = किञ्चित्कालम्, विस्मितः = आश्चर्यचकितः, जातः इति, स एवाऽहमिति पूर्वेण सम्बन्धः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तदलमिदानीमपि

कृत्वा त्रिःसप्तकृत्वः समिति विशसनं पूर्वमुर्वीपतीनां
कृत्वान्यत्सप्तकृत्वः पुनरपि कदनं दुर्मदानां नृपाणाम् ।
निर्माय क्ष्मापतीनां प्रतिसमरहृतैरुत्तमैरुत्तमाङ्गैः
कापालीमक्षमालां झटिति भगवतो भैरवस्यार्पयामि ॥ ३४ ॥

रामः—

प्रसीद त्वं रोषाद्विरम कुरु मे चेतसि गिरं
चिरं यन्नायासैर्बहुभिरिह वारैर्जितमभूत् ।
यशोवित्तं वित्तं कितव इव विक्षोभतरलं
तदेतस्मिन्वारे भृगुतिलक मा हारय मुधा ॥ ३५ ॥

जामदग्न्यः—कथं रे हारयिष्यामि । (विमृश्य) अथवा—

किं नाम वाग्डम्बरपण्डितेषु युष्मासु वाणीः प्रचुराः प्रयुञ्जे ।
बाणान्रिपुप्राणहरान्मदीयान्सर्वेऽपि यूयं सहिताः सहध्वम् ॥ ३६ ॥

रामः—किमन्यैर्नन्वहमेव हरशरासनारोपणोपनीतजानकीकरकिसलयलीलानिहितकमलमालिकामिलदलिपटलकोलाहलसंगीतयशःपरिमलेन वक्षस्थलेन सहिष्ये ।

अन्वयः—पूर्वम्, समिति, उर्वीपतीनाम्, त्रिसप्तकृत्वः, विशसनम्, कृत्वा, पुनः, अपि, दुर्मदानाम्, नृपाणाम्, अन्यत्, सप्तकृत्वः, कदनम्, कृत्वा, प्रतिसमरहृतैः, क्ष्मापतीनाम्, उत्तमैः, उत्तमाङ्गैः, कापालीम्, अक्षमालाम्, निर्माय भगवतः, भैरवस्य, झटिति, अर्पयामि ॥ ३४ ॥

पूर्वकृतमुपवर्ण्य कृत्यं कथयन्नाह— कृत्वेति—पूर्वम् = पुरा, समिति = युद्धे, उर्वीपतीनाम् = राज्ञाम्, त्रिसप्तकृत्वः = एकविंशतिवारम्, विशसनम् = हननम्, कृत्वा = विधाय, पुनः=मुहुः, अपि=च, दुर्मदानाम्=दर्पोद्धतानाम्, नृपाणाम्=राज्ञाम्, अन्यत्=पुनरित्यर्थः, सप्तकृत्वः = सप्तवारम्, कदनम् = मारणम्, कृत्वा=विधाय, प्रतिसमरहृतैः—प्रतिसमरात्= सम्मुखयुद्धात् हृतैः = आच्छिद्य गृहीतैः, क्ष्मापतीनाम् = उर्वीपतीनाम्, उत्तमैः = श्रेष्ठैः, उत्तमाङ्गैः=शिरोभिः, कापालीम्=नरमुण्डमयीम्, अक्षमालाम् = रुद्राक्षमालाम्, निर्माय= विधाय, कपालैः निर्मितामक्षमालामित्यर्थः, भगवतः=ऐश्वर्यसम्पन्नस्य, भैरवस्य = रुद्रस्य, झटिति=शीघ्रम्, अर्पयामि = समर्पयामि, वर्तमानसामीप्ये लट् । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे भृगुतिलक, त्वम्, प्रसीद; रोषात्, विरम; चेतसि, मे, गिरम्, कुरु । चिरम्, आयासैः, बहुभिः, वारैः, यत्, यशोवित्तम्, इह, जितम्, अभूत्; तत्, कितवः, वित्तम्, इव; एतस्मिन्, वारे विक्षोभतरलम्, मुधा, मा, हारय ॥ ३५ ॥

स्वक्षोभलवं सूचयन्नपि परशुरामं प्रसादयन्नाह—प्रसीदेति । हे भृगुतिलक = हे भार्गववंशभूषण, त्वम् = भवान्, प्रसीद = प्रसन्नो भव । रोषात् = कोपात्, विरम = विरतो भव । चेतसि = मनसि, मे = मम, गिरम् = वचनम्, कुरु = स्थापय । चिरम् = बहुकालम्, आयासैः = परिश्रमैः, बहुभिः = अनेकैः, वारैः = एकविंशतिवारैरित्यर्थः, यत् = यादृशम्, यशोवित्तम्—यशः = कीर्तिः एव वित्तम् = धनम्, इह = युद्धविषये,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तो बहुत हो चुका, अभी-अभी—

पहले संग्राम में राजाओं का इक्कीस बार संहार करके फिर भी दुष्ट गर्वीले राजाओं का दुबारा सात बार वध कर सम्मुख युद्ध में काटे गए राजाओं के उत्तम मस्तकों से मुण्डों की बनी हुई अक्षमाला भगवान् भैरव को (शङ्कर को) तुरत समर्पित करता हूँ ॥ ३४॥

राम—हे भृगुवंश के शिरोमणि, आप प्रसन्न हों। क्रोध से विरत हों। चित्त में मेरी बात धारण करें। बहुत दिनों में परिश्रम के साथ बहुत बार में जो यशरूपी धन युद्ध में (आपके द्वारा) एकत्रित किया गया, उस यशरूपी धन को, जुआरी जैसे धन को गँवाता है उसी तरह, इस बार मन की अस्थिरतापूर्वक व्यर्थ में ही मत हार जायें ॥ ३५ ॥

जामदग्न्य—क्यों रे हारूँगा ? (सोचकर)

अथवा—

वचनों का जाल बिछाने में निपुण (अर्थात् बातूनी) तुम लोगों के विषय में अधिक बातें क्या की जाएँ ? (यहाँ) एकत्रित तुम सभी लोग भी शत्रुओं के प्राणों को विनष्ट करनेवाले मेरे बाणों को बर्दास्त करो ॥ ३६ ॥

राम—और लोगों से क्या मतलब ? केवल मैं ही शङ्कर के धनुष को चढ़ाने से प्राप्त जानकी के पल्लव के समान कोमल हाथों से विलासपूर्वक पहनाई गई कमल की माला पर टूटनेवाले (दौड़कर आनेवाले) भौंरों के कोलाहल से गाये गये यशरूप सुगन्धवाले (अपने) वक्षस्थल से बर्दास्त करूँगा।

र्जितम् = अर्जितम्, अभूत् = जातम्; तत् = तादृशं यशोधनम्; कितवः = अक्षदेवी ('अक्षदेवी कितवः इत्यमरः), 'जुआरी' इति भाषायाम्, वित्तम् = धनम्; इव = यथा, यथा द्यूतकरो द्यूते धनं विनाशयति तथैवेत्यर्थः, एतस्मिन् = अस्मिन्, वारे = समये, मया सह युद्धे इति भावः, विक्षोभतरलम्—विक्षोभेन = मनसश्चाञ्चल्येन तरलम् = चञ्चलं यथा स्यात्तथा, मुधा = व्यर्थम्, मा = नहि, हारय = नाशय। मया सह युद्धे अस्मिन् वारे तव पराजयो निश्चितोऽतो युद्धाद्विरमेति शुभसम्मतिः। अत्रोपमालङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम्। वृत्तलक्षणं यथा—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥ ३५ ॥

अन्वयः—वाग्डम्बरपण्डितेषु, युष्मासु, प्रचुराः, वाणीः, किं नाम, प्रयुञ्जे ? सहिताः, यूयम्, सर्वे, अपि, रिपुप्राणहरान्, मदीयान्, बाणान्, सहध्वम् ॥ ३६ ॥

किं नामेति। वाग्डम्बरपण्डितेषु—वाचाम् = वाणीनाम् डम्बरे = आडम्बरे विस्तारे वा पण्डिताः = आचार्याः तेषु, युष्मासु = रामादिषु, प्रचुराः = विपुलाः, वाणीः = वाचः, किं नामेति प्रश्ने, प्रयुञ्जे = व्याहरामि ? सहिताः = अत्र सम्मिलिताः, सर्वे = निखिलाः, अपि = च, यूयम् = भवन्तो धनुर्यज्ञे आगता इत्यर्थः, रिपुप्राणहरान्—रिपूणाम् = शत्रूणाम् प्राणहरान् = प्राणविनाशकान्, मदीयान् = मया त्यक्तान्, बाणान् = शरान्, सहध्वम् = मर्षत। वाचोभिः किं प्रयोजनम् ? अधुना युद्धे सर्वान् निपातयिष्यामीति भावः। इन्द्रवज्रा वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—

वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ। तच्चेन्द्रवज्रा प्रथमाक्षरे गुरौ ॥ ३६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जामदग्न्यः—

ईशत्यक्तपुराणचापदलनप्रोद्भूतगर्वोद्धति-
व्यग्रस्त्वं कतरः स ते तव गुरुः सोढुं न शक्तः शरान् ।
तुष्टादिष्टवरप्रदाद्भगवतः पद्मासनात्सादरं
मन्नाराचभयादयाचत किल ब्राह्मीं तनूं कौशिकः ॥ ३७ ॥

रामः—(स्वगतम्) कथं भगवन्तं विश्वामित्रमधिक्षिपति । तदतः परं न सहिष्ये । (प्रकाशम्)

ईशत्यक्तपुराणचापदलनप्रोद्भूतगर्वोद्धति-
व्यग्रोऽहं कतरः स ते मम गुरुः सोढुं न शक्तः शरान् ।
तुष्टादिष्टवरप्रदाद्भगवतः पद्मासनात्सादरं
त्वन्नाराचभयादयाचत किल ब्राह्मीं तनूं कौशिकः ॥ ३८ ॥

(इति पदव्यत्यासेन पुनः श्लोकं पठति । पुनः साटोपम्) अये जामदग्न्य,

तत्कोदण्डं कुलिशकठिनं भग्नमेतेन भग्नं
मग्नं शल्यं तव हृदि महन्मग्नमेतावता किम् ।
त्रैयक्षं वा भवतु यदि वा नाम नारायणीयं
नैतत्किंचिद्गणयति स मे दुर्मदो दोर्विलासः ॥ ३९ ॥

राम इति । हरशरासनेत्यादिः—हरशरासनस्य = शिवधनुषः आरोपणेन = आकर्षणेन उपनीता = प्राप्ता या जानकी = सीता तस्याः करौ = हस्तौ किसलये इव = पल्लवे इव, ताभ्यां लीलया = विलासेन निहिता = मम कण्ठे अर्पिता या कमलमालिका = पद्ममाला तस्यां मिलत् = परितः आगच्छत् यदलिपटलम् = भ्रमरसमूहः तस्य कोलाहलः = गुञ्जनम् तेन संगीतम् = सम्यगुच्चरितम् यत् यशः कीर्त्तिः एव परिमलः = सुगन्धो यस्मिन् एवम्भूतेन, वक्षस्थलेन = उरसा ॥

अन्वयः—ईशत्यक्तपुराणचापदलनप्रोद्भूतगर्वोद्धतिव्यग्रः, त्वम्, कतरः ? सः, तव, गुरुः, मे, शरान्, सोढुम्, न, शक्तः । मन्नाराचभयात्, कौशिकः, तुष्टात्, इष्टवर-प्रदात्, भगवतः, पद्मासनात्, ब्राह्मीम्, तनूम्, सादरम्, अयाचत, किल ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रमधिक्षिपन्नाह—ईशत्यक्तेति । ईशत्यक्तपुराणेत्यादिः— ईशेन = शिवेन त्यक्तः = परित्यक्तः पुराणः = जीर्णः यः चापः = धनुः तस्य दलनेन = खण्डनेन प्रोद्भूतः = प्रादुर्भूतः यः गर्वः = अभिमानम् तस्य उद्धत्या = उद्दण्डतया व्यग्रः = विक्षिप्तः, चञ्चलः इति यावत्, त्वम् = बालको रामः इत्यर्थः; कतरः = कः ? किं कर्तुं समर्थः; किं बहुना—सः = प्रसिद्धः, तव = भवतः, गुरुः, = आचार्यः, मे = मम, शरान् = बाणान्, सोढुम् = मर्षितुम्, न = नहि, शक्तः = समर्थोऽभूत् । मन्नाराच-भयात् - मम = क्षत्रियविद्वेषिणः परशुरामस्य नाराचात् = बाणात् भयम् = भीतिः तस्मात्, कारणादिति, कौशिकः = क्षत्रियकुलोत्पन्नो विश्वामित्रः, तुष्टात् = तपस्यया प्रसन्नात्, अतः इष्टवरप्रदात् = अभीष्टेच्छापूरकात्, भगवतः = शक्तिसंपन्नात् पद्मासनात्—ब्रह्मणः सकाशात्, ब्राह्मीम्—ब्राह्मणसम्बन्धिनीम्, ब्राह्मणस्येत्यर्थः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जामदग्न्य—शङ्करजी के द्वारा परित्यक्त जीर्ण धनुष को तोड़ने के कारण उत्पन्न गर्व की उद्धत भावना से व्यग्र (चञ्चल) तुम कौन हो ? वे तुम्हारे गुरु (विश्वामित्र भी) मेरे बाणों को सहन न कर सके। मेरे बाणों के भय से (ही) विश्वामित्र ने प्रसन्न हुए (तथा) मनोनुकूल वरदान देनेवाले, भगवान् ब्रह्मा से ब्राह्मण के शरीर को बड़े ही आदरपूर्वक मांगा—इसे सभी जानते हैं (किल) ॥ ३७ ॥

राम—(अपने आप) क्या पूज्य विश्वामित्र की निन्दा कर रहे हैं। तो इससे अधिक बर्दास्त नहीं करूँगा।

(प्रकट रूप में)

शङ्कर जी के द्वारा परित्यक्त जीर्ण धनुष को तोड़ने के कारण उत्पन्न गर्व की उद्धत भावना से व्यग्र (चञ्चल) मैं कौन हूँ ? वह मेरे गुरु (विश्वामित्र) आप के बाणों को सहन नहीं कर सके ? आप के बाणों के भय से विश्वामित्र ने प्रसन्न हुए (तथा) मनोनुकूल वरदान देनेवाले, भगवान् ब्रह्मा से ब्राह्मण की शरीर को आदरपूर्वक माँगा था—इसे सभी जानते है ? (अर्थात् आप का यह सब कथन सरासर झूठ है) ॥ ३८ ॥

(इस तरह) पद-परिवर्तन करके फिर (उसी) श्लोक को पढ़ते हैं। पुनः अभिमान के साथ) अये परशुराम,

वज्र के समान कठोर वह (शङ्कर का) धनुष टूट गया (तो) टूट गया, इससे (क्या) ? आप के हृदय में महान् काँटा गड़ गया (तो) गड़ गया, इतने से क्या (हुआ) ? यह (धनुष) भले ही शङ्कर का अथवा विष्णु का हो; (किन्तु) पुरुषार्थ दिखलानेवाला (सः) मेरा मतवाला बाहु-विलास कुछ भी नहीं परवाह करता ॥ ३९ ॥

तनूम् = शरीरम् , सादरम् = सविनयम् , अयाचत = याचितवान् , किल = इति प्रसिद्धिरस्तीति ('वार्तासम्भाव्ययोः किल।' इत्यमरः)। अहं क्षत्रियोऽतः परशुरामेण हतो भविष्यामीति भीत्या ब्रह्मणः सकाशात् ब्राह्मणसम्बन्धिनीं तनुमयाचत। मद्भीत्यैव विश्वामित्रः क्षत्रियाद् ब्राह्मणरूपं वर्णोत्कर्षं प्रापेति जगति प्रसिद्धिरिति। अत्राऽतिशयोक्तिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३७ ॥

राम इति। भगवन्तम् = पूज्यम् , अधिक्षिपति = निन्दति ? तत् = तस्मात् , अतः = अस्मात् , परम् = अधिकम् ॥

अन्वयः—ईशत्यक्तपुराणचापदलनप्रोद्भूतगर्वोद्धतिव्यग्रः, अहम् , कतरः ? सः, ते, गुरुः, तव, शरान् , सोढुम् , न शक्तः ? त्वन्नाराचभयात् , कौशिकः, तुष्टात् , ईप्सितप्रदात् , भगवतः, पद्मासनात् , ब्राह्मीम् , तनूम् , सादरम् , अयाचत, किल ? ॥ ३८ ॥

ईशत्यक्तेति। गुरुनिन्दां सोढुमसमर्थोऽतः किञ्चित् क्रुद्धो रामस्तमेव श्लोकं पुनः पठति युष्मदस्मदोर्व्यत्यासेनेति। अतः पूर्वं व्याख्यातत्वादत्र न व्याख्यायते श्लोकोऽयमिति ॥ ३८ ॥

अन्वयः—कुलिशकठिनम् , तत् , कोदण्डम् , भग्नम् , भग्नम् , एतेन,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जामदग्न्यः—(सदर्पम्) साधु रे क्षत्रियपोत, साधु । यत्किल जामदग्न्यनाम्नश्चण्ड-धाम्नः पुरतः खद्योत इव विद्योतसे । किमात्थ रे किमात्थ ।

रामः—(तदेव पठति) नन्विदं भूयोऽप्युच्यते । (पुनस्तदेव पठति)

जामदग्न्यः—साधु स्मारितोऽस्मि ।

रामः—किं तत् ।

जामदग्न्यः—कराघाताद्विष्णोस्तरलवनमालापरिमल-
भ्रमद्भृङ्गध्वानद्विगुणितविकासः समजनि ।
स यस्य ज्याघोषः सुररिपुवधूवर्गरुदित-
ध्वनिस्वाध्यायानां प्रणव इव तत्कार्मुकमिदम् ॥ ४० ॥

रामः—करपङ्केरुहक्रोडे क्रीडितं येन शार्ङ्गिणः ।

तदेतत् ।

जामदग्न्यः—अथ किं यदि शक्तोऽसि गृहाण विगृहाण वा ॥ ४१ ॥

(किम्) ? तव, हृदि, महत्, शल्यम्, मग्नम्, मग्नम्, एतावता, किम् ? एतत्, त्रैयक्षम्, यदि वा, नारायणीयम्, भवतु नाम, सः, मे, दुर्मदः, दोर्विलासः, किञ्चित्, न, गणयति ॥ ३९ ॥

तत्कोदण्डमिति । कुलिशकठिनम् = वज्रकठोरम्, तत् = शिवसम्बन्धि, कोदण्डम् = धनुः, भग्नम् = त्रुटितम्, तर्हीति शेषः, भग्नम् = त्रुटितम्, एतेन = अनेन, किम् = किं जातमित्यर्थः ? तव = शङ्करशिष्यस्य भवतः, हृदि = हृदये, महत् = विशालम्, शल्यम् = शङ्कुः, भग्नम् = त्रुटितम्, तर्हीति शेषः, मग्नम् = त्रुटितम् : क्वचित्पुस्तकान्तरे भुग्नमिति पाठस्तत्र भुग्नम् = वक्रमित्यर्थः; एतावता = अनेनेत्यर्थः, किम् = किमभूदित्यर्थः ? एतत् = धनुरित्यर्थः, त्रैयक्षम्—त्रीणि अक्षीणि यस्य स त्र्यक्षः, बहुव्रीहौ षच्, त्र्यक्षस्य = शङ्करस्य इदं त्रैयक्षम् = शैवम्, यदि वा = अथवा, नारायणीयम्—नारायणस्य = विष्णोरिदं नारायणीयम् = वैष्णवम्, भवतु = स्यात्, नामेति सम्भावनायाम् । सः = अधुनैव प्रदर्शितपराक्रम इत्यर्थः मे = मम रामस्य, दुर्मदः = वीर्योद्धतः, दोर्विलासः—दोष्णोः = बाह्वोः विलासः = विभ्रमः, बाहुबलमिति यावत्, किञ्चित् = किमपि, तृणतुल्यमपीत्यर्थः, न = नहि, गणयति = अनुभवति । भग्नं भग्नं मग्नं मग्नमिति द्विरुक्तिर्वक्तुः स्वाभाविकीं निःशङ्कां सूचयतीति बोध्यम् : भुग्नमिति पाठस्तु प्रसङ्गविपरीतत्वात् न समीचीनः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्' ॥ ३९ ॥

अन्वयः—विष्णोः, कराघातात्, तरलवनमालापरिमलभ्रमद्भृङ्गध्वानद्विगुणितविकासः, सुररिपुवधूवर्गरुदितध्वनिस्वाध्यायानाम्, प्रणवः, इव, यस्य, सः, ज्याघोषः, (अस्ति); इदम्, तत्, कार्मुकम्, (वर्तते) ॥ ४० ॥

कराघातादिति । विष्णोः = नारायणस्य कराघातात्—करस्य = हस्तस्य आघातात् = ताडनात्, आकर्षणकाले घटितात् हस्तसंघट्टनात्, तरलवनमालेत्यादिः—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

जामदग्न्य—(प्रसन्नता के साथ) वाह रे क्षत्रिय के बच्चे, वाह ! जो कि (तुम) जामदग्न्य नामवाले प्रचण्ड सूर्य के सामने जुगनू की तरह चमक रहे हो। क्या कहा रे क्या कहा ?

राम—(उसी को पढ़ते हैं।) अरे, यह फिर भी कह रहा हूँ—

(फिर उसी श्लोक को पढ़ते हैं।)

जामदग्न्य—ठीक याद दिलाया गया हूँ।

राम—वह क्या ?

जामदग्न्य—विष्णु के हाथ के धक्के से हिलती हुई वनमाला के सुगन्ध के लिए मडरानेवाले भौंरों की गुञ्जान से दूना (शब्द) विस्तार करनेवाला (अर्थात् दूना शब्द करनेवाला), दैत्यों की स्त्रियों के समूह के रुदन की आवाज रूप वेदपारायणों के ओङ्कार की तरह जिस (धनुष) की प्रत्यञ्चा का विश्वविश्रुत टङ्कार (है), यह वही धनुष (है) (अर्थात् जिसकी टङ्कार होते ही दैत्य मारे जाते हैं और उनकी स्त्रियाँ रोना-धोना शुरू कर देती हैं, यह वही धनुष है) ॥ ४० ॥

राम—जिसने विष्णु के हस्त-कमल के मध्य भाग में क्रीड़ा की है ? (अर्थात् जिसे भगवान् विष्णु अपने हाथ में लेते थे—वही यह धनुष है ?)।

परशुराम—और क्या ! यदि समर्थ हो (तो इसे) ग्रहण करो अथवा (मेरे साथ) युद्ध करो ॥ ४१ ॥

तरला = चञ्चला या वनमाला = मन्दारादिपुष्पमाला तस्याः परिमलाय = आमोदाय भ्रमन्तः = इतस्ततश्चलन्तः ये भ्रमराः = द्विरेफाः तेषां ध्वानेन = शब्देन, गुञ्जनेनेत्यर्थः, द्विगुणितः = द्विगुणीकृतः विकासः = विस्तारः, शब्दविस्तार इत्यर्थः, यस्य सः, सुररिपुवधूवर्गरुदितध्वनिस्वाध्यायानाम्—सुराणाम् = देवानाम् ये रिपवः = शत्रवः तेषां वध्वः = अङ्गनाः तासां वर्गः = समुदायः तस्य रुदितस्य = विलापस्य ये ध्वनयः = कलकलशब्दाः त एव स्वाध्यायाः = वेदपारायणानि तेषाम्, प्रणवः = ओङ्कारः, प्रारम्भाक्षरः, इव = यथा, यस्य = यस्य धनुषः, सः = जगद्विदितः, ज्याघोषः = मौर्वीध्वनिः, अस्तीति शेषः, इदम् = एतत्, तत् = शत्रुनिषूदनमित्यर्थः, कार्मुकम् = धनुः, वर्तते इति शेषः। इदं विष्णोस्तदेवामोघं कार्मुकं यस्य जाते च ज्याघोषे सद्यः शत्रुविनाशस्तेषां स्त्रीणाञ्च रोदनं प्रारभ्यते इदं तदिति भावः। अत्र रूपकालङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—येन, शार्ङ्गिणः, करपङ्केरुहक्रोडे, क्रीडितम्, (तत्, एतत् ?), अथ किम् ? यदि, शक्तः, असि, गृहाण, वा, विगृहाण ॥ ४१ ॥

करपङ्केरुहेति। रामोक्तिरत्रप्रश्नरूपा—येन = येन धनुषा, शार्ङ्गिणः = विष्णोः, करपङ्केरुहक्रोडे—करः = हस्तः एव पङ्केरुहम् = कमलम् तस्य क्रोडे = मध्ये, क्रीडितम् = विलसितम्, (तत् = विश्वविश्रुतम्, एतत् = एतद्धनुरास्ते ?)। परशुराम उत्तरयति—अथ किम् = आम्, तदेवेदमिति प्रश्नादागतमुत्तरम्, यदि = चेत्, शक्तः = समर्थः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—गृह्णामि ।

जामदग्न्यः—तदेहि । बाष्पायमाणभवद्बन्धुजनबन्धुरां वसुन्धरामतिक्रम्य समरक्षमां क्षमामवतरावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

लक्ष्मणः—(विलोक्य सहर्षं सकौतुकं च)

मा शाम्भवं धनुरिवेदमपि प्रयातु
भङ्गप्रसङ्गमिति मन्दचलद्भुजेन ।
आर्येण कार्मुकमपीदमहो सहेलं
चक्रीकृतं भगवतो गरुडध्वजस्य ॥ ४२ ॥

(नेपथ्ये)

अहो कौतुकम् ।

उद्भिन्नश्चापचक्रादमरपरिहितव्योमरन्ध्रावगाही
बाणोऽयं राघवस्य त्रिदशपुरगतिच्छेदकृद्भार्गवस्य ।
हंसीभूतः सुरस्त्रीकरकमलगलत्पुष्पसौरभ्यलुभ्य-
द्भृङ्गीसंगीतभङ्गीपरिचलितयशाः स्वर्गपर्यङ्कमेति ॥ ४३ ॥

असि = भवसि, (तदा), गृहाण = गृहीत्वाऽऽरोपयेत्यर्थः, वा = अथवा, विगृहाण = युद्धं कुरु इति विकल्पः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४१ ॥

जामदग्न्य इति । बाष्पायमाणभवद्बन्धुजनबन्धुराम्—बाष्पायमाणाः = अश्रुपूर्णाः, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणा इत्यर्थः, ये भवतः = तव बन्धुजनाः = बान्धवाः तैः बन्धुराम् = सङ्कुलाम्, वसुन्धराम् = पृथिवीम्, अतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य, समरक्षमाम् = सङ्ग्रामयोग्याम्, जनविरहितामित्यर्थः, क्षमाम् = पृथिवीम्, अवतरामः = गच्छामः । रङ्गभूमौ युद्धादिप्रदर्शनस्य निषिद्धत्वादन्यत्र गमनप्रस्तावः ॥

अन्वयः—शाम्भवम्, धनुः, इव, इदम्, अपि, भङ्गप्रसङ्गम्, मा, प्रयातु; इति, मन्दचलद्भुजेन, आर्येण, भगवतः, गरुडध्वजस्य, इदम्, कार्मुकम्, अपि, सहेलम्, चक्रीकृतम्, अहो ! ॥ ४२ ॥

रामेण कृतं विष्णोर्धनुष आनमनं वर्णयन्नाह—मा शाम्भवमिति । शम्भोः = शिवस्य इदं शाम्भवम् = शैवम्, धनुः = चापम्, इव = यथा, इदम् = नारायणीयं धनुरित्यर्थः, अपि = च, भङ्गप्रसङ्गम्—भङ्गस्य = खण्डनस्य प्रसङ्गम् = अवसरम्, मा प्रयातु = मा गच्छतु, खण्डितं न स्यादिति भावः; इति = इत्थं विचार्येत्यर्थः, मन्दचलद्भुजेन—मन्दम् = मन्थरं यथास्यात्तथा चलन्तौ = अग्रे गच्छन्तौ यौ भुजौ = बाहू यस्य स तेन, आर्येण = पूज्येन रामेण, भगवतः = सर्वविधैश्वर्यसम्पन्नस्य, गरुडध्वजस्य = विष्णोः, इदम् = एतत्, कार्मुकम् = धनुः, अपिना शैवातिरिक्तं सूच्यते, सहेलम् = सलीलम्, चक्रीकृतम् = कुण्डलीकृतम्, आकर्णमाकृष्टमित्यर्थः, अहो इत्याश्चर्ये । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—(धनुष को ही) ग्रहण करूँगा ।

जामदग्न्य—तो आओ। (आँखों में) आँसू भरे हुए तुम्हारे बन्धुजनों (अपने लोगों) से व्याप्त (इस) स्थान को छोड़ कर संग्राम के योग्य दूसरे स्थान में चलें।

(इस प्रकार दोनों निकल गए)

लक्ष्मण—(देखकर प्रसन्नता और उत्सुकता के साथ)

'शङ्कर के धनुषकी तरह वह भी टूटने के अवसर को न प्राप्त हो जाय (अर्थात् टूट न जाय)'—ऐसा विचार कर धीरे से बाहुओं को चलाने वाले आर्य (राम) के द्वारा भगवान् विष्णु का यह धनुष भी खिलवाड़ ही खिलवाड़ में चढ़ा दिया गया—आश्चर्य है ॥ ४२ ॥

(पर्दे के पीछे)

अहा आश्चर्य ! कान तक खींचे गए धनुष से छूटा हुआ, देवताओंके द्वारा (भयवश) खाली कर दिए गए आकाशके छिद्रमें (अर्थात् आकाश में) प्रवेश करने वाला, परशुराम के स्वर्गपुरी में जाने का प्रतिबन्धक, रामचन्द्रका यह बाण, हंस के समान आचरण करता हुआ (अर्थात् हंस के समान निश्चल गति से आगे बढ़ता हुआ), देवताओं की स्त्रियों के कर कमलों से बर्षाये गए फूलों के सुगन्ध की लोभी भौंरियों (भ्रमरस्त्रियों) की गुञ्जान से बढ़ा हुआ यश वाला (होते हुए) स्वर्ग रूप पलङ्ग पर (अर्थात् स्वर्ग पर) चढ़ रहा है ॥ ४३ ॥

विशेष—**त्रिदशपुरगतिच्छेदकृत्**—भगवान् विष्णु ने वह अपना धनुष परशुराम को देकर यह कहा था कि जिस दिन मैं अवतार धारण कर इसे चढ़ा दूँगा उस दिन से आपका स्वर्गतक बेरोकटोक आना-जाना बन्द हो जायगा तथा आपका वह तेज भी नहीं रह जायगा ।

अन्वयः—चापचक्रात्, उद्भिन्नः, अमरपरिहृतव्योमरन्ध्रावगाही, भार्गवस्य, त्रिदशपुरगतिच्छेदकृत्, राघवस्य, अयम्, बाणः, हंसीभूतः, (सन्), सुरस्त्रीकरकमलगलत्पुष्पसौरभ्यलुभ्यद्भृङ्गीसङ्गीतभङ्गीपरिचलितयशाः, (सन्), स्वर्गपर्यङ्कम्, एति ॥ ४३ ॥

नेपथ्ये कश्चिदाह—उद्भिन्नेति । चापचक्रात्—आकर्णमाकृष्य कुण्डलीकृतात् धनुषः, उद्भिन्नः, = निर्गतः, अमरपरिहृतव्योमरन्ध्रावगाही—अमरैः = देवैः परिहृतम् = त्यक्तम्, भयात्त्यक्तमित्यर्थः, यत् व्योम्नः = आकाशस्य रन्ध्रम् = अवकाशः तदवगाहते = प्रविशति तच्छील इति; भार्गवस्य = परशुरामस्य, त्रिदशपुरगतिच्छेदकृत्—त्रिदशानाम् = देवानाम् पूः = नगरी, स्वर्गपुरीत्यर्थः, त्रिदशपुरम्—समासान्तोऽप्रत्ययः, तस्मिन् गतिः = गमनम्, यथेच्छं तत्र गमनं तत आगमनमित्यर्थः, तस्याः छेदकृत् = प्रतिबन्धकः, एकदा भगवान् विष्णुः परशुरामाय स्वकीयं धनुर्दत्त्वेदमुवाच—'यावन्नाहमवतारधारणं कृत्वैतद्धनुरारोपयामि तावत्तव स्वर्गे गतागतं निराबाधं भविष्यति ; कृते चारोपणे तवैतत्सामर्थ्यं विगतं भविष्यतीति पुराणप्रसिद्धम्, राघवस्य = रामस्य,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(ततः प्रविशति रामजामदग्न्यौ)

जामदग्न्यः—(रामं विलोक्य निर्वर्ण्य च स्वगतम्)

त्रिलोकी कोकीयं मुदमुदयतानेन लभते
विकाशं वा धत्ते मुनिजनमनःपङ्कजवनम् ।
अये कोऽयं बालः कुवलयदलश्यामलतनु-
र्जगद्योनिर्ज्योतिः कथमिदमहो तत्परिणतम् ॥ ४४ ॥

(पुनर्विमृश्य)

आपूरणाय पुरवैरिशरासनस्य
बाणात्मना परिणतः किल लीलया यः ।
आरोपणाय पुनरस्य स एव शङ्के
बालात्मना परिणतः पुरुषः पुराणः ॥ ४५ ॥

(प्रकाशम्) वत्स, इतः ।

(रामः सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति)

जामदग्न्यः—(उपसृत्य रामस्य चिबुकमुन्नमय्य) किमिति लज्जास्थानम् ।

अयम् = एषः, सम्प्रत्येव प्रक्षितः इत्यर्थः, बाणः = शरः, हंसीभूतः (सन्) = हंस इवाचरन्, हंस इव निश्चलगतिर्भूत्वेत्यर्थः, सुरस्त्रीकरकमलेत्यादिः—सुरस्त्रीणाम् = देववनितानाम् करकमलेभ्यः = हस्तकमलेभ्यः गलन्ति = पतन्ति यानि पुष्पाणि = प्रसूनानि तेषां सौरभ्यम् = सुगन्धः तस्मिन् लुभ्यन्त्यः = लोभं कुर्वन्त्यः याः भृङ्ग्यः तासां सङ्गीतभङ्ग्या = गुञ्जनविलासयुक्तपद्धत्या परिचलितम् = प्रवर्धितम् यशः = कीर्तिः यस्य सः, तादृशः (सन् = भवन्), स्वर्गपर्यङ्कम् = स्वर्गमित्यर्थः, एति = गच्छति । वृत्त्यनुप्रासालङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—अहो ! उदयता, अनेन, इयम्, त्रिलोकीकोकी, मुदम्, लभते; वा, मुनिजनमनःपङ्कजवनम्, विकासम्, धत्ते । अये ! कुवलयदलश्यामलतनुः, अयम्, बालः, कः ? कथम्, इदम्, जगद्योनिः, तत्, ज्योतिः, परिणतम् ? ॥ ४४ ॥

हतप्रभो जामदग्न्य आह—त्रिलोकीति । अहो इति प्रसन्नतायाम्, उदयता = वृद्धिं गच्छता, अनेन = एतेन, रामेणेत्यर्थः, इयम् = एषा, त्रिलोकी = त्रिजगती एव कोकी = चक्रवाकीति त्रिलोकीकोकी; मुदम् = प्रसन्नताम्, विकासमित्यर्थः, लभते = प्राप्नोति; वा = तथा, मुनिजनमनःपङ्कजवनम्—मुनिजनानाम् = ऋषिजनानाम् मनांसि = चेतांसि एव पङ्कजानि = कमलानि तेषां वनम् = समवायः इत्यर्थः, विकासम् = प्रफुल्लताम्, धत्ते धारयति । अये इत्याश्चर्ये, कुवलयदलश्यामलतनुः—कुवलयस्य = नीलकमलस्य दलम् = पत्रम् इव श्यामला = श्यामवर्णा तनुः = शरीरम् यस्य सः, अयम् = एषः, बालः = बालकः, कः = कोऽस्तीति प्रश्नः । कथम् = किम्, इदम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(इसके बाद राम और परशुराम प्रवेश करते हैं)

जामदग्न्य— राम को देख कर और (फिर) ध्यान से देखकर)

वाह ! उदित होने वाले (अर्थात् बढ़ने वाले) इनसे यह त्रिलोकी रूपी चक्रवाकी (चकई) प्रसन्नता को प्राप्त कर रही है (अर्थात् प्रसन्न हो रही है); तथा मुनिजनों का चित्तरूप कमल-वन विकास को प्राप्त कर रहा है (अर्थात् विकसित हो रहा है)। अरे ! नीले कमल के पत्र के समान श्याम शरीर वाला यह बालक कौन है ? क्या यह जगत् का मूल कारण वह (ब्रह्म रूप) ज्योति रूप धारण कर अवतीर्ण हुई है ?

(फिर विचार कर)

शङ्कर के धनुष को पूर्ण करने के लिए लीलापूर्वक जो बाण के रूप में रूपान्तरित हुए थे (अर्थात् जो बाण के रूप को धारण किए थे) निश्चय ही वही पुरातन पुरुष (अर्थात् विष्णु) पुनः इस (धनुष) को चढ़ाने के लिए बालक के रूप से अवतीर्ण हुए हैं—(ऐसा मैं) सोचता हूँ ॥ ४५ ॥

(प्रकटरूप में) वत्स, इधर (आओ)।

विशेष—आपूरणाय—त्रिपुरासुरों की नगरियोंको भस्म करने के लिए शङ्कर जी ने जिस धनुष का उपयोग किया था उसी को महाराज जनक के यहाँ बाद में उन्होंने रख दिया था। उस धनुष की प्रत्यञ्चा उस समय नागराज वासुकि तथा बाण भगवान् विष्णु बने थे। उसी की ओर यहाँ निर्देश है ॥ ४५ ॥

(राम लज्जापूर्वक नीचे मुँह किए हुए खड़े रहते हैं)

जामदग्न्य—(पास में जाकर। राम की ठुड्डी उठा कर) क्या यह लज्जित होने की जगह (लज्जित होने का अवसर) है ?

एतत्, जगद्योनिः—जगतः = संसारस्य योनिः = मूलकारणम्, ब्रह्म इत्यर्थः, परिणतम् = रूपतां गतम, अवतीर्णमित्यर्थः। कथमिदं ब्रह्मैव बालकरूपेण परिणतमिति जिज्ञासा। अत्र रूपकमलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—पुरवैरिशरासनस्य, आपूरणाय, लीलया, यः, बाणात्मना, परिणतः, किल सः, एव, पुराणः, पुरुषः, पुनः, अस्य, आरोपणाय, बालात्मना, परिणतः, (इति), शङ्के ॥ ४५ ॥

आपूरणायेति। पुरवैरिशरासनस्य—पुरवैरिणः = शङ्करस्य यत् शरासनम् = धनुः तस्य, आपूरणाय = सम्पूर्णतासम्पत्तये, बाणेन प्रत्यञ्चया चैव धनुः समग्रीक्रियते तद्विना चापस्य निरर्थकत्वात्, लीलया = स्वमायया, बाणात्मना = शररूपेण, परिणतः = रूपतां प्राप्तः, त्रिपुरदहनकाले विष्णुः शिवधनुषो बाणः सञ्जात इति पुराणप्रसिद्धमः किलेति निश्चये, सः = तदभिन्नः, एव = हि, पुराणः = सनातनः, पुरुषः = नारायण इत्यर्थः, पुनः = मुहुः, अस्य = धनुषः, आरोपणाय = नमनाय, बालात्मना = बालकरूपेण, परिणतः = देहान्तरं, देहमित्यर्थः, प्राप्तः, (इति = इत्थम्, अहम्) शङ्के = अनुमिनोमि। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कमलबन्धुविलोचन यस्त्वया स्वमहिमोन्नमनैरधरीकृतः ।
न किमसावधरीकुरुते नरस्त्रिदशकोटिकिरीटमणीनपि ॥ ४६ ॥

रामः—(अञ्जलिं बद्ध्वा) भगवन्, अलमनेन । दुर्विनयपङ्कमलिनीकृतमात्मानं तावद्भवच्चरणनखकिरणतरङ्गिणीजलेन क्षालयामि ।

चण्डमेव किल तिग्मरोचिषः सौम्यमेव किल शीतरोचिषः ।
चण्डसौम्यमिति कौतुकावहं नौमि तावकमहं महन्महः ॥ ४७ ॥

(इति पादयोः पतति)

जामदग्न्यः—अयि कल्याणनिधे, आशीरुक्तिरपि त्वयि पुनरुक्तिरेव । तथापीदमाशास्महे—

यशःपूरं दूरं तनु सुतनुनेत्रोत्पलवनी-
तमस्तन्द्राचण्डातप तप सहस्राणि शरदाम् ।
इयं चास्तां युस्मच्छरशमितलङ्केश्वरशिरः-
श्रितोत्सङ्गा नन्दत्सुरनरभुजङ्गा त्रिजगती ॥ ४८ ॥

अन्वयः—हे कमलबन्धुविलोचन, त्वया, स्वमहिमोन्नमनैः, यः, अधरीकृतः; असौ, नरः, त्रिदशकोटिकिरीटमणीन्, अपि, किम्, न, अधरीकुरुते ॥ ४६ ॥

कमलेति । हे कमलबन्धुविलोचन—कमलबन्धू = कमलवत्सुन्दरे विलोचने = नेत्रे यस्य सः तत्सम्बुद्धौ, त्वया = भवता, स्वमहिमोन्नमनैः—स्वस्य = निजस्य महिम्नः = महत्त्वस्य उन्नमनैः = प्रख्यापनैः, यः = मद्रूपो जनः, अधरीकृतः = निराकृतः, अभिभूतः कृतः, असौ = जगद्विदितः, नरः = व्यक्तिः, अहमिति शेषः, त्रिदशकोटिकिरीटमणीन्—त्रिदशकोटयः = त्रिंशत्कोटयः, देवा इत्यर्थः, तासां किरीटमणीन् = मुकुटरत्नानि, अपि = का कथाऽन्येषामित्यपिना द्योत्यते, किमिति प्रश्ने, न अधरीकुरुते = न तिरस्करोति ? अपि तु तिरस्करोत्येवेत्यर्थः । तिरस्कृतदेवोऽहं त्वयाऽधरीकृतोऽतस्त्वं श्रेष्ठतमोऽसीति भावः । अत्र द्रुतविलम्बितं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' ॥ ४६ ॥

राम इति । दुर्विनयपङ्कमलिनीकृतम्—दुर्विनयः = औद्धत्यमित्यर्थः एव पङ्कः = कर्दमः तेन मलिनीकृतम् = कलुषीकृतम्, तावत् = प्रथमम्, भवच्चरणनखकिरणतरङ्गिणीजलेन—भवतः = श्रीमतस्तव चरणयोः = पादयोः नखाः तेषां किरणाः = अंशवः तेषां तरङ्गिणी = नदी तस्याः जलेन = सलिलेन, क्षालयामि = विगतकल्मषं करोमि । सर्वप्रथममहं चरणौ प्रणिपत्य भवन्तं प्रसादयामीति भावः ॥

अन्वयः—तिग्मरोचिषः, महः, चण्डम्, एव, किल; शीतरोचिषः, महः, सौम्यम्, एव, किल; चण्डसौम्यम्, इति, कौतुकावहम्, तावकम्, महत्, महः, अहम्, नौमि ॥ ४७ ॥

परशुरामं स्तुवन्नाह—चण्डमिति । तिग्मरोचिषः—तिग्मम् = तीक्ष्णम्, रोचिः = तेजः यस्य स तस्य तिग्मरोचिषः = सूर्यस्य, महः = तेजः, चण्डम् = तीक्ष्णम्, एवेति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हे कमल के सदृश नेत्रवाले (राम), तुमने अपनी महिमा को प्रकट करके जिसको नीचा दिखलाया है, वह व्यक्ति तीस करोड़ (अर्थात् देवताओं) की मुकुट मणियों को भी क्या नहीं नीचा दिखलाता है ? (अर्थात् दिखलाता ही है) ॥ ४६ ॥

विशेष—यः, असौ, नरः—इस श्लोक में परशुराम ने इन पदों से स्वयं अपने आपकी ओर संकेत किया है। उनका कहना है कि—देवमण्डली भी जिस मुझको झुककर प्रणाम करती है उसी मुझको तुमने नीचा दिखलाया है। यह क्या कम महत्त्व की बात है ? ॥ ४६ ॥

राम—(हाथ जोड़कर) भगवन्, इसे रहने दें। सर्वप्रथम (मैं) उद्दण्डता रूप कीचड़ से मलिन किए गये अपने को आपके चरणों के नखों की किरण रूप नदी के जल से धोता हूँ (अर्थात् अपने अपराधों के लिए आप के चरणों पर पड़ रहा हूँ)।

सूर्य का तेज तीक्ष्ण ही है। चन्द्र का तेज शीतल ही है। तीक्ष्ण और (साथ ही साथ) शीतल होने के कारण आश्चर्यजनक आप के महान् तेज को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥

(ऐसा कहकर चरणों पर गिरते हैं)

जामदग्न्य—हे कल्याणों के आश्रय (राम), आप के विषय में कहा गया आशीर्वाद पुनरुक्ति मात्र है (अर्थात् जिस बात के लिए मैं आशीर्वाद दूँगा वह पहले से ही आप में वर्तमान है)। तो भी (हम) यह इच्छा करते हैं—

हे सुन्दरियों के नेत्र-कमलों के समूह के अन्धकार से होनेवाली (संकोच) तन्द्रा (को विनष्ट करने) के लिए सूर्य (अर्थात् सुन्दरियों के नेत्र-कमलों को अपनी सुन्दरता से प्रफुल्लित करनेवाले हे राम), कीर्ति-समूह को दूर-दूर तक फैलाओ। हजार शरदों तक (अर्थात् हजार वर्षों तक) शासन करो। यह त्रिलोकी भी तुम्हारे बाणों से काट कर गिराये गए रावण के शिरों से आश्रित (अतः) खूब प्रसन्न हों देव, मनुष्य तथा नाग जिसमें—ऐसी बने ॥ ४८ ॥

निश्चये, किलेति पादपूर्तौ; शीतरोचिषः = चन्द्रस्य, महः = तेजः, शौम्यम् = शीतलम्, एवेति निश्चये, किलेति प्रसिद्धौ; चण्डसौम्यम् = तीक्ष्णशीतलम्, दुष्टे तीक्ष्णं सरले शीतलमित्यर्थः, इति = अनेन हेतुना, एकत्र विरुद्धयोर्द्वयोः स्वभावयोः स्थितिदर्शनेन हेतुना, कौतुकावहम् = आश्चर्योत्पादकम्, तावकम् = त्वदीयम्, महत् = विशालम्, अद्वितीयमित्यर्थः, महः = तेजः, अहम् = रामः, नौमि = नमस्करोमि। अत्र व्यतिरेकालङ्कारः। स्वागता वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे सुतनुनेत्रोत्पलवनीतमस्तन्द्राचण्डातप, यशःपूरम्, दूरम्, तनुः शरदाम्, सहस्राणि, तप; इयम्, त्रिजगती, च, युष्मच्छरशमितलङ्केश्वरशिरःश्रितोत्सङ्गा, नन्दत्सुरनरभुजङ्गा, आस्ताम् ॥ ४८ ॥

परशुराम आशिर्वदति—यशःपूरमिति। हे सुतनुनेत्रोत्पलवनीतमस्तन्द्रा-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तदनुजानीहि माम्। (इति निष्क्रान्तः)

रामः—(लक्ष्मणं प्रति) ननु कथं नयनपथमतिक्रान्त एव भगवान्। तदेहि। भृगुकुलतिलकवियोगखिन्नमात्मानं बन्धुजनविलोकनेन विनोदयावः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः

चण्डातप—सुतनूनाम् = सुन्दरीणाम् नेत्राणि = लोचनानि एव उत्पलानि = कमलानि तेषां वनी = उद्यानपरम्परा तस्याः तमस्तन्द्रा = अन्धकारजन्यः संकोचः, कमलनेत्रसंकोच इत्यर्थः, तस्याः चण्डातपः = सूर्यः तत्सम्बुद्धौ, अत्र सुन्दर्यः वन्यः, नेत्राणि कमलानि, रामश्चण्डातपो बोध्यः, हे रमणीनेत्राह्लादक इत्यर्थः, यशःपूरम्—यशसः = कीर्तेः पूरम् = प्रवाहम् , समुदायमित्यर्थः, दूरम् = दिगन्तं यावत् , तनु = विस्तारय। दिग्दिगन्तविश्रुतकीर्तिर्भवेत्यर्थः। शरदाम् = वर्षाणामित्यर्थः, सहस्राणि = दशशतानि, तप = राज्यं कुरु इत्यर्थः। इयम् = एषा, त्रिजगती = त्रिलोकी, च = अपि, युस्मच्छरशमितलङ्केश्वरशिरःश्रितोत्सङ्गा—युस्मच्छरैः = भवद्बाणैः शमितानि = खण्डितानि यानि लङ्केश्वरस्य शिरांसि = मस्तकानि तैः श्रितः = अधिष्ठितः उत्सङ्गः = क्रोडः यस्याः सा तादृशी, तथा नन्दत्सुरनरभुजङ्गा—नन्दन्तः = आनन्दं प्राप्नुवन्तः सुरनरभुजङ्गाः = देवमनुष्यनागाः यस्यां सा तादृशी, आस्ताम् = जायताम्। अत्र रूपकं वृत्यनुप्रासश्चालङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४८ ॥

राम इति। नयनपथम् = नेत्रमार्गम् , अतिक्रान्तः = अतीत्य निर्गतः। भृगुकुलतिलकवियोगखिन्नम्—भृगुकुलस्य = भार्गववंशस्य तिलकः = आभूषणभूत इत्यर्थः तस्य वियोगेन = विरहेण खिन्नम् = दुःखितम् ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां प्रसन्नराघवव्याख्यायां रमाख्यायां चतुर्थोऽङ्कः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तो मुझे आज्ञा दो (ऐसा कह कर निकल गए)

राम—(लक्ष्मण से) क्या भगवान् (परशुराम) नेत्रों की पहुँच से ओझल हो गये ? तो आओ । भृगुकुल के आभूषण रूप (भगवान् परशुराम) के वियोग से दुःखी अपने आप को (हम लोग) बन्धुजनों के मिलन से प्रसन्न करें ॥

(इस प्रकार सभी निकल गये)

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो गङ्गायमुने)

गङ्गा—सखि कालिन्दि, किमिति दुर्मनायसे ।

यमुना--भगवति भागीरथि, अस्ति कारणम् ।

[भअवदि भाईरहि, अत्थि कालणम् ।]

गङ्गा—कीदृशं तत् ।

यमुना—एकं तावत् अस्ति मम भ्राता सुग्रीव इति ।

[एक्कं दाव अत्थि मह भादा सुग्गीवो त्ति ।]

गङ्गा—(सकौतुकम् , आत्मगतम्) अये, कथमस्याः कपिकुलोत्पन्नोऽपि भ्राता । (विमृश्य) उपपन्नमिदम् । अनयोः खल्वेक एवायं सविता प्रसविता । (प्रकाशम्) अथ किं तस्य ।

यमुना—सोऽतिबलिष्ठेन दुष्टवलीमुखेन वालिनामधेयेन परिभूत एकदुर्गमात्रशरणः कतिपयपरिवारस्तिष्ठति ।

[सोतिबलिट्ठेण दुट्ठवलीमुहेण वालिणामहेएण परिहूदो एकदुग्गमत्तसरणो कइपअपरिवारो चिट्ठदि ।]

गङ्गा—नन्विमावपि भ्रातरौ । तत्किमनयोरीदृशं वैरायितम् । (इत्यर्धोक्त एव) अथवा 'एकाभिप्राभिलाषो हि बीजं वैरमहातरोः' इति ख्यातमेतत् । तत्किमनेन । द्वितीयमपि कारणं कथय तावत् ।

यमुना—कस्मिन्नपि दिवसे गृहीततपस्याविव मन्मथवसन्तौ द्वावपि तरुणौ जटाधरौ एका चक्रवाकस्तनीचन्द्रवदना मामुत्तीर्य दक्षिणं चलितुमुपक्रान्ता ।

[कस्सिंपि दिअहे गहीअतवस्सा विअ मम्महवसन्ता दोवि तरुणा जटाहरा एका चक्कवाकत्थणी चन्दवअणा मं उत्तरिअ दक्खिणं चलिदुं उवकन्ता ।]

गङ्गा—ततस्ततः ।

गङ्गेति । किम् = कस्मात् , इति = इत्थम् , दुर्मनायसे = खिन्ना भवसि ?

गङ्गेति । इदम् = अनयोर्यमुनासुग्रीवयोः सम्बन्धत्वम् , उपपन्नम् = युक्तियुक्तम्, उभयोरपि सूर्यतनयत्वादिति । कपिकुलोत्पन्नः—कपिकुले = वानरवंशे । सविता = सूर्यः, प्रसविता = उत्पादकः, जनक इत्यर्थः ॥

यमुनेति । सः = सुग्रीवः, दुष्टवलीमुखेन = दुष्टवानरेण ('⋯⋯ वलीमुखाः । मर्कटो वानरः' इत्यमरः), वालिनामधेयेन—वालिः नामधेयम् = नाम यस्य स तेन, ('नामधेयञ्च नाम च' इत्यमरः), परिभूतः = पराजितः, एकदुर्गमात्रशरणः—एकः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पञ्चम अङ्क

(तदनन्तर गङ्गा और यमुना प्रवेश करती हैं)

गङ्गा—सखि यमुने, क्यों इस तरह उदासीन रहती हो ?

यमुना—भगवति गङ्गे, (मेरे उदासीन रहने का कुछ) कारण है ।

गङ्गा—वह (कारण) कैसा है ?

यमुना—प्रथम (कारण) तो यह है (कि) सुग्रीवनामक मेरा भाई है ।

गङ्गा—(आश्चर्यपूर्वक, अपने आप) अरे ! वानरकुल में पैदा हुआ भी (व्यक्ति) इसका कैसे भाई हुआ ? (सोचकर) यह ठीक (भी) है । इन दोनों के एक ही पिता सूर्य हैं । (प्रकट रूप से) अच्छा तो उसका क्या (हुआ) ?

यमुना—वह अत्यन्त बलशाली वालिनामक दुष्ट वानर से पराजित होकर अपने कुछ परिवारों के साथ केवल एक दुर्ग (किला) में शरण लिये है ।

गङ्गा—ये दोनों भी भाई ही हैं । तो इन दोनों की ऐसी शत्रुता क्यों हो गयी ? (ऐसा आधा कहने पर ही) अथवा 'एक शिकार (उपभोग्य वस्तु) में इच्छा ही विरोध रूप महान् वृक्ष का बीज है'—यह तो प्रसिद्ध ही है । तो इस (विषय की जानकारी) से (हमारा) क्या (मतलब) ? अच्छा, दूसरे भी कारण को कहो ।

यमुना—किसी दिन तपस्यारत कामदेव और वसन्त के समान जटाधारी दो युवक और बड़े-बड़े स्तनों वाली एक चन्द्रमुखी (स्त्री) मुझे पार करके दक्षिण की ओर चलने के लिए तत्पर हुए ।

गङ्गा—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

केवलः दुर्गः एव शरणम् = आश्रयस्थलं रक्षकं वा यस्य सः ('शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः) कतिपयपरिवारः—कतिपयेः = केचन परिवाराः = कुटुम्बिनः यस्य सः तादृशः ॥

गङ्गेति । एकामिषाभिलाष.—एकस्मिन् आमिषे = मांसे, शरव्ये इति यावत्, वस्तुतस्तु आमिषं भोग्यवस्तुपरं पदमत्र, अभिलाषः = मनोरथः ('भोग्यवस्तुनि संभोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च' इति मेदिनी), बीजम् = मूलकारणम् , वैरमहातरोः—वैरम् = विरोध एव महातरुः—महावृक्षः तस्य ॥

यमुनेति । गृहीततपस्यौ—गृहीता = स्वीकृता तपस्या = तपश्चरणम् याभ्यां तौ, मन्मथवसन्तौ = कामदेववसन्तौ । चक्रवाकस्तनी—चक्रवाकौ = रथाङ्गनामानौ पक्षिणौ इव स्तनौ = उरोजौ यस्याः सा, अत्र विशालत्वात्परस्परसम्मिलितत्वमेव औपम्य-प्रयोजकम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—ततश्च तया क्षणं विलम्ब्य प्रणम्य मुकुलितकरकमलयुगलयाहमीदृशं विज्ञप्ता—'अयि देवि दिनकरनन्दिनि, पुनरपि निजकुटुम्बस्य दर्शनप्रसादं कुरुष्व' इति।

[तदो अ तीए खणं विलम्बिअ पणमिअ मउलिअकरकमलजुअलाए अहमेरिसं विण्णत्ता—'अयि देवि दिणअरणन्दिणि, पुणोवि णिअकुडुम्बस्स दंसणप्पसादं करेसु' त्ति।]

गङ्गा—तत्कथं सम्भावयसि।

यमुना—(गङ्गायाः कर्णे) एवमेव।

[एव्वमेव।]

गङ्गा—असम्भावनीयमिदम्। तन्नूनमावर्तशतभ्रमितहृदया किमप्यलीकमनुभूतवती। (विमृश्य) अथवा को जानाति विधेः संविधानवैदग्ध्यम्।

यमुना—यदि संवृत्तस्तत्कथं भगवत्या न गोचरोऽयं वृत्तान्तः।

[जइ संवुत्तो ता कहं भअवदीए ण गोअरो इमो वुत्तन्तो।]

गङ्गा—न किंचिदेतत्। मया हि ब्रह्मलोकादागतायाः सरस्वत्याः समागमसुखव्यग्रचित्तया स्थितम्। तदेहि। इयमदूरे सरयूः। तेन हि तन्मुखादेव निरूपयावः।

(इति परिक्रामतः)

(प्रविश्य)

सरयूः—देव्यौ, नमो वाम्।

उभे—आलि, अवितथमङ्गला भव।

गङ्गा—(सरयूं हस्ते गृहीत्वा) सखि, कथं तापनिमग्नमङ्गकं ते।

सरयूः—भगवति, प्रतीपमाभाषसे। ननु लज्जापङ्कनिमज्जनमनुभवन्त्या मेऽधावलम्बनोऽयमङ्गसन्ताप इति।

गङ्गा—स्पष्टं तावदावेदय।

यमुनेति। मुकुलितकरकमलयुगलया—मुकुलितम् = सङ्कुचितम्, बद्धमित्यर्थः, करकमलयुगलम् = हस्तकमलमिथुनम् यया सा तया॥

गङ्गेति। आवर्तशतभ्रमितहृदया—आवर्तानाम् = अम्भसां भ्रमाणाम् शतेन = समुदायेनेत्यर्थः भ्रमितम् = पर्याकुलितम् = मनः अन्तर्जलमित्यर्थः यस्याः सा। अलीकम् = वितथम्, असत्यमिर्थः। विधेः = ब्रह्मणः, संविधानवैदग्ध्यम्—संविधानस्य = कार्यस्य वैदग्ध्यम् = चातुर्यम्॥

यमुनेति—संवृत्तः = सञ्जातः, गोचरः = श्रवणमागतः इत्यर्थः॥

गङ्गेति। समागमसुखव्यग्रचित्तया—समागमस्य = मिलनस्य सुखं = आनन्दं व्यग्रम् = तल्लीनम् चित्तम् = मनः यस्याः सा तया। अदूरे = निकटे, किञ्चिद्दूरे इत्यर्थः॥

गङ्गेति। तापनिमग्नम्—तापे = उष्णतायाम् निमग्नम् = ब्रुडितम्, सन्तप्तमित्यर्थः॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—उसके बाद एक क्षण विलम्ब करके (अर्थात् थोड़ी देर बाद) प्रणाम करके कमल सदृश (अपने) दोनों हाथ जोड़े हुई उसने मुझसे कहा—'अयि देवि सूर्यपुत्रि, भविष्य में भी (लौटकर आए हुए) अपने परिवार को (अर्थात् सूर्य-कुलोत्पन्न राम, लक्ष्मण और मुझको) दर्शन देने की कृपा करना (अर्थात् आशीष दो कि हम लोग सकुशल लौट कर तुम्हारा दर्शन करें)।

गङ्गा—तो कैसी सम्भावना करती हो ? (अर्थात् उन लोगों के वन जाने के कारण के विषय में क्या विचार करती हो ?)।

यमुना—(गङ्गा के कान में) ऐसा ऐसा......।

गङ्गा—यह असम्भव है। तो निश्चय ही सैकड़ों आवर्तों (भँवरों) से अस्थिर हृदयवाली (तुमने) कुछ गलत अनुभव किया है। (सोचकर) अथवा विधाता के कार्य की चातुरी कौन जानता है ?

विशेष—आवर्तशतभ्रमितहृदया—जिस व्यक्ति का हृदय (मन) चकराता रहता है वह किसी भी बात को ठीक से समझ नहीं पाता है। नदियों के प्रवाह में चक्करदार भँवर बहुत होती हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर गङ्गा कहती हैं।

यमुना—यदि (ऐसा) हुआ है तो आपको यह समाचार क्यों नहीं ज्ञात हुआ ?

गङ्गा—यह कुछ नहीं (अर्थात् इसकी कोई बात नहीं)। क्योंकि मैं ब्रह्मलोक से आई हुई सरस्वती के मिलन-सुख में तल्लीन-चित्त थी। तो आओ। यह सरयू (घाघरा) कुछ ही दूर पर (है)। अतः उसके ही मुख से सुनें।

(ऐसा कहकर घूमती हैं)

(प्रवेश करके)

सरयू— देवियों, आप दोनों को नमस्कार है।

दोनों—सखि, सदा मङ्गल से सम्पन्न बनी रहो (अर्थात् कल्याणवती बनी रहो)।

गङ्गा—(सरयू को हाथ से पकड़ कर) सखि, तुम्हारा अङ्ग क्यों गरम है ?

सरयू— भगवति, (आप) उलटा कह रही हैं। लज्जारूप कीचड़ में बूड़ने का अनुभव करती हुई मेरे अङ्गों का यह सन्ताप आधा हो गया है।

विशेष—अर्धावलम्बनः—ज्वर से सन्तप्त व्यक्ति के शरीर पर यदि गीली मिट्टी बाँध दी जाय तो सन्ताप (शरीर की गर्मी) अपने-आप समाप्त हो जाती है। सरयू लज्जारूप गीली मिट्टी (कीचड़) में डूबी है। अतः उसका सन्ताप आधा हो गया है।

गङ्गा—अच्छा, स्पष्ट बतलाओ (कि क्या बात है)।

सरयूरिति। प्रतीपम् = विपरीतम्। लज्जापङ्कनिमज्जनम्—लज्जा = व्रीडा एव पङ्कः = कर्दमः ('पङ्कोऽस्त्रीशादकर्दमौ, इत्यमरः) तत्र निमज्जनम् = अवगाहनम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयूः—

बहलगलितैः सन्तापोष्णैस्तटान्तविहारिभि-
र्दशरथपुरीपौरस्त्रीणां विलोचनवारिभिः ।
उपचयवतीं सन्तापोष्णां निजां दधती तनू-
मिह मुहुरहं मातर्लज्जां वहामि जहामि च ॥ १ ॥

गङ्गा—(सातङ्कम्) किं पुनरासामश्रुवृष्टेः कारणम् ।

सरयूः—(गङ्गायाः कर्णे) एवमेवम् ।

गङ्गा—हा इन्दुमतिनन्दन, हा सकललोकहृदयानन्दनचन्दन, हा महाकोदण्डपण्डित, हा आखण्डलप्रियसख, हा निजतनयनिर्विशेषप्रीतिपरिपालितसकललोक, हा रामभद्रैक-जीवित । (इति मूर्च्छति)

सरयूः—(स्वगतम्) अस्यैव विलसितमेतत् ।

गङ्गा—हा महाराज दशरथ । (इति मूर्च्छिता पतति)

यमुना—(अंशुकाञ्चलेन वीजयन्ती) भगवति, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । नन्वेतैरेव गुणैरशोचनीयोऽसौ राजा ।

[भअवदि, समस्ससिहि समस्ससिहि । णं इमेहिं जेव्व गुणेहिं असोअणिज्जो सो राआ ।]

गङ्गा—(सरयूं प्रति) सखि, तवैव न केवलमयं तापः, सर्वजनसाधारणः खल्वसौ । तदेनं रामभद्रच्छत्रच्छाययापनोदयामः ।

अन्वयः—हे मातः, बहलगलितैः, सन्तापोष्णैः, तटान्तविहारिभिः, दशरथपुरीपौरस्त्री-णाम्, विलोचनवारिभिः, उपचयवतीम्, सन्तापोष्णाम्, निजाम्, तनूम्, दधती, अहम्, इह, लज्जाम्, वहामि, जहामि, च ॥ १ ॥

स्वलज्जासन्तापकारणं सूचयन्त्याह—बहलगलितैरिति । हे मातः = हे जननि, बहलम् = पर्याप्तं यथास्यात्तथा गलितैः = निस्सृतैः, सन्तापोष्णैः—सन्तापेन = शोकेन, रामवनवासदशरथमृत्युजनितेन शोकेनेत्यर्थः, उष्णैः = सन्तप्तैः, तटान्तविहारिभिः—तटान्ते = तटसमीपे विहारिभिः = प्रवहमानैः, दशरथपुरीपौरस्त्रीणाम्—दशरथस्य पुरी = नगरी, अयोध्येत्यर्थः, तस्याः पौरस्त्रीणाम् = नगरनिवासिस्त्रीणाम्, विलोचनवारिभिः = अश्रुभिः, उपचयवतीम् = वृद्धिङ्गताम्, अनेन तासां विलापाधिक्यं सूचितम्, सन्तापो-ष्णाम्, सन्तापेन = शोकेन उष्णाम् = सन्तप्ताम्, निजाम् = स्वकीयाम्, तनूम् = शरीरम्, दधती = धारयन्ती, अहम् = अयोध्याप्रान्तवाहिनी सरयूरित्यर्थः, इह = अधुना, लज्जाम् = व्रीडाम्, वहामि = अनुभवामि, जहामि = त्यजामि, च = अपि, लज्जामिति शेषः । शोकाकुलपौरस्त्रीणां नेत्रजलैः स्वशरीरमुपचितं विलोक्य लज्जां वहामि तथा एवं-विधस्य जनप्रियस्य नरेन्द्रस्य पुरीमनुवहामीति लज्जात्यागकारणम् । लज्जावस्थायां शरीर-सन्तापस्तु अर्थावलम्बी भवत्येवेति पूर्ववाक्यव्याख्या । हरिणीवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥' १ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयू—हे मातः, अधिक गिरे हुए, सन्ताप के कारण गरम, किनारे-किनारे बहनेवाले, अयोध्याकी नगरनिवासिनी स्त्रियों के आँसुओं से बढ़े हुए अपने शरीर को धारण करती हुई मैं सम्प्रति लज्जा का अनुभव कर रही हूँ (तथा उसे) छोड़ भी रही हूँ ॥ १ ॥

गङ्गा—(भयपूर्वक) अच्छा, इन (स्त्रियों) की अश्रुवृष्टि का कारण क्या है ?

सरयू—(गङ्गा के कान में) ऐसा ऐसा ·····।

विशेष—विवाह, भोजन, शाप का मिलना तथा छूटना, मृत्यु तथा सम्भोग—आदि रङ्गमञ्च पर न तो दिखलाए जाते हैं और न स्पष्ट कहे ही जाते हैं। अतः यहाँ दशरथ की मृत्यु की सूचना कान में धीरे से दी गई।

गङ्गा—'हा इन्दुमती के पुत्र, हा सब लोगों के हृदय को आनन्दित करने में चन्दनसदृश, हा महाधनुर्धर, हा इन्द्र के प्रिय मित्र, हा अपने पुत्र के समान, प्रेम से, सब लोगों का पालन करनेवाले, हा राममय जीवनवाले। (ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाती है।)

सरयू—(अपने आप) यह (दशरथ का मरण) इसी का (अर्थात् राममय-जीवन होने का ही) पारिणाम है।

गङ्गा—हा महाराज दशरथ (ऐसा कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं)।

यमुना—(आँचल से हवा करती हुई) भगवति, धीरज रक्खें, धीरज रक्खें। इन्हीं (अपने) गुणों के कारण ही राजा (दशरथ) शोक करने के योग्य नहीं हैं।

गङ्गा—(सरयू के प्रति) सखि, यह दुःख केवल तुम्हें ही नहीं है अपितु यह सभी लोगों के लिए एक समान है। अतः इसे रामभद्र की छत्रच्छाया से (हमलोग) मिटावें।

गङ्गेति। इन्दुमतिनन्दन—इन्दुमत्याः = अजपत्न्याः नन्दनः = सुतः तत्सम्बुद्धौ, सकललोकहृदयानन्दनचन्दन—सकललोकस्य = सम्पूर्णजनस्य हृदयस्य = चेतसः आनन्दने = सुखप्रदाने चन्दनः = मलयजसदृशः तत्सम्बुद्धौ, महाकोदण्डपण्डित—महान् = विश्वविश्रुतः स चासौ कोदण्डे=धनुषि पण्डितः तत्सम्बुद्धौ, आखण्डलप्रियसख—आखण्डलस्य = इन्द्रस्य प्रियसखः = प्रियमित्रम् तत्सम्बुद्धौ, निजतनयनिर्विशेषप्रीतिपरिपालितसकललोक—निजतनयेभ्यः = स्वपुत्रेभ्यः निर्विशेषा = तुल्येत्यर्थः या प्रीतिः = प्रेम तया परिपालितः = रक्षितः सकलः = समग्रः लोकः = प्रजाजनः येन असौ तत्सम्बुद्धौ, रामभद्रैकजीवित—रामभद्रः = रामचन्द्रः एकम् = केवलम् जीवितम् = जीवनम् यस्य स तत्सम्बुद्धौ ॥

सरयूरिति। अस्यैव = राममयजीवितत्वस्यैव, दशरथस्य राममयजीवनत्वादेवेत्यर्थः, विलसितम् = परिणामम् , एतत् = दशरथमरणम् ॥

गङ्गेति। सर्वजनसाधारणः—सर्वजने = सकललोके साधारणः = सामान्यः, असौ = तापः। रामभद्रच्छत्रच्छायया—रामभद्रस्य = रामचन्द्रस्य छत्रच्छायया = आतपत्रच्छायया, संरक्षणेनेत्यर्थः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयूः—(निःश्वस्य) भगवति, न खल्वप्रोषितसलिलसेकः कमलकेदारः परिशुष्यति ।

गङ्गा—स्पष्टं तावत्कथय ।

(सरयूरधरस्फुरणं नाटयति)

गङ्गा—अलमलम् । कथं दावानलशोषितायां तरुशाखायां कुठारमारोपयितुमिच्छसि । अथवा कथय तावत् ।

सरयूः—(स्वगतम्) अहो,

न ज्ञातुं नाप्यनुज्ञातुं नेक्षितुं नाप्युपेक्षितुम् ।
सुजनः स्वजने जातं विपत्पातं समीहते ॥ २ ॥

(प्रकाशम्) रामभद्रमभिषेक्तुं कृतमनोरथं दशरथमेत्य कैकेयी प्रथमं तावदिदमुक्तवती ।

इदमेव नरेन्द्राणां स्वर्गद्वारमनर्गलम् ।
यदात्मनः प्रतिज्ञा च प्रजा च परिपाल्यते ॥ ३ ॥

गङ्गा—(स्वगतम्) अनेनैव तावदकल्याणरुचिः सूचिता दुराशया । (प्रकाशम्) चरमं च किम् ।

सरयूः—

त्वया देयं यन्मे द्वयमभिहितं देहि तदिदं
वनं कौसल्येयो विशतु युवराजोऽस्तु भरतः ।

गङ्गा—(सोद्वेगम्) ततः किं वृत्तम् ।

सरयूः—

इतीदं कैकेय्या वचनमधिगम्याकुलमतेः
पितुः पादौ नत्वा मुदितहृदयोऽसौ वनमगात् ॥ ४ ॥

सरयूरिति । अप्रोषितसलिलसेकः—अप्रोषितः = अदूरीकृतः सलिलस्य = जलस्य सेकः = सिञ्चनम् यस्मिन् सः, जलभरित इत्यर्थः, कमलकेदारः—कमलानाम् = जलजानाम् केदारः = क्षेत्रम् । सति रामचन्द्रे दशरथस्य मरणमेव न शक्यसम्भवमासीत् । अतः कुतोऽस्माकं रामचन्द्रच्छत्रच्छायया विनोदावसरः इति ॥

गङ्गेति । दावानलशोषितायाम्—दावानलेन = वनाग्निना शोषितायाम् = दग्धायाम्, तरुशाखायाम् = वृक्षविटपे ॥

अन्वयः—सुजनः, स्वजने, जातम्, विपत्पातम्, न, ज्ञातुम्, नाऽपि, अनुज्ञातुम्, न, ईक्षितुम्, नाऽपि, उपेक्षितुम्, समीहते ॥ २ ॥

न ज्ञातुमिति । सुजनः = सद्व्यक्तिः, स्वजने = आत्मीये जने, जातम् = आगतम्, विपत्पातम्—विपदः = आपदः पातम् = आगमनम्, न ज्ञातुम् = नावबोद्धुम्, नाऽपि = न तु, अनुज्ञातुम् = अनुमन्तुम्, न ईक्षितुम् = नावलोकयितुम्, नाऽपि = न तु, उपेक्षितुम् = तिरस्कर्तुम्, समीहते = वाञ्छति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २ ॥

अन्वयः—यत्, आत्मनः, प्रतिज्ञा, प्रजा, च, परिपाल्यते; नरेन्द्राणाम्, इदम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयू—(लम्बी सांस लेकर) भगवति, जल सम्पर्क के दूर हुए बिना कमल की क्यारी नहीं सूखती है।

गङ्गा—स्पष्ट बतलाओ (कि क्या बात है ?)।

(सरयू ओंठ कँपाने का अभिनय करती है)

गङ्गा—बस करो, बस करो। क्या वनाग्नि के द्वारा झुलसी हुई, वृक्ष की डाल में कुल्हाड़ी मारना चाहती हो ? (अर्थात् दुःख पर दुःख सुनाना चाहती हो ?)। अथवा कह ही डालो।

सरयू—अहो !

अच्छे स्वभाववाला व्यक्ति अपने लोगों पर आई हुई विपत्ति को न जानने की, न तो अनुमोदन करने की, न देखने की, नहीं तो उपेक्षा करने की इच्छा करता है ॥२॥

(प्रकट रूप में) रामभद्र को (राजगद्दी पर) अभिषेक करने की इच्छा करने वाले दशरथ के पास जाकर कैकेयी ने पहले यह कहा—

क्योंकि अपनी प्रतिज्ञा तथा प्रजा (का) पालन करना ही राजाओं के लिए यही खुला हुआ स्वर्ग का दरवाजा (है) (अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा तथा प्रजा का पालन करने से ही राजा लोग स्वर्ग में जाते हैं) ॥ ३ ॥

गङ्गा—(अपने आप) दुष्ट स्वभाव वाली कैकेयी के द्वारा इसी ने ही सर्वप्रथम अमङ्गल में (अपनी) रुचि सूचित की गई। (प्रकट रूप में) अच्छा, अन्त में क्या (हुआ) ?

सरयू—आपने (पहले) जो दो वरदान मुझे (देने के लिए) कहा था, उन्हें अब दीजिए—कौशल्या, पुत्र (राम) वन जायँ। भरत युवराज बनें। (ये ही दो वरदान माँग रही हूँ)।

गङ्गा—(व्याकुलता के साथ) उसके बाद क्या हुआ ?

सरयू—कैकेयी के इस तरह इस वचन को सुन कर, व्याकुल बुद्धिवाले पिता के चरणों में प्रणाम करके प्रसन्नचित्त वह (राम) वन चले गये ॥ ४ ॥

एव, अनर्गलम्, स्वर्गद्वारम्, (अस्ति) ॥ ३ ॥

इदमेवेति। यत् = यस्मात्, आत्मनः = स्वस्य, प्रतिज्ञा = प्रणः, प्रजा = राज्यजनः, च, परिपाल्यते = रक्ष्यते; नरेन्द्राणाम् = भूपालानाम्, इदमेव = एतदेव, अनर्गलम् = न विद्यते अर्गला = कीलकम् यस्मिन् तत्, उद्घाटितमित्यर्थः, स्वर्गद्वारम्—स्वर्गस्य = देवलोकस्य द्वारम् = साधनम्, अस्तीति शेषः। अतो भवताप्येतत् कर्तव्यमित्याशयः ॥ ३ ॥

गङ्गेति। अकल्याणरुचिः—अकल्याणे = अमङ्गले रुचिः = इच्छा, दुराशया—दुः = दुष्टः आशयः = स्वभावः यस्याः सा तया। चरमम् = पारिणामे ॥

अन्वयः—त्वया, यत्, द्वयम्, देयम्, मे अभिहितम्; तत्, इदम्, देहि,—कौशल्येयः, वनम्, विशतु; भरतः, युवराजः, अस्तु। कैकेय्याः, इति, इदम्, वचनम्, अधिगम्य, आकुलमतेः, पितुः, पादौ, नत्वा, मुदितहृदयः, असौ, वनम्, अगात् ॥४॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा--यमुने, तदिदं यत्कथितवत्यसि । (सविषादम्) हा, रघुकुलकुटुम्बं निहतमिति ।

यमुना—भगवति, एकं किं रघुकुलकुटुम्बकम् । ननु मृगमहर्षिवनदेवताः परिहृत्य सकल एव जीवलोको रामचन्द्रमुखचन्द्रविलोकनविहीनत्वेन निहतः ।

[भअवदि, एक्कं किं रघुकुलकुटुम्बअं । णं मिअमहेसिवणदेवदाओ परिहरिअ सअलो जेव्व जीअलोओ रामचन्दमुहचन्दविलोअणविहीणत्तणेण णिहदो ।

सरयूः—एवमेतत् ।

प्रोषितवति रजनिकरे बन्धुतया न खलु कैरवाण्येव ।
म्लायन्ति किन्तु सहसा भुवनान्यपि तमसि मज्जन्ति ॥ ५ ॥

गङ्गा—एवमेतत् । परं सखि सरयु, कथय तावत् कीदृशी वृत्तिः सीतालक्ष्मणयोर्वत्सरामभद्रे ।

सरयूः—तौ हि तस्य सदैव सन्निहितौ चन्द्रिकाप्रसादाविव चन्द्रमसः । अतो जानास्येव यादृशी चन्द्रिकाप्रसादयोरेव चन्द्रमसि ।

गङ्गा—(स्वगतम्, सहर्षम्) कथं सहैव वनं गतावित्युक्तं भवति । (प्रकाशम्) सखि, जीवितास्मि तावदनेन वागमृतेन । क्षणमपि हि रामचन्द्रविरहमनुभवितुमसहा मे वत्सा जानकी ।

सरयूः—एवमेतत् । रामचन्द्रेण हीदमुक्ता जानकी—

'अम्बाः शुश्रूषमाणा मे शरदः कतिचिन्नय ।'

कैकेय्युक्तिमाह—त्वयेति । त्वया = भवता, पुरातने काले, यत्, द्वितयम्, देयम् = वरम्, मे = मम, अभिहितम् = कथितम्; तत्, इदम् = एतत्, वक्ष्यमाणं सम्प्रति वेत्यर्थः, देहि = समर्पय । तदेव विवृणोति—कौशल्येयः—कौशल्यापुत्रः रामः, वनम् = अरण्यम्, विशतु = प्रविशतु, एतत् प्रथमं देयम् । द्वितीयं तु भरतः = मम पुत्रः युवराजः = युवराजपदभाक्, अस्तु = भवतु । कैकेय्याः = भरतमातुः, इति = इत्थम्, इदम् = एतत्, वचनम् = वाक्यम्, अधिगम्य = आकुलमतेः—आकुला = व्याकुला मतिः = बुद्धिः यस्य स तस्य, पितुः = तातस्य, दशरथस्येत्यर्थः, पादौ = चरणौ, नत्वा = प्रणम्य, मुदितहृदयः—मुदितम् = प्रसन्नम् हृदयम् = चेतः यस्यासौ, अत एव नाटकस्य प्रसन्नराघवं नाम सार्थकमिति, असौ = स रामभद्रः, वनम् = अरण्यम्, अगात् = गतः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४ ॥

यमुनेति । रामचन्द्रमुखचन्द्रविलोकनविहीनत्वेन—रामचन्द्रस्य = रामस्य मुखचन्द्रस्य = आननसुधांशोः विलोकनस्य = दर्शनस्य विहीनत्वेन = वञ्चितत्वेन ॥

अन्वयः—रजनिकरे, प्रोषितवति (सति), बन्धुतया, कैरवाणि, एव, न खलु, म्लायन्ति; किन्तु, भुवनानि, अपि, तमसि, सहसा, मज्जन्ति ॥ ५ ॥

प्रोषितवतीति । रजनिकरे = चन्द्रे, प्रोषितवति = दूरङ्गते, अस्तमिते, (सति),

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—यमुने, यह वही (बात है) जिसे (तुम) कह चुकी हो। (दुःख के साथ) हा, रघुवंश का सारा परिवार मारा गया।

यमुना—भगवति, क्या केवल रघुवंश का परिवार (ही मारा गया ?)। अरे, जङ्गली पशुओं, महर्षियों तथा वनदेवताओं को छोड़कर सारा ही प्राणि-समुदाय रामचन्द्र के मुखचन्द्र के दर्शन से वञ्चित होने के कारण मारा गया है।

सरयू—यह ऐसा ही है (जैसा कि आप कह रही हैं)।

चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर अत्यधिक प्रेम होने के कारण कुमुद ही नहीं मलिन होते हैं, बल्कि समग्र जगत् भी अन्धकार में एकाएक लीन हो जाता है ॥ ५ ॥

गङ्गा—यह ठीक है। किन्तु सखि सरयु, बतलाओ तो वत्स रामचन्द्र के विषय में सीता और लक्ष्मण का कैसा व्यवहार हुआ ?

सरयू—चन्द्रमा की चाँदनी और निर्मलपन (नैर्मल्य) के समान वे दोनों सर्वदा उन (रामचन्द्र) के पास ही रहते हैं। अतः (आप) जानती ही हैं चन्द्रमा में चाँदनी और नैर्मल्य का जैसा (व्यवहार है)।

गङ्गा—(अपने आप, प्रसन्नतापूर्वक) क्या (वे दोनों भी) साथ ही वन गए—यह अर्थ निकलता है ? (प्रकट रूप में) सखि, सम्प्रति (तुम्हारे इस वचनरूपी अमृत से (मैं) जी उठी। क्योंकि मेरी बेटी सीता क्षण भर भी रामचन्द्र के विरह को सहन करने में समर्थ नहीं है।

सरयू—हाँ यह ठीक है। रामचन्द्र ने जानकी से यह कहा-

(हे सीते, तुम) मेरी माताओं की सेवा करती हुई कुछ (अर्थात् चौदह) वर्षों को बिताओ।

बन्धुतया = प्रेमभावनया, कैरवाणि = कुमुदानि, एव, न खलु = नहि, म्लायन्ति = मलिनानि भवन्ति: किन्तु = अपि तु, भुवनानि = लोकाः, अपि, तमसि = अन्धकारे, सहसा = झटिति, मज्जन्ति = आच्छन्नानि भवन्ति। कैरवेण सह सादृश्यमत्र रघुकुलकुटुम्बस्य। आर्या वृत्तम् ॥ ५ ॥

सरयूरिति। सन्निहितौ = समीपस्थौ, अभिन्नाविति यावत्: चन्द्रिकाप्रसादौ = कौमुदीस्वच्छभावौ ॥

अन्वयः—(हे सीते, त्वम्), मे, अम्बाः, शुश्रूषमाणाः, कतिचित्, शरदः, नय—इतिपूर्वार्द्धान्वयः।

अम्बा इति। (हे सीते, त्वम्) मे = मम, अम्बाः = मातॄः, शुश्रूषमाणा = सेवमाना, सतीति शेषः, कतिचित् = कियत्संख्याकाः, चतुर्दशवर्षात्मिका इत्यर्थः, शरदः = वत्सरान्, नय = यापय—इतिपूर्वार्द्धव्याख्या।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

इदमाकर्ण्य तथा मूर्च्छिता जानकी यथा स्वजनकरोपनीतशीतशीकरासारसिक्तापि न प्रबुद्धा ।

यमुना—ततस्तुनः कथं प्रबुद्धा ।

[ता उण कहं पबुद्धा ।

सरयूः—

'वनं वनजपत्राक्षि समागच्छ सहैव वा ॥ ६ ॥

इत्यनेन रामवचनामृतेनैव ।

गङ्गा—उचितमिदं जानकीस्नेहस्य ।

यमुना—अपि नाम रामलक्ष्मणयोरपि कोऽपि संवादः संवृत्तः ।

[अवि णाम रामलक्खणाणं वि कोवि संवादो संवुत्तो ।]

सरयूः - अथ किम । इदमुक्तो हि रामचन्द्रेण लक्ष्मणः—

'गमय वत्स निमील्य विलोचने कतिचिदत्र निमेषसमाः समाः ।
अपि च मामिव शीलसुशीतलं शुभरतं भरतं परिशीलय ॥ ७ ॥

इदमुक्तं च लक्ष्मणेन—'अये रघुनाथ,

त्वया समं मे चत्वारि यामा एव युगान्यपि ।
चतुर्दश समाः स्थातुं विना मन्वन्तराणि मे ॥ ८ ॥

अपि च—

त्वया मम समेतस्य कल्पा अपि समासमाः ।
भवता विप्रयुक्तस्य कल्पकल्पः क्षणोऽपि मे ॥ ९ ॥

इदमाकर्ण्येति । स्वजनकरोपनीतशीतशीकरासारसिक्ता—स्वजनानाम् = कुटुम्बजनानाम् करैः = हस्तैः उपनीताः = आनीताः, दत्ता इति यावत् , ये शीताः = शीतलाः शीकराः = जलकणाः तेषाम् आसारैः = वर्षणैः सिक्ता = उक्षिता, प्रबुद्धा = चेतनामागता ॥

अन्वयः—हे वनजपत्राक्षि, वा, सह, एव, वनम् , समागच्छ ॥ ६ ॥

वनमिति । हे वनजपत्राक्षि—वने = जले ('जलम् ।......पयः......वनम् ॥' इत्यमरः) जातम् = उत्पन्नम् वनजम् = कमलम् तस्य पत्रे इव अक्षिणी यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, वा = अथवा, सहैव = साकमेव, मया साकमेवेत्यर्थः, वनम् = अरण्यम् , समागच्छ = आयाहि । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे वत्स, विलोचने, निमील्य, निमेषसमाः, कतिचित् , समाः, अत्र, गमय; अपि च, शीलसुशीतलम् , शुभरतम् , भरतम् , माम् , इव, परिशीलय ॥ ७ ॥

गमयेति । हे वत्स = हे स्नेह्य लक्ष्मण, विलोचने = नेत्रे, निमील्य = सम्पुटीकृत्य, निमेषसमाः = अक्षिनिमीलनतुल्याः, कतिचित् = कियत्संख्याः, समाः = वर्षाणि, अत्र = अयोध्यायाम् , गमय = यापय, अपि च = तथा, शीलसुशीतलम्—शीलेन = स्वभावेन सुशीतलम् = सुखकरम् , शुभरतम्—शुभे = कल्याणे रतम् = लग्नम् , भरतम् = कैकेयीपुत्रम् ; मामिव = यथा मां सेवसे तथैवेत्यर्थः, परिशीलय = शुश्रूषस्व । अनुप्रासालङ्कारः ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यह सुन कर सीता ऐसी मूर्च्छित हो गई कि बान्धवों के हाथ के द्वारा बहुशः ठण्डे (जल के) छींटों से सींची जाने पर भी होश में नहीं आयी।

यमुना—तो फिर कैसे होश में आयी ?

सरयू—हे कमललोचने, अथवा (हमारे) साथ ही वन चलो ॥ ६ ॥

रामचन्द्र के इस वचनामृत से ही (जगीं)।

गङ्गा—(रामचन्द्र के प्रति) जानकी के स्नेह के लिए यह उचित ही है।

यमुना—क्या राम और लक्ष्मण में भी कोई सम्वाद हुआ ?

सरयू—और क्या ? (अर्थात् हुआ)। रामचन्द्र ने लक्ष्मण से यह कहा—

हे वत्स, आँखें मूँद कर निमेष (आँख की पलक गिरने) के समान कुछ (अर्थात् चौदह) वर्षों को यहाँ बिताओ, तथा शीतल स्वभाववाले कल्याण में (अर्थात् धर्म में) संलग्न भरत की, मेरे समान, सेवा करो ॥ ७ ॥

तब लक्ष्मण ने यह कहा—'हे रघुनाथ,—

आप के साथ मेरे लिए चारों युग भी (चार) पहर (के बराबर) ही (हैं)। आप के बिना चौदह वर्ष (यहाँ अयोध्या में) रुकना मेरे लिए (चार) मन्वन्तर (प्रलय) के बराबर (हैं) ॥ ८ ॥

और भी—

आप के साथ रहने पर मेरे लिए कल्प भी वर्ष के बराबर (है)। आप से बिछुड़े हुए मेरे लिए क्षण भी कल्प के बराबर हैं ॥ ८ ॥

द्रुतविलम्बितं वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ॥ ७ ॥

अन्वयः—त्वया, समम्, मे, चत्वारि, युगानि, अपि, यामाः, एव; त्वया, विना, चतुर्दश, समाः, स्थातुम्, मे, मन्वन्तराणि, (सन्ति) ॥ ८ ॥

त्वयेति। त्वया = भवता, समम् = साकम्, मे = मम, चत्वारि = चतुःसंख्याकानि, युगानि = सत्यत्रेताद्वापरकलियुगानीत्यर्थः, अपि, यामाः = प्रहराः, चत्वारः प्रहरा इत्यर्थः, सुखमयत्वात्, एवेति निश्चये; त्वया = भवता, विना = संयोगाभावे इत्यर्थः, चतुर्दश समाः = वर्षाणि, स्थातुम् = निवसितुम्, अत्रेति शेषः, मे = मम, मन्वन्तराणि = दिव्ययुगैकसप्ततिः ('मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः' इत्यमरः), सन्तीति शेषः। अत्र यमकालङ्कारः। अनुष्टब्वृत्तम् ॥ ८ ॥

अन्वयः त्वया, समेतस्य, मम, कल्पाः, अपि, समासमाः, (सन्ति); भवता, विप्रयुक्तस्य, मे, क्षणः, अपि, कल्प-कल्पः, (वर्तते) ॥ ९ ॥

त्वया समेति। त्वया = भवता, समेतस्य = युक्तस्य, मम = मे, कल्पाः = प्रलयावधिकालाः, अपि समासमाः = वर्षतुल्याः, सन्तीति शेषः। भवता = श्रीमता त्वया, विप्रयुक्तस्य = विश्लेषितस्य, मे = मम, क्षणः = निमेषावधिकालः, अपि, कल्पकल्पः—कल्पेन—प्रलयावधिकालेन कल्पः = तुल्यः, वर्तते इति शेषः। यमकालङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ९ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—अपि नाम कौसल्ययापि किञ्चिच्छिक्षितो रामभद्रः ।

सरयूः—अथ किम् । सा हि 'अयि वत्स रामभद्र, सीताम्' इत्यर्धोक्त एव बाष्परुद्धकण्ठीदमुक्तवती—'अथवा वत्स, लक्ष्मणे रक्षितरि को भवान्सीतासमीक्षणस्य । तदिदं तावदभ्यर्थयामि ।

इह मुग्धमुखे वत्से लक्ष्मणे दक्षिणो भव ।
अपि राज्योपभोगेभ्यो यस्य त्वं सहजप्रियः ॥ १० ॥

इदमुक्तं च रामभद्रेण—'अपि मातः, निजजीवितेऽपि दक्षिणेन भवितव्यमित्यपि शिक्षणीयमेव ।

गङ्गा—तन्नूनं ततः प्रभृति सहजसौन्दर्यमेवाभरणं वत्सरामस्य ।

सरयूः—अन्यदप्येकम् । विमुञ्चन्सकलमाभरणजातमित्थमभ्यर्थितः कौसल्यया रामभद्रः—

हस्तावलम्बदानाय सीतामाङ्गल्यसंपदः ।
इदं विमुञ्च मा वत्स राम रत्नाङ्गलीयकम् ॥ ११ ॥

इदमन्यच्च ते कथयामि । धीरा समाकर्णय ।

गङ्गा—कथमेतावदाकर्णितवतीमपि मामधीरामाशङ्कसे ।

सरयूः— निकामं रामस्य प्रमुदितमुखाम्भोरुहरुचे-
र्जटावल्लीर्मल्लीमुकुलसदृशैर्बाष्पपृषतैः ।
निषिञ्चन्सौमित्रिः कथमपि वितेने खलु यदा
तदा जातं मातः करुणमयमेतज्जगदपि ॥ १२ ॥

सरयूरिति । बाष्परुद्धकण्ठी—बाष्पैः = अश्रुभिः रुद्धः=अवरुद्धः, भरित इति यावत्, कण्ठः = गलभागः यस्याः सा । सीतासमीक्षणस्य—सीतायाः = जानक्याः समीक्षणस्य = रक्षणस्य ॥

अन्वयः—राज्योपभोगेभ्यः, अपि, यस्य, त्वम् , सहजप्रियः, (असि, एतादृशे), इह, मुग्धमुखे, वत्से, लक्ष्मणे, दक्षिणः, भव ॥ १० ॥

इहेति । राज्योपभोगेभ्यः = साम्राज्यसुखानुभवेभ्यः, अपि, यस्य = लक्ष्मणस्य, त्वम् = भवान् , सहजप्रियः = स्वभावतः प्रियः, असि, तादृश इति शेषः, इह = अस्मिन् , मुग्धमुखे = बालके, अपरिणतवयःशीले इत्यर्थः, वत्से = प्रिये, लक्ष्मणे = सुमित्रानन्दने, दक्षिणः = अनुकूलः, भव = भवेः । राज्यसुखलिप्सां विहाय यः त्वामेवानुगन्तुं प्रवृत्तः एतादृशस्य लक्ष्मणस्य रक्षा त्वया कर्तव्येति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे वत्स राम, सीतामाङ्गल्यसम्पदः, हस्तावलम्बदानाय, इदम्, रत्नाङ्गलीयकम्, मा विमुञ्च ॥ ११ ॥

हस्तावलम्बेति । हे वत्स राम = हे पुत्र रामचन्द्र, सीतामाङ्गल्यसम्पदः—सीतायाः = जानक्याः माङ्गल्यम् = सौभाग्यम् एव सम्पत् = धनं तस्याः, हस्तावलम्बदानाय—हस्तस्य = करस्य अवलम्बः = साहाय्यम् तद्दानाय = तद्वितरणाय, वृद्ध्यर्थमित्यर्थः, इदम् = एतत्, रत्नाङ्गुलीयकम् = मणिखचिताङ्गुलिमुद्राम्, मा विमुञ्च = मा त्यज ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—क्या कौसल्या के द्वारा भी रामभद्र कुछ सिखलाए गये ?

सरयू—और क्या ! उन्होंने तो 'हे बेटा रामभद्र, सीता को.....'—ऐसा आधा ही कहने पर आँसुओं से रुँधे हुए गले वाली होकर, (अर्थात् आँसुओं से गले के रुँध जाने पर) यह कहा—'अथवा बेटा, रक्षमण के रक्षक रहने पर सीता की देख-रेख के लिए आप कौन हैं ? (अर्थात् लक्ष्मण के रहते सीता की रक्षा का भार आप पर रखने की आवश्यकता नहीं) । अतः सर्वप्रथम यह प्रार्थना करती हूँ—

राज्य के सुखापभोगों से भी (अधिक) जिसे तुम स्वभावतः प्रिय हो (ऐसे) इह दुधमुँहे वत्स लक्ष्मण पर (सर्वदा) अनुकूल (उदार) रहना ॥ १० ॥

तब रामभद्र ने यह कहा—'हे माँ, अपने जीवन के विषय में अनुकूल (उदार) होना चाहिए'—क्या (किसी को) यह भी सिखलाने की बात है ?

विशेष—निजजीवनेऽपि—इस कथन से रामचन्द्र ने यह व्यक्त किया है कि लक्ष्मण तो हमारे प्राणों के तुल्य हैं। उनकी रक्षा अपने प्राणों की रक्षा है। और किसी को भी अपने प्राणों की रक्षा सिखलानी नहीं पड़ती ॥

गङ्गा—तो निश्चय ही तब से वत्स राम का स्वाभाविक सौन्दर्य ही आभूषण (बन गया होगा) ।

सरयू—और भी एक (बात है) । सम्पूर्ण आभूषणों को त्यागते हुए रामभद्र से कौसल्या ने इस प्रकार प्रार्थना की—

हे बेटा राम, सीता के सौभाग्यरूपी सम्पत्ति को हाथ का सहारा देने के लिए (अर्थात् सीता के सुहाग की वृद्धि के लिए) इस रत्न जटित अँगूठी को मत उतारो ॥ ११ ॥

और यह कुछ और तुमसे कह रही हूँ। धैर्य-धारण कर सुनो ।

गङ्गा—इतना (दुःखद समाचार) सुननेवाली भी मुझको क्या धैर्य न धारण कर सकनेवाली सोचती हो ?

सरयू—हे मात, अत्यन्त प्रफुल्लित मुखकमल की कान्ति से सम्पन्न राम की जटारूपी लताओं को बेली की कलियों के समान आँसुओं की बूँदों से सींचते हुए लक्ष्मण ने किसी-किसी तरह (अर्थात् बड़े दुःख के साथ) जब बनाया तो उस समय यह (समग्र) जगत् भी शोकाकुल हो गया। (अर्थात् रोते हुए लक्ष्मण जब राम की जटाओं को बना रहे थे उस समय यह सारा जगत् भी शोकाकुल हो गया) ॥ १२ ॥

एतन्मात्रमाभूषणं धारय । अनेन सीतायाः सौभाग्यं रक्षितं भविता । अनेन अङ्गुलीयकद्वारा सीतापलब्ध्यादिकं सूचितम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मातः, निकामम्, प्रमुदितमुखाम्भोरुहरुचेः, रामस्य, जटावल्लीः, मल्लीमुकुलसदृशैः, बाष्पपृषतैः, निषिञ्चन्, सौमित्रिः, कथमपि, यदा, वितेने, खलु, तदा, एतत्, जगत्, अपि, करुणमयम्, जातम् ॥ १२ ॥

निकाममिति । हे मातः = हे जननि, निकामम् = अतिशयं यथा तथा, प्रमुदितमुखाम्भोरुहरुचेः—प्रमुदिता = ताताज्ञापालनात्प्रफुल्ला मुखाम्भोरुहस्य = मुखकमलस्य

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—अपि नाम तस्मिन्समये सीतापि किमपि शिक्षिता बन्धुजनेन ।
[अवि णाम तस्सिं समये सीदावि किंवि सिक्खिदा बन्धुअणेण ।]

सरयूः—अयि देवि, विपरीतमालपसि ।

गहनविपिनवासोत्कण्ठया सम्प्रयातं
प्रियतममनुयान्त्या तत्क्षणं राजपुत्र्या ।
चरणकमलगुञ्जन्मञ्जुमञ्जीरशब्दैः
स्फुटतरमुपदिष्टा बान्धवाः साधु वृत्तम् ॥ १३ ॥

इदं तु वृत्तम् ।

पुरः कान्तं यान्तं विपिनमनुयान्त्याः सरभसं
तदा तौ सीतायाः किसलयनिभौ वीक्ष्य चरणौ ।
मुहुः शीतास्तप्ताः किमपि च मुहुर्बन्धुनयनैः
समं मुक्ता मुक्तासदृशरुचयो बाष्पकणिकाः ॥ १४ ॥

गङ्गा—हर्षविषादयोर्विलसितमेतत् ।

सरयूः—इदं बन्धुजनेन शिक्षितो रामचन्द्रः—

'बाला विदेहतनया तरलौ भवन्तौ
दिग्दक्षिणा च रजनीचरचक्रदुष्टा ।
तद्वत्स वत्सलतयेदमुदाहरामो
मा राम गच्छ नयदक्षिण दक्षिणाशाम् ॥ १५ ॥

रुचिः = शोभा यस्य स तस्य, रामस्य = रामचन्द्रस्य, जटावल्लीः = सटालताः ('व्रतिनस्तु जटा सटा' इत्यमरः), मल्लीमुकुलसदृशैः—शुक्लपुष्पविशेषकुड्मलतुल्यैः, अतिस्वच्छैरित्यर्थः, बाष्पपृषतैः—अश्रुबिन्दुभिः निषिञ्चन् = सिञ्चनं कुर्वन्, सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् सौमित्रिः = लक्ष्मणः, कथमपि = यथाकथञ्चित्, अतिक्लेशेनेत्यर्थः, यदा = यस्मिन् काले, वितेने = सम्पादितवान्, खल्वितीतिवृत्तसूचनाय, तदा = तस्मिन् काले, एतत् = इदम्, जगत् = संसारः, अपि, करुणमयम् = शोकाकुलम्, जातम् = अभूत् । उपमालङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—गहनविपिनवासोत्कण्ठया, सम्प्रयान्तम्, प्रियतमम्, तत्क्षणम्, अनुयान्त्या, राजपुत्र्या, चरणकमलगुञ्जन्मञ्जुमञ्जीरशब्दैः, बान्धवाः, (एव), स्फुटतरम्, साधुवृत्तम्, उपदिष्टाः ॥ १३ ॥

गहनविपिनेति । गहनविपिनवासोत्कण्ठया—गहनम् = घोरम् यत् विपिनम् = अरण्यम् तत्र वासे = निवासे उत्कण्ठया = वाञ्छया, सम्प्रयान्तम् = गच्छन्तम्, वनमिति शेषः, प्रियतमम् = प्राणवल्लभम्, राममित्यर्थः, तत्क्षणम् = तत्कालम्, अनुयान्त्या = अनुगच्छन्त्या, राजपुत्र्या = राजसुतया, जानक्या इत्यर्थः, चरणकमलगुञ्जन्मञ्जुमञ्जीरशब्दैः—चरणकमलेषु = पादपद्मेषु गुञ्जन्ति = शब्दायमानानि यानि मञ्जुमञ्जीराणि = मनोहरनूपुराणि, मनोहरशब्दत्वात्तेषु मनोहरत्वं बोध्यम्, तेषां शब्दैः = झङ्कारैः, बान्धवाः = बन्धवः, एवेति शेषः, स्फुटतरम् = सुस्पष्टं यथा तथा, साधुवृत्तम् = सदाचरणम्, उप-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—क्या उस समय बन्धुजनों के द्वारा सीता भी कुछ सिखलाई गई ?

सरयू—अयि देवि, उलटा (ही) कह रही हो। घोर जङ्गल में निवास करने की उत्कण्ठा से जाते हुए प्राणवल्लभ (रामचन्द्र) का तत्क्षण अनुगमन करनेवाली राजपुत्री (सीता) के द्वारा, चरणकमलों में (स्थित) मधुर पायल की झङ्कारों से, बन्धुजन (ही) भली-भाँति सदाचरण का उपदेश दिये गये ॥ १३ ॥

और यह हुआ—उस समय आगे-आगे वन को जाते हुए पति (श्री रामचन्द्र) का सहर्ष अनुसरण करती हुई सीता के उन नये-नये निकले हुए लाल पत्तों के सदृश चरणों को देखकर (उनके) बन्धुओं के नेत्रों से बार-बार कुछ-कुछ ठण्ढी तथा गरम, मोती के समान कान्तिवाली आँसुओं की बूँदें एक साथ (ही) गिर पड़ीं ॥ १४ ॥

गङ्गा—यह (एक समय ही ठण्ढी तथा गरम आँसुओं का बहना) हर्ष और विषाद का कार्य है।

सरयू—बन्धु-बान्धवों ने रामचन्द्र को यह शिक्षा दी—नीतिनिपुण हे राम, जानकी अभी किशोरी (है)। आप दोनों चञ्चल हैं। दक्षिण दिशा भी राक्षसों के समूहों से व्याप्त है। अतः वत्स ! स्नेह के कारण (हम लोग) यह कहते हैं—दक्षिण दिशा की ओर मत जाओ ॥ १५ ॥

दिष्टाः—शिक्षिताः। कथं स्त्रीलोकेन विपत्तावपि सहर्षं पत्युरनुसरणं विधेयमिति स्वाचरणेन प्रदर्शयन्ती सा वनं गतवतीति भावः। उत्प्रेक्षालङ्कारः। शालिनी वृत्तम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—तदा, पुरः, विपिनम्, यान्तम्, कान्तम्, सरभसम्, अनुयान्त्याः, सीतायाः, तौ, किसलयनिभौ, चरणौ, वीक्ष्य, बन्धुनयनैः, मुहुः, मुहुः, किमपि, शीताः, तप्ताः, च, मुक्तासदृशरुचयः, बाष्पकणिकाः, समम्, (एव), मुक्ताः ॥ १४ ॥

पुरः कान्तमिति। तदा = तस्मिन् काले, वनप्रस्थानसमये इत्यर्थः, पुरः = अग्रे, यान्तम् = गच्छन्तम्, वनमिति शेषः, कान्तम् = प्रियम्, रामचन्द्रमिति यावत्, सरभसम् = सहर्षम् ('रभसो वेगहर्षयोः' इत्यमरः), अनुयान्त्याः = अनुगच्छन्त्याः सीतायाः = जानक्याः, तौ = अतिसुकुमारौ इत्यर्थः, किसलयनिभौ—किसलयेन = नूतनपत्रेण निभौ = तुल्यौ, चरणौ = पादौ, वीक्ष्य = अवलोक्य, बन्धुनयनैः = बान्धवलोचनैः, मुहुः मुहुः = बारम्बारम्, किमपि = केनाऽपि प्रकारेण, शीताः = शीतलाः, जानक्याः सतीवृत्तान्तानुरूपं चरितं दृष्ट्वा हर्षोत्पन्ना इत्यर्थः, तप्ताः = उष्णाः, आत्मीयजनवियोगोत्पन्नविषादजाताः इत्यर्थः, च = अपि, मुक्तासदृशरुचयः—मुक्तासदृशी = तुल्या रुक् = कान्तिः यासां ताः, बाष्पकणिकाः = अश्रुबिन्दवः, समम् = एककालमित्यर्थः, एवेति शेषः, मुक्ताः = त्यक्ताः। अत्रोपमालङ्कारः। शिखरिणीवृत्तम् ॥ १४ ॥

गङ्गा इति। एतत् = शीतोष्णबाष्पकणिकानामेककालं निःसरणमित्यर्थः, हर्षविषादयोः = प्रसन्नतादुःखयोः ॥

अन्वयः—नयदक्षिण, हे राम, विदेहतनया, बाला, (अस्ति); भवन्तौ, तरलौ, (स्तः); दक्षिणा, दिक्, च, रजनीचरचक्रदुष्टा, (वर्तते)। तत्, वत्स ! वत्सलतया, इदम्, उदाहरामः,—दक्षिणाशाम्, मा, गच्छ ॥ १५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—ततस्ततः ।

सरयूः—ततस्तामेव दिशं प्रति

सुरमुरजगभीरधीरनादद्विगुणगुणध्वनिचापदत्तहस्तः ।
पुरजननयनैः कृतं दधानः कुवलयदाम जगाम रामभद्रः ॥ १६ ॥

यमुना—कः पुनः सोऽवसरः सुरमुरजशब्दस्य ।
[को उण सो अवसरो सुरमुरअसद्दस्स ।]

गङ्गा—सखि, न जानासि । गभीरं ध्वनद्भिः खलु सुरमुरजैः किमपि गभीरमेव ध्वनितम् । (पुनः सविषादम्) हा दशरथ, सकलगुणसम्पदां भाजनं भूत्वापि कथमेकस्य भाजनं न जातोऽसि ।

यमुना—कथं पुनः स राजा युष्माभिः प्रशंस्यते येन तादृशोऽपि तनयस्तृणमिव मुक्तः।
[कहं उण सो राआ तुम्हेहिं पसंसीअदि जेण तारिसोऽतिणओ तुणं विअ मुक्को ।]

सरयूः—शान्तं पापम् ।

नरेन्द्रः कैकेयीवचनपरिपाटीविगलितः
क्षणं मोहक्रोधप्रसरभरयोरन्तरचरः ।
सुतं चोरग्रस्तो मणिमिव करस्थं न कृपण-
स्तृणानीव प्राणान्पुनरयममुञ्चद्दशरथः ॥ १७ ॥

बालेति । नयदक्षिण—नये = नीतौ दक्षिण = अनुकूल, निपुण इति यावत्, हे राम = हे रामचन्द्र, विदेहतनया = जानकी, बाला = किशोरावस्थापन्ना, अस्तीति शेषः । भवन्तौ = श्रीमन्तौ रामलक्ष्मणौ, तरलौ = चञ्चलौ, स्तः इति शेषः, दक्षिणा = याम्या, दिक् = काष्ठा ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः), च = अपि, रजनीचरचक्रदुष्टा—रजनीचराणाम् = राक्षसानाम् चक्रेण = समवायेन दुष्टा = दूषिता, व्याप्तेति यावत्, वर्तते इति शेषः । तत् = तस्मात्, वत्स = स्नेह्य राम, वत्सलतया = स्नेहभावनया, इदम् = एतत्, उदाहरामः = कथयामः,—दक्षिणाशाम् = दक्षिणां दिशम्, मा गच्छ = नो व्रज । अनेन भावि सीताहरणं सूचितम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—सुरमुरजगभीरधीरनादद्विगुणगुणध्वनिचापदत्तहस्तः, पुरजननयनैः, कृतम्, कुवलयदाम, दधानः, रामभद्रः, जगाम ॥ १६ ॥

सुरमुरजेति । सुरमुरजेत्यादिः—सुराणाम् = देवानाम् ये मुरजाः = मृदङ्गाः तेषां गभीरः = गम्भीरः धीरश्च = चित्ताकर्षकश्च यो नादः = शब्दः तेन द्विगुणः = द्विगुणीकृतः गुणस्य = मौर्व्याः ध्वनिः = टङ्कारः यस्य स तस्मिन् चापे = धनुषि दत्तः = समर्पितः हस्तः = करः येन तादृशः, पुरजननयनैः—पुरजनानाम् = नगरनिवासिनाम् नयनैः = नेत्रैः, कृतम् = निर्मितम्, कुवलयदाम = कमलमालाम्, पुरजननयनरूपां कमलमालामित्यर्थः, दधानः = धारणं कुर्वन्, रामभद्रः = रामचन्द्रः, जगाम = गतवान् । जनैर्निर्निमेषदृष्ट्याऽवलोकितः सन् स जगामेति भावः । परिणामालङ्कारः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ)।

सरयू—उसके बाद उसी दिशा की ओर—देवताओं के द्वारा बजाए गये मृदङ्ग के गम्भीर शब्द से दूनी प्रत्यञ्चा की टङ्कारवाले धनुष पर हाथ रक्खे हुए, पुरवासियों के नेत्रों के द्वारा बनाई गई (अर्थात् पुरवासियों के नेत्ररूप) कमलमाला को धारण करते हुए रामचन्द्र चले गए ॥ १६ ॥

विशेष—कुवलयदामदधानः—इसका भाव यह हुआ कि अयोध्यावासियों के देखते-देखते रामचन्द्र दक्षिण दिशा की ओर ही चले गये ॥ १६ ॥

यमुना—अच्छा (यह बतलाओ कि) देवताओं के द्वारा मृदङ्ग बजाने का वह कैसा अवसर था ?

गङ्गा—सखि, नहीं जानती हो। गम्भीर शब्द करनेवाले देवताओं के मृदङ्गों के द्वारा निश्चय ही कुछ गम्भीर (रहस्य) सूचित किया गया है। (फिर दुःख के साथ) हाय दशरथ, समस्त गुण एवं सम्पत्तियों (अथवा गुणरूप सम्पत्तियों) के पात्र होकर भी कैसे एक (भाग्यवत्ता) के पात्र (आप) नहीं हुए।

यमुना—कैसे तुम लोगों के द्वारा उस राजा की प्रशंसा की जा रही है जिसके द्वारा (रामचन्द्र) जैसा पुत्र भी तृण के समान छोड़ दिया गया।

सरयू—पाप शान्त हो (अर्थात् ऐसा कहना पाप है)।

कैकेयी के सुन्दर बात करने के तरीके से ठगे गये इस राजा दशरथ ने कुछ समय तक किङ्कर्तव्यविमूढ़ता तथा क्रोध की प्रबल भावना के बीच बहते हुए, चोर के द्वारा पकड़ा गया कृपण जैसे मुट्ठी में पकड़ी गई मणि को (न छोड़ कर प्राण ही छोड़ देता है), उसी तरह पुत्र (राम) को नहीं छोड़ा बल्कि तृण के समान प्राणों को (ही) छोड़ दिया ॥ १७ ॥

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा" ॥ १६ ॥

गङ्गेति। गभीरमेव = रहस्यमेव, ध्वनितम् = सूचितम्। सकलगुणसम्पदाम्—सकलाः = समग्राः ये गुणाः = शौर्यादिभावाः एव सम्पदः = सम्पत्तयः तासाम्। एकस्य = भाग्यवत्तात्मकस्येति भावः। भाजनम् = पात्रम् ॥

अन्वयः—कैकेयीवचनपरिपाटीविगलितः, अयम्, नरेन्द्रः, दशरथः, क्षणम्, मोह-क्रोध-प्रसरभरयोः, अन्तरचरः, (सन्); चोरग्रस्तः, कृपणः, करस्थम्, मणिम्, इव, सुतम्, न, अमुञ्चत् ॥ १७ ॥

नरेन्द्र इति। कैकेयीवचनपरिपाटीविगलितः—कैकेय्याः = भरतमातुः वचनानाम् = वाक्यानाम् परिपाट्या = पद्धत्या विगलितः = च्युतः, वञ्चितः इत्यर्थः, अयम् = एषः, चर्चाविषयभूतः इति यावत्, नरेन्द्रः = राजा, दशरथः = रामपिता, क्षणम् = किञ्चित्कालम्, मोहक्रोधप्रसरभरयोः— मोहः = किङ्कर्तव्यविमूढता क्रोधः = कोपः तयोः यः प्रसरः = भावना-विस्तारः तस्य भरयोः = भारयोः, अन्तरचरः = मध्यस्थितः, (सन्); चोरग्रस्तः=

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—अपि नाम भरतस्य नानुमतमिदम् ।
[अवि णाम भरदस्स णाणुमदमिदम् ।]
सरयूः—अये, भरतस्य मातुलगृहादागतस्य कैकेय्याश्च संवाद एवोत्तरं दास्यति ।
गङ्गा—कीदृशः पुनरसौ ।
सरयूः—मातस्तातः क्व यातः सुरपतिभवनं हा कुतः पुत्रशोका-
त्कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य ।
प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किं तथासौ बभाषे
मद्वाग्बद्धः फलं ते किमिह तव धराधीशता हा हतोऽस्मि ॥ १८ ॥
गङ्गा—(सहर्षम्) वत्स भरत, भवसि रामानुजन्मा ।
सरयूः—रामे प्राप्ते वनान्ते कथमपि भरतश्चेतनां प्राप्य तातं
नीत्वा देवेन्द्रलोकं मुनिजनवचनादूर्ध्वदेहक्रियाभिः
भ्रातुः शोकाभितप्तः स्वजनपरिवृतः पालयामासनन्दि-
ग्रामे तिष्ठन्नयोध्यां रघुपतिपुनरागामिभोगापवीरः ॥ १९ ॥

चोरेण = तस्करेण ग्रस्तः = गृहीतः, कृपणः = कदर्यः, करस्थम् = मुष्टिस्थितम्, मणिम् = रत्नम्, इव = यथा; सुतम् = पुत्रम्, न अमुञ्चत् = न अत्यजत्, पुनः = किन्तु, तृणानि = घासाः, इव = यथा, प्राणान् = असून्, अमुञ्चत् = अत्यजत् । अनेन रामस्तस्य प्राणेभ्योऽपि प्रिय इति सूचितम् । यथा चौरगृहीतः कृपणो मणिं न त्यजति किन्तु प्राणानेव त्यजति तथैव दशरथोऽपि प्रियं रामं नाऽत्यजत् किन्तु स्वकीयान् प्राणानेव अमुञ्चदिति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—मातः ! तातः, क्व, यातः ? सुरपतिभवनम् ; हा ! कुतः ? पुत्रशोकात्; असौ, कः, पुत्रः ? चतुर्णाम्, यस्य, त्वम्, अवरजतया, जातः; अस्य, किम् ? असौ, काननान्तम्, प्राप्तः; किमिति ? नृपगिरा; असौ, तथा, किम्, बभाषे ? मद्वाग्बद्धः, (सन्, बभाषे); इह, ते, किम्, फलम् ? तव, धराधीशता; हा ! हतः, अस्मि ॥१८॥

मातः इति । हे मातः = हे जननि, तातः = पिता, क्व = कुत्र, यातः = गतः ? इति भरतप्रश्नः । सुरपतिभवनम्—सुरपतेः = इन्द्रस्य भवनम् = आलयम्, स्वर्गमित्यर्थः, इति कैकेय्युत्तरम् । हा इति खेदे अव्ययम्, कुतः = कस्मात् कारणात् ? इति भरतप्रश्नः । पुत्रशोकात्—पुत्रस्य = सुतस्य शोकात् = शुचः, इति कैकेय्युत्तरम् । असौ कः पुत्रः = असौ कः सुतः ? यः पितुः स्वर्गगमने कारणम् ? इति भरतप्रश्नः । चतुर्णाम् = चतुर्षु, पुत्रेष्विति शेषः, यस्य = पुत्रस्य, त्वम् = भरतः इत्यर्थः, अवरजतया—अवरजस्य = लघोः भावः अवरजता = लघुता तया, जातः = उत्पन्नोऽसि, इत्युत्तरम् । अस्य = ज्येष्ठपुत्रस्य, किम् = किमभूदिति भरतप्रश्नः । असौ = ज्येष्ठः पुत्रः, काननान्तम् = वनान्तम्, प्राप्तः = गतः, इत्युत्तरम् । किमिति = कस्माद्धेतोः, इति भरतप्रश्नः । नृपगिरा—नृपस्य = राज्ञः गिरा = वाण्या, कथनेनेत्यर्थः, इत्युत्तरम् । असौ = नृपः, तथा = तेन प्रकारेण, किम् = किमर्थम्, बभाषे = भाषितवान्, इति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—क्या यह (बात) भरत से स्वीकृत नहीं थी ?

सरयू—अरे, मामा के घर से लौटे हुए भरत का कैकेयी के साथ (हुआ) सम्वाद ही (इसका) उत्तर देगा ।

गङ्गा—यह किस तरह का (सम्वाद) था ?

सरयू—(उन दोनों में इस तरह बातचीत हुई—)

भरत—माँ, पिता जी कहाँ गये हैं ?

कैकेयी—इन्द्रलोक को (अर्थात् स्वर्ग को गये हैं) ।

भरत—हाय ! कैसे ?

कैकेयी—पुत्र के शोक से ।

भरत—यह कौन पुत्र है (जिसके शोक से उन्हें स्वर्ग जाना पड़ा) ?

कैकेयी—चारों (पुत्रों) में जिससे तुम छोटे होकर जन्मे हो ।

भरत—इनका क्या हुआ ?

कैकेयी—वे वन में चले गये ।

भरत—किस कारण से ?

कैकेयी—राजा के कहने से ।

भरत—उन्होंने वैसा क्यों कहा ?

कैकेयी—मेरे वचनों से बँधकर ही (उन्होंने वैसा कहा है) ।

भरत—इसमें तुम को क्या फल मिला ?

कैकेयी—तुम्हारा भूपति होना ।

भरत—हाय ! (तब तो मैं) मारा गया ॥ १८ ॥

गङ्गा—(प्रसन्नतापूर्वक) वत्स भरत, तुम राम के लघु भाई हो (अर्थात् वत्स भरत, सच्चे अर्थ में तुम राम के छोटे भाई हो) ।

सरयू—राम के वन में चले जाने पर किसी-किसी तरह चेतना (होश) को पाकर, मुनिजनों के कथनानुसार और्ध्वदेहिक संस्कारों से (पिण्डदान आदि कार्यों से) पिता (दशरथ) को स्वर्ग में पहुँचाकर, भाई (राम) के शोक से सन्तप्त, स्वजनों से घिरे हुए भरत ने नन्दिग्राम में निवास करते हुए, राम के पुनर्भावी (राज्य के) सुख-भोग से विमुख (होकर) अयोध्या का पालन किया ॥ १९ ॥

भरतप्रश्नः । मद्वाग्बद्धः—मम = कैकेय्याः वाचा = वचनेन बद्धः = संयमितः, सन् तथा बभाषे इति शेषः, इत्युत्तरम् । इह = अत्र, ते = तव, किम् = कीदृशम्, फलम् = परिणामः ? अनेन ते किं प्राप्तमिति भरतप्रश्नः । तव = मम पुत्रस्य भवतः, धराधीशता—धरायाः = पृथिव्याः अधीशता = प्रभुता, त्वं भूपतिर्भविष्यसीत्येवफलमिति—कैकेय्युत्तरम् । हा इति खेदे, तदेति शेषः, हतः = नष्टः, अस्मि = भवामीति भरतस्य खेदद्योतिकोक्तिः स्वं कारणमवगत्य रामवनगमने इति भावः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥१८॥

अन्वयः—रामे, वनान्तम्, प्राप्ते, (सति), कथमपि, चेतनाम्, प्राप्य, मुनिजनवचनात्, ऊर्ध्वदेहक्रियाभिः, तातम्, देवेन्द्रलोकम्, नीत्वा, भ्रातुः, शोकाऽभितप्तः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—ततस्ततः ।

[तदो तदो ।]

सरयूः—अहमेतावदेव जानामि । ततः परं तद्वृत्तान्तनिरूपणाय निजजलकमलवनवासी कोऽपि कलहंसः प्रस्थापितो मया ।

(प्रविश्य)

कलहंसः—देव्यः, इदं नमो वः ।

तिस्रः—अयि, कमलावतंस कलहंस, मङ्गलमन्दिरं भव ।

गङ्गा—अये, कथय तावद्वत्सानां मे प्रथमतः प्रभृति पथि चरितानि ।

हंसः—

विघ्नानिवानुसरतो विनिवार्य पौरा-
नग्रे स्वयं नय इवैष जगाम रामः ।
एनं विभूतिरिव सानुजगाम सीता
तां लक्ष्मणस्तु सुखलाभ इवानुगच्छत् ॥ २० ॥

गङ्गा—ततस्ततः ।

स्वजनपरिवृतः, भरतः, नन्दिग्रामे, तिष्ठन्, रघुपतिपुनरागामिभोगापवीरः, (भूत्वा), अयोध्याम्, पालयामास ॥ १९ ॥

राम इति । रामे = रामचन्द्रे, वनान्तम् = काननान्तम्, प्राते = गते सति, कथमपि = येन केनोपायेन, चेतनाम् = संज्ञाम्, प्राप्य = लब्ध्वा, मुनिजनवचनात्—तपस्विजनानाम्, वशिष्ठादीनामित्यर्थः, वचनात् = कथनात्, ऊर्ध्वदेहक्रियाभिः = श्राद्धादिकार्यैः, तातम् = पितरम्, देवेन्द्रलोकम् = स्वर्गलोकम्, नीत्वा = प्रापय्य, भ्रातुः = श्रीरामस्येत्यर्थः, शोकाभिततः—शोकेन = शुचा ('मनुशोकौ तु शुक्' इत्यमरः), अभिततः = सन्ततः, स्वजनपरिवृतः—स्वजनैः = बन्धुबान्धवादिभिः परिवृतः = संयुक्त इत्यर्थः, भरतः = कैकेयीसुतः, नन्दिग्रामे = अयोध्यातोऽविदूरे नन्दिनाम्नि ग्रामे, तिष्ठन् = वसन्, रघुपतिपुनरागामिभोगापवीरः—रघुपतेः = श्री रामस्य पुनरागामी = पुनर्भावी यो भोगः—राज्यसुखावाप्तिः तस्मात् अपवीरः = विमुखः, भूत्वेति शेषः, अयोध्याम् = स्वनगरीम्, अयोध्यान्तर्गतं राज्यसीमानमित्यर्थः, पालयामास = ररक्ष । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ १९ ॥

सरयूरिति । तद्वृत्तान्तनिरूपणाय—तस्य वृत्तान्तस्य = समाचारस्य निरूपणाय = ज्ञानाय, निजजलकमलवनवासी—निजे = स्वकीये जले यत् कमलवनम् = उत्पलवनी तस्य वासी = निवासी, कलहंसः = राजहंसः ॥

अन्वयः—एषः, रामः, अनुसरतः, पौरान्, विघ्नान्, इव, विनिवार्य, स्वयम्, नयः इव, अग्रे, जगाम । सा, सीता, एनम्, विभूतिः, इव, अनुजगाम् । तु, लक्ष्मणः, सुखलाभः, इव, ताम्, अन्वगच्छत् ॥ २० ॥

विघ्नानिति । एषः = अयम्, रामः = रामचन्द्रः, अनुसरतः = अनुगच्छतः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

सरयू—मैं इतना ही जानती हूँ। उसके बाद के उस समाचार को जानने के लिए अपने जल में स्थित कमलों के वन में निवास करनेवाला कोई एक राजहंस मेरे द्वारा भेजा गया है।

(प्रवेश करके)

कलहंस—देवियों, आप लोगों को यह (मेरा) नमस्कार (है)।

तीनों—कमलों के आभूषण हे राजहंस, कल्याणों के आगार बनो (अर्थात् तुम्हारा कल्याण हो)।

गङ्गा—अये (कलहंस), मेरे बच्चों (राम, लक्ष्मण और सीता) के रास्ते के चरितों को आरम्भ से कहो।

हंस—यह राम (अपने) पीछे-पीछे चलनेवाले नगरनिवासियों को, विघ्नों के समान रोक कर स्वयं नीति के समान आगे बढ़े (अर्थात् जैसे सुन्दर नीति अनेकों विघ्नों को हटाकर आगे बढ़ जाती है, उसी तरह राम पुरवासियों को रोक कर आगे चले गये)। उन सीता ने इन (राम) का, विभूति (सम्पत्ति) के समान, अनुसरण किया (अर्थात् जैसे सुन्दर नीति के पीछे-पीछे सम्पत्ति चलती है उसी तरह राम के पीछे-पीछे सीता भी चलीं)। और लक्ष्मण, सुखलाभ (सुख की प्राप्ति) के समान, उन (सीता) के पीछे-पीछे गये (अर्थात् जैसे सम्पत्ति के पीछे पीछे सुख-लाभ चलता है, जहाँ-जहाँ सम्पत्ति रहती है वहाँ-वहाँ सुख मिलता है, उसी तरह लक्ष्मण भी सीता के पीछे-पीछे गये) ॥ २० ॥

विशेष—कवि का कहना है कि जहाँ नीति रहती है वहाँ विघ्नों का प्रवेश नहीं होता और सम्पत्तियाँ भी वहीं रहती हैं। जहाँ सम्पत्तियाँ हैं वहीं सुख प्राप्ति भी होती है ॥ २० ॥

गङ्गा—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

पौरान् = पुरवासिनः, विघ्नान् = अन्तरायान् ('विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' इत्यमरः), अग्रे = पुरतः, जगाम = वव्राज। सा सीता = जानकी, एनम् = रामम्, विभूतिरिव = सम्पत्तिरिव, अनुजगाम् = अन्वगच्छत्। तु = तथा, लक्ष्मणः = सौमित्रिः, सुखलाभ इव = सुखप्राप्तिरिव, ताम् = सीताम्, अन्वगच्छत् = अनुवव्राज। इव = यथा, विनिवार्य = निषिध्य, स्वयम् = रामः, नयः = नीतिः, इव = यथा, सुप्रयुक्तो नयो यथा विघ्नान् विनिवार्य प्रयोक्तारमग्रे नयति वा स्वयमग्रे गच्छति तथैव रामोः पौरान् निनिवार्याग्रे वव्राज। विभूतिर्यथा नयाऽनुगामिनी भवति अथैव सीताऽपि रामानुगामिनी जातेति भावः। यथा सुखं सम्पत्तिमनुगच्छति तथैव लक्ष्मणोऽपि सीतामनुजगामेति। अग्रे रामो मध्ये सीता ततः पश्चात् लक्ष्मणो वनं जगामेति भावः। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंसः—ततः कियत्यपि दूरे पथिकलोकेनेदमुक्तस्ते वत्सवर्गः—

पन्थाः समः सिकतिलो मृदुशाद्वला भू-
वेतस्वती सरिदियं शिशिरा न दूरे ।
अग्रे चकास्ति सरसी च कुमुद्वतीयं
कादम्बकूजितकरम्बितहंसनादा ॥ २१ ॥

अन्यच्च—

तरुरयमितः शीतच्छायः स्रवन्मधुशीकरः
सरिदियमितः स्वल्पस्वच्छप्रवाहमनोहरा ।
इदमिदमितः स्निग्धामोदं मुहुर्मधुरध्वन-
न्मधुकरवधूमुग्धाभोगं वनं सरसीरुहाम् ॥ २२ ॥

गङ्गा—अहो, अध्वश्रमशमनानि पथिकजनवचनानि ।

यमुना—ततस्ततः ।

[तदो तदो ।]

हंसः—ततः प्रियतममनुगच्छन्ती जानकी

भीतं विलोक्य हरिणं करुणार्द्रचित्ता
पत्युर्निजेन पिदधे धनुरंशुकेन ।
केदारसीम्नि सदयं च यवप्ररोह-
मादाय साधु विदधे श्रवणावतंसम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—पन्थाः, समः, सिकतिलः, (अस्ति); भूः, मृदुशाद्वला, (वर्तते); इयम्, वेतस्वती, शिशिरा, सरित्, दूरे, न, (आस्ते); अग्रे, कुमुद्वती, कादम्बकूजितकरम्बितहंसनादा, इयम्, सरसी, च, चकास्ति ॥ २१ ॥

पन्था इति । पन्थाः = मार्गः, समः = समतलः, सिकतिलः—बालुकामयः, अस्तीति शेषः । भूः = पृथ्वी, भूभाग इत्यर्थः, मृदुशाद्वला—मृदूनि = कोमलानि शाद्वलानि = घासाः यस्यां सा, वस्तुतः शाद्वलः = नवतृणप्रचुरो भूभाग एव, वर्तते इति शेषः । इयम् = एषा, वेतस्वती—प्रचुराः वेतसाः सन्ति यस्यां सा वेतस्वती = वेतसबहुला, शिशिरा = शीतलजलपूर्णा, सरित् = नदी, दूरे = विप्रकृष्टे, न = नहि, आस्ते इति शेषः । अग्रे = पुरः, कुमुद्वती—कुमुदानि = कैरवाणि सन्ति यस्यां सा तादृशी, कादम्बकूजितकरम्बितहंसनादा—कादम्बानाम् = राजहंसानां कूजितैः = शब्दैः करम्बितः = मिश्रितः हंसानाम् = साधारणहंसानाम् नादः = कूजितम् यस्या सा तादृशी, इयम् = एषा, सरसी = सरः, च = अपि, चकास्ति = शोभते । एभिः पथिकवचनैः प्रोत्साहिता रामादय इति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—इतः, शीतच्छायः, स्रवन्मधुशीकरः, अयम्, तरुः, (अस्ति) । इतः, स्वल्पस्वच्छप्रवाहमनोहरा, इयम्, सरित्, (वर्तते) । इतः, स्निग्धामोदम्, मुहुः, मधुरध्वनन्मधुकरवधूमुग्धाभोगम्, सरसीरुहाम्, इदम्, वनम्, (आस्ते) ॥ २२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंस—तदनन्तर कुछ ही दूर पर पथिकों (राहगीरों) के द्वारा तुम्हारे वत्स (राम आदि) यह कहे गये :—

मार्ग समतल (तथा) बालुकामय (बलुआ, है)। जमीन, कोमल घासों से आच्छादित (है)। यह खेतों से घिरी हुई शीतल (जल से पूर्ण) नदी दूर नहीं (है)। आगे कुमुदों से भरपूर, कलहंसों (उत्तम जाति के हंसों) के शब्दों से मिश्रित हो रहा है हंसों (साधारण हंसों) का कूजन जिसमें ऐसा (अर्थात् कलहंसों एवं हंसों के शब्दों से व्याप्त) यह तालाब भी शोभित हो रहा है ॥ २१ ॥

और भी—

इधर शीतल छायावाला, फूलों के रसकणों की वर्षा करनेवाला यह वृक्ष (है)। इधर पतली एवं निर्मल (जल की) धारा से मनोहर यह नदी (है)। इधर मन्द मनोहर सुगन्धवाला, बारम्बार मधुर गुञ्जन करनेवाली भ्रमरियों (भौंरियों) के कारण सुन्दर स्थानवाला, कमलों का यह वन है ॥२२॥

गङ्गा—अहो ! पथिक लोगों के वचन मार्ग के थकावट को मिटाने वाले हैं।

यमुना—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

हंस—उसके बाद प्रियतम का अनुसरण करती हुई जानकी—मृग को भयभीत देखकर दया से आर्द्रचित्त होकर (अर्थात् दया के वशीभूत होकर) पति के धनुष को अपने अञ्चल से ढँक दिया तथा खेतों की सीमा में यव के छोटे-छोटे पौधों को बड़ी दया के साथ उखाड़ कर भली-भाँति अपने कानों का आभूषण बनाया ॥ २३ ॥

तरुरयमिति। इतः = अस्यां दिशि, शीतच्छायः—शीता = शीतला छाया = अनातपः यस्य सः, तथा स्रवन्मधुशीकरः—स्रवन्तः = निर्झरन्तः मधुनः=पुष्परसस्य शीकराः= कणाः यस्मात् सः, अयम् = एषः, तरुः = वृक्षः अस्तीति शेषः। इतः = अस्यां दिशि, अपरस्यां दिशि, स्वल्पस्वच्छप्रवाहमनोहरा—स्वल्पः = दुर्बलः क्षीण इति यावत् स्वच्छः = निर्मलः प्रवाहः = जलधारः तेन मनोहरा = शोभना, इयम् = एषा, दृश्यमानेत्यर्थः, सरित्=नदी, वर्तत इति शेषः। इतः अस्यां दिशि, स्निग्धामोदम्—स्निग्धः = मन्दमधुरः आमोदः = सुगन्धः यस्य तत्, मुहुः = बारम्बारम्, मधुरध्वनन्मधुकरवधूमुग्धाभोगम्—मधुरम् = मनोहरं यथा तथा ध्वनन्त्यः = गुञ्जन्त्यः मधुकराणाम् = भ्रमराणाम् वध्वः = स्त्रियः, भ्रमर्यः इत्यर्थः, ताभिः मुग्धः = चित्ताकर्षकः आभोगः = विस्तारः, परिपूर्णतेत्यर्थः ('आभोग परिपूर्णता' इत्यमरः) यस्य तत्, सरसीरुहाम् = कमलानाम्, इदम् = एतत्, वनम् = उपवनम्, आस्ते इति शेषः। हरिणी वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

'नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणीमता ॥' २२ ॥

गङ्गेति। अध्वश्रमशमनानि—अध्वश्रमस्य = मार्गजन्यपरिश्रमस्य शमनानि=शान्तिकराणि, पथिकजनवचनानि—पथिकजनानाम् = पान्थानाम् वचनानि = वाक्यानि ॥

अन्वयः—हरिणम्, भीतम्, विलोक्य, करुणार्द्रचित्ता, (सती) पत्युः, धनुः, निजेन, अंशुकेन, पिदधे। च, केदारसीम्नि, यवप्ररोहम्, सदयम्, आदाय, साधु,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अन्यच्च —

तटभुवि सरसीनां सैकते निम्नगानां
परिसरमपहातुं चक्रवाकीं प्रियस्य ।
क्षणमपि न समर्थां लोलमालोकयन्ती
पथि जनकतनूजा प्राप हर्षं शुचं च ॥ २४ ॥

गङ्गा—एवमनुकम्पनीयवत्सला मे जानकी । (पुनः सस्नेहम्) अपि तावत्पथिकनीतिशीतलानि मे वत्सानां शीलानि ।

हंसः—कीदृशी पुनः पथिकनीतिः ।

गङ्गा—

यावत्कर्णं तपति तपनस्तावदेव प्रयाणं
विश्रामश्च प्रसरति रवेरंशुजाले कराले ।
यात्रोद्योगः पुनरपि रवेर्लम्बमाने विमाने
यावन्मीलत्यथ कमलिनी तावदावासबन्धः ॥ २५ ॥

हंसः—भगवति, अनवस्थितमिदं नित्यपथिकानाम् ।

गङ्गा—हन्त, कथं कठोरातपस्पर्शमपि जानन्ति जानकीललिताङ्गानि ।

श्रवणावतंसम्, विदधे ॥ २३ ॥

भीतमिति । हरिणम् = मृगम्, भीतम् = भयविह्वलम्, धनुर्दृष्ट्वा भीतमित्यर्थः, विलोक्य = अवलोक्य, करुणार्द्रचित्ता—करुणया = दयया आर्द्रम् = क्लिन्नम् चित्तम् = चेतः यस्याः सा तादृशी, (सती = भूत्वेत्यर्थः), पत्युः = वल्लभस्य = रामस्य, धनुः = कोदण्डम्, निजेन = स्वकीयेन, अंशुकेन = वस्त्राञ्चलेन, पिदधे = आच्छादितवती, अत्र भागुरिमतेन अल्लोपः, च = तथा, केदारसीम्नि—केदारस्य = क्षेत्रस्य सीम्नि = सीमायाम्, यवप्ररोहम्—यवस्य प्ररोहम् = अङ्कुरम्, सदयम् = सकृपम्, आदाय = गृहीत्वा, साधु = शोभनं यथा तथा, श्रवणावतंसम्—श्रवणस्य = श्रोत्रस्य अवतंसम् = आभूषणम्, विदधे = कृतवती । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—सरसीनाम्, तटभुवि, च, निम्नगानाम्, सैकते, प्रियस्य, परिसरम्, क्षणम्, अपि, अपहातुम्, न, समर्थाम्, चक्रवाकीम्, लोलम्, आलोकयन्ती, जनकतनूजा, पथि, हर्षम्, शुचम्, च, प्राप ॥ २४ ॥

तटभुवीति । सरसीनाम् = सरसाम् ('कासारः सरसी सरः' इत्यमरः), तटभुवि = सीमाप्रान्ते, च = तथा, निम्नगानाम् = सरिताम्, सैकते = तटे, बालुकामयतटे इत्यर्थः, प्रियस्य = वल्लभस्य, चक्रवाकस्येत्यर्थः, परिसरम् = सान्निध्यम्, क्षणमपि = निमेषावधिकालमपि, अपहातुम् = त्यक्तुम्, न = नहि, समर्थाम् = शक्ताम्, चक्रवाकीम् = चक्रवाकाङ्गनाम्, लोलम् = चञ्चलं यथा तथा, आलोकयन्ती = पश्यन्ती, जनकतनूजा = जानकी, पथि = मार्गे, हर्षं = प्रसन्नताम्, प्रियतमसहचारजन्यां प्रसन्नतामित्यर्थः, शुचम् = शोकम्, तस्याः भाविनं वियोगं स्मृत्वागतं शोकमित्यर्थः, च = अपि, प्राप =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

और भी—तालाबों के किनारे की जमीन पर तथा नदियों के बालुकामय तट में (अपने) प्रिय (चक्रवाक) के सान्निध्य को क्षणभर भी छोड़ने के लिए असमर्थ चक्रवाकी (चकई) को चञ्चलता के साथ देखती हुई जानकी मार्ग में प्रसन्नता तथा शोक को भी प्राप्त की ॥ २४ ॥

गङ्गा—मेरी सीता इसी तरह दया के योग्य जीवों पर स्नेह करनेवाली है। (फिर स्नेहपूर्वक) क्या मेरे बच्चों के व्यवहार पथिकों की नीति से युक्त हैं ?

हंसः —अच्छा, पथिकों की नीति कैसी होती है ?

सूर्य जब तक कान को सन्तप्त करते हैं, तभी तक यात्रा; सूर्य के भयङ्कर किरण-समूह के फैलने पर विश्राम; सूर्य के रथ के लटकने पर फिर से यात्रा का उद्योग; और जब तक कमलिनी (कमल की लता) सङ्कुचित होती है, तब तक (रात्रि के) निवास का प्रबन्ध (यही पथिकों की नीति है) ॥ २५ ॥

हंस—भगवति, नित्य यात्रा करने वाले व्यक्तियों का यह (सब) अव्यवस्थित रहता है।

गङ्गा—हाय ! जानकी के कोमल अङ्ग क्या कठोर घाम के स्पर्श का भी अनुभव कर रहे हैं ?

प्राप्तवती। अनेन जानक्याः भावी रामचन्द्रवियोगः सूचितः। मालिनी वृत्तम् ॥ २४ ॥

गङ्गेति। अनुकम्पनीयवत्सला—अनुकम्पनीयेषु = दयापात्रेषु वत्सला = स्नेहयुक्ता। पथिकनीतिशीतलानि—पथिकानाम् = पान्थानाम् नीतिभिः = व्यवहारैः शीतलानि = स्निग्धानि, युक्तानीति यावत् ॥

अन्वयः—तपनः, यावत्, कर्णम्, तपति, तावदेव, प्रयाणम्; रवेः, कराले, अंशु-जाले, प्रसरति, विश्रामः, च; रवेः, विमाने, लम्बमाने, पुनरपि, यात्रोद्योगः; अथ, यावत्, कमलिनी, मीलति, तावत्, आवासबन्धः ॥ २५ ॥

पथिकनीतिं वर्णयन्त्याह—यावदिति। तपनः = सूर्यः, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, कर्णम् = श्रोत्रम्, तपति = सन्तप्तं करोति, तावदेव = तावत्कालपर्यन्तमेव, प्रयाणम् = गमनम्; रवेः = सूर्यस्य, कराले = भीषणे, अंशुजाले = किरणसमूहे, प्रसरति = व्यापके सति, विश्रामः = यात्रानिरोधः, च; रवेः = सूर्यस्य, विमाने = रथे, लम्बमाने = आकाश-स्यापरदिग्भागे गते सति, पुनरपि = मुहुः, यात्रोद्योगः—यात्रायाम् = गमने उद्योगः = तत्परता; अथ = तथा, यावत् = यावत्कालम्, कमलिनी = कमललता, मीलति = सङ्कु-चिता भवति, तावत् = तावत्कालमेव, तदेत्यर्थः, आवासबन्धः = निवासस्थानग्रहणम्। इयमेव पथिकनीतिरिति। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २५ ॥

गङ्गा—हन्तेति खेदसूचकमव्ययपदम्, कठोरातपस्पर्शम्—कठोरातपस्य = तीक्ष्ण-घर्मस्य, स्पर्शम् = संयोगम्, अपि = च, जानन्ति = अनुभवन्तीत्यर्थः; जानकीललिता-ङ्गानि—जानक्याः = सीतायाः ललितानि = मधुराणि अङ्गानि = अवयवाः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंसः—अलं कातरतया।

अपि तपति पतङ्गे चण्डचण्डैर्मयूखैः
पथि जनकतनूजा नैव संतापमाप

गङ्गा—(सकौतुकम्) कथमिव।

हंसः—

अपरिचितनिमेषालोकमालोकयन्ती
कुवलयदलदामश्याममङ्गं प्रियस्य ॥ २६ ॥

गङ्गा—प्रियतमस्नेहशीलतया सीतया न केवलमात्मा वयमपि जीविताः।

सरयूः—पालिताश्च।

हंसः—

अप्युच्चण्डैस्तपनकिरणैस्तापितायां पृथिव्या-
मप्यन्येषां कठिनवपुषां दुर्गमे मार्गसीम्नि।
प्रेमार्द्रेण प्रगुणितधृतिश्चेतसा शीतशीता-
न्मेने सीता प्रियतमपदैरङ्कितान्भूमिभागान् ॥ २७ ॥

यमुना—अयि तात दिनकर, कथं निजकुटुम्बेऽपि निष्करुणोऽसि संवृत्तः।
[अयि ताद दिणअर, कहं णिअकुडुम्बेवि णिक्करुणो सि संवुत्तो।]

सरयूः—अयि देवि वसुधे, कथ निजसुतायामपि सीतायामेवं निर्दयासि संवृत्ता।

गङ्गा—(विहस्य) अलमनयोरुपालम्भनेन। न खलु स्नेहानुगुणप्रवृत्तयो महाभूतवृत्तयः।

अन्वयः—चण्डचण्डैः, मयूखैः, पतङ्गे, तपति, अपि, जनकतनूजा, पथि, सन्तापम्, नैव, आप। (यतः, सा), प्रियस्य, कुवलयदलदामश्यामम्, अङ्गम्, अपरिचितनिमेषालोकम्, आलोकयन्ती, (आसीत्) ॥ २६ ॥

अपि तपती। चण्डचण्डैः = अतिप्रचण्डैः, मयूखैः = किरणैः, पतङ्गे = सूर्ये, तपति अपि = प्रकाशमाने अपि, जनकतनूजा = जानकी, पथि = मार्गे, सन्तापम् = उष्णताम्, नैव = नहि, आप = प्राप्तवती। तत्र हेतुमाह—अपरिचितेति। (यतः सा = जानकी) प्रियस्य = वल्लभस्य, रामस्येत्यर्थः, कुवलयदलदामश्यामम्—कुवलयस्य = नीलकमलस्य दलानि = पत्राणि तेषां दाम = माला तद्वत् श्यामम् = नीलवर्णम्, अङ्गम् = अवयवम्, अपरिचितनिमेषालोकम्—अपरिचितः = अज्ञातः निमेषः = पक्ष्मपातनम् यस्मिन् सः तादृशः आलोकः = अवलोकनं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, आलोकयन्ती = पश्यन्ती, आसीदिति शेषः। ग्रीष्मेऽपि काले नीलपदार्थविलोकनात्सन्तापस्याऽननुभवः सर्वजनविदित एव। अतः कुवलयदलनीलकान्तौ रामशरीरे दर्शनात्सीता तन्तापं नाऽऽपेति भावः। अत्रोपमालङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—उच्चण्डैः, तपनकिरणैः, तापितायाम्, अपि, पृथिव्याम्, कठिनवपुषाम्, अन्येषाम्, अपि, दुर्गमे, मार्गसीम्नि, प्रेमार्द्रेण, चेतसा, प्रगुणितधृतिः, सीता, प्रियतम-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंस—भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। अत्यन्त प्रचण्ड किरणों से सूर्य के तपने पर भी जानकी ने मार्ग में सन्ताप नहीं ही पाया।

गङ्गा—(उत्सुकतापूर्वक) किस तरह ?

(क्योंकि वह) प्रिय (रामचन्द्र) के नीले कमल के पत्रों की माला के समान श्याम अङ्ग को निर्निमेष दृष्टि से देख रही थीं॥ २६॥

विशेष—धूप में नीला चश्मा लगाकर धूप की गर्मी कम करने की प्रथा आज चारों ओर है। सीता राम के नीलकमल सदृश शीतल शरीर को देख रही थीं। अतः उन्हें गर्मी का अनुभव नहीं होता था॥ २६॥

गङ्गा—प्रियतम (राम) पर स्नेह-स्वभाव वाली (अर्थात् स्नेह करने वाली) सीता ने न केवल अपने को (ही किन्तु) हमलोगों को भी जिला दिया।

सरयू—(जिलाने के साथ ही) पालन भी कर दिया है।

हंस—प्रचण्ड सूर्य की किरणों के द्वारा तपायी गयी भी पृथिवी पर कठोर शरीर वाले अन्य (वनेचर आदि) व्यक्तियों के लिए भी दुर्गम मार्ग के स्थान में प्रेम से सिक्त चित्त से बढ़े हुए धैर्य वाली सीता ने प्रियतम के पैरों से चिह्नित भूप्रदेशों को अत्यन्त शीतल अनुभव किया॥ २७॥

यमुना—हे तात सूर्य, क्या अपने परिवार के ऊपर भी दयाशून्य हो गये हो ?

सरयू—हे देवि पृथिवि, क्या अपनी पुत्री सीता पर भी इस प्रकार निर्दय हो गई हो ?

गङ्गा—(हँस कर) इन दोनों को उलाहना देना व्यर्थ है। (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि महाभूतों के व्यवहार स्नेह के अनुसार चलने वाले नहीं होते हैं ?

पदैः, अङ्कितान्, भूमिभागान्, शीतशीतान्, मेने॥ २७॥

अप्युच्चण्डैरिति। उच्चण्डैः = अतितीक्ष्णैः, तपनकिरणैः—तपनस्य = सूर्यस्य किरणैः= अंशुभिः, तापितायाम् = उष्णीकृतायाम्, अपि, पृथिव्याम् = भुवि, कठिनवपुषाम्—कठिनम् = वातवर्षातपसहतया कठोरम् वपुः = शरीरम् येषां तेषाम्, अन्येषाम् = इतरेषाम्, वनेचरादीनामित्यर्थः, अपि, दुर्गमे = दुर्लङ्घ्ये, मार्गसीम्नि = अध्वसीमायाम्, पथप्रदेशे इत्यर्थः, प्रेमार्द्रेण = स्नेहसिक्तेन, चेतसा = चित्तेन, प्रगुणितधृतिः—प्रगुणिता = वृद्धिङ्गता धृतिः = धैर्यं यस्याः सा तादृशी सीता = जानकी, प्रियतमपदैः—प्रियतमस्य = वल्लभस्य पदैः = चरणैः, अङ्कितान् = सञ्जातचिह्नान्, भूमिभागान् = भूप्रदेशान्, शीतशीतान् = अतिशैत्ययुक्तान्, मेने = अनुबभूव। प्रियतमेन सह गमने सीताया मनसि न मनागपि खेदः सञ्जातः इति भावः। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः मन्दाक्रान्ता वृत्तम्॥ २७॥

गङ्गेति। स्नेहानुगुणप्रवृत्तयः—स्नेहस्य = प्रेम्णः अनुगुणम् = अनुसारम् प्रवृत्तिः = प्रवर्तनम् यासां ताः, महाभूतवृत्तयः—महाभूतानाम् = आकाशादिपञ्चभूतानाम् वृत्तयः= व्यवहाराः॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंसः— कान्तेनाथ प्रणयमधुरं किञ्चिदाचञ्चलेन
श्रान्ता श्रान्ता जनकतनया वल्कलस्याञ्चलेन ।
चक्रे वीतश्रमजलकणस्निग्धमुग्धाननश्रीः
श्रान्तः श्रान्तः स पुनरनया लोचनस्याञ्चलेन ॥ २८ ॥

गङ्गा—अहो, कमनीयता विनिमयस्य ।

यमुना—ततस्ततः ।

[तदो तदो ।]

हंसः—ततः

प्रत्यासन्ने भवति निलये सम्प्रयाता पुरस्ता-
त्तूर्णं क्षितेः कतिपयपदैश्चापमादाय हस्तात् ।
श्रान्तं कान्तं नवकिसलयैः सानुजं वीजयन्ती
जाता सीता समुचितविधिप्रक्रियावैजयन्ती ॥ २९ ॥

(सकौतुकम्) इदमन्यच्च सरसपेशलं कथयामि ते ।

जनकतनयाहस्तन्यस्तैर्मुहुर्नवपल्लवैः
शिशिरमसृणस्तत्कालं यः समेति समीरणः ।
प्रशममसुना स्वेदोद्भूतं जगाम कपोलयोः
सलिलमनयोः शोकोद्भूतं शशाम न नेत्रयोः ॥ ३० ॥

अन्वयः—अथ, श्रान्ता, जनकतनया, कान्तेन, किञ्चिदाचञ्चलेन, वल्कलस्य, अञ्चलेन, प्रणयमधुरम्, वीतश्रमजलकणस्निग्धमुग्धाननश्रीः, चक्रे । पुनः, श्रान्तः, श्रान्तः, सः, अनया, लोचनस्य, अञ्चलेन, (प्रणयमधुरम्, वीतश्रमजलकणस्निग्धमुग्धाननश्रीः, चक्रे) ॥ २८ ॥

कान्तेनेति । अथ = अनन्तरम्, श्रान्ता श्रान्ता = अतिपरिश्रान्तेत्यर्थः, जनकतनया = जानकी, कान्तेन = वल्लभेन, किञ्चिदाचञ्चलेन = किञ्चिद्दोलायितेन, वल्कलस्य = परिधानाय गृहीतस्य वृक्षत्वचः, अञ्चलेन = प्रान्तभागेन, प्रणयमधुरम्—प्रणयेन = प्रीत्या मधुरम् = मनोहरं यथा स्यात्तथा, वीतश्रमजलकणस्निग्धमुग्धाननश्रीः—वीताः = अपगताः, शुष्कतां प्रापिताः इत्यर्थः, ये श्रमजलस्य = प्रस्वेदस्य कणाः = बिन्दवः तैः स्निग्धा = चिक्कणा मुग्धा = दर्शनीया आननस्य = मुखस्य श्रीः = शोभा यस्याः सा तादृशी, चक्रे = कृता । पुनः = तथा, श्रान्तः श्रान्तः = अतिश्रान्तः = इत्यर्थः, सः = रामः, अनया = सीतया, लोचनस्य = नेत्रस्य, अञ्चलेन = कटाक्षेण, (प्रणयमधुरं यथा तथा, वीतश्रमेत्यादिः—वीतश्रमजलकणैः स्निग्धा मुग्धा आननस्य श्रीः = शोभा यस्य सः तादृशः, चक्रे = कृतः) । रामः सीतायाः कटाक्षावलोकनैरेवाऽपगतश्रमो जातः इति भावः । अत्र परिवृत्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—निलये, प्रत्यासन्ने, भवति, तूर्णम्, क्षितेः, कतिपयपदैः, पुरस्तात्, सम्प्रयाता, (सती), सीता, हस्तात्, चापम्, आदाय नवकिसलयैः, सानुजम्, श्रान्तम्, कान्तम्, वीजयन्ती, (सती), समुचितविधिप्रक्रियावैजयन्ती, जाता ॥ २९ ॥

सकौतुकमिति । सरसपेशलम्—सरसम् = रसभरितमथ च पेशलम् = कोमलम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंस—तब अत्यधिक थकी हुई जानकी को प्रियतम (राम) ने कुछ चञ्चल वल्कल (पेड़ की छाल) के अञ्चल से, प्रीति की माधुरी के साथ, पसीना के सूख जाने के कारण चिकनी और मनोहर मुख की छविवाली कर दिया (अर्थात् राम ने वल्कल-वस्त्र से हवा करके जानकी के मुख आदि का पसीना सुखा दिया)। और अत्यन्त थके हुए उनको (राम को भी) इन (सीता) ने नेत्र के कटाक्ष से प्रीति की माधुरी के साथ पसीना के सूख जाने के कारण चिकनी और मनोहर मुख की छविवाला बना दिया) ॥ २८ ॥

गङ्गा—वाह, अदला-बदली की क्या सुन्दरता है ?

यमुना—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

हंस—उसके बाद—

आवास-स्थान के नजदीक आनेपर शीघ्रतापूर्वक बढ़ाये गये कुछ पगों से आगे बढ़ी हुई सीता हाथ से धनुष लेकर नवीन पत्तों से भाई के सहित थके हुए प्रियतम को हवा डुलाती हुई योग्य विधान की पद्धति की पताका बन गई (अर्थात् स्त्रियों के योग्य कर्तव्य को निभाने में सर्वश्रेष्ठ बन गई) ॥ २९ ॥

(उत्कण्ठा के साथ) और यह दूसरी सरस तथा कोमल (बात) तुम्हें बतला रहा हूँ।

सीता के हाथ में स्थित नूतन पल्लवों से तत्काल जो ठण्डी और कोमल बार-बार हवा निकलती थी, उससे इन (राम और लक्ष्मण) के गालों पर के पसीने का जल (तो) सूख गया, (किन्तु) आँखों का (पिता की मृत्यु के) शोक से निकलनेवाला जल (अर्थात् अश्रु) नहीं सूखा ॥ ३० ॥

प्रत्यासन्न इति । निलये = आवासस्थाने, प्रत्यासन्ने = समीपमागते, भवति = जाते, तूर्णम् = शीघ्रम् , क्षिप्तैः = वर्द्धितैः, कतिपदपदैः = कतिपयपादप्रक्षेपैः, पुरस्तात् = अग्रे, सम्प्रयाता = गता सती, सा ता = जानकी, हस्तात् = करात् , चापम् = धनुः, आदाय = गृहीत्वा, नवकिसलयैः = अचिरोद्गतैः पत्रैः, सानुजम् = सकनिष्ठभ्रातृकम् , श्रान्तम् = क्लान्तम् , कान्तम् = प्रियतमम् , वीजयन्ती = व्यजनवायुना सेवमाना, सती, समुचितविधिप्रक्रियावैजयन्ती—समुचितः = योग्यः, कुलाङ्गनायोग्य इत्यर्थः, यो विधिः = सदाचारविधानम् तस्य वैजयन्ती = पताका, जाता = सम्पन्ना । पतिसेवाविधानैः सीता पतिव्रतानां धुरि कीर्तनीया जातेति भावः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—जनकतनयाहस्तन्यस्तैः, नवपल्लवैः, तत्कालम् , यः, शिशिरमसृणः, समीरणः, समेति; अमुना; अनयोः, कपोलयोः, स्वेदोद्भूतम् , सलिलम् , प्रशमम् , जगाम; (किन्तु), नेत्रयोः, शोकोद्भूतम् , सलिलम् , न, शशाम ॥ ३० ॥

जनकतनयेति । जनकतनयाहस्तन्यस्तैः—जनकतनयायाः = जानक्याः हस्ते = करे न्यस्तैः, = स्थितैः, गृहीतैरिति यावत् , नवपल्लवैः = नूतनपत्रैः, तत्कालम् = तत्क्षणम् , यः, शिशिरमसृणः—शिशिरः = शीतलः मसृणः = कोमलः, सुखावहः इत्यर्थः, मुहुः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च—

कृतः स्थाने स्थाने विहितवरिवस्यापरिकरः
सुमित्रापुत्रेण श्रमशमनशीतो रघुपतिः ।
असावेतेनापि क्षणविरहबाष्पाञ्चितदृशा
कृतालोकश्चक्रे गलितसकलायासशिशिरः ॥ ३१ ॥

सरयूः—कियतां पुनरह्नां परिवर्तेन रघुराष्ट्रमतिक्रान्तं वत्सैः ।

हंसः—अयि, कथमजानती वर्तसे रघूणामाधिपत्यम् ।

एते हि स्वरसावनम्रनिखिलक्ष्मापालमौलिज्वल-
न्माणिक्यस्फुरदंशुमांसलपदप्रेङ्खन्नखज्योतिषः ।
दूरोन्मुक्तचतुःसमुद्रलहरीविक्षिप्तशुक्तिस्खल-
न्मुक्तापङ्क्तिविनिर्मितैकवलयं भूमण्डलं भुञ्जते ॥ ३२ ॥

उत्तरकोसलास्त्रिचतुरैरेवाहोभिरतिक्रान्ताः । अथ पुरमथनमालतीमालां मन्दाकिनीमचिरेण च कलिन्दगिरिकरिकपोलमदवारिधारां कालिन्दीमप्यतिक्रान्ताः ।

गङ्गा—(यमुनां प्रति) सखि, तदिदं यत्कथितवत्यसि ।

वारम्बारम् , समीरणः = वायुः, समेति = प्रादुर्भवति, अमुना = तेन समीरणेनेत्यर्थः, अनयोः = रामलक्ष्मणयोः, कपालयोः = गण्डस्थलयोः, स्वेदोद्भूतम्—घर्मोत्पन्नम् , सलिलम् = जलम् , प्रशमम् = शान्तिम् , जगाम् = प्राप । किन्त्विति शेषः, नेत्रयोः = लोचनयोः, शोकोद्भूतम् = पितृमरणशोकजनितम् , सलिलम् = जलम् , अश्रु इत्यर्थः, न शशाम् = न शान्तमभूत । अध्वश्रमोद्गतं सलिलं समीरणेन शुष्कं जातं किन्तु पितृमरण-जन्यं परिचरन्तीं श्रमश्रान्तां सीताञ्च विलोक्योत्पन्नं नेत्रसलिलं न शान्तमभूदिति भावः । हरिणीवृत्तम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—सुमित्रापुत्रेण, स्थाने स्थाने, विहितवरिवस्यापरिकरः, रघुपतिः, श्रमशमनशीतः, कृतः; असौ, अपि एतेन, क्षणविरहबाष्पाञ्चितदृशा, कृतालोकः, (सन्), गलितसकला-यासशिशिरः, चक्रे ॥ ३१ ॥

कृत इति । सुमित्रापुत्रेण = सौमित्रिणा लक्ष्मणेनेत्यर्थः, स्थाने स्थाने = सर्वत्र वास-स्थाने इत्यर्थः, विहितवरिवस्यापरिकरः—विहितः = कृतः वरिवस्यायाम् = शुश्रूषायाम् ('वरिवस्या तु शुश्रूषा' इत्यमरः) परिकरः = यत्नः ('यत्नाऽम्भौ परिकरौ' इति त्रिकाण्ड-शेषः) यस्य सः, रघुपतिः = रामचन्द्रः, श्रमशमनशीतः—श्रमस्य = मार्गचलनजन्यस्य खेदस्य शमनेन = शान्त्या शीतः = शीतलः, चक्रे = कृतः । असौ = लक्ष्मणः, अपि, एतेन = अनेन रामेण, क्षणविरहबाष्पाञ्चितदृशा—क्षणविरहात् = किञ्चित्कालवियोगात् जातः यः बाष्पः = अश्रु तेन अञ्चिता = युक्ता या दृक् = नेत्रम् तया, कृतालोकः = अवलोकितः, सन् , गलितसकलायासशिशिरः—गलितः = दूरीभूतः सकलः = समग्रः यः आयासः = परिश्रमः तेन शिशिरः = शीतलः, विगतश्रमः इत्यर्थः, चक्रे = कृतः । अत्र अन्योन्यालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

और भी—

सुमित्रा के पुत्र (लक्ष्मण) के द्वारा स्थान-स्थान पर शुश्रूषा किये गये रामचन्द्र थकान को मिटाकर शीतल कर दिए गये। यह (लक्ष्मण) भी इन (रामचन्द्र) के द्वारा, एक क्षण भर के विरह में (भी) आँसुओं से पूर्ण नेत्र से देखे जाकर सम्पूर्ण परिश्रम के मिट जाने से शीतल कर दिए गये ॥ ३१ ॥

सरयू—अच्छा, कितने दिनों में वत्सों ने रघुराष्ट्र (अयोध्या से शासित भूप्रदेश) को पार किया ?

हंस—अरे, रघुवंशियों के आधिपत्य (शासित प्रदेश) को क्या तुम नहीं जानती हो ?

क्योंकि, अपनी इच्छा से (प्रणाम करने के लिए) झुके हुए सम्पूर्ण राजाओं के मुकुटों में चमचमाती हुई मणियों की चमकती हुई किरणों से व्याप्त चरणों के दमकते नखों की ज्योति से सम्पन्न ये (रघुवंशी), दूर से उठी हुई चारों समुद्रों की लहरियों से फेंकी गयी शुक्तियों (सुतुहियों) से निकलनेवाली मोतियों की कतारों से बनाया गया है घेरा जिसका ऐसे पृथ्वी-मण्डल का भोग (शासन) करते हैं ॥ ३२ ॥

उत्तर कोशल (अयोध्या) को (ये लोग) तीन-चार दिनों में ही पार कर गये। इसके बाद शङ्कर के मस्तक पर मालतीमाला के सदृश गङ्गा को पार कर शीघ्र ही कलिन्दपर्वत रूपी हाथी के कपोल में मद की जलधार के सदृश यमुना को भी पार कर गये।

गङ्गा—(यमुना के प्रति) सखि, यह वही (है) जो (तुम ने) कहा है।

अन्वयः—हि, स्वरसावनम्रनिखिलक्ष्मापालमौलिज्वलन्माणिक्यस्फुरदंशुमांसलपदप्रेङ्खन्नखज्योतिषः, एते, दूरोन्मुक्तचतुःसमुद्रलहरीविक्षिप्तशुक्तिस्खलन्मुक्तापंक्तिविनिर्मितैकवलयम्, भूमण्डलम्, भुञ्जते ॥ ३२ ॥

रघूणामाधिपत्यं वर्णयन्नाह—एते हीति। हि = यतः, स्वरसेत्यादिः—स्वरसेन = स्वेच्छया अवनम्राः = प्रणामे नताः निखिलाः = सम्पूर्णाः ये क्ष्मापालाः = भूमिपालाः तेषां मौलिषु = मुकुटेषु ज्वलन्ति = दीप्यमानानि यानि माणिक्यानि = रत्नानि तेषां स्फुरद्भिः = कृतचाकचिक्यैः अंशुभिः = किरणैः मांसलानि = वृद्धिङ्गतानि पदयोः = चरणयोः प्रेङ्खन्ति = ज्वलन्ति नखज्योतींषि = नखप्रभाः येषां ते, एते = रघुकुलोत्पन्नाः राजानः, दूरोन्मुक्तेत्यादिः—दूरात् = विप्रकृष्टात् उन्मुक्ताः = उत्थिताः चतुःसमुद्राणाम् = चतुःसागराणाम् याः लहर्यः = तरङ्गाः ताभिः विक्षिप्ताः = प्रक्षिप्ताः याः शुक्तयः ताभ्यः स्खलन्त्यः = पतन्त्यः याः मुक्ताः = मुक्तामणयः तासां पंक्तिभिः = श्रेणीभिः विनिर्मितम् = रचितम् एकम् = अद्वितीयम् वलयम् = मण्डलम्, प्राकाररूपमिति यावत् यस्य तत्तथाभूतम्, भूमण्डलम् = भूवलयम्, भुञ्जते = शासति। रघुकुलोत्पन्नाः राजानः आसमुद्रक्षितीशा सन्तीति भावः। अत्रोदात्तालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

उत्तरकोशला इति। पुरमथनमौलिमालतीमालाम्—पुरमथनस्य=शङ्करस्य मौलौ=मुकुटे

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—

तपनसुतया देव्या यद्वा भगीरथकन्यया
विपुलविपुलैर्वीचिहस्तैश्चिरादपि किं कृतम् ।
ललितलवलीभङ्गैरङ्गैर्वनं चलिता सती
जनकतनया पाणौ धृत्वा न यद्विनिवारिता ॥ ३३ ॥

गङ्गा—(विहस्य) सखि, कथं परोक्ष इव समक्षेऽपि नितान्तमुपालम्भसे ।

यमुना—ततस्ततः ।

[तदो तदो ।]

हंसः—ततश्च शबरशरदलितविन्ध्यकरिकुम्भतटीविमुक्तमुक्ताफलप्रकरताराकिततीरलतावितानपरिच्छदां शर्मदां नर्मदामतीत्याचिरेण चपलकर्णाञ्चलपरिमिलितमदकरिकपोलचलितसहचरसमागममुदितमधुकरवधूमधुरसरसकुसुमकेसरं गोदावरीपरिसरं प्रयाताः ।

यमुना—हा धिक् हा धिक् । तत्र हि लङ्केश्वरभगिनी क्षणेन प्रमत्ता शूर्पणखा नाम राक्षसी परिभ्रमति ।

[हद्धी हद्धी । तत्थ हि लङ्केसरभइणी क्खणेन पमत्ता सुप्पणहा णाम रक्खसी परिब्भमइ ।]

हंसः—अतिप्रमत्तेति वक्तव्यम् । सा हि सौमित्रिशरदलितनिजनासिकारुधिरसीधुरसमास्वादितवती ।

गङ्गा—(सातङ्कम् तदाकर्ण्य) किं प्रतिपन्नं जनस्थाननिवासिना निशाचरचक्रेण ।

जटानिचये वा मालतीमालाम् = मालतीस्रजम् , मन्दाकिनीम् = गङ्गाम् । कलिन्दगिरिकरिकपोलमदवारिधाराम्—कलिन्दगिरिः = कलिन्दपर्वतः एव करिः = हस्ती तस्य कपोलयोः = गण्डस्थलयोः मदस्य = दानस्य वारिधाराम् = दानस्रुतिम् ॥

अन्वयः—तपनसुतया, यद्वा, देव्या, भगीरथकन्यया, विपुलविपुलैः, वीचीहस्तैः, चिरादपि, किम् , कृतम् ? यत् , ललितलवलीभङ्गैः, अङ्गैः, (उपलक्षिता), जनकतनया, वनम् , चलिता, सती, पाणौ, धृत्वा, न, विनिवारिता ॥ ३२ ॥

तपनसुतयेति । तपनसुतया—तपनस्य = सूर्यस्य सुतया = पुत्र्या, यमुनयेत्यर्थः, यद्वा = अथवा, देव्या = पूज्यया, भगीरथकन्यया—भगीरथस्य कन्यया = सुतया, गङ्गया इत्यर्थः, विपुलविपुलैः = अतिविस्तृतैः, वीचीहस्तैः = तरङ्गकरैः, चिरादपि = बहोः कालादपि, किं कृतम् = किं विहितम् ? न किमपीति काकुध्वनिः, यत् , ललितलवलीभङ्गैः—ललिता = अतिसुकोमला या लवली = लवलीलता तस्याः भङ्गैः = पत्रखण्डैः, लक्षणया लवलीपत्रखण्डनिभैः, सुकोमलैरिति भावः, अङ्गैः = अवयवैः, उपलक्षितेति शेषः, जनकतनया = जानकी, वनम् = अरण्यम् , चलिता = प्रस्थिता, सती, पाणौ = करे, धृत्वा = गृहीत्वा, न विनिवारिता = न निषिद्धा । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । हरिणी वृत्तम् ॥ ३३ ॥

हंस इति । शबरेत्यादिः—शबराणाम् = किरातानाम् ('किरातशबरपुलिन्दाः'

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यमुना—यमुना अथवा देवी गङ्गा ने अत्यन्त लम्बे तरङ्ग रूप हाथों के द्वारा बहुत समय से क्या किया ? जो कि लवली (एक प्रकार की लता) के (पत्रों के) टुकड़े के सदृश (कोमल) अङ्गों से (युक्त) जानकी वन को जाती हुई हाथ पकड़ कर नहीं रोक ली गई ॥ ३३ ॥

गङ्गा—(हँसकर) सखि, क्या सामने भी परोक्ष की तरह अत्यन्त उलाहना दे रही हो ?

यमुना—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

हंस—तदनन्तर किरातों के बाणों से विदीर्ण विन्ध्यपर्वत के हाथियों के कपोल-स्थलों से निकली हुई मोतियों के समूह से तारोंवाले (अर्थात् चित्रित) तीर की लताओं के निकुञ्ज रूप आच्छादन से युक्त सुखदायिनी नर्मदा को पार कर शीघ्र ही चञ्चल कानों के छोर से छुए गये (स्पर्श किये गये) मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों से उड़े हुए सहचर (भौंरे) के समागम से प्रसन्न भ्रमरियों (भौंरियों) से मधुर और सरस पुष्प-केसरों से सम्पन्न गोदावरी के तट-प्रदेश को चले गये ।

यमुना—हाय धिक्, हाय धिक् ! वहाँ एक क्षण में मतवाली हो जाने-वाली शूर्पणखा नामक रावण की बहन घूमा करती है ।

हंस—(उसे) अत्यन्त मतवाली कहना चाहिये । उसने तो लक्ष्मण के बाण से काटी गयी अपनी नाक के रक्त रूपी मदिरा का पान किया ।

गङ्गा—(भय के साथ उसे सुनकर) (तब) जनस्थान में निवास करनेवाले राक्षस-समूह ने क्या किया ?

इत्यमरः) शरैः = बाणैः दलिताः = स्फोटिताः या विन्ध्यस्य = विन्ध्यपर्वतस्य करिणः = हस्तिनः तेषां कुम्भतट्यः = कपोलप्रदेशाः ताभ्यः विमुक्तः = निःसृतः यो मुक्ताफलप्रकरः= मुक्ताफलसमूहः तेन तारकितम् = सञ्जाततारकम् , चित्रितमित्यर्थः तीरलतानाम् = तट-व्रततीनाम् वितानम् = मण्डपः तदेव परिच्छदः = आच्छादनम् यस्याः सा ताम् , शर्मदाम् = सुखदायिनीम् , अतीत्य = पारं कृत्वा । चपलकर्णाञ्चलेत्यादिः—चपलेन = चञ्चलेन कर्णाञ्चलेन = कर्णप्रान्तेन परिमिलिताः = स्पृष्टाः ये मदकरिणाम् = मदस्राविहस्ति-नाम् कपोलाः = गण्डप्रदेशाः तेभ्यः चलिताः = उड्डीय आगताः ये सहचराः = प्रियतमाः, भ्रमरा इत्यर्थः, तेषां समागमेन = मिलनेन मुदिताः = सञ्जातहर्षाः याः मधुकराणाम् = भ्रमराणाम् वध्वः = स्त्रियः ताभिः मधुरम् = माधुर्योपेतम् सरसम् = रसयुक्तम् कुसुमकेसरम् = पुष्पकिञ्जल्कः यस्मिन् सः तम् , गोदावरीपरिसरम्—गोदा-वर्याः परिसरम् = तटभागम् , प्रयाताः = गताः ॥

हंस इति । सौमित्रिशरदलितनिजनासिकारुधिरसीधुरसम्—सौमित्रिः = लक्ष्मणः तस्य शरेण = बाणेन दलिता = खण्डिता या निजा = स्वकीया नासिका तस्याः स्रवन् = प्रवहमानः यो रुधिरः एव सीधुः=मदिरा तम् , आस्वादितवती = पानं कृतवती । लक्ष्मणेन तस्याः नासिका कर्तितेति भावः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंसः—करकलितकरालकुन्तलकरवालकार्मुकेण निशाचरचक्रेण रामं प्रति प्रचलितम्।

गङ्गा—ततस्ततः ।

हंसः—ततश्चेदं विज्ञप्तः सौमित्रिणा रामभद्रः—'आर्य, अयं मे

नक्तञ्चरेन्द्रभगिनीसुकुमारनासा-
निर्मुक्तरक्तलवलिप्तशितैकधारः ।
उत्कण्ठते कठिनराक्षसकण्ठजानां
पानाय कर्दमसृजामसृजां कृपाणः ॥ ३४ ॥

इदमुक्तं च रामभद्रेण—'वत्स, अस्त्येतत् । किन्तु प्रकृतिभीरुः खल्वबलाजनः । तेन हि जानकीसनाथगर्भां पर्णशालामेव समुत्खातकरवालः पालयतु भवान् । अयमहमचिरात्-' इत्यर्धोक्त एव निशाचरचक्रं प्रति प्रचलितः सम्मिलितश्च ।

गङ्गा—(सत्रासम्) अनन्तरं किं वृत्तम् ।

हंसः— अथाहूतस्तादृक्समरजयसंरम्भरभस-
प्रसर्पद्गम्भीरध्वनिगरिमगर्जद्दशदिशम् ।
मुहूर्तात्सौमित्रिः

सरयूः—तत्किं रामेण ।

हंसः—नहि नहि ।

सरयूः—अयि देवि भागीरथि, त्रायस्व मां नूनं निशाचरचक्रेणेति वक्ष्यति ।

हंसः— विपिनचरनक्तञ्चरचमू
वधक्रीडाकिञ्चिन्मुकुलितरुषा रामधनुषा ॥ ३५ ॥

हंस इति । करकलितकरालकुन्तलकरवालकार्मुकेण—करैः = हस्तैः कलितानि = गृहीतानि करालानि = भयानकानि कुन्तलकरवालकार्मुकाणि = प्रासखड्गधनूंषि येन तत् तेन, निशाचरचक्रेण = राक्षससमुदायेन ॥

अन्वयः—नक्तञ्चरेन्द्रभगिनीसुकुमारनासानिर्मुक्तरक्तलवलिप्तशितैकधारः, कृपाणः, कठिनराक्षसकण्ठजानाम्, कर्दमसृजाम्, असृजाम्, पानाय, उत्कण्ठते ॥ ३४ ॥

नक्तञ्चरेन्द्रेति । नक्तञ्चरेन्द्रः = राक्षसराजो रावणः तस्य भगिनी = स्वसा, सूर्पणखेत्यर्थः, तस्याः सुकुमारनासायाः = सुकोमलनासिकायाः निर्मुक्तम् = निःसृतम् यत् रक्तम् = क्षतजम् तस्य लवैः = कणैः लिप्तः = व्याप्तः शितः = तीक्ष्णः एकः = अद्वितीयः धारः = अग्रभागः यस्य सः तादृशः, कृपाणः = खड्गः, कठिनराक्षसकण्ठजानाम्—कठिनाः = कठोराः राक्षसानाम् = निशाचराणाम् ये कण्ठाः = ग्रीवाप्रदेशाः तेभ्यः जाताः = उत्पन्नाः तेषाम्, कर्दमसृजाम् = कर्दमोत्पादकानाम्, असृजाम् = शोणितानाम्, पानाय = पातुम्, उत्कण्ठते = अभिलषति । अतः आज्ञां देहि मह्यं निशाचरैः सह योद्धुमिति । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अथ, मुहूर्तात्, तादृक्समरजयसंरम्भरभसप्रसर्पद्गम्भीरध्वनिगरिमगर्जद्दशदिशम्, सौमित्रिः, आहूतः—इत्यपूर्णश्लोकस्यान्वयः ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हंस—हाथ में भयङ्कर प्रास, तलवार और धनुष लिये हुए राक्षस-समूह ने राम के ऊपर धावा बोल दिया।

गङ्गा—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

हंस—तदनन्तर लक्ष्मण ने रामचन्द्र से यह निवेदन किया—आर्य, मेरी यह—

राक्षसराज (रावण) की बहिन की कोमल नाक से निकले हुए रक्त के छींटों से लिपी हुई तीक्ष्ण धारवाली तलवार, राक्षसों के कठोर कण्ठ से निकले हुए गाढ़े खून को पीने के लिए उत्कण्ठित है ॥ ३४ ॥

तब रामचन्द्र ने यह कहा—'वत्स, यह (ठीक) है। किन्तु स्त्रियाँ स्वभावतः डरपोक हुआ करती हैं। अतः तुम (म्यान से) तलवार निकाले हुए जानकी से युक्त है भीतरी भाग जिसकी ऐसी (अर्थात् जिसके अन्दर जानकी स्थित है ऐसी) कुटिया की ही रक्षा करो। यह मैं शीघ्र ही'—ऐसा आधा कहते ही (वे) राक्षसों के समूह के प्रति चल पड़े और जाकर मिल गये।

गङ्गा—(भय के साथ) इसके बाद क्या हुआ ?

इसके बाद क्षण भर में वैसे (भीषण) युद्ध की विजय के लिए कोप के आवेग से फैलनेवाले गम्भीर गर्जन की गुरुता से दशों दिशाओं को मुखरित कर लक्ष्मण को बुलाया—

सरयू—तो क्या राम ने (बुलाया) ?

हंस—नहीं-नहीं।

सरयू—हे देवि गङ्गे, मुझे बचाओ। निश्चय ही (यह) कहेगा कि राक्षसों के समूह ने (बुलाया)।

वनों में विचरण करनेवाले राक्षसों की सेना की वधरूप क्रीडा से कम हुए क्रोध-वाले राम के धनुष ने (लक्ष्मण को बुलाया) ॥ ३५ ॥

अथाहूत इति : अथ = अनन्तरम् , मुहूर्तात् = क्षणेन, तादृक्समरेत्यादिः—तादृक् = तादृशः यः समरः = संग्रामः तस्मिन् यो जयः=विजयः तस्मिन् यः संरम्भरभसः= क्रोधावेगः ('रभसो वेगहर्षयोः' इत्यमरः) तेन प्रसर्पन् = प्रसृतो भवन् यो गम्भीरध्वनिः= गम्भीरगर्जनम् तस्य यो गरिमा = गुरुता तेन गर्जन्त्यः = शब्दायमानाः दशदिशः = दशकाष्ठाः यस्मिन् तद्यथा स्यात्तथा, सौमित्रिः = लक्ष्मणः, आहूतः = आकारितः ॥

अन्वयः—विपिनचरनक्तञ्चरचमूवधक्रीडाकिञ्चिन्मुकुलितरुषा, रामधनुषा, (सौमित्रिः, आहूतः) ॥ ३५ ॥

उत्तरार्द्धं पूरयति—विपिनचरेत्यादिः—विपिने = वने चरन्तीति = विचरन्तीति विपिनचराः = अरण्यचराः ये नक्तञ्चराः = राक्षसाः तेषां चमूः = सेना तस्याः वधः = मारणम् एव क्रीडा = खेला तया किञ्चित् = स्वल्पम् यथा तथा मुकुलिता = संहृता रुट् = क्रोधः यस्य तेन, रामधनुषा = रामकोदण्डेन, सौमित्रिराहूत इति पूर्वपदाभ्यां सम्बन्धः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयूः—दिष्ट्या जीवितास्मि । सेयं प्रथमदर्शिततीव्रातपा पीयूषवृष्टिः ।

यमुना—ततस्ततः ।

[तदो तदो ।]

हंसः—ततः प्रमुदितमुनिजनशतसमुद्भूतसाधुवादश्रवणविनोदेन कतिचिदहानि नयन्ति स्म ।

अथाविरासीत्कुरुविन्दलोचनो द्रुमान्तरे विद्रुमशृङ्गशोभितः ।
विभक्तमुक्तामयचित्रमण्डनो मनोपहारी हरिणो हिरण्मयः ॥ ३६ ॥

गङ्गा—(स्वगतम्) नूनमयमनर्थाङ्कुरः । (प्रकाशम्) ततस्ततः ।

हंसः— भ्रूवल्लीविजितमनोजचारुचाप-
श्चापश्रीजितयुवतीमनोरमभ्रूः ।
सीतायास्तमनुससार लोचनान्तः
कान्तश्च स्फुरदसितोत्पलाभिरामः ॥ ३७ ॥

ततः—

त्रासातुरेण हरिणेन सहैव तेन
दूरं प्रयाति हृदये जनकात्मजायाः ।
सौमित्रिराश्रमपदात्कृतचापपाणि-
र्द्राङ् निर्जगाम च विवेश च कोऽपि भिक्षुः ॥ ३८ ॥

सरयूरिति । प्रथमदर्शिततीव्रातपा—प्रथमम् = पूर्वम् दर्शितः = प्रदर्शितः तीव्रः = तीक्ष्णः आतपः = उष्णता यस्या सा, पीयूषवृष्टिः = अमृतवर्षणम् ॥

हंस इति । प्रमुदितमुनिजनेत्यादिः—प्रमुदिताः = राक्षसवधेन प्रसन्नाः ये मुनिजनाः = ऋषिजनाः तेषां शतं तेन समुद्भूतः = दत्तः यः साधुवादः—प्रशंसावचनम् तस्य श्रवणस्य = आकर्णनस्य विनोदेनेत्यर्थः ॥

अन्वयः—अथ, कुरुविन्दलोचनः, विद्रुमशृङ्गशोभितः, विभक्तमुक्तामयचित्रमण्डनः, मनोपहारी, हिरण्मयः, हरिणः, द्रुमान्तरे, आविरासीत् ॥ ३६ ॥

अथाविरासीदिति । अथ = अनन्तरम् , कुरुविन्दलोचनः—कुरुविन्दः = पद्मराग इव लोचने = नेत्रे यस्य सः, रक्तनेत्र इति भावः, विद्रुमशृङ्गशोभितः—विद्रुममयाभ्याम् = प्रवालमयाभ्याम् शृङ्गाभ्याम् = विषाणाभ्याम् शोभितः = सुन्दरः, रक्तवर्णशृङ्गसम्पन्न इत्यर्थः, विभक्तमुक्तामयचित्रमण्डनः—विभक्तानि = विभिन्नवर्णानि विभज्य स्थितानि वा मुक्तामयानि = मुक्तानिर्मितानि चित्राणि = विचित्राणि, आश्चर्यमयानीत्यर्थः, मण्डनानि = आभूषणानि यस्य सः, मनोपहारी—मनः = चेतः अपहरतीति = आकर्षतीति मनोपहारी = चित्तार्पकः इत्यर्थः, हिरण्मयः = सुवर्णमयः, हरिणः = मृगः, द्रुमान्तरे = वृक्षान्तराले, आविरासीत् = प्रकटितो बभूव । अत्रोपमालङ्कारः । वंशस्थं वृत्तम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—भ्रूवल्लीविजितमनोजचारुचापः, स्फुरदसितोत्पलाभिरामः, सीतायाः, लोचनान्तः, चापश्रीजितयुवतीमनोरमभ्रूः, स्फुरदसितोत्पलाभिरामः, कान्तः, च, तम् ,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयू—भाग्य से (पुनः) जीवित हो गयी हूँ। यह तो पहले भयङ्कर गर्मी को प्रदर्शित करनेवाली अमृत की वृष्टि (के समान बात) है। (अर्थात् आरम्भ में भयङ्कर किन्तु बाद में अच्छे परिणामवाली यह बात है)।

यमुना—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

हंस—तदनन्तर प्रसन्न हुए सैकड़ों मुनिजनों के द्वारा दिये गये साधुवाद (वाहवाही) के श्रवण के आनन्द से (उन लोगों ने) कुछ दिन (वहाँ) व्यतीत किया।

इसके बाद पद्मराग के सदृश आँखोंवाला, मूँगे की सीगोंवाला, विभिन्न मुक्तामय रत्न-विरचित आभूषणों से सम्पन्न, मन को लुभानेवाला, सोने का हरिण प्रकट हुआ ॥ ३६ ॥

गङ्गा—(अपने आप) निश्चय ही यह अनर्थ का अङ्कुर (कारण) है। (प्रकट रूप में) उसके बाद, उसके बाद ?

हंस—भ्रुकुटि-लता से कामदेव के कमनीय धनुष को जीत लेनेवाले, चञ्चल नील-कमल के समान सुन्दर, सीता के कटाक्ष ने (तथा) धनुष की शोभा से युवतियों के मनोहर भौंह को जीतनेवाले, विकसित होते हुए नीलकमल के समान सुन्दर प्रियतम (राम) ने उस (मृग) का पीछा किया (अर्थात् सीता ने उस मृग को देखा तद-नन्तर राम ने उसे पकड़ने या मारने के लिए उसका पीछा किया) ॥ ३७ ॥

उसके बाद—

भय से विह्वल उस हरिण के साथ ही जानकी के हृदय (मन अथवा राम) के दूर चले जाने पर, हाथ में धनुष लिए हुए लक्ष्मण (भी) आश्रम-स्थान से शीघ्र ही बाहर चले गये, (इसी समय) किसी भिक्षुक ने भी (वहाँ) प्रवेश किया ॥३८॥

अनुससार ॥ ३७ ॥

भ्रूवल्लीति। भ्रूवल्लीविजितमनोजचारुचापः—भ्रूवल्ल्या = भ्रूलतया विजितः = पराजितः मनोजस्य = कामस्य चारुः = सुन्दरः चापः = धनुः येन तादृशः, स्फुरदसितोत्पलाभिरामः—स्फुरत् = चञ्चलम् यत् असितोत्पलम् = नीलकमलम् इव अभिरामः = सुन्दरः, सीतायाः = जानक्याः, लोचनान्तः = कटाक्षः, चापश्रीजितयुवतीमनोरमभ्रूः—चापस्य = धनुषः श्रिया = शोभया जिताः = पराजिताः युवतीनाम् = तरुणीनाम् मनोरमाः = शोभनाः भ्रुवः=भ्रुकुट्यः येन सः, स्फुरदसितोत्पलाभिरामः—स्फुरत् = विकसत् यदसितोत्पलं तद्वदभिरामः=सुन्दरः, कान्तः = प्रियः, राम इत्यर्थः, च = अपि, तम् = हरिणम्, अनुससार = अनुदधाव। सीतया दृष्टस्ततः प्रियामनोरथाभिज्ञेन रामेण सोऽनुधावितः इत्यर्थः। अत्र यथासंख्यमलङ्कारः। प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥३७॥

अन्वयः—त्रासातुरेण, तेन, हरिणेन, सहैव, जनकात्मजायाः, हृदये, दूरम्, प्रयाति, (सति); कृतचापपाणिः, सौमित्रिः, आश्रमपदात्, द्राक्, निर्जगाम; कोऽपि, भिक्षुः, च, विवेश ॥३८॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—ततस्ततः ।

हंसः—ततः ।

इतो बाणं रामः क्षिपति हरिणे मुक्तकरुणः
सचापः सौमित्रिः स्वजनमनुयाति द्रुतमितः ।
इतः सीता भिक्षामुपनयति भिक्षोः करतले
त्रयं व्योम्नि प्रेङ्खन्युगपदमहमालोकयमिदम् ॥ ३९ ॥

सरयूः—ततस्ततः ।

हंसः—ततः ।

कनकहरिणगात्रे बाणपातावलोका-
द्विमुखहृदयवृत्तिर्लोचने सन्निमील्य ।
कथयितुमयि चेदं रामवृत्तान्तजातं
सरयु तव तटान्तं तूर्णमेवावतीर्णः ॥ ४० ॥

तदनुजानीत मां देव्यः, सलिलावगाहनाय । श्रान्तोऽस्मि ।

तिस्रः—

विहरास्मिन्रमणीये शुचिपयसि स्मेरनीरजे सरसि ।
पुरतरुणीचरणरणन्मणिनूपुरकूजितात्कुतुकः ॥ ४१ ॥

त्रासातुरेणेति । त्रासातुरेण = भयविह्वलेन, रामबाणादिति शेषः, तेन = तादृशेन विलक्षणेनेत्यर्थः, हरिणेन=मृगेण, सहैव = साकमेव, जनकात्मजायाः=जानक्याः, हृदये = मनसि, हृदयस्थे रामे वा, दूरम् = विप्रकृष्टम् , प्रयाति=गच्छति, सति, रामचिन्तया सीता-चेतसि दूरङ्गते सतीत्यर्थः, कृतचापपाणिः—कृतः = धृतः चापः=धनुः पाणौ=हस्ते येन सः, सौमित्रिः=लक्ष्मणः, आश्रमपदात्=निवासाश्रमात् , द्राक्=झटिति, निर्जगाम=बहिर्गतवान्, ततः कोऽपि = कश्चिदपि, भिक्षुः = भिक्षुकः, च = अपि, विवेश=प्रविवेश, आश्रमपदमिति शेषः । अत्र सहोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥३८॥

अन्वयः—इतः, रामः, मुक्तकरुणः, (सन्), हरिणे, बाणम् , क्षिपति; इतः, सचापः, सौमित्रिः, द्रुतम् , स्वजनम् , अनुयाति; इतः, सीता, भिक्षोः, करतले, भिक्षाम् , उपनयति; व्योम्नि, प्रेङ्खन् , अहम् , इदम् , त्रयम् , युगपत् , आलोकयम् ॥३९॥

इतो बाणमिति । इतः = एकस्यां दिशि, रामः = रामचन्द्रः, मुक्तकरुणः—मुक्ता = त्यक्ता करुणा = दया येन सः तादृशः, सन् = भवन् , हरिणे = मृगे, बाणम् = शरः, क्षिपति=प्रहरति; इतः = अपरस्यां दिशि, सचापः = धनुर्धारी, सौमित्रिः = लक्ष्मणः, द्रुतम् = झटिति, स्वजनम् = स्वबान्धवम् , राममित्यर्थः, अनुयाति = अनुसरति; इतः= इह, सीता = जानकी, भिक्षोः = भिक्षुकस्य, भिक्षुकरूपधरस्य रावणस्येत्यर्थः, करतले = हस्ततले, भिक्षाम् = याच्ञाम् ('याच्ञाभिक्षार्थनार्दना' इत्यमरः), याचितमन्नादिकमित्यर्थः, उपनयति = समर्पयति, व्योम्नि = आकाशे, प्रेङ्खन् = उड्डीयमानः, अहम् = हंसः, इदम्=

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा--उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

हंस—उसके बाद—

इधर राम दयारहित होकर हरिण पर बाण छोड़ रहे हैं। इधर धनुष लिए हुए लक्ष्मण शीघ्र ही अपने बन्धु (राम) के पीछे-पीछे जा रहे हैं। इधर सीता भिक्षुक के हाथ में भिक्षा दे रही हैं। आकाश में उड़ते हुए मैंने इन तीनों (बातों) को एक साथ देखा ॥३९॥

सरयू—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

हंस—उसके बाद—

हे सरयु, सोने के हरिण के शरीर पर शर-प्रहार देखने से विमुख चित्तवृत्ति वाला (मैं) नेत्रों को मूँद कर इस राम-वृत्तान्त को कहने के लिए तुम्हारे तट के पास शीघ्र ही उतर पड़ा हूँ ॥४०॥

तो देवियाँ मुझे जलविहार के लिए आदेश दें। थक गया हूँ।

तीनों—नगर की युवती स्त्रियों के चरणों में शब्द करने वाले मणि के नूपुरों के गुञ्जन से उत्कण्ठित (तुम) रमणीय, निर्मल जल वाले, विकसित कमलों से पूर्ण इस तालाब में विहार करो ॥४१॥

एतत्, त्रयम् = त्रितयम्, युगपत् = एककालम्, आलोकयम् = अपश्यम्। शिखरिणी वृत्तम् ॥३९॥

अन्वयः—अयि सरयु, कनकहरिणगात्रे, बाणपातावलोकात्, विमुखहृदयवृत्तिः, (अहम्), लोचने, सन्निमील्य, इदम्, रामवृत्तान्तजातम्, कथयितुम्, तव, तटान्तम्, तूर्णम्, एव, अवतीर्णः ॥४०॥

कनकेति। अयि सरयु = हे सरयु, कनकहरिणगात्रे—कनकस्य = सुवर्णस्य हरिणः = मृगः तस्य गात्रे = शरीरे, बाणपातावलोकात्—बाणस्य = शरस्य पातः=प्रहारः तस्य अवलोकात् = दर्शनात्, विमुखहृदयवृत्तिः—विमुखा = विपरीता हृदयस्य = चेतसः वृत्तिः = व्यापारः यस्य सः तादृशः, अहमिति शेषः, लोचने = नेत्रे, सन्निमील्य = निमील्य, इदम्=एतत्, रामवृत्तान्तजातम्—रामस्य = रामचन्द्रस्य वृत्तान्तजातम् = समाचारसमवायम्, कथयितुम् = वक्तुम्, तव = भवत्याः, तटान्तम्=तीरभागम्, तूर्णमेव = शीघ्रमेव अवतीर्णः = आकाशादागतः, अस्मीति क्रियाशेषः। नेत्रनिमीलनेनात्मनः सीतासमाचाराज्ञानं निर्दिष्टम्। मालिनी वृत्तम् ॥४०॥

अन्वयः—पुरतरुणीचरणरणन्मणिनूपुरकूजितोत्कुतुकः, (त्वम्), रमणीये, शुचिपयसि, स्मेरनीरजे, अस्मिन्, सरसि, विहर ॥४१॥

विहरेति। पुरतरुणीत्यादिः—पुरतरुण्यः = नगरललनाः तासां चरणेषु = पादेषु रणन्तः = शब्दायमानाः ये मणिनूपुराः = मणिखचिताः मञ्जीराः तेषां कूजितैः = झंकृतैः उत्कुतुकः=उत्कण्ठितः, त्वमिति शेषः, रमणीये = मनोहरे, शुचिपयसि—शुचि=निर्मलम् पयः=जलम् यस्मिन् तत् तस्मिन्, स्मेरनीरजे—स्मेराणि=विकसितानि नीरजानि=कमलानि

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(हंसः प्रणम्य निष्क्रान्तः)

गङ्गा—सखि सरयु, अनेन वृत्तान्तक्रमेण कातरं मे मनः।

सरयूः—अलं कातरतया। नन्वनेन हि नूपुरोद्भेदेन स्मृतं मया यत्किल वनगमनोद्यतां जानकीमिदमुक्तवती करकलितनूपुरद्वया पतिव्रता सीमन्तिनीरत्नमरुन्धती।

अधिचरणममू चमूरुनेत्रे मृदुरणितौ मणिनूपुरौ विधेहि।
अहरपि विरहं न यन्महिम्ना हरिणदृशः सह वल्लभैर्लभन्ते ॥ ४२॥

कृतवती च तथा जानकी।

गङ्गा—इदानीं किमपि निर्वृत्तास्मि। सत्यवादिनी हि मे सखी वसिष्ठगृहमेधिनी। तदागच्छत। इमं वृत्तान्तं रघुकुलवत्सलाय सागराय निवेदयामः। (इति परिक्रामतः)

गङ्गा—(सविस्मयम्) अहो, प्रवाहवेगातिशयात्तत्क्षणादेव दूरमुपयाताः स्मः यदयमदूर एव गोदावरीसहचरः सागरः किमपि समालपन्नालोक्यते कल्लोलिनीकान्तः।

(ततः प्रविशति गोदावरीसहचरः सागरः)

सागरः—ततस्ततः।

सरयूः—कथमिहापि किमपि वृत्तान्तशेषः प्रस्तूयते।

यमुना—अपि नाम तदेव भविष्यति यत्किल हंसेन नावगतम्।

[अवि णाम तं जेव्व हविस्सदि जं किर हंसेण णावगअम्।]

गोदावरी—ततो

रामोन्मुक्तैकबाणप्रणिहतहृदयः काञ्चनाङ्गः कुरङ्गः
सद्यो मारीचनामाजनि रजनिचरः सान्द्ररक्तात्तवक्षाः।
भिक्षुः सोऽपि क्षणार्धान्मणिखचितचलत्कुण्डलश्रेणिशोभा-
वीचीखेलत्कपोलस्फुरितदशशिराः कुम्भकर्णाग्रजोऽभूत् ॥४३॥

यस्मिन् तत् तस्मिन्, अस्मिन्=एतस्मिन्, सरसि=सरोवरे, विहर=क्रीडां कुरु॥ आर्या वृत्तम् ॥४१॥

सरयूरिति। कातरतया=विह्वलतया, भीत्येत्यर्थः। नूपुरोद्भेदेन—नूपुरस्य= मञ्जीरस्य उद्भेदेन=प्रसङ्गेन। करकलितनूपुरद्वया— करे=हस्ते कलितम्=गृहीतम् नूपुरद्वयम्=मञ्जीरयुगलम् यया सा तथा, सीमन्तिनीरत्नम्—स्त्रीरत्नम्॥

अन्वयः—हे चमूरुनेत्रे, मृदुरणितौ, अमू, मणिनूपुरौ, अधिचरणम, विधेहि; यन्महिम्ना, हरिणदृशः, वल्लभैः, सह अहरपि, विरहम्, न, लभन्ते ॥४२॥

अधिचरणमिति। हे चमूरुनेत्रे=हे हरिणलोचने, सीते इति भावः, मृदुरणितौ— मधुरशब्दितौ, अमू=एतौ, मणिनूपुरौ=मणिखचितौ मञ्जीरौ, अधिचरणम्=चरणयोः, विधेहि=धारय। यन्महिम्ना—यस्य=नूपुरस्य महिम्ना=महत्त्वेन, हरिणदृशः= ललनाः, वल्लभैः=प्रियतमैः, सह=साकम्, अहरपि=दिनमपि, विरहम्=वियोगम्, न=नहि, लभन्ते=प्राप्नुवन्ति। अत्रोपमाऽलङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥४२॥

गङ्गेति। प्रवाहवेगातिशयात्—प्रवाहस्य=धारायाः वेगः=तीव्रा गतिः तस्य

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(हंस प्रणाम करके निकल गया)

गङ्गा—सखि सरयु, समाचार के इस क्रम से मेरा मन भयभीत हो रहा है।

सरयू—भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि इस नुपुर की चर्चा से ही मुझे याद आयी है कि वनगमन के लिए उद्यत जानकी को हाथ में दो नूपुरों को लिए हुई पतिव्रता स्त्रीरत्न अरुन्धती ने यह कहा था—

हे हरिणलोचने, कोमल गुञ्जन करने वाले इन मणि-खचित नूपुरों को (अपने) चरणों में रखो। जिनकी महिमा से रमणियाँ (अपने) प्रियतम स्वामियों के साथ एक दिन का भी विरह नहीं पाती हैं ॥४२॥

जानकी ने वैसा ही किया भी।

गङ्गा—अब कुछ आश्वस्त हुई हूँ। हमारी सखी वसिष्ठपत्नी (अरुन्धती) सत्यवादिनी है। तो आओ। इस समाचार को रघुकुल पर स्नेह रखने वाले सागर से कहें। (ऐसा कह कर घूमती हैं)।

गङ्गा—(आश्चर्य के साथ) अहो! प्रवाह की गति की तीव्रता के कारण (हम लोग) शीघ्र ही दूर तक चली आयी हैं, जो कि यह पास में ही गोदावरी के साथ स्थित नदीपति सागर कुछ बात-चीत करते हुए दिखलाई पड़ रहे हैं।

(तदनन्तर गोदावरी को साथ लिए हुए सागर प्रवेश करता है)

सागर—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ)?

सरयू—क्या यहाँ भी किसी घटित घटना का वर्णन हो रहा है?

यमुना—क्या (यह) वही (वृत्तान्त) होगा जिसे कि हंस नहीं जानता?

गोदावरी—उसके बाद—

राम के द्वारा छोड़े गये एक बाण से हृदय में विद्ध, सुवर्ण के शरीर वाला, (वह) हरिण गाढ़े खून से लथ-पथ हृदय होकर शीघ्र ही मारीच नामक राक्षस हो गया। वह भिक्षु भी आधे क्षण में ही मणियों से जटित तथा चञ्चल कुण्डलों की श्रेणी की शोभारूप तरङ्ग में खेलने वाले कपालों से प्रकाशित दश शिरों से युक्त कुम्भकर्ण का बड़ा भाई (रावण) हो गया ॥४३॥

अतिशयात् = आधिक्यात्। कल्लोलिनीकान्तः—कल्लोलिनीनाम् = नदीनाम् कान्तः = प्रियः, भर्तेति यावत्। सिन्धुः सिन्धुपतिर्निगद्यते ॥

अन्वयः—रामोन्मुक्तैकबाणप्रणिहतहृदयः, काञ्चनाङ्गः, कुरङ्गः, सान्द्ररक्तार्द्रवक्षाः, (सन्), सद्यः मारीचनामा, रजनिचरः, अजनि। सः, भिक्षुः, अपि, क्षणार्धात्, मणिखचितचलत्कुण्डलश्रेणिशोभावीचीखेलत्कपोलस्फुरितदशशिराः, कुम्भकर्णाग्रजः, अभूत् ॥४३॥

रामेति। रामोन्मुक्तैकबाणप्रणिहतहृदयः—रामेण = रामचन्द्रेण उन्मुक्तः—प्रक्षिप्तः यः एकः = केवलोऽद्वितीयो वा, बाणः = शरः तेन प्रणिहतम् = आविद्धम् हृदयम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—हा, हतास्मि । (विमृश्य) अथवास्ति तन्मणिनूपुरद्वयम् ।

सागरः—अपि नाम मम वधूटिका स्पृष्टा निशाचरेण ।

गोदावरी—न स्पृष्टा ।

सागरः—कथमिव ।

गोदावरी—तथा हि—

रजनिचरकराग्रस्पर्शसम्पातविघ्नं
रचयितुमनुसूयाहस्तदत्ताङ्गरागाम् ।
बहलमनलपुञ्जः पिञ्जरज्यातिरुद्यन्
कुवलयदलशीतां संवृणोति स्म सीताम् ॥ ४४ ॥

सागरः—अहो, अत्रिपत्न्यास्तपःप्रभावः ।

गोदावरी—ततो वरुणमन्त्रचिन्तनाहूतनूतनबलाहकाञ्चलनिचुलितपाणिरस्पृशदेव

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम् ।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्तीं-
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ॥ ४५ ॥

वक्षःस्थलम् यस्य सः, काञ्चनाङ्गः—सुवर्णशरीरः, कुरङ्गः = हरिणः, सान्द्ररक्ताक्तवक्षाः—सान्द्रम् = घनीभूतम् यत् रक्तम् = रुधिरम् तेन अक्तम् = लिप्तम् वक्षः = हृदयम् यस्य सः तादृशः सन्, सद्यः = झटिति, मारीचनामा = मारीचसंज्ञः, रजनिचरः = राक्षसः, अजनि = जातः । सः = पूर्वनिर्दिष्टः, भिक्षुः = भिक्षुकः, अपि, क्षणार्द्धात् = स्वल्पकालादित्यर्थः, मणिखचितेत्यादिः—मणिखचितानि = रत्नमण्डितानि चलन्ति = चलायमानानि यानि कुण्डलानि = कर्णाभरणानि तेषां श्रेणी = पंक्तिः तस्याः शोभा = कान्तिः तस्याः या वीची = तरङ्गः तस्यां खेलन्तः = क्रीडां कुर्वन्तः ये कपोलाः = गण्डस्थलानि तैः स्फुरितानि = प्रकाशमानानि दशशिरांसि = दशमस्तकानि यस्य सः, कुम्भकर्णाग्रजः—कुम्भकर्णस्य अग्रजः = अग्रजन्मा, रावणः इत्यर्थः, अभूत् = सञ्जातः । अत्र रूपकालङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥४३॥

अन्वयः—रजनिचरकराग्रस्पर्शसम्पातविघ्नम्, रचयितुम्, अनुसूयाहस्तदत्ताङ्गरागाम्, कुवलयदलशीताम्, सीताम्, बहलम्, उद्यन्, पिञ्जरज्योतिः, अनलपुञ्जः, संवृणोति स्म ॥४४॥

रजनिचरेति । रजनिचरकराग्रस्पर्शसम्पातविघ्नम्—रजनिचरस्य = राक्षसस्य कराग्रेण = हस्ताग्रेण यः स्पर्शः = आमर्शनम् तद्रूपः सम्पातः = शरीरसंयोगः तत्र विघ्नम् = प्रत्यवायम्, रचयितुम् = कर्तुम्, अनुसूयाहस्तदत्ताङ्गरागाम्—अनुसूयया = अत्रिपत्न्या हस्तेन = करेण दत्तः = समर्पितः अङ्गरागः = शरीरलेपनद्रव्यम यस्यै सा ताम, कुवलयदलशीताम्—कुवलयस्य = नीलकमलस्य दलम् = पत्रम् तद्वत् शीताम् = शीतलाम्, भय-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

गङ्गा—हाय ! मैं मारी गयी । (विचार कर) अथवा वह मणिखचित नूपुर का जोड़ा (तो) है ।

सागर—क्या मेरी प्यारी वधू निशाचर के द्वारा छू ली गयी ?

गोदावरी—नहीं छुई गयी ।

सागर—कैसे ?

गोदावरी—क्योंकि

राक्षस (रावण) के हाथ के अग्र भाग से होने वाले स्पर्श रूप संयोग में विघ्न करने के लिए, अनुसूया के हाथों से लगाया गया है अङ्गराग जिसको ऐसी, नीले कमल के पत्र के सदृश शीतल सीता को अधिकता से प्रादुर्भूत पीले प्रकाश वाले अग्निपुञ्ज ने घेर लिया था ॥४४॥

सागर—अत्रि की पत्नी (अनुसूया) की तपस्या का प्रभाव आश्चर्यजनक है ।

गोदावरी—तब वरुणमन्त्र के ध्यान से बुलाये गये नवीन जलभरे बादलों के अञ्चल से ढके हुए हाथ वाले (राक्षस) ने छू ही लिया है ।

'हा राम, हा वल्लभ, हा संसार के अद्वितीय वीर, हा स्वामिन्, हा रघुपते, मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ?'—इस प्रकार बारम्बार विलाप करती हुई जानकी को लेकर राक्षसराज (रावण) आकाश से चला गया ॥४५॥

जन्यशैत्ययुक्तामित्यर्थः, सीताम् = जानकीम्, बहलम्=पर्याप्तं यथात्यात्तथा, उद्यन् = प्रादुर्भवन्, पिङ्गज्योतिः = पिङ्गलाभः, अनलपुञ्जः—अनलस्य=अग्नेः पुञ्जः = समूहः, संवृणोति स्म=आवृतवान् । अनसूयादत्ताङ्गरागप्रभावादुत्थिताग्निना राक्षसः सीतां स्प्रष्टुं न शशाक । 'उद्यत्कुवलयदलशीताम्' इति पाठे तु उद्यत्=विकाशं गच्छत् यत् कुवलयं तस्य दलमिव शीतामिति बोध्यम् । अत्रोपमालङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥४४॥

गोदावरीति । वरुणमन्त्रेत्यादिः—वरुणमन्त्रस्य = अप्पतिमन्त्रस्य ('प्रचेता वरुणः पाशी अप्पतिः' इत्यमरः) चिन्तनेन=ध्यानेन आहूताः=आकारिताः ये नूतनाः = नवीनाः वलाहकाः = पयोदाः तेषाम् अञ्चलेन = प्रान्तेन निचुलितः आवृतः पाणिः = हस्तः यस्यासौ ॥

अन्वयः—हा राम, हा रमण, हा जगदेकवीर, हा नाथ, हा रघुपते, माम्, किम्, उपेक्षसे ? इत्थम्, मुहुः, आलपन्तीम्, विदेहतनयाम्, आदाय, राक्षसपतिः, नभसा, जगाम ॥४५॥

हा रामेति । हा राम = हा रामचन्द्र, हा रमण = हा वल्लभ, हा जगदेकवीर = हा जगति अद्वितीयवीर, हा नाथ = हा स्वामिन्, हा रघुपते = हा राघव, माम = स्ववल्लभां सीताम्, किम् = किमर्थम्, उपेक्षसे = त्यजसि ? इत्थम् = अनेन प्रकारेण, मुहुः = बारम्बारम्, आलपन्तीम् = विलपन्तीम्, विदेहतनयाम् = वैदेहीम्, आदाय = गृहीत्वा, राक्षसपतिः = राक्षसराजो रावणः, नभसा = आकाशमार्गेण; जगाम = गतवान् । अत्र परिकरालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥४५॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयूः—अयि, भागीरथि, कथमस्मद्भागधेयादरुन्धतीवाचोऽपि मृषा भविष्यन्ति।

गङ्गा—नहि नहि।

सागरः—(सविषादम्) ततः।

गोदावरी—ततः शैलशिखराधिवासिना विहङ्गराजेन जटायुना पन्थानमवरुध्येदमुक्तो राक्षसेन्द्रः—

> आः पापिन्पश्यतो मे रघुकुलतिलकवधूं चोरवृत्त्यापहर्तुं
> सीतां शीतांशुलेखामिव गिरिशशिरःशायिनीमुद्यतोऽसि।
> एष च्छित्त्वा शिरांसि प्रखरनखमुखैर्दीप्तचूडामणिनि
> त्वामद्याहं गरुत्मानुरगमिव सुधाकाङ्क्षिणं संहरामि ॥ ४६ ॥

गङ्गा—स एव नूपुरप्रसादः।

सागरः—(सहर्षम्) ततस्ततः।

गोदावरी—

> नखैस्तदीयैः कुलिशात्कठोरैर्भिन्दद्भिरङ्गानि निशाचरस्य।
> रथः स हेमाभरणो बभञ्जे न जानकीलाभमनोरथोऽस्य ॥ ४७ ॥

सागरः—ततः।

गोदावरी—ततश्च निशितनखनिस्त्रिंशनिर्घातभैरवे समररंरम्भे संभ्रमकातरायां रावणैककरस्थितायां जानक्यां—

अन्वयः—आः पापिन्, मे, पश्यतः, (एव), गिरिशशिरःशायिनीम्, शीतांशुलेखामिव, रघुकुलतिलकवधूम्, सीताम्, चोरवृत्त्या, अपहर्तुम्, उद्यतः, असि ? एषः, अहम्, अद्य, प्रखरनखमुखैः, दीप्तचूडामणीनि, शिरांसि, छित्त्वा, गरुत्मान्, सुधाकाङ्क्षिणम्, उरगमिव, त्वाम्, संहरामि ॥४६॥

आः पापिन्निति। आः=क्रोधाभिव्यञ्जकमिदमव्ययपदम्, पापिन् = नीचकर्मा रावण, मे=, जटायोरित्यर्थः, पश्यतः=अवलोकयतः, एव, गिरिशशिरःशायिनीम्—गिरिशस्य=शङ्करस्य शिरसि=मस्तके शायिनीम्=स्थिताम्, शीतांशुलेखामिव—शीतांशोः=चन्द्रस्य लेखामिव=रेखामिव; रघुकुलतिलकवधूम्—रघुकुलस्य=रघुवंशस्य तिलकस्य=शिरोभूषणभूतस्य, रामस्येत्यर्थः वधूम्=नवपरिणीतां स्त्रियम्, सीताम्=जानकीम्, चोरवृत्त्या=चौर्येणेत्यर्थः, अपहर्तुम्=मोष्टुम्, उद्यतः=तत्परः, असि=भवसि ? एषः=अयम्, अहम्=जटायुः, अद्य=सम्प्रति, प्रखरनखमुखैः—प्रखरैः=अतितीक्ष्णैः नखमुखैः=नखाग्रैः, दीप्तचूडामणीनि—दीप्ताः=प्रकाशिताः चूडामणयः=मुकुटरत्नानि येषु तानि, शिरांसि=मस्तकानि, छित्त्वा=कर्तयित्वा, गरुत्मान्=गरुडः, सुधाकांक्षिणम्=अमृताभिलाषिणम्, उरगमिव=सर्पमिव, त्वाम्=दुराचारिणं रावणम्, संहरामि=व्यापादयामि। यथा सुधापहारिणं सर्पं गरुडो बलाद् व्यापादयामास तथैव पतिव्रतां सीतां हठादपहरन्तं त्वामहं व्यापदयिष्यामीति भावः। अत्रोपमालङ्कारः। स्रग्धरावृत्तम् ॥४६॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सरयू—अयि गङ्गे, क्या हम लोगों के भाग्य (वस्तुतः दुर्भाग्य) से अरुन्धती के वचन भी असत्य होंगे ?

गङ्गा—नहीं, नहीं ।

सागर—(दुःख के साथ) उसके बाद (क्या हुआ) ?

गोदावरी—इसके बाद पर्वत के शिखर पर निवास करने वाले पक्षिराज जटायु के द्वारा मार्ग रोक कर राक्षसराज (रावण) यह कहा गया—

अरे पापकर्मा, मेरे देखते (ही), शङ्कर के मस्तक पर निवास करने वाली चन्द्रमा की कला के समान, रघुवंश शिरोमणि (राम) की वधू सीता को चोरों की तरह हरण करने के लिए तत्पर हो ? यह मैं आज अत्यन्त तीखे (अपने) नखों के अग्रभागों से, चमकीले शिरोरत्नों वाले (तुम्हारे) शिरों को काट कर, गरुड ने अमृत चाहने वाले सर्प को जैसे (मारा था उसी तरह), तुम्हारा संहार करता हूँ ॥ ४६ ॥

गङ्गा—यह वही नूपुर का महत्त्व है ।

सागर—(प्रसन्नता के साथ) उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

निशाचर (रावण) के अङ्गों को विदीर्ण करनेवाले, वज्र से भी कठोर, उस (जटायु) के नखों (के प्रहार) से सुवर्ण-मण्डित इसका रथ भग्न हो गया (किन्तु) जानकी की प्राप्ति की इच्छा न (भग्न हुई) ॥ ४७ ॥

सागर—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

गोदावरी—उसके बाद, तीखे नाखूनों और तलवार के परस्पर प्रहार से भयङ्कर संग्राम के प्रारम्भ होने पर, रावण के एक हाथ में स्थित जानकी के भय से विकल होने पर—

अन्वयः—निशाचरस्य, अङ्गानि, भिन्दद्भिः, कुलिशात्, कठोरैः, तदीयैः, नखैः, सहेमाऽभरणः, अस्य, रथः, बभञ्जे; जानकीलाभमनोरथः, न, (बभञ्जे) ॥ ४७ ॥

नखैरिति । निशाचरस्य = राक्षसस्य, रावणस्येत्यर्थः, अङ्गानि = अवयवान्, भिन्दद्भिः = विदारयद्भिः, कुलिशात् = वज्रात्, कठोरैः = कठिनैः, तदीयैः = जटायुसम्बन्धिभिः, नखैः = नखरैः, सहेमाभरणः—सुवर्णमण्डितः, सुवर्णालङ्कारालङ्कृतः, इत्यर्थः, अस्य = निशाचरस्य, रथः = यानम्, बभञ्जे = भग्नोऽभूत्, (किन्तु), जानकीलाभमनोरथः—जानक्याः = सीतायाः लाभस्य = प्राप्तेः मनोरथः = अभिलाषा, न = न बभञ्जे । भग्नरथो विदीर्णाङ्गश्च रावणो जानकीहरणेच्छां न तत्याजेति भावः । अत्र परिसंख्यालङ्कारः । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ४७ ॥

गोदावरीति । निशितनखनिस्त्रिंशनिर्घातभैरवे—निशिताः = तीक्ष्णाः नखाः = नखराः तेषां निस्त्रिंशस्य च निर्घातेन = परस्परप्रहारेण भैरवे = भीषणे, अत्र नखाः जटायुषो निस्त्रिंशस्तु रावणस्येति ज्ञेयम्, समरसंरम्भे—समरस्य संग्रामस्य संरम्भे = आरम्भे, संभ्रमकातरायाम्—संभ्रमेण = भीत्या कातरायाम् = विह्वलायाम्, रावणैककरस्थितायाम्—रावणस्य = दशाननस्य एकस्मिन् करे = हस्ते स्थितायाम् = वर्तमानायाम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तस्याः क्वणन् किमपि नूपुर एक एव
क्रन्दन्निवातिकरुणं चरणात्पृथिव्याम् ।

गङ्गा—हा, अधुना निराशाः स्मः ।

गोदावरी—

आस्तिष्ठ तिष्ठ निहतोऽसि खलेति जल्प-
न्दूराज्जटायुरपि खड्गहतः पपात ॥ ४८ ॥

सागरः—हा वत्से जानकि, अधुना नीतासि निशाचरेण ।

(इति मूर्च्छति)

गङ्गा—(उपसृत्यांशुकान्तेन वीजयन्ती) अये रघुकुलवत्सल, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

सागरः—कथमिह गङ्गापि ।

गङ्गा—यमुनासरस्वौ च ।

सागरः—तन्मां मिलिताः सर्वा एव धारयत । अयमहं हतोऽस्मि शोकस्रोतसा ।

गङ्गा—अलमतिकातरतया । यतः—

प्रायो दुरन्तपर्यन्ता संपदोऽपि दुरात्मनाम् ।
भवन्ति हि सुखोदर्का विपदोऽपि महात्मनाम् ॥ ४९ ॥

सरयूः—सखि गोदावरि, अपि जानासि नूपुरवृत्तान्तम् ।

गोदावरी—अथ किम् । कथितमेव वनदेवतया—'तमादाय कोऽपि कपिः ऋष्यमूकसम्मुखं गतः' इति ।

सागरः—रामभद्रस्य तु को वृत्तान्तः ।

गोदावरी—रामभद्रोऽपि सीताविरहविह्वलः सौमित्रिणा धार्यमाणस्तामेव दिशं प्रतस्थे।

(नेपथ्ये)

अन्वयः—किमपि, क्वणन् , तस्याः, एकः, एव, नूपुरः, अतिकरुणम् , क्रन्दन् , इव, चरणात् , (तथा), 'आः, तिष्ठ तिष्ठ, हे खल, निहतः, असि', इति, जल्पन् , खड्गहतः, जटायुः, अपि, दूरात् , पृथिव्याम् , पपात् ॥ ४८ ॥

तस्या इति । किमपि = अव्यक्तं यथा स्यात्तथा, क्वणन् = शब्दं कुर्वन् , तस्याः = सीतायाः, एकः = केवलः, एव, नूपुरः = मञ्जीरः, अतिकरुणम् = अतिदीनम् , क्रन्दन् = रुदन् विलपन् वा, इव = यथा, चरणात् = पादात् , (तथा) 'आः = क्रोधाभिव्यञ्जकमव्ययपदमिदम् , तिष्ठ तिष्ठ = पलाय्य मा गच्छ मा गच्छेत्यर्थः, हे खल = हे नीच, निहतः = मारितः, असि = भवसि, शीघ्रमेव निहतो भविष्यसीति भावः', इति = इत्थम् , जल्पन् = कथयन् , खड्गहतः—खड्गेन = रावणकरवालेन हतः = ताडितः, जटायुः = जटायुनामा गृध्रराजः, अपि, दूरात् = आकाशात् , पृथिव्याम् = भूमौ, पपात् = पतितोऽभूत् । सीताचरणात् नूपुरः आकाशात् जटायुश्च साकमेव पृथिव्यां पपातेति भावः अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४८ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अस्पष्ट रूप से कुछ शब्द करता हुआ उस (सीता) का एक ही नूपुर अत्यन्त करुणापूर्वक रोता हुआ सा चरण से (तथा)।

गङ्गा—हाय ! अब (तो हम लोग) निराश हो गयीं।

गोदावरी—'आह ! रुको-रुको, हे दुष्ट (अब तुम) मारे ही गये'—ऐसा कहता हुआ तलवार से आहत जटायु भी दूर (आकाश) से, पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ४८ ॥

सागर—हाय ! बेटी सीते, अब (तुम) राक्षस के द्वारा ले जायी गई। (ऐसा कह कर मूच्छित होता है।)

गङ्गा—(पास में जाकर आँचल से हवा करती हुई) हे रघुकुल श्रेष्ठ, धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये।

सागर—क्या यहाँ गङ्गा भी (हैं) ?

गङ्गा—यमुना और सरयू भी (हैं)।

सागर—तो मिलकर सभी मुझको सँभालो। यह मैं शोक के आवेग के कारण (अब) मरा ही हूँ।

गङ्गा—अत्यधिक दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि—

निश्चय ही (रावण जैसे) दुष्ट व्यक्तियों की उन्नतियाँ भी प्रायः परिणाम में दुःखदायिनी (होती हैं)। (तथा राम जैसे) महात्मा व्यक्तियों की अवनतियाँ भी परिणाम में कल्याणकारिणी हुआ करती हैं ॥ ४९ ॥

सरयू—सखि गोदावरि, क्या (तुम) नूपुर के वृत्तान्त को जानती हो ?

गोदावरी—और क्या ? (अर्थात् हाँ जानती हूँ)। वनदेवता (वन की अधिष्ठात्री देवी) ने कहा ही था—'उस (नूपुर) को लेकर कोई बन्दर ऋष्यमूक (पर्वत) की ओर चला गया।'—ऐसा।

सागर—रामभद्र का क्या समाचार है ?

गोदावरी—सीता के विरह से विह्वल (तथा) लक्ष्मण के द्वारा सँभाले गये रामचन्द्र भी उसी दिशा की ओर प्रस्थान किये।

(पर्दे के पीछे)

अन्वयः—हि, दुरात्मनाम्, सम्पदः, अपि, प्रायः, दुरन्तपर्यन्ताः, (भवन्ति); महात्मनाम्, विपदः, अपि, सुखोदर्काः, भवन्ति ॥ ४९ ॥

प्राय इति। हीति निश्चये; दुरात्मनाम् = दुष्टानाम्, रावणसदृशानामिति भावः, सम्पदः = उन्नतयः, अपि, प्रायः = बाहुल्येन, दुरन्तपर्यन्ताः—दुरन्तः = दुःखपूर्णः पर्यन्तः = परिणामः यासां ताः, दुःखदायिन्य इत्यर्थः, भवन्तीति शेषः। महात्मनाम् = साधुजनानाम्, रामसदृशानामिति भावः, विपदः = विपत्तयः, अपि, सुखोदर्काः—सुखम् = कल्याणम् उदर्कः = उत्तरपरिणामः यासां ताः, भवन्ति = जायन्ते। अतो कातरता न कार्येति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४९ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखि कालिन्दि, वर्धसे ।

यमुना—का पुनरिमानि सूचीशलाकाविद्धानि मम नखान्यलक्तकरसेन सिञ्चति ।
[का उण इमाइं सूईसलाआविद्धाइं मह णहाइं अलत्तअरसेण सिञ्चदि ।]

(प्रविश्य)

तुङ्गभद्रा—जयतु जयतु नदीनाथः ।

सागरः—कथं पुनर्वर्द्धते कालिन्दी ।

तुङ्गभद्रा—भ्रातुः सुग्रीवस्य चक्रवर्तिपदलाभेन ।

यमुना—इदानीं चन्दनचण्डातपलिप्यमानपक्षयुगला वर्ते ।
[दाणिं चन्दणचण्डातपलिम्पन्तपास्सजुअला वट्टामि ।]

सागरः—कथं पुनर्वालिपालितापि कपिराज्यलक्ष्मीः सुग्रीवमनुसंक्रान्ता ।

तुङ्गभद्रा—कथमद्यापि वालिकथा ।

सागरः—कथमिव ।

तुङ्गभद्रा—ननु नूपुरप्रदानविश्वासितेन रामचन्द्रेणात्मानं सुग्रीवं च समर्पयता हनूमता तथा व्यवसितं यथा

सहेलं हत्वैनं हरिणमिव हैमं रघुपतिः
कपीनां साम्राज्ये प्रणतमभिसिञ्चन् रविसुतम् ।
अपि ध्वंसात्पत्युर्नृपतिमपचक्रे पलभुजा-
मपि प्रीतं चक्रे निजकुलगरिष्ठं दिनकरम् ॥ ५० ॥

सागरः—ततः किं वृत्तम् ।

तुङ्गभद्रा—ततः सुग्रीवेणापि

परिम्लानां मालामिव ललितसौरभ्यरहिता-
मपि स्थाने स्थाने विचिनुत वधूटीं दिनमणेः ।
इति स्वेनैवोक्ताः कुमुदनलनीलाङ्गदमुखा
हनूमत्संयुक्ता दिशि दिशि नियुक्ताः कपिभटाः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—रघुपतिः, एनम्, हैमम्, हरिणम्, इव, सहेलम्, हत्वा, कपीनाम्, साम्राज्ये, प्रणतम्, रविसुतम्, अभिषिञ्चन्, सख्युः, ध्वंसात्, पलभुजाम्, नृपतिम्, अपि, अपचक्रे; निजकुलगरिष्ठम्, दिनकरम्, अपि, प्रीतम्, चक्रे ॥ ५० ॥

सहेलमिति । रघुपतिः = रामचन्द्रः, एनम् = अमुम्, वालिनमित्यर्थः, हेम्नः अयं हैमः = सुवर्णमयः तम, हरिणम् = मृगम्, इव = यथा, सहेलम् = अनायासमित्यर्थः, हत्वा = विनाश्य, कपीनाम् = वानराणाम्, साम्राज्ये = आधिपत्ये, प्रणतम् = अवनतम्, चरणयोरग्रे इति शेषः, रविसुतम् = सूर्यपुत्रम्, सुग्रीवमित्यर्थः, अभिषिञ्चन् = अभिषिक्तं कुर्वन्, सख्युः, = मित्रस्य, ध्वंसात्, = विनाशात्, पलम् = मांसम् भुञ्जन्तीति पलभुजस्तेषां पलभुजाम् = राक्षसानाम्, नृपतिम् = राजानम्, रावणमित्यर्थः, अपचक्रे = अपकृतवान् । वाली रावणस्य मित्रमासीदतो तं हत्वा रामः स्वशत्रो रावणस्याऽपकारं कृतवानित्यर्थः । तथा निजकुलगरिष्ठम्—निजकुलस्य = स्ववंशस्य गरिष्ठम् = श्रेष्ठतमम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सखि यमुने, (तुम) भाग्यशालिनी हो ।

यमुना—अरे, यह कौन (है ? जो) सुई से विंधे हुए मेरे नाखूनों को लाक्षारस (नेल पालिश) से सींच रही है (अर्थात् यह कौन है जो जले पर नमक छिड़क रही है) ।

(प्रवेश करके)

तुङ्गभद्रा—नदियों के स्वामी (सागर) की जय हो, जय हो ।

सागर—अच्छा, यमुना कैसे भाग्यवती है ?

तुङ्गभद्रा—भाई सुग्रीव के चक्रवर्ती-पद की प्राप्ति से (अर्थात् भाई सुग्रीव के चक्रवर्ती बन जाने से) ।

यमुना—सम्प्रति (मैं) चन्दन एवं तीखे घाम से लेप किये गये हैं (क्रमशः) दोनों पार्श्व (पसली—) भाग जिसके ऐसी हो रही हूँ (अर्थात् इस समय मैं सुख तथा दुःख—दोनों की अवस्था से गुजर रही हूँ) ।

सागर—अच्छा, वालि के द्वारा अधिकृत वानर-राज्य-श्री (अर्थात् वानरों का आधिपत्य) किस तरह सुग्रीव के पास चली गयी ?

तुङ्गभद्रा—क्या आज भी वालि की चर्चा (है) ?

सागर—कैसे ?

तुङ्गभद्रा—(सीता के गिरे हुए) नूपुर के देने से विश्वासित रामचन्द्र के द्वारा तथा अपने-आपको एवं सुग्रीव को (रामचन्द्र के चरणों में) समर्पित करनेवाले हनुमान् के द्वारा ऐसा उद्योग किया गया जिससे—

रामचन्द्र ने इस (वालि) को, सोने के मृग की तरह, अनायास ही मार कर, वानरों के साम्राज्य पर (पैरों के सामने) झुके हुए सूर्यपुत्र (सुग्रीव) का अभिषेक करते हुए, मित्र के विनाश से मांसभक्षी (राक्षसों) के राजा (रावण) का भी अपकार किया (तथा सुग्रीव को राज्य देने से) अपने कुल के आदि प्रवर्तक सूर्य को भी प्रसन्न किया ॥ ५० ॥

सागर—उसके बाद क्या हुआ ?

तुङ्गभद्रा—उसके बाद सुग्रीव ने भी—

'मुरझायी हुई माला की तरह चित्ताकर्षक सौन्दर्य से रहित (माला के पक्ष में—चित्ताकर्षक सुगन्ध से रहित) भी सूर्य की वधू (सीता) को स्थान-स्थान पर खोजो'—इस प्रकार अपने द्वारा (सुग्रीव के द्वारा) आज्ञा दिये गये हनुमान् के सहित कुमुद, नल, नील तथा अङ्गद आदि प्रमुख वानर वीरों को नियुक्त किया ॥५१॥

प्रवर्तकमित्यर्थः, दिनकरम् = सूर्यम् , अपि, प्रीतम् = प्रसन्नम् , चक्रे = कृतवान् । सुग्रीवं वानरराज्याऽभिषिक्तं दृष्ट्वा सूर्यः प्रसन्नो जात इत्यर्थः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ५० ॥

अन्वयः—'परिम्लानाम् , मालाम् , इव, ललितसौरभ्यरहिताम् , अपि, दिनमणेः, वधूटीम् , स्थाने स्थाने, विचिनुत', इति, स्वेनैव, उक्ताः, हनूमत्संयुक्ताः, कुमुदनलनीलाङ्गदमुखाः, कपिभटाः, दिशि-दिशि, नियुक्ताः ॥ ५१ ॥

परिम्लानामिति ॥ परिम्लानाम् = मलिनाम् , मालाम् = पुष्पस्रजम् , इव = यथा,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सागरः—इदानीमुज्जीवितोऽस्मि ।

गोदावरी—किं भवानेव । नन्विदानीमखिलोऽपि जीवितो जनः ।

सागरः—एवमेतत् । सकलजनमनःसाधरणी हि रामचन्द्रमाधुरी । नन्विहैव पश्य—

नेदीयसी हि सरयूस्तपनोद्भवेयं
भागीरथीयमुदयः सगरान्ममापि ।
इत्यन्वयाद्रघुकुले यदि पक्षपात-
स्तद्वत्सला किमिति वामपि चित्तवृत्तिः ॥ ५२ ॥

(ऊर्ध्वमवलोक्य सविस्मयम्)

विलासैर्दम्भोलेर्दलितगरुतः सर्वगिरयः
स चैको मैनाकः पयसि मम मग्नो निवसति ।
अये कोऽयं शैलः स्फुरदमितगव्यूतिमहिमा
हिमाद्रिर्विन्ध्यो वा लघुतरगतिर्लङ्घयति माम् ॥ ५३ ॥

ललितसौरभ्यरहिताम्—ललितेन = मनोहरेण, सौरभ्येन = सीतापक्षे—सौन्दर्येण, मालापक्षे—सौगन्ध्येन रहिताम् = विहीनाम् , अपि, दिनमणेः = सूर्यस्य, वधूटीम् = स्नुषाम् , सीतामित्यर्थः, स्थाने-स्थाने = सर्वत्रेत्यर्थः, विचिनुत = अन्वेषयत, इति = इत्थम् , स्वेनैव = आत्मनैव, सुग्रीवेणैवेत्यर्थः, उक्ताः = आज्ञप्ताः, हनूमत्संयुक्ताः = हनूमत्सहिताः, कुमुदनलनीलाङ्गदमुखाः=कुमुदनलनीलाङ्गदवालिपुत्रेत्यादयः, कपिभटाः = वानरयोद्धारः, दिशि-दिशि = प्रतिदिशम् , नियुक्ताः = प्रेरिताः । अत्रोपमालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ५१ ॥

सागर इति । सकलजनमनःसाधारणी—सकलानाम् = समग्राणाम् जनानाम् = प्राणिनाम् मनस्सु साधारणी = समानभावा, रामचन्द्रमाधुरी—रामचन्द्रस्य = रामस्य माधुरी = स्वभावलालित्यमित्यर्थः ॥

अन्वयः— सरयूः, नेदीयसी; इयम् , तपनोद्भवा; इयम् , भागीरथी; मम, अपि, सगरात् , उदयः; इति, अन्वयात् , यदि, रघुकुले, पक्षपातः, (अस्ति, तर्हि), वाम् , अपि, चित्तवृत्तिः, किमिति, तद्वत्सला ॥ ५२ ॥

रामचन्द्रमाधुरीसकलजनमनःसाधरणीति प्रतिपादयन्नाह—नेदीयसीति । सरयूः = सरयूनाम्नी नदी, अधुना 'घाघरा' इति प्रसिद्धा, नेदीयसी = अतिसमीपस्था, सर्वत्रास्तीति क्रियासम्बन्धः; इयम् = एषा, तपनोद्भवा = सूर्यपुत्री यमुना, इयम् = एषा, भागीरथी = भगीरथेन स्वर्गादानीता, अस्ति; मम = मे, अपि, सगरात् = सूर्यकुलोद्भवात् सगरनाम्नः राज्ञः, उदयः = उत्पत्तिः, अस्ति; इति = इत्थम् , अन्वयात् = एककुलसम्बन्धात् , यदि, रघुकुले = रघुवंशे, रामचन्द्रे इत्यर्थः, पक्षपातः = आसक्तिः, अस्ति तर्हीति शेषः, वाम् = युवयोः, गोदावरीतुङ्गभद्रयोः, अपि, चित्तवृत्तिः = मनोव्यापारः, किमिति = किमर्थमित्यम् , तद्वत्सला—तस्मिन् = रघुकुले, रामे इत्यर्थः, वत्सला =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सागर—अब (मैं) जीवित हो गया (अर्थात् अब हमारी जान में जान आ गयी)।

गोदावरी—क्या केवल आप ही ? निश्चय ही सम्प्रति सम्पूर्ण जीवधारी व्यक्ति (जीवित हो उठा है)।

सागर—हाँ यह ठीक है। अवश्य ही रामचन्द्र की मधुरता सभी प्राणियों के मन में एक समान (है)। अरे, यहीं देखो—

सरयू अत्यन्त पास में रहती है, यह (यमुना) सूर्य-पुत्री है, वह भागीरथी (भगीरथ के द्वारा लायी गयी) हैं और मेरी भी सगर से उत्पत्ति है—इस तरह (एक) कुल (का होने) के कारण यदि (हम लोगों का) पक्षपात (है, तो) तुम दोनों (गोदावरी और तुङ्गभद्रा) की भी चित्तवृत्ति क्यों इस तरह रामचन्द्र के विषय में स्नेहयुक्त है ? ॥ ५२ ॥

(ऊपर की ओर देख कर आश्चर्य के साथ)

सभी पर्वत वज्र की क्रीडाओं से कटी पाँखवाले (हो गये हैं, अर्थात् वज्र ने सभी पर्वतों की पाँख काट डाली है)। वह एक मैनाक पर्वत (जिसकी पाँख नहीं कटी है) मेरे जल में डूबा रहता है। अरे ! (तब) दो कोस का विस्तारवाला शीघ्रगामी यह कौन सा पर्वत मुझे लाँघ रहा है ॥ ५३ ॥

विशेष—दलितगरुतः—पहले पर्वतों को पंख थे। वे उड़ा करते थे। जहाँ उड़कर बैठते वहाँ के प्राणी तथा सारे पदार्थ विनष्ट हो जाते थे। अतः इन्द्र ने अपने वज्र से सब के पंखों को काट डाला। केवल मैनाक पर्वत के पंख नहीं काटे जा सके क्योंकि वह भाग कर समुद्र में छिप गया था ॥ ५३ ॥

स्नेहपूर्णा, अस्ति। अतः प्रतीयते रामे स्वाभाविकी सर्वजनमनःप्रवृत्तिरिति। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—सर्वगिरयः, दम्भोलेः, विलासैः, दलितगरुतः, (सन्ति); स, च, एकः, मैनाकः, मम, पयसि, मग्नः, निवसति। अये ! स्फुरदमितगव्यूतिमहिमा, लघुतरगतिः, हिमाद्रिः, वा, विन्ध्यः, अयम् , कः, शैलः, माम् , लङ्घयति ॥ ५३ ॥

विलासैरिति। सर्वगिरयः—सर्वे = निखिलाश्च ते गिरयः = पर्वताः, दम्भोलेः = अशनेः, इन्द्रवज्रस्येत्यर्थः ('वज्रं' 'दम्भोलिरशनिः। इत्यमरः) विलासैः = क्रीडाभिः, दलितगरुतः—खण्डितपक्षाः, सन्तीति शेषः। सः = कुत्सितः पक्षयुक्तश्च, वज्रतापितं पितरमप्युत्सृज्यायं समुद्रे निमग्न इत्यस्य कुत्सितता, एकः = केवलः, मैनाकः = मैनाक-पर्वतः, मम = मे, पयसि = जले, मग्नः = ब्रुडितः, सन् , निवसति = वासं करोति। अये इत्याश्चर्ये, स्फुरदमितगव्यूतिमहिमा—स्फुरन्ती = प्रकाशमाना अमिता = महती च या गव्यूतिः = क्रोशद्वयपरिमितिः तत्परिमितो महिमा = महत्त्वं यस्य सः, क्रोशद्वयविस्तार-विलसित इत्यर्थः, लघुतरगतिः—लघुतरा = अतिशीघ्रतासम्पन्ना गतिः = गमनं यस्य सः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तदागच्छत । निरूपयामस्तावत्कोऽयमिति ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

हिमाद्रिः = हिमालयः, वा = अथवा, विन्ध्यः = विन्ध्याचलः, अयम् = उपरि दृश्यमानः, कः शैलः = कः पर्वतः, माम् = सागरम् , लङ्घयति = अतिक्रामति । आकाशमार्गेण गच्छन्तं हनूमन्तं विलोक्य सागरस्यायं सन्देहोदयः । अत्रशुद्धसन्देहालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' ॥ ५३ ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां प्रसन्नराघवव्याख्यायां रमाख्यायां पञ्चमोऽङ्कः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तो आओ। ध्यान से देखें कि यह कौन है।

(इस प्रकार सभी निकल गये)

॥ पञ्चम अङ्क समाप्त ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो रामलक्ष्मणौ)

रामः— सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्जृम्भते
लक्ष्मणः—चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते, चन्द्रोऽयमुन्मीलति ।
रामः— वत्सैतद्विदितं कथं नु भवता
लक्ष्मणः— धत्ते कुरङ्गं यतः
रामः— क्वासि प्रेयसि हा कुरङ्गनयने चन्द्रानने जानकि ॥ १ ॥

(पुनर्विलोक्य) हन्त । सन्तापेन प्रतारितोऽस्मि । कथमयं गगनतलाधिरोही रोहिणी-हृदयनन्दनश्चन्द्रः । (चन्द्रं प्रति)

रजनिकर करास्ते बान्धवाः कैरवाणां
सकलभुवनचेष्टाजागरूका जयन्ति ।
न कथयसि कथं तत्कुत्र सा जानकी मे
त्वमसि मृगसहायः किन्तु नक्तञ्चरोऽसि ॥ २ ॥

अन्वयः—ननु सौमित्रे, चण्डांशुः, उज्जृम्भते; (अतः), तरुतलम्, सेव्यताम्; हे रघुपते, निशि, चण्डांशोः, का, कथा ? अयम्, चन्द्रः, उन्मीलति; हे वत्स, भवता, एतत्, कथम्, नु, विदितम् ? यतः, कुरङ्गम्, धत्ते; हा प्रेयसि, कुरङ्गनयने, जानकि, क्व, असि ? ॥ १ ॥

उदयं गच्छन्तं चन्द्रमसं दृष्ट्वा विरहविदग्धहृदयो राम आह—सौमित्र इति। नन्वित्युन्मुखीकरणेऽव्ययपदम्, सौमित्रे=सुमित्रापुत्र लक्ष्मण, चण्डांशुः—चण्डाः= तीक्ष्णाः अंशवः=कराः यस्याऽसौ, सूर्य इत्यर्थः, उज्जृम्भते=प्रज्वलति, प्रचण्डेन तेजसा वृद्धिं गच्छतीत्यर्थः, अतः तरुतलम्=वृक्षाधस्तलम्, सेव्यताम्=आश्रीयताम्, छायार्थमिति भावः । लक्ष्मण आह—चण्डांशोरिति । हे रघुपते=हे श्रीरामचन्द्र, निशि=रात्रौ, चण्डांशोः=सूर्यस्य, का=कीदृशी, कथा=चर्चा ? अयम्=एषः, चन्द्रः=निशाकरः, उन्मीलति=उद्गच्छति । रामः पप्रच्छ—वत्सेति । हे वत्स=हे प्रिय लक्ष्मण, भवता=त्वया, एतत्=इदम्, कथम्=केन प्रकारेण, नु इति प्रश्ने, विदितम्=ज्ञातम् ? लक्ष्मण आह—धत्त इति । यतः=यस्मात्, कुरङ्गम्=मृगम्, धत्ते=धारयति, अतोऽयं चन्द्र इति शेषः । विलपन्नाह रामः—क्वासीति । हा प्रेयसि=हा प्रिये, कुरङ्गनयने=हरिणनेत्रे, जानकि=सीते, क्व=कुत्र, असि=वर्तसे ? अत्र भ्रान्तिमदलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥' १ ॥

पुनर्विलोक्येति । प्रतारितः=वञ्चितः । गगनतलाधिरोही—गगनतलम्=आकाश-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

षष्ठ अङ्क

(तदनन्तर राम और लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

राम—हे लक्ष्मण, सूर्य प्रचण्ड रूप से बढ़ रहे हैं, (अतः) वृक्ष के नीचे बैठना चाहिये।

लक्ष्मण—हे रघुपते रात्रि में सूर्य की क्या बात (है)? यह चन्द्रमा उदित हो रहा है।

रामः—वत्स, आपके द्वारा यह कैसे जाना गया (कि यह चन्द्र निकल रहा है) ?

लक्ष्मण—क्योंकि (यह) मृग को धारण कर रहा है।

राम—हा प्राणप्रिये, हरिण की तरह आँखोंवाली, जानकि (तुम) कहाँ हो ? ॥ १ ॥

(फिर देखकर) हाय ! सन्ताप (गर्मी के कारण मैं धोखा खा गया हूँ। क्या यह आकाशतल में चढ़नेवाले रोहिणी (नामक अपनी पत्नी) के हृदय को आनन्दित करनेवाले चन्द्र हैं। (चन्द्र के प्रति)

हे चन्द्र, कुमुदों की हितकारिणी, सकल जगत् की क्रियाओं की साक्षी तुम्हारी किरणें (इस समय) चारों ओर व्याप्त हो रही हैं। तो प्राणप्रिया मेरी जानकी कहाँ (हैं) ? इस बात को क्यों नहीं बतलाते ? तुम हरिण साथ में लिए हो, (अतः) क्या (तुम भी) राक्षस हो ? ॥ २ ॥

तलम् अधिरोहति = आरोहतीति, रोहिणीहृदयनन्दनः—रोहिण्याः = स्वपत्न्याः हृदयनन्दनः = चेतस्तर्पकः ॥

अन्वयः—हे रजनिकर, कैरवाणाम्, बान्धवाः, सकलभुवनचेष्टाजागरूकाः, ते, कराः, जयन्ति। तत्, सा, मे, जानकी, कुत्र (आस्ते)? इति, कथम्, न, कथयसि? त्वम्, मृगसहायः, असि, किम्, नक्तञ्चरः, असि, नु ॥ २ ॥

चन्द्रमसमुपालम्भयन्नाह—रजनिकरेति। हे रजनिकर = हे चन्द्र, कैरवाणाम् = कुमुदानाम्, बान्धवाः = विकासकत्वाद्धितकराः, सकलभुवनचेष्टाजागरूकाः—सकले = समग्रे भुवने = जगति याः चेष्टाः = कार्यकलापाः तासु जागरूकाः = जागृताः, साक्षिणः इत्यर्थः, ते = तव, कराः = अंशवः, जयन्ति = सर्वत्राभिव्याप्य वर्तन्ते। तत् = तस्मात्, सा = प्राणवल्लभा, मे = मम, जानकी = सीता, कुत्र = क्व, आस्ते इति शेषः ? इति = एतत्, कथम् = कस्मात्, न कथयसि = न ब्रूषे ! त्वम् = चन्द्रः, मृगसहायः = मृगसहितः, असि = भवसि, अतः किं नक्तञ्चरः = निशाचरः, असि ! नु इति वितर्के। मालिनी वृत्तम ॥ २ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः—(स्वगतम्) कथमयमभिषङ्गतरङ्गस्तरलीकरोत्यार्यमानसम् । तदन्यतो नयामि । (प्रकाशम्) आर्य अयमितो विलोक्यतां चपलचञ्चुपुटाचान्तशीतकरशीकर-श्चकोरः ।

रामः—(चकोरं प्रति)

तन्मे विदेहतनयावदनं निवेद्य
भ्रातश्चकोर कुरु मां चरितार्थवृत्तिम् ।
पीता यदीयकमनीयकपोलकान्तिः
कान्तासखेन भवता शशिनं विहाय ॥ ३ ॥

लक्ष्मणः—आर्य, इयमितो विलोक्यतां शरत्कृशा निशाकरकिरणानुकारितरङ्गा तरङ्गिणी ।

रामः—(विलोक्य)

कल्लोलिनि त्वमिव सापि कुरङ्गनेत्रा
नूनं किमप्यनुदिनं कृशिमानमेति ।
एतावदस्ति भवतीह निसर्गशीता
सीता पुनर्वहति कामपि तापमुग्राम् ॥ ४ ॥

लक्ष्मणः—इतो विलोक्यतामिन्द्रनीलनलिनीवनविलीनोऽयमलिनीनाथः ।

रामः—(विलोक्य) अये, कोऽयं विहङ्गः ।

लक्ष्मण इति । अभिषङ्गतरङ्गः—अभिषङ्गस्य = अकस्मादागतस्य दुःखाभिघातस्य तरङ्गः = प्रवाहः । चपलचञ्चुपुटाचान्तशीतकरशीकरः—चपलेन = चञ्चलेन चञ्चुपुटेन = चोटिपुटेन आचान्ताः = पीताः शीतकरस्य = चन्द्रमसः शीकराः = बिन्दवः, अमृतबिन्दव इत्यर्थः, येन सः ॥

अन्वयः—हे, भ्रातः चकोर, कान्तासखेन, भवता, शशिनम्, विहाय, यदीयकमनीयकपोलकान्तिः, पीता; तत्, विदेहतनयावदनम्, मे, निवेद्य, माम्, चरितार्थवृत्तिम्, कुरु ॥ ३ ॥

तन्म इति । हे भ्रातः = हे बन्धु चकोर = चकोरपक्षिन्, कान्तासखेन = प्रियतमासहायेन, भवता = त्वया, शशिनम् = चन्द्रमसम्, विहाय = त्यक्त्वा, यदीयकमनीयकपोलकान्तिः—यदीयस्य = यस्याः सीतायाः कमनीयस्य = सुन्दरस्य कपोलस्य = गण्डस्थलस्य, कान्तिः = प्रभा, पीता = आचान्ता, अनेन सीतावदनस्य चन्द्रमसः अपि सौन्दर्याधिक्यं प्रतिपादितम्, तत् = तादृशम्, विदेहतनयावदनम्—विदेहतनयायाः = सीतायाः वदनम् = मुखम्, मे = मम, निवेद्य = कथयित्वा, माम् = रामम्, चरितार्थवृत्तिम्—चरितार्था = कृतार्था वृत्तिः = अन्वेषणरूपो व्यापारः यस्य तादृशम्, कुरु = विधेहि । अत्र व्यतिरेकालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥' ३ ॥

लक्ष्मण इति । शरत्कृशा = शरदा = शरत्कालेन कृशा = क्षीणा, निशाकरकिरणा-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मण—(अपने आप) क्या अचानक आये हुए आघात की यह तरङ्ग आर्य (राम) के मन को विक्षिप्त बना रही है ? तो (इनके मन को) दूसरी ओर आकृष्ट करता हूँ। (प्रकट रूप में) आर्य, इधर चञ्चल चोंच से चन्द्रमा के अमृत बिन्दुओं को पीनेवाले इस चकोर को देखिये।

राम—(चकोर के प्रति)

हे भाई चकोर, प्रियतमा (चकोरी) के साथ आपने, चन्द्रमा को छोड़ कर, (वास्तविक चन्द्रमा समझ कर) जिसके मनोहर कपोल की कान्ति पी थी: जानकी के उस मुख को मुझे बतला कर हमें सफल-प्रयास बनाओ ॥ ३ ॥

लक्ष्मण—आर्य, इधर शरद् ऋतु के कारण दुर्बल, चन्द्रमा की किरणों का अनुकरण करनेवाली हैं तरङ्गें जिसकी ऐसी (अर्थात् चन्द्र किरणों के समान स्वच्छ तरङ्गोंवाली) इस सरिता को देखिये।

राम—(देखकर)

हे नदि, निश्चय ही तुम्हारी तरह मृगलोचनी यह (सीता) भी प्रतिदिन अनिर्वचनीय रूप से कृशता को प्राप्त कर रही है (अर्थात् कृश हो रही है)। तुम दोनों के बीच में केवल इतना ही (अन्तर) है,—तुम स्वभावतः शातल (हो) और सीता विलक्षण सन्ताप के चिह्न को धारण करती है (अर्थात् अत्यन्त सन्तप्त है) ॥ ४ ॥

लक्ष्मण—इस ओर विकसित नीले कमलों की लताओं के वन में छिपे हुए इस भ्रमरी-पति (भौंरे) को देखिये।

राम—अरे ! यह कौन-सा पक्षी है ?

नुकारितरङ्गा—निशाकरस्य = चन्द्रस्य किरणान् = करान् अनुकुर्वन्ति = अनुसरन्तीति तच्छीला, चन्द्रिकाधवला इत्यर्थः, तरङ्गिणी = नदी ॥

अन्वयः—हे कल्लोलिनि, नूनम्, त्वमिव, कुरङ्गनेत्रा, सा, अपि, अनुदिनम्, किमपि, कृशिमानम्, एति। इह, एतावत्, (वैशिष्ट्यम्) अस्ति; भवती, निसर्गशीता, (अस्ति), पुनः, सीता, कामपि, तापमुद्राम्, वहति ॥ ४ ॥

कल्लोलिनीति। कल्लोलाः = महातरङ्गाः सन्ति अस्यामिति कल्लोलिनी = नदी तत्सम्बुद्धौ, नूनम् = अवश्यम्, त्वमिव = त्वत्सदृशी, कुरङ्गनेत्रा = हरिणनयना, सा = मदीया प्राणवल्लभा, सीतेत्यर्थः, अपि = च, अनुदिनम् = प्रतिदिनम्, किमपि = अनिर्वचनीयं यथा तथा, कृशिमानम् = दौर्बल्यम्, एति = गच्छति, प्राप्नोतीत्यर्थः। इह = युवयोरभ्यन्तरे इत्यर्थः, एतावत् = एतन्मात्रम्, वैशिष्ट्यमिति शेषः, अस्ति = वर्तते; भवती = त्वम्, निसर्गसीता—निसर्गेण = प्रकृत्या शीता = शीतला, अस्तीति शेषः; पुनः = किन्तु, सीता = जानकी, कामपि = विलक्षणामित्यर्थः, तापमुद्राम्—तापस्य = सन्तापस्य मुद्राम् = चिह्नम्, आकृत्यैव तस्या हृदिस्थः शोकतापोऽनुमीयते इत्यर्थः, वहति = धारयति। अत्रोपमोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

लक्ष्मण इति। अनिद्रनीलनलिनीवनविलीनः—अनिद्राणि = विकसितानि नीलानि = नीलवर्णानि नलिनानि = कमलानि सन्त्यस्यामिति अनिद्रनीलनलिनी तस्याः वनम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

उन्मीलन्नयनान्तकान्तिलहरीनिष्पीतयोः केवला-
दामोदादवधारणीयवपुषोः कान्तासखेन क्षणम् ।
यत्कर्णोत्पलयोः स्थितेन भवता किञ्चित्समुद्गुञ्जितम्
भ्रातस्तिष्ठति कुत्र तत्कथय मे कान्तं प्रियाया मुखम् ॥ ५ ॥

लक्ष्मणः—(सातङ्कम्) अपीमं न विलोकयेदार्यः ।

रामः—(विलोक्य) अये, कोऽयं विहङ्गः ।

योऽयं बहिः कलितकुङ्कुमरेणुराग-
मन्तस्तु संभृतदयं हृदयं दधानः ।
पारेतरङ्गिणि मुहुः करुणं रटन्ती-
मालोकते सहचरीं न तु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥

(विमृश्य) नूनमयं वल्लभाविरहविदारितहृदयो वराकश्चक्रवाकः ।

लक्ष्मणः—अहो प्रमादः ।

रामः—नूनमयमेकः समदुःखतयासमानशीलो मे । अथवा कुतोऽस्य मम च समानशीलता ।

उद्यानम् तत्र विलीनः = तल्लीनः; अलिनीनाथः—अलिन्याः = भ्रमर्याः नाथः = पतिः, भ्रमर इत्यर्थः । निर्गते च चन्द्रे विकसितानां कमलानां वर्णनं सम्प्रदायविरुद्धमिति लक्ष्मणोक्तिर्न समीचीना ॥

अन्वयः—उन्मीलन्नयनान्तकान्तिलहरीनिष्पीतयोः, केवलात्, आमोदात्, अवधारणीयवपुषोः, यत्कर्णोत्पलयोः, स्थितेन, कान्तासखेन, भवता, यत्, क्षणम्, किञ्चित्, समुद्गुञ्जितम्, हे भ्रातः, तत्, मे, प्रियायाः, कान्तम्, मुखम्, कुत्र, तिष्ठति, (इति), कथय ॥ ५ ॥

राम इति । कोऽयं विहङ्गः = भ्रमरं प्रति रामस्येयमुक्तिस्तस्य विक्षिप्तावस्थां बोधयति ॥

मधुकरं पृच्छति—उन्मीलन्निति । उन्मीलन्नयनान्तकान्तिलहरीनिष्पीतयोः—उन्मीलती = विकासं गच्छती ये नयने = नेत्रे तयोः अन्तौ = प्रान्तभागौ कटाक्षौ इत्यर्थः तयोः कान्तिः = आभा तस्याः लहरी = परम्परा तया निष्पीतयोः = तिरस्कृतयोः, अतिशयितश्रीकयोरित्यर्थः, अनेन सीतानयनयोः कमलाकारत्वं सूचितम्, केवलात् = एकस्मात्, आमोदात् = सुगन्धात्, एवेत्यवधारणे, अवधारणीयवपुषोः—अवधारणीयम् = निर्णेतुं शक्यम् वपुः = आकारः ययोस्तयोः, यत्कर्णोत्पलयोः—यस्य = सीतामुखस्येत्यर्थः, कर्णोत्पलयोः = श्रोत्राभूषणीकृतकमलयोः, स्थितेन = कृतावस्थानेन, कान्तासखेन = प्रियासहितेन, भवता = त्वया, यत्, क्षणम् = किञ्चित्कालम्, समुद्गुञ्जितम् = शब्दायितम्, हे भ्रातः = हे बन्धो, तत् = पूर्वानुभूतम्, मे = मम, प्रियायाः = प्रेयस्याः, कान्तम् = कमनीयम्, मुखम् = आननम्, कुत्र = क्व, तिष्ठति = वर्तते ? इति कथय = ब्रूहि । अत्र व्यतिरेकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

खुलते हुए नेत्रों के किनारेवाले हिस्से की (अर्थात् कटाक्ष की) शोभा की अधिकता से फीके पड़े हुए (अतः) केवल सुगन्धि से ही पहचाने गये स्वरूपवाले, जिस (सीता के मुख) के कानों के कमलों में स्थित पत्नीसहित आपने जो कि क्षण भर कुछ गुनगुनाया था; हे भाई ! वह मेरी प्रिया का सलोना मुख कहाँ है ?—(यह) बतलाओ ॥ ५ ॥

लक्ष्मण—(भय के साथ) कहीं आर्य इस (चक्रवाक = चकवा) को न देख लें।

राम—(देखकर) अरे, यह कौन-सा पक्षी है ?

बाहर (अर्थात् शरीर पर) केसर के पराग के रङ्ग को धारण करनेवाला और भीतर दया से परिपूर्ण हृदय को धारण करता हुआ जो यह (पक्षी) नदी के उस पार बार-बार करुणापूर्वक चिल्लाती हुई प्रिया को देख रहा है किन्तु समीप नहीं जा रहा है ॥ ६ ॥

विशेष—पारेतरङ्गिणि—चक्रवाक पक्षी को श्राप है कि वह सूर्यास्त के बाद तथा सूर्योदय के पूर्व अपनी स्त्री के साथ नहीं रह सकता। सूर्यास्त होते ही वे एक दूसरे से अलग होकर नदी के इस पार तथा उस पार हो जाते हैं ॥ ६ ॥

(विचार कर) निश्चय ही यह बेचारा चक्रवाक (चकवा) प्रिया के वियोग से विदीर्ण हृदयवाला (है, तभी तो इसके फटे हृदय का रक्त इसकी पूरी शरीर पर फैल गया है)।

लक्ष्मण—अरे, बड़ी असावधानी हुई।

राम—निश्चय ही वियुक्त यह एक समान दुःख होने के कारण मेरे ही समान स्वभाववाला है। अथवा इसकी और मेरी एक समान स्वभाव होने की बात कैसे हो सकती है !

अन्वयः—बहिः, कलितकुङ्कुमरेणुरागम्, अन्तः, तु, सम्भृतदयम्, हृदयम्, दधानः, यः, अयम्, पारेतरङ्गिणि, मुहुः, करुणम्, रटन्तीम्, सहचरीम्, आलोकते, तु, सन्निधत्ते, न ॥ ६ ॥

योऽयमिति। बहिः = शरीरोपरीत्यर्थः, कलितकुङ्कुमरेणुरागम्—कलितः = गृहीतः कुङ्कुमरेणुरागः = काश्मीरजपरागकान्तिः येन सः, अन्तस्तु = शरीराभ्यन्तरे तु, सम्भृतदयम्—सम्भृता = पूर्णा दया = करुणा यस्मिन् तत् तादृशम्, हृदयम् = अन्तःकरणम्, दधानः = धारणं कुर्वन्, यः, अयम् = एषः, चक्रवाकः इत्यर्थः, पारेतरङ्गिणि—तरङ्गिण्याः = नद्याः पारे इति पारेतरङ्गिणि = नद्याः अपरतटे इत्यर्थः, 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' इत्यव्ययीभावः, पारशब्दस्यैदन्तत्वनिपातश्च, मुहुः = बारम्बारम्, करुणम् = सदयं यथा तथा, रटन्तीम् = विलपन्तीम्, सहचरीम् = प्रियाम्, आलोकते = पश्यति, तु = किन्तु, सन्निधत्ते न = सहवासं न करोतीत्यर्थः, सः, 'कोऽयं विहङ्गः', इति पूर्वेण सम्बन्धः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ६ ॥

विमृश्येति। वल्लभाविरहविदारितहृदयः—वल्लभायाः = प्रेयस्याः विरहेण = वियोगेन विदारितम् = विदीर्णम् हृदयम् = वक्षःस्थलम् यस्य सः। वराकः = असहायः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अयमुदयति चन्द्रे विप्रयोगं प्रियायाः
श्रयति तपति सूर्ये सङ्गमङ्गीकरोति ।
मम तु जनकपुत्रीविप्रयुक्तस्य यातं
शतमधिकमपीदं चन्द्रसूर्योदयानाम् ॥ ७ ॥

लक्ष्मणः—आर्य, इह तावन्मुकुलितकमलिनीपरिसरानुसारिणि कलहंसे दीयतां दृष्टिः ।

रामः—(विलोक्य)

निजनखशिखालेखालीढस्फुरत्कमलस्तनीं
निरतमधुपश्रेणीगीतां चलन्कलहंसकः ।
अकरुणशशिप्रेङ्खत्पादप्रहारविमूर्च्छिता-
महह नलिनीं क्लान्तक्लान्तां मुहुर्मुहुरीक्षते ॥ ८ ॥

(विमृश्य) वरमेवंविधानामपि सहचरीजनानुकम्पया कोमलं चेतो न तु निसर्गकठिनस्य रामस्य ।

लक्ष्मणः—(स्वगतम्) कथमिदानीमप्यस्य चेतसि जानकीयमिन्द्रजालमुन्मीलति ।

अन्वयः--अयम्, चन्द्रे, उदयति, (सति), प्रियायाः, विप्रयोगम्, श्रयति, (तथा), सूर्ये, तपति, (सति), सङ्गम्, अङ्गीकरोति; तु, जनकपुत्रीविप्रयुक्तस्य, मम, चन्द्रसूर्योदयानाम्, इदम्, शतम्, अधिकम्, अपि, जातम् ॥ ७ ॥

स्वस्य चक्रवाकस्य चान्तरं निरूपयन्नाह—**अयमिति** । अयम्=एषः चक्रवाकः, चन्द्रे=चन्द्रमसि, उदयति=उद्गच्छति सति, समागतायां रात्रावित्यर्थः, प्रियायाः=स्वप्रेयस्याः, विप्रयोगम्=वियोगम्, श्रयति=प्राप्नोति; (तथा) सूर्ये=भानौ, तपति=प्रकाशति सति, प्रातःकाले इत्यर्थः, सङ्गम्=सहवासम्, अङ्गीकरोति=स्वीकरोति, गच्छतीत्यर्थः; तु=किन्तु, जनकपुत्रीविप्रयुक्तस्य—जनकपुत्र्याः=जानक्याः विप्रयुक्तस्य=वियुक्तस्य, मम=रामस्य, चन्द्रसूर्योदयानाम्—अहोरात्राणामित्यर्थः, इदम्=एतत्, शतम्, अधिकम्=अतिरिक्तम्, अपि, जातम्=व्यतीतम् । तथाऽपि न सङ्गतोऽहं प्रियया । अतः रात्रिमात्रवियुक्तस्य चक्रवाकस्य मया सह कीदृशी समानता ? व्यतिरेकोऽत्र अलङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥ ७ ॥

लक्ष्मण इति । मुकुलितकमलिनीपरिसरानुसारिणि—मुकुलिता = सञ्जातकुड्मला या कमलिनी=कमललता तस्याः परिसरम्=पार्श्वभागम् अनुसरतीति तस्मिन्, कमलिनीपार्श्वभागं गच्छतीत्यर्थः ॥

अन्वयः—निजनखशिखालेखालीढस्फुरत्कमलस्तनीम्, निरतमधुपश्रेणीगीताम्, अकरुणशशिप्रेङ्खत्पादप्रहारविमूर्च्छिताम्, क्लान्तक्लान्ताम्, नलिनीम्, चलन्, कलहंसकः, मुहुः मुहुः, ईक्षते ॥ ८ ॥

निजनखेति । निजनखेत्यादिः—निजाः=स्वकीयाः ये नखाः=नखराः तेषां शिखालेखा=अग्रभागपंक्तिः तया आलीढम्=क्षतम् स्फुरत्=प्रकम्पमानम् कमलम्=पद्मम् एव स्तनम्=पयोधरम् यस्याः सा ताम्, निरतमधुपश्रेणीगीताम्—निरताः=

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यह (चक्रवाक) चन्द्रमा के उदित होने पर (अर्थात् रात्रि के समय) प्रिया के वियोग को प्राप्त करता है, (तथा) सूर्य के प्रकाशित होने पर (अपनी प्रिया के) सहवास को पा लेता है। किन्तु जानकी से बिछुड़े हुए मेरे चन्द्र और सूर्य के उदय का यह सैकड़ों से अधिक भी बीत चुके हैं (अर्थात् सैकड़ों दिन-रात व्यतीत हो चुके हैं) ॥ ७ ॥

लक्ष्मण—आर्य कलियों से युक्त कमललता के पार्श्वभाग का अनुसरण करनेवाले (अर्थात् पास जानेवाले) इस सुन्दर हंस पर जरा निगाह डालिये।

राम—(देख कर)

अपने नखों के अग्रभागों से खरोंचे गये (क्षत) और फड़कनेवाले (चञ्चल) कमल रूप कुचों से युक्त, अत्यन्त अनुरक्त भौंरों की कतारों से गुञ्जित (अर्थात् चाटुकारितापूर्वक मनाई जाती हुई), निर्दय चन्द्र के चञ्चल चरणों (किरणों) के प्रहार से मूर्च्छित, अत्यन्त मलिन कमल-लता के पास जाता हुआ कलहंस बार-बार (उसे) देख रहा है ॥ ८ ॥

विशेषः—यहाँ कमललता नायिका, कलहंस नायक, भ्रमरसमूह मद्यपी एवं चाटुकारिता करनेवाले कामुक तथा चन्द्र तिरस्कृत खल कामुक के रूप में चित्रित किया गया है ॥ ८ ॥

(विचार कर) प्रेमिकाजनों पर दया करने के कारण इस प्रकार के भी प्राणियों का कोमल हृदय अच्छा है, किन्तु स्वभावतः कठोर राम का (हृदय अच्छा नहीं)।

लक्ष्मण—(अपने आप) क्या इस समय भी इनके चित्त में जानकी का जादू अपना प्रभाव दिखला रहा है ?

विशेषमनुरक्ताः ये मधुपा = भ्रमराः, नायिकापक्षे—मधु = मद्यं पिबन्तीति मधुपाः = मद्यपायिनः कामुकजनाः इत्यपि, तेषां श्रेणी = पंक्तिः तया गीताम् = गुञ्जिताम्, नायिकापक्षे—चाटुवचनैरनुनीताम्, अकरुणशशिप्रेङ्खत्पादप्रहारविमूर्च्छिताम्—अकरुणः = निर्दयः यः शशिः = चन्द्रः तस्य प्रेङ्खन् = चञ्चलः पादः = चरणः किरण इत्यर्थः, नायिकापक्षे—चरणः इत्येव, तस्य प्रहारेण = ताडनेन सम्पर्केणेत्यर्थः, नायिकापक्षे – ताडनेनेत्येव, विमूर्च्छिताम् = कमलिनीपक्षे—मलिनाम् नायिकापक्षे—विगतचेतनाम्, क्लान्तक्लान्ताम् = श्रान्तश्रान्ताम्, नलिनीम् = कमलिनीम्, नलिनीनामधारिणीं नायिकामपीति, चलन् = गच्छन्, कलहंसकः = शोभनो हंसः, सुन्दरो नायकः इत्यपि, मुहुर्मुहुः = बारम्बारम्, सदयमिति भावः, ईक्षते = अवलोकयति। अत्र कलहंसके नायकस्य, कमलिन्यां प्रेमिकायाः, मधुकरेषु मद्यपायिनां विटानां तथा चन्द्रे प्रत्याख्यातस्य खलकामुकस्य समारोत्समासोक्तिरलङ्कारः। हरिणी वृत्तम् ॥ ८ ॥

विमृश्येति। एवंविधानाम = पक्षिणाम्, तुच्छजीवानामित्यर्थः, सहचरीजनानुकम्पया—सहचरीजनेषु = वल्लभालोकेषु अनुकम्पया = दयया। निसर्गकठिनस्य—निसर्गेण = प्रकृत्या कठिनस्य = कठोरस्य, दयाविहीनस्येत्यर्थः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(नेपथ्ये)

सखे रत्नशेखर, चिराद्दृश्यसे ।

लक्ष्मणः—(आकर्ण्य) किमेतत् ।

(पुनर्नेपथ्ये)

वयस्य चम्पकापीड; एवमेतत् । मया हीयन्तं समयमखिलमायानिधेर्मयनाम्नो दानवस्य पुत्रीं निजसहोदरीं मन्दोदरीमनुवर्तितुं लङ्कायां कृतालया चित्ररूपनाम्नो दानवात्सकलामिन्द्रजालकलामाददानेन स्थितम् ।

लक्ष्मणः—नूनमयं कृतकर्णकौतुकामोदः कयोरपि पथिकयोः संवादः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

सखे, रत्नशेखर, तन्मे धारयसि निजकलादर्शनमिति ।

(पुनर्नेपथ्ये)

वयस्य चम्पकापीड,

असुरसुरनिशाचरोरगाणामपि नरकिन्नरसिद्धचारणानाम् ।
सकलजनविलोकनैकचित्रं स्फुटमिह कस्य विजृम्भते चरित्रम् ॥ ९ ॥

अथवा किमन्येन । लङ्कानुभूतमेव नूतनं किमपि सरसरमणीयं चरितमुपदर्शयामि ते ।

लक्ष्मणः—आर्य, इतोऽवधार्यताम् । नन्विदमयत्नोपनीतं प्रेक्षणीयम् ।

रामः—(अनाकर्णितकेन)

देवि त्वदीयमणिनूपुरजृम्भमाण-
कालाहलोत्तरलहंसकुलाकुलासु ।
वैदेहि लक्ष्मणपदाम्बुजलाञ्छितासु
गोदावरीपुलिनभूमिषु देहि दृष्टिम् ॥ १० ॥

लक्ष्मण इति । इदानीमपि = व्यतीतेऽपि बहुकाले, जानकीयम् = जानकीसम्बन्धि, इन्द्रजालम् = मायाकार्यप्रभाव इत्यर्थः, उन्मीलति = विकसति, स्वप्रभावं प्रदर्शयतीत्यर्थः । इन्द्रजालप्रसङ्गावतरणायेयं हीनमर्यादा विचारणा ॥

लक्ष्मण इति । कृतकर्णकौतुकामोदः—कृतौ = उत्पादितौ कर्णस्य कौतुकामोदौ = कुतूहलहर्षौ येन सः ॥

अन्वयः—इह, असुरसुरनिशाचरोरगाणाम्, नरकिन्नरसिद्धचारणानाम्, अपि, कस्य, चरित्रम्, सकलजनविलोकनैकचित्रम्, स्फुटम्, (सत्), विजृम्भते ॥ ९ ॥

असुरसुरेति । इह = अस्मिन् संसारे, असुरसुरनिशाचरोरगाणाम्—असुराः = देवशत्रवो राक्षसाः सुराः = देवाः निशाचराः = नक्तञ्चराः राक्षसभेदा एव उरगाः = नागजातिविशेषाः तेषाम्, नरकिन्नरसिद्धचारणानाम्—नराः = मनुष्याः किन्नराः = किम्पुरुषाः सिद्धाः = देवयोनिविशेषाः चारणाः = बन्दिनः तेषाम्, अपि, कस्य = कस्य जनस्य, चरित्रम् = चरितम्, सकलजनविलोकनैकचित्रम्—सकलजनानाम् = समस्तप्राणिनाम् विलोकनाय = अवलोकनाय, दर्शनायेत्यर्थः, एकम् = मुख्यम् अथ च

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पर्दे के पीछे)

मित्र रत्नशेखर, बहुत दिनों के बाद दिखलाई पड़े हो।

लक्ष्मण—(सुनकर) यह क्या (है) ?

(फिर पर्दे के पीछे)

मित्र चम्पकापीड, हाँ ऐसा ही है। इतने समय तक मैं समस्त माया (इंद्रजाल) के ज्ञाता मय नामक दानव की पुत्री अपनी बहन मन्दोदरी की सेवा के लिए लङ्का में निवास करनेवाले चित्ररूप नामक दानव से सम्पूर्ण इंद्रजाल की कला को सीखते हुए, (लङ्का में ही) रहा।

लक्ष्मण—निश्चय ही कानों के कुतूहल तथा हर्ष को प्रदान करनेवाला यह किन्हीं दो पथिकों का संवाद है।

(फिर पर्दे के पीछे)

मित्र रत्नशेखर, तो (तुम) अपनी कला का प्रदर्शन मेरे लिए प्रकट करोगे ?

(फिर पर्दे के पीछे)

मित्र चम्पकापीड,

इस संसार में असुर, देव, राक्षस, नाग, मनुष्य, किन्नर, सिद्ध तथा चारणों के भी मध्य किसका चरित्र सब लोगों को देखने के लिए सुख्य तथा अनेक रूप से स्पष्टतः प्रतिभासित हो रहा है (जिसे मैं तुम्हें दिखलाऊँ) ? ॥ ९ ॥

अथवा दूसरे (के चरित्र को दिखलाने) से क्या प्रयोजन ? लङ्का में अनुभव किये गये कुछ नवीन तथा सरस एवं मनोहर चरित को ही तुम्हें दिखला रहा हूँ।

लक्ष्मण—आर्य, इधर ध्यान दीजिये। यह बिना प्रयास के ही दर्शनीय (वस्तु) उपस्थित है।

राम—(न सुनने का अभिनय करते हुए)

हे देवि सीते, तुम्हारे मणिजटित नूपुरों के फैलनेवाले कोलाहल से चञ्चल हंसों के समूह से परिव्याप्त, लक्ष्मण के चरण-कमलों के चिह्नों से युक्त, गोदावरी के तट-भागों पर दृष्टिपात करो ॥ १० ॥

चित्रम् = विभिन्नरसम्, स्फुटम् = स्पष्टम्, सदिति शेषः, विजृम्भते = वर्द्धते, यदहं तुभ्यं दर्शयिष्यामीति भावः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ९ ॥

लक्ष्मण इति। अयत्नोपनीतम्—अयत्नेन = अनायासेन उपनीतम् = आगतम्, प्रेक्षणीयम् = दर्शनीयम्, वस्त्विति शेषः ॥

अन्वयः—हे देवि वैदेहि, त्वदीयमणिनूपुरजृम्भमाणकोलाहलोत्तरलहंसकुलाकुलासु, लक्ष्मणपदाम्बुजलाञ्छितासु, गोदावरीपुलिनभूमिषु, दृष्टिम्, देहि ॥ १० ॥

देवीति। हे देवि वैदेहि = हे देवि सीते, त्वदीयमणिनूपुरेत्यादिः—त्वदीयौ = तव सम्बन्धिनौ यौ मणिनूपुरौ = मणिखचितमञ्जीरौ तयोः जृम्भमाणः = वर्द्धमानः प्रसरणशीलः इत्यर्थः यः कोलाहलः = झङ्कृतिः तेन उत्तरलम् = चञ्चलम् हंसकुलम् = हंससमुदायः तेन

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः—क्व पुनरिह वैदेही, क्व वा गोदावरी ।

रामः—(विमृश्य) कथं प्रतारितोऽस्मि मतिविभ्रमेण । (विचिन्त्य) अथवा कृतार्थीकृतोऽस्मि । अनेन हि मे

गोदावरीतीरतपोवनेषु सौमित्रिसीतापरिपूर्णपार्श्वः ।
मुदा निमेषानिव यान्यनैषं दिनानि तान्येव पुनः स्मृतानि ॥ ११ ॥

(पुनः सप्रत्याशम्) अपि नाम

तान्येव पक्ष्मलदृशो वचनामृतानि
भूयोऽपि कर्णचुलुकैरहमापिबेयम् ।
यैर्मामदर्शयदसौ विकचप्रमोदा
गोदावरीकमलवीचिविचेष्टितानि ॥ १२ ॥

(नेपथ्ये)

तव सुभग उत्क्षिपन्ती तरङ्गसितचामरं रघुमृगाङ्क ।
धवलकमलातपत्रं धारयति गोदानदी स्वहस्तेन ॥ १३ ॥
[तुह सुहअ उक्खिवन्ती तरङ्गसिअचामरं रहुमिअङ्क ।
धवलकमलादपत्तं धारइ गोलाणई सहत्थेण ॥]

रामः—(सहर्षम्) अये, स एवायं प्रियतमायाः समालापः । तथा हि—

आकुलासु = व्याप्तासु, लक्ष्मणपदाम्बुजलाञ्छितासु—लक्ष्मणस्य = सुमित्रापुत्रस्य पदाम्बुजाभ्याम् = चरणकमलाभ्याम् लाञ्छितासु = अङ्कितासु, गोदावरीपुलिनभूमिषु—गोदावर्याः = गोदावरीनद्याः पुलिनभूमिषु = तटभागेषु, दृष्टिम् = नेत्रम्, देहि = अर्पय । अत्रोपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—गोदावरीतीरतपोवनेषु, सौमित्रिसीतापरिपूर्णपार्श्वः, (अहम्), मुदा, यानि, दिनानि, निमेषान्, इव, अनैषम्, तानि, एव, पुनः स्मृतानि ॥ ११ ॥

गोदावरीति । गोदावरीतीरतपोवनेषु—गोदावर्याः = गोदावरीनद्याः तीरयोः = तटयोः तपोवनेषु = तपोऽरण्येषु, सौमित्रिसीतापरिपूर्णपार्श्वः—सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् सौमित्रिः = लक्ष्मणः सीता = जानकी ताभ्यां परिपूर्णे = अलङ्कृते पार्श्वे = दक्षिणदक्षिणेतरपार्श्वभागौ यस्य सः तादृशः, अहमिति शेषः, मुदा = हर्षेण, यानि दिनानि = यानि अहानि, निमेषान् = अक्षिनिमीलनपरिमितकालान्, इव = यथा, अनैषम् = व्यतीतानि अकरवम्, तानि = पूर्वानुभूतानि, एव, पुनः = मुहुः, स्मृतानि = स्मरणविषयीकृतानि, अतः कृतार्थीकृतोऽस्मीति सम्बन्धः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रोपमेलनादुपजातिर्वृत्तम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—अहम्, पक्ष्मलदृशः, तानि, एव, वचनामृतानि, कर्णचुलुकैः, भूयः, अपि, आपिबेयम् ? विकचप्रमोदा, असौ, यैः, माम्, गोदावरीकमलवीचिविचेष्टितानि, अदर्शयत् ॥ १२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यहाँ कहाँ सीता हैं, अथवा (यहाँ) कहाँ गोदावरी ही है ।

राम—(सोचकर) क्या (मैं अपनी ही) बुद्धि की भ्रान्ति के कारण धोखा दिया गया हूँ ! (गम्भीरता से सोचकर) अथवा (मैं) कृतार्थ कर दिया गया हूँ । क्योंकि इस (मति भ्रम) के द्वारा मुझे—

गोदावरी के तट के तपोवनों में लक्ष्मण तथा सीता से परिपूर्ण (दाएँ, बाएँ) बगलवाले मैंने प्रसन्नता के साथ जिन दिनों को निमेष (पलक गिरने के समय) के समान व्यतीत किया था वे ही (दिन) फिर से याद दिला दिये गये ॥ ११ ॥

(फिर उत्कण्ठामिश्रित आशा के साथ) क्या यह सम्भव (है कि)

मैं सुलोचना (सीता) के उन्हीं वचनामृतों को (अपने) कर्णपुटों से फिर भी पिऊँगा ! अत्यन्त हंसमुख उस (सीता) ने जिन (वचनों) से मुझको गोदावरी के कमलों तथा तरङ्गों की चेष्टाओं को दिखलाया था ॥ १२ ॥

(पर्दे के पीछे)

हे दर्शनीय रघुकुलचन्द्र, आपके लिए तरङ्गों रूप सफेद चामरों को डुलाती हुई गोदावरी नदी अपने हाथ से सफेद कमल रूप छत्र को धारण कर रही है ॥ १३ ॥

राम—(प्रसन्नता के साथ) अरे, यह (तो) वही प्रियतमा (सीता) का आभाषण है ।

जैसा कि—

पुनरिति । अपि नामेति सम्भावनायाम् ॥

तान्येवेति । अहम् = प्रियाविप्रयुक्तो रामः इत्यर्थः, पक्ष्मलदृशः—पक्ष्मले = शोभननेत्रलोमराजियुक्ते दृशौ = नयने यस्याः तस्याः, सुलोचनायाः सीतायाः इत्यर्थः, तानि = पूर्वानुभूतानि, एव, वचनामृतानि = सुधासदृशानि वचांसि, कर्णचुलुकैः = श्रोत्रपुटैः, भूयोऽपि = मुहुरपि, आपिबेयम् = सतृष्णं शृणुयामित्यर्थः; विकचप्रमोदा—विकचः = प्रफुल्लः प्रमोदः = हर्षः यस्याः सा, असौ = सा जानकी, यैः = यादृशैः वचनैः, माम् = स्वप्राणवल्लभं राममित्यर्थः, गोदावरीकमलवीचिविचेष्टितानि—गोदावर्याः = गोदावरीनद्याः कमलानाम् = पद्मानाम् वीचीनाम् = लहरीणाम् च विचेष्टितानि = विकासान्, अदर्शयत् = प्रदर्शितवती । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे सुभग, हे रघुमृगाङ्क, तव, तरङ्गसितचामरम्, उत्क्षिपन्ती, गोदानदी, स्वहस्तेन, धवलकमलातपत्रम्, धारयति ॥ १३ ॥

तव सुभगेति । हे सुभग = हे दर्शनीय, हे रघुमृगाङ्क = हे रघुकुलचन्द्र, तव = भवतः, रामचन्द्रस्येत्यर्थः, तरङ्गसितचामरम्—तरङ्गम् = लहरी एव सितम् = धवलम् चामरम् = प्रकीर्णकम् ('चामरं तु प्रकीर्णकम्' इत्यमरः), उत्क्षिपन्ती = चालयन्ती, गोदानदी = गोदावरीसरित्, स्वहस्तेन = स्वकरेण, धवलकमलातपत्रम्—धवलम् = स्वच्छम् कमलातपत्रम् = कमलरूपं छत्रम्, धारयति = वहति । अत्र रूपकालङ्कारः । आर्या वृत्तम् ॥ १३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

परिमितकमनीयः कोमलो वाग्विलासः
सरसमधुरकाकुस्वीकृता कापि लेखा।
ध्वनिरपि च विपञ्चीपञ्चमास्यानुवादी
श्रुतिरपि कलकण्ठीकण्ठसंवादभूमिः॥ १४ ॥

तत्कुत्र पुनः प्रेयसी। (विलोक्य) तत्कथमयमदृष्टचन्द्रलेखश्चन्द्रालोकः।

(ततः प्रविशति यथानिरूपयिष्यमाणा जानकी)

रामः—(ससम्भ्रमम्) प्राप्तेयं प्रेयसी। (इति गन्तुमिच्छति)

लक्ष्मणः—(रामं हस्ते धृत्वा) अलमिह संभ्रमेण। विद्याधरोपनीतमिन्द्रजालकं खल्वेतत्।

रामः—(निर्वर्ण्य) अये, क एष सन्निवेशविशेषः। तथा हि—

एकेनालम्बितेऽयं शिथिलभुजलताशोभिना शाखिशाखा
हस्तेनान्येन चायं दिनकरकिरणक्लान्तकान्तिः कपोलः।
एष स्रस्तो नितम्बे लुलति कचभरस्त्यक्तकाञ्चीकलापे
नेत्रोत्सङ्गे च बाष्पस्तबकनवकणैः पक्ष्मला पक्ष्मलेखा॥ १५॥

नूनमियमशोकशाखिशाखां सखीमिवावलम्ब्य निद्रामुपगता। तथा हि—

अन्वयः—परिमितकमनीयः, कोमलः, वाग्विलासः, (अस्ति), सरसमधुरकाकुस्वीकृता, काऽपि, लेखा, (वर्तते); ध्वनिः, अपि, विपञ्चीपञ्चमस्य, अनुवादी, (आस्ते); श्रुतिः, अपि, कलकण्ठीकण्ठसंवादभूमिः, (वर्तते) ॥ १४ ॥

परिमितेति। परिमितकमनीयः—परिमितेन = अल्पाक्षरेण कमनीयः = मनोहरः, कोमलः = श्रवणमधुरः, वाग्विलासः—वाचाम् = वचसाम् विलासः = लीला, अस्तीति शेषः। एवं सर्वत्र क्रियायोजनम्। सरसमधुरकाकुस्वीकृता—सरसः = रसपूर्णः मधुरः = माधुर्योपेतः यः काकुः = काकुध्वनिविशेषः तेन स्वीकृता = युक्ता, काऽपि = विलक्षणेत्यर्थः, लेखा = वाक्यावलिः, आस्ते। ध्वनिः = शब्दः, अपि, विपञ्चीपञ्चमस्य—विपञ्ची = वीणा तस्याः यः पञ्चमः = पञ्चमः स्वरविशेषः तस्य, अनुवादी = अनुसरणकर्ता, आस्ते। श्रुतिरपि = श्रवणमपि, कलकण्ठीकण्ठसंवादभूमिः—कलकण्ठी = कोकिला तस्याः कण्ठः = गलध्वनिरिति यावत् तस्य संवादभूमिः = सादृश्याधारः वर्तते इति शेषः। मालिनी वृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—शिथिलभुजलताशोभिना, एकेन, हस्तेन, इयम्, शाखिशाखा, आलम्बिता; अन्येन, (हस्तेन), दिनकरकिरणक्लान्तकान्तिः, अयम्, कपोलः, (आलम्बितः); एषः, स्रस्तः, कचभरः, त्यक्तकाञ्चीकलापे, नितम्बे लुलति; नेत्रोत्सङ्गे, च, बाष्पस्तबकनवकणैः, पक्ष्मला, पक्ष्मरेखा, (अस्ति) ॥ १५ ॥

एकेनेति। शिथिलभुजलताशोभिना—शिथिला = श्लथा या भुजलता = बाहुवल्ली तया शोभते = शोभां प्राप्नोतीति तच्छीलस्तेन तादृशेन, एकेन, हस्तेन = करेण,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नपा-तुला होने के कारण मनोहर तथा कोमल वचन-व्यवहार (है)। सरस तथा खास ध्वनियों (बोलने की टोन) से अलंकृत विलक्षण वाक्यावली (है)। आवाज भी वीणा के पञ्चमस्वर का अनुकरण करनेवाली (है)। (इन वचनों का) श्रवण भी कोयल के कण्ठ (से निर्गत वचनों) के समान (है) ॥ १४ ॥

तो प्रियतमा कहाँ है ? (चारों ओर निगाह दौड़ाकर, सीता के न दिखलाई पड़ने पर) तो चन्द्रमा की कला के न दिखलाई पड़ने पर (भी) यह चन्द्रमा का प्रकाश (चाँदनी) कैसे (हो रहा है) ? (अर्थात् सीता के न दिखलाई पड़ने पर भी यह उनकी आवाज कैसे आ रही है) ?

(तदनन्तर आगे यथावसर किये गये वर्णनों के अनुसार जानकी प्रवेश करती है)

राम—(शीघ्रता के साथ) यह प्रियतमा मिल गयी। (ऐसा कह कर जाना चाहते हैं)।

लक्ष्मण—(राम का हाथ पकड़ कर) यहाँ उतावली नहीं करनी चाहिए। यह तो विद्याधर के द्वारा प्रकट किया गया इन्द्रजाल (माया का खेल) है।

राम—(ध्यान से देखकर) अरे, शरीर को रखने का यह कैसा प्रकार है? जैसे कि—

शिथिल बाहुलता से सुशोभित एक हाथ से यह वृक्ष की डाल पकड़ी गयी है। दूसरे (हाथ) से सूर्य की किरणों से (अर्थात् घाम लगने से) मलिन कान्तिवाला यह कपोल पकड़ा गया (सहारा दिया गया) है। यह बिखरा हुआ केश–कलाप करधनी की लड़ियों से शून्य नितम्ब (चूतड़) पर लटक रहा है। नेत्रों के किनारेवाले भाग में आँसू के गुच्छों के नूतनकणों से सघन (भीगी हुई) पक्ष्मरेखा (बरौनी की कतार) है ॥ १५ ॥

निश्चय ही यह अशोक वृक्ष की डाल को (अपनी) सखी की तरह पकड़ कर सो गयी है। जैसे कि—

इयम् = एषा, शाखिशाखा—शाखिनः = वृक्षस्य शाखा = विटपः आलम्बिता = गृहीता, अस्तीति शेषः; अन्येन = इतरेण, हस्तेनेति शेषः, दिनकरकिरणक्लान्तकान्तिः—दिनकरस्य = सूर्यस्य किरणैः = अंशुभिः क्लान्ता = मलिना कान्तिः = आभा यस्य सः, अयम् = एषः, कपोलः = गण्डस्थलम् , आलम्बित इति शेषः; एषः = अयम् , स्रस्तः = इतस्ततः शिथिलः, कचभरः = केशकलापः, त्यक्तकाञ्चीकलापे—त्यक्तः = परिवर्जितः काञ्चीकलापः = रशनाकलापः यस्मात् तस्मिन् , नितम्बे = कटिपश्चाद्भागे, लुलति = लुठति; नेत्रोत्सङ्गे = लोचनप्रान्ते, च = अपि, बाष्पस्तबकनवकणैः—बाष्पस्तबकानाम् = अश्रुकणसमूहानाम् नवैः = अचिरोद्गतैः कणैः = बिन्दुभिः, पक्ष्मला = घनीभूता, पक्ष्मरेखा = नेत्ररोमराजिः, अस्तीति शेषः। इन्द्रजालोपनीतजानकीस्वरूपवर्णनमिदम्। अत्र रूपकाऽलङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ १५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

आमीलन्नवनीलनीरजतुलामालम्बते लोचनं
शैथिल्यं नवमल्लिकासहचरैरङ्गैरपि स्वीकृतम् ।

(पुनर्विमृश्य) नूनमनया हृदयप्रमोददायी कोऽपि स्वप्नो दृष्टः । तथा हि—

आलापादधरः स्फुरन् कलयति प्रेङ्खत्प्रवालोपमा-
मानन्दप्रभवाश्च बाष्पकणिका मुक्ताश्रियं बिभ्रति ॥ १६ ॥

सीता—(उन्मील्य लोचने) हा धिक् हा धिक् । अन्यादृशो मे जीवलोको । गोदावरी नदी क्व सा, नीलोत्पलश्यामलः क्व रामः, लङ्का क्व, क्व वा हा धिक् रामैकजीविता सीता । (इति मूर्च्छति)

[हद्धी हद्धी । अण्णारिसो मे जीअलोओ गोलाणई । कहिं सा, णीलुप्पलसामलो कहिं रामो, लङ्का कहिं, कहिं वा हद्धी रामेक्कजीविदा सीदा ।]

रामः—अयि वसुधे,

यां वै गर्भे त्रिजगदचलारत्नभूतां दधाना
लब्धार्थत्वाज्जगति भवती रत्नगर्भा बभूव ।
तामुत्सङ्गे तव विलुलितां वीक्षमाणा च सीतां
द्राग्दीर्णासीन्न कथमथवा देवि सर्वंसहासि ॥ १७ ॥

तदेनामभ्यर्थयामि तावदस्याः समुद्बोधनाय । अथवा किमभ्यर्थनया ।

अन्वयः—लोचनम्, आमीलन्नवनीलनीरजतुलाम्; आलम्बते; नवमल्लिकासहचरैः, अङ्गैः, अपि, शैथिल्यम्, स्वीकृतम्, आलापात्, स्फुरन्, अधरः, प्रेङ्खत्प्रवालोपमाम्, कलयति; आनन्दप्रभवाः, बाष्पकणिकाः, च, मुक्ताश्रियम्, बिभ्रति ॥ १६ ॥

आमीलन्निति । लोचनम् = नेत्रम्, आमीलन्नवनीलनीरजतुलाम्—आमीलत् = निमीलत् नवम् = नूतनम्; अचिरोद्गतमित्यर्थः, यत् नीलनीरजम् = नीलकमलम् तस्य तुलाम् = सादृश्यम्, आलम्बते = धारयति । नवमल्लिकासहचरैः—नवा = नवीना या मल्लिका = मल्लीकुसुमम् तत्सहचरैः = तत्सदृशैः, अङ्गैः = अवयवैः, अपि = च, शैथिल्यम् = शिथिलताम्, स्वीकृतम् = गृहीतम् । नेत्रं निमीलितमस्ति तथा सुकोमलानि अङ्गानि अपि शिथिलानि जातानीति भावः । अतो ज्ञायते निद्रिताऽस्ति मे प्रेयसी । पुनः स्वप्नानुमानं समर्थयन्नाह—आलापादिति । आलापात् = आभाषणात्, स्फुरन् = चलन्, अधरः = अधरौष्ठः, प्रेङ्खत्प्रवालोपमाम्—प्रेङ्खन् = सञ्चलन्, वायुनेति शेषः, यः प्रवालः = किसलयम् तस्य उपमाम् = सादृश्यम्, कलयति = स्वीकरोति । आनन्दप्रभवाः आनन्दात् = सुखानुभूतेः प्रभवः = उत्पत्तिः येषां तथाभूताः, बाष्पकणिकाः = अश्रुबिन्दवः, च = अपि, मुक्ताश्रियम् = मुक्ताशोभाम्, अतिस्वच्छत्वादिति यावत्, बिभ्रति = वहन्ति । अत्रोपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—त्रिजगदचलारत्नभूताम्, याम्, (सीताम्), गर्भे, दधाना, भवती, लब्धार्थत्वात्, जगति, रत्नगर्भा, बभूव; ताम्, सीताम्, तव, उत्सङ्गे, विलुलिताम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

नेत्र मुकुलित (मुंदे हुए) नवीन नीले कमल की समानता को धारण कर रहा है। नयी मल्लिका (बेली) के फूलों के तुल्य अङ्ग के द्वारा भी शिथिलता स्वीकार कर ली गयी है (अर्थात् मल्लिका के फूलों के सदृश अङ्ग भी शिथिल हो गये हैं)।

(फिर विचार कर) निश्चय ही इसने हृदय को आनन्दित करनेवाले किसी स्वप्न को देखा है। जैसे कि—

(कुछ) बोलने (बड़बड़ाने) के कारण फड़कता हुआ अधरोष्ठ हिलनेवाले प्रवाल (नवीन पत्ते) की समानता को धारण कर रहा है तथा आनन्द से उत्पन्न हुए अश्रु-बिन्दु मोती की शोभा को धारण कर रहे हैं ॥ १६ ॥

सीता—(आँखें खोलकर) हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है। मेरे लिए संसार बदल गया है। कहाँ वह गोदावरी नदी, कहाँ नीलकमल के सदृश श्याम राम, कहाँ लङ्का तथा हाय! कहाँ रामरूप जीवनवाली सीता! (ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाती है)।

राम—हे पृथिवि।

तीनों लोकों की स्त्रियों में रत्नसरीखा जिस (सीता) को गर्भ में धारण करती हुई आप सार्थक होने के कारण संसार में रत्नगर्भा (अपने गर्भ में रत्नों को छिपानेवाली) हुई। उसी सीता को अपनी गोद में लुढकी देखती हुई क्यों शीघ्र ही फट नहीं गयीं? अथवा हे देवि, (तुम) सर्वसहा हो (अर्थात् तुम्हारा सर्वसहा = सब कुछ सहन करने-वाली—यह नाम भी सार्थक है) ॥ १७ ॥

तो इसको (अर्थात् सीता को) जगाने के लिए सम्प्रति। इस (पृथिवी) की प्रार्थना करूँ। अथवा प्रार्थना करने से क्या लाभ?

वीक्ष्यमाणा, कथम्, द्राक्, दीर्णा; न आसीत्? अथवा, हे देवि, (त्वम्) सर्वसहा, असि ॥ १७ ॥

यां वै इति। त्रिजगदबलारत्नभूताम्—त्रिजगति = त्रिलोक्याम् अबलासु = स्त्रीषु रत्नभूताम् = रत्नसदृशीमिति भावः, याम् = यां सीताम्, गर्भे = स्वकुक्षौ, दधाना = धारयन्ती, भवती = त्वम्, लब्धार्थत्वात्—लब्धः = प्राप्तः अर्थः = सार्थकता यस्मिन् स तस्य भावस्तस्मात् कारणात् सीतारूपरत्नसनाथगर्भत्वात्, जगति = संसारे, रत्नगर्भा = रत्नगर्भधारिणी, रत्नगर्भेति नामधारिणीत्यर्थः, बभूव = जाता। ताम् = स्वयशसि कारण-भूतामित्यर्थः, सीताम् = जानकीम्, तव = भवत्याः, स्वस्यैवेति यावत्, उत्सङ्गे = अङ्के, विलुलिताम् = विलुठिताम्, वीक्ष्यमाणा = अवलोकयन्ती, कथम् = कस्मात्, द्राक् = झटिति, दीर्णा = विदीर्णा, न आसीत् = न जाता? अथवेति = विकल्पे, हे देवि = हे वसुधे, (त्वम्), सर्वसहा—सर्वम् = निखिलम् अतिकठोरमपीति भावः सहते = सोढुं शक्नोतीति एतादृशी अन्वर्थनाम्नी त्वम्, असि = वर्तसे। अतस्तव कृते नेदमाश्चर्यकर-मिति भावः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ १७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

निजामपि सुतां सीतां नेयमुद्बोधयिष्यति ।
निजेऽप्यपत्ये करुणा कठिनप्रकृतेः कुतः ॥ १८ ॥

तदेनं तावदभ्यर्थयामि ।

स्निग्धाशोकद्रुम निजसखीं तूर्णमुद्बोधयैनां
सिक्त्वा सिक्त्वा किसलयकरस्रंसिना सीकरेण ।
एतस्याः किं नयनकमलस्यन्दिभिः सान्द्रसान्द्रै-
र्बाष्पोत्पीडैरनुदिनमपि त्वं न सिक्तालवालः ॥ १९ ॥

कथमनाकर्णितकेन प्रत्याख्यातमनेन । अये, कृतघ्नता पलाशिनः । (विलोक्य) कथं प्रकृतिप्रियंवदाया मे प्रियायाः सखीजनोऽपि न कश्चिदिह ।

(प्रविश्य)

त्रिजटा—जानकि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

सीता—(समाश्वस्य) कथं प्रियसखी मे त्रिजटा ।

[कहं पिअसही मे तिअडा ।]

त्रिजटा—सखि, अनया ते मधुरया मुखरेखया तर्कयामि यत्किल प्रियं किमपि दृष्टवती भवती ।

सीता—अस्तीदानीं हि मया स्वप्ने स्वयं गोदानद्या स्वहस्तकलिततरङ्गचामरधवलकमलातपत्रया परिचर्यमाण आर्यपुत्रो दृष्टः ।

[अत्थि दाणिं हि मए सिविणअम्मि सअं गोलाणईए सहत्थकलिदतरङ्गचामरधवलकमलादवत्ताए परिचरिज्जन्तो अज्जउत्तो दिट्ठो ।]

त्रिजटा—तर्हि वर्धसे । सुखस्वप्नः खल्वसौ ।

अन्वयः—इमम्, निजाम्, सुताम्, अपि, न उद्बोधयिष्यति; (यतः), कठिनप्रकृतेः, निजे, अपत्ये, अपि, करुणा, कुतः ? ॥ १८ ॥

निजामिति । इयम्=एषा, पृथिवीत्यर्थः, निजाम्=स्वकीयाम्, सुताम्=पुत्रीम्, अपि, न=नहि, उद्बोधयिष्यति=उद्बुद्धां विधास्यति । यतः कठिनप्रकृतेः—कठिना=कठोरा प्रकृतिः=स्वभावः यस्याः सा तस्याः, निजे=स्वकीये, अपत्ये=सन्ततौ अपि, करुणा=दया, कुतः=कस्मात् ? न कुतोऽपीत्यर्थः । अत्र अर्थान्तरन्यासालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे स्निग्धअशोकद्रुम, एनाम्, निजसखीम्, किसलयकरस्रंसिना, सीकरेण, सिक्त्वा सिक्त्वा, तूर्णम्, उद्बोधय । एतस्याः, नयनकमलस्यन्दिभिः, सान्द्रसान्द्रैः, बाष्पोत्पीडैः, त्वम्, अनुदिनम्, किम्, न सिक्तालवालः ॥ १९ ॥

स्निग्धाशोकेति । हे स्निग्ध अशोकद्रुम=हे स्नेहार्द्र अशोकवृक्ष, एनाम्=तवतले स्थिताम्, निजसखीम्=स्वसखीम्, एकत्र निवासात् सखित्वं ज्ञेयम्, किसलयकरस्रंसिना—किसलयानि=नूतनपत्राणि एव कराः=हस्ताः तेभ्यः स्रंसिना=निर्झरितेन,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यह पृथिवी अपनी पुत्री सीता को भी नहीं जगायेगी। (क्योंकि) कठिन स्वभाव-वाली (स्त्री) को अपने सन्तान के ऊपर भी करुणा कहाँ से (हो सकती है) ! ॥१८॥

अच्छा तो अब इस (अशोक) से ही प्रार्थना करूँ।

हे स्नेह करनेवाले अशोक वृक्ष, इस अपनी सखी (सीता) को नूतन पत्ररूप हाथों से गिरनेवाले जलबिन्दुओं से सींच-सींच कर शीघ्र जगा दो। इस (सीता) के नेत्र-कमलों से बहनेवाले अतिशय घने अश्रु-प्रवाहों से तुम प्रतिदिन क्या सींची गयी क्यारी-वाले नहीं हो जाते हो ? (अर्थात् निश्चय ही सीता अपनी आँसुओं से तुम्हारा थाला भर देती है) ॥ १९ ॥

क्या अनसुनी करके इसके द्वारा (मेरा कथन) ठुकरा दिया गया है ! पलाशियों (वृक्षों, राक्षसों) की कृतघ्नता आश्चर्यजनक है। (देखकर) क्या स्वभावतः मीठा वचन बोलनेवाली मेरी प्रिया की यहाँ कोई सखी भी नहीं है ?

(प्रवेश करके)

त्रिजटा—सीते, धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

सीता—(आश्वस्त होकर) क्या मेरी प्रिय सखी त्रिजटा है ?

त्रिजटा—सखि, तुम्हारी इस मधुर मुख की आकृति से (मैं) अनुमान कर रही हूँ कि आपने कुछ प्रिय (स्वप्न) देखा है।

सीता—हाँ ऐसी ही बात है (अस्ति)। अभी-अभी स्वप्न में मैंने अपने हाथ में गृहीत तरङ्ग रूप चामर और सफेद कमल रूप छत्र को धारण किये हुई स्वयं गोदावरी नदी के द्वारा सेवा किये जाते हुए आर्य पुत्र (रामचन्द्र) को देखा है।

त्रिजटा—तब तुम्हारा भला होगा। यह कल्याणकारी स्वप्न है।

सीकरेण = जलबिन्दुना, जातावेकवचनम्, सिक्त्वा = सिञ्चितां कृत्वा, तूर्णम् = शीघ्रम्, उद्बोधय = उज्जीवय, विगतनिद्रां कुरु इत्यर्थः। जानकीकृतमुपकारं स्मारयति—एतस्याः = अस्याः सीतायाः इति यावत्, नयनकमलस्यन्दिभिः = नेत्रोत्पलभ्रंशिभिः, सान्द्रसान्द्रैः = घनीभूतैः, वाष्पोत्पीडैः = अश्रुप्रवाहैः, त्वम् = भवान्, अनुदिनम् = प्रति-दिनम्, किं न सिक्तालवालः—सिक्तः = कृतसेकः आलवालः = आवापः यस्य सः तादृशः। त्वन्मूलमस्याः अश्रुप्रवाहैः प्रतिदिनं सिक्तमास्तेऽतो त्वमपि प्रत्युपकारे पत्रभ्रं-शितैः तुहिनजलकणैः तामपि प्रबुद्धां कुर्विति भावः। अत्र रूपकोपमयोः संसृष्टिः। मन्दा-क्रान्ता वृत्तम् ॥ १९ ॥

कथमिति। प्रत्याख्यातम् = तिरस्कृतम्। पलाशानि = पत्राणि सन्ति अस्येति पलाशी = वृक्षः तस्य अथवा पलम् = मांसम् अश्नातीति पलाशी = राक्षसः तस्य ॥

सांसेति। स्वहस्तकलिततरङ्गचामरधवलकमलातपत्रया—स्वहस्ते = स्वकरे कलि-तम् = गृहीतम् तरङ्गः = लहरी एव चामरः = प्रकीर्णकम् तथा च धवलकमलमेव = श्वेतोत्पलमेव आतपत्रम् = छत्रम् यया सा तया तथाभूतया गोदावर्या। परिचर्यमाणः = शुश्रूषितः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता—कीदृशो मे रामैकचित्तायाः स्वप्ने विश्वासः ।

[केरिसो मे रामेक्कचित्ताए सिविणअम्मि विस्सासो ।]

त्रिजटा—तत्किं चिन्तास्वप्न इति संभावयसि । नहि । चिन्तास्वप्नोऽपि नैवमत्युचित-तावगाही भवति ।

सीता—किं पुनरचुम्बितम् ।

[किं उण अचुम्बिदम् ।]

त्रिजटा—यन्न संभाव्यते ।

सीता—

यन्न खलु संभाव्यते तदपि हला अस्त्यत्र लोके ।
यज्जीवति जनकसुता अनालोकयन्त्यपि रामचन्द्रमुखम् ॥ २० ॥
[जं णहु संभावीअदि तं पि हला अत्थि अत्थ लोअम्मि ।
जं जीवइ जणअसुदा अपुलोअन्तीवि रामचन्दमुहम् ॥]

तत्किमनेन स्वप्नेन जीवितेन वा । उपेक्षितास्म्यार्यपुत्रेण ।

[ता किं इमिणा सिविणएण जीविदेण वा । उवेक्खिदह्मि अज्जउत्तेण ।]

रामः—शान्तं पापम् । अयि प्रिये, हृदयस्थितापि मे कथमजानती वर्तसे हृदयवृत्तिम् ।

सीता—अथवा किमिति हरमुकुटमृगाङ्के कलङ्कमारोपयिष्ये । जानाम्यार्यपुत्रोऽद्याप्य-कलितवृत्तान्तो मे ।

[अहवा किंति हरमुउडमिअङ्के कलङ्कं आरोपइस्सम् । जाणामि अज्जउत्तो अज्जवि अकलिदउत्तन्तो मे ।]

रामः—प्रिये, इदानीमुचितमनुसन्दधासि

सीता—(विमृश्य) कथम् ।

[कहं ।]

वाचालेनापि कथिता नाहं नाथस्य नूपुररवेण ।
अथवा विधिविधुरबलात्तेनापि मूकत्वं प्राप्तम् ॥ २१ ॥
[वाआलेणवि कहिदा णाहं णाहस्स णेउररएण ।
अहवा विहिविहुरबलात्तेणवि मूअत्तणं पत्तम् ॥]

(नेपथ्ये)

अये लङ्कानिवासिनः, सावधानमवस्थीयताम् । नन्वितः—

अन्वयः—हला, यत्, खलु, न, सम्भाव्यते, तत्, अपि, अत्र, जीवलोके, अस्ति । यत्, रामचन्द्रमुखम्, अनालोकयन्ती, अपि, जनकसुता, जीवति ॥ २० ॥

यन्न खल्विति । हला = सखि, यत् = यद्वस्तु, खल्विति निश्चये, न सम्भाव्यते = न सम्भावनीयं वर्तते, तदपि = तादृशमपि वस्तु, अत्र = अस्मिन्, जीवलोके = प्राणिलोके, अस्ति = वर्तते । उदाहरति—यत् = यस्मात्, रामचन्द्रमुखम् = रामचन्द्रस्य आननम्, अनालोकयन्ती = अपश्यन्ती, अपि, जनकसुता = जानकी, जीवति = प्राणिति ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता—एक मात्र राम में ही तल्लीन चित्तवाली मेरे स्वप्न में क्या विश्वास (किया जाय) ?

विशेष—सीता के कहने का अभिप्राय यह है कि जो बात दिन-रात सोची जाती है यदि वही स्वप्न में दिखलायी पड़े तो उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। इस तरह का स्वप्न चिन्तास्वप्न कहा जाता है।

त्रिजटा—तो क्या (इसे तुम) चिन्तास्वप्न समझ रही हो ? नहीं। चिन्तास्वप्न भी इस तरह से अचुम्बित (असम्भावित) का अवगाहन (स्पर्श करनेवाला) नहीं होता है (अर्थात् उसका भी फल होता ही है)।

सीता—अचुम्बित का क्या अभिप्राय है ?

त्रिजटा—जो सम्भावित (होनेवाला) न हो।

सीता—सखि, जो निश्चय ही सम्भव नहीं है वह भी इस जीवलोक में है। जैसे कि रामचन्द्र के मुख को न देखती हुई भी जानकी जीवित है ॥ २० ॥

तो इस स्वप्न अथवा इस जीवन से क्या लाभ ? (सम्प्रति में) आर्यपुत्र के द्वारा उपेक्षित कर दी गयी हूँ।

राम—पाप शान्त हो। हे प्रिये, (तुम) हमारे हृदय में स्थित होकर भी हृदय की वृत्ति (धारणा) को कैसे नहीं जान रही हो ?

सीता—अथवा क्यों इस तरह शङ्कर के मुकुट में स्थित चन्द्र में कलङ्क का आरोप करूँ ? (अर्थात् प्राणवल्लभ राम को दोष देना व्यर्थ है)। मेरी धारणा है कि अभी अब भी आर्यपुत्र को मेरे विषय का समाचार विदित नहीं है।

राम—प्रिये, अब (तुम) सत्य बात को सोच रही हो।

सीता—(विचार कर) क्या—

वाचाल (अर्थात् झनझनानेवाले) भी नूपुर के शब्द ने मुझे स्वामी से नहीं कह दिया ? अथवा भाग्य की विपरीतता के कारण वह भी मूक (गूंगा) हो गया ? ॥२१॥

(पर्दे के पीछे)

अरे लङ्का के निवासियों, सावधान होकर रहो। इधर—

राममदृष्ट्वा सीतायाः क्षणमपि न जीवनं सम्भावितमासीत्। परन्तु अधुना जीवाम्येवेत्यसम्भावनीयमेव सम्भवतामापन्नमिति। आर्या वृत्तम् ॥ २० ॥

अन्वयः—वाचालेन, अपि, नूपुररवेण, अहम्, नाथस्य, न, कथिता ? अथवा, विधिविधुरत्वात्, तेन, अपि, मूकत्वम्, प्राप्तम् ॥ २१ ॥

वाचालेनेति। वाचालेन = शब्दायमानेन, झणझणायमानेनेत्यर्थः, अपि = च, नूपुररवेण = मञ्जीरशब्देन, अहम् = सीता, नाथस्य = स्वामिनः, रामस्येति यावत् न कथिता = न निवेदिता ? अथवा = वा, विधिविधुरत्वात्—विधेः = विधातुः, भाग्यस्येत्यर्थः, विधुरत्वात् = वैपरीत्यात्, तेन = नूपुरेण, अपि, मूकत्वम् = मौनभावम्, प्राप्तम् = स्वीकृतम्। गाथा वृत्तम् ॥ २१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्राकारमुन्नतमसीमबलो विलङ्घ्य
प्राप्तो रुषारुणितदृक्कपिवीर उच्चैः ।
(उभे आकर्ण्य त्रासं नाटयतः)
(पुनर्नेपथ्ये)
तत्सम्मुखं प्रचलति स्वयमक्षनामा
नन्वेष राक्षसपतेः कुपितः कुमारः ॥ २२ ॥

सीता—कथं पुनः सह महीधरेण वेपत इवाशोकवनम् ।
[कहं उण सह महीअलेण वेवदि व्व असोअवणम् ।]

त्रिजटा—(विमृश्य)

तुहिनकरमयूखैर्दीप्तकन्दर्पदर्प-
स्तपनकुलवधूटीं त्वामयं मुक्तलज्जः ।
अयमयमनुनेतुं रामचन्द्रैकचित्ता-
मपि स विपिनवीथीमेति लङ्काधिनाथः ॥ २३ ॥
(सीता त्रासं नाटयति)
(ततः प्रविशति रावणः)
(सीता पराङ्मुखी तिष्ठति)

रावणः—अयि जानकि,

कन्दर्पज्वरवेदनापरिपतद्बाष्पस्रुतिक्षालितं
स्वर्गस्त्रीकुचकुम्भकुङ्कुमरजस्तंयापराधोज्ज्वलम् ।
एतत्त्वां सुरदन्तिदन्तशिखरोल्लेखाङ्कविख्यापितः
प्रस्फूर्जच्चतुरन्तविश्वविजयं वक्षस्थलं याचते ॥ २४ ॥

अन्वयः—असीमबलः, रुषा, अरुणितदृक्, उच्चैः, कपिवीरः, उन्नतम्, प्राकारम्, विलङ्घ्य, प्राप्तः । ननु, कुपितः, अक्षनामा, एषः, राक्षसपतेः, कुमारः, तत्सम्मुखम्, स्वयम् प्रचलति ॥ २२ ॥

प्राकारमिति । असीमबलः—असीमम् = अपारम् बलम् = शक्तिः यस्य सः तादृशः, रुषा = क्रोधेन, अरुणितदृक्—अरुणिते = रक्तीकृते दृशौ = नेत्रे येन सः, उच्चैः = विशालः, कपिवीरः = वानरयोद्धा, उन्नतम् = उच्छ्रितम्, प्राकारम् = नगरभित्तिम्, विलङ्घ्य = उल्लङ्घ्य, प्राप्तः = अत्रागतः । ननु = तथा, कुपितः = क्रुद्धः, अक्षनामा = अक्षसंज्ञकः, एषः = दृश्यमानः, राक्षसपतेः = राक्षसाधिपस्य रावणस्येत्यर्थः कुमारः = सुतः, तत्सम्मुखम्—तस्य = कपिवीरस्य सम्मुखम्—समक्षम्, स्वयम् = अन्यप्रेरणां विनैवेत्यर्थः, प्रचलति = गच्छति, योद्धुमिति शेषः तेन सह योद्धुं तं वशीकर्तुञ्च अक्षः प्रसन्नतया स्वयमेव यातीति भावः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—तुहिनकरमयूखैः, दीप्तकन्दर्पदर्पः, मुक्तलज्जः, सः, अयम् अयम्, लङ्काधिनाथः, तपनकुलवधूटीम्, रामचन्द्रैकचित्ताम्, अपि, त्वाम्, अनुनेतुम्, विपिनवीथीम्, अयम्, एति ॥ २३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपरिमिति बलशाली, क्रोध से लाल नेत्रवाला, विशालकाय, वानर-वीर ऊँची बहार दिवारी को लाँघ कर (लङ्का में) आ गया है।

(दोनों सुनकर भय का अभिनय करती हैं)

(फिर पर्दे के पीछे)

और क्रुद्ध अक्ष नामक यह राक्षसराज (रावण) का पुत्र उस (वानर) के सम्मुख स्वयं जा रहा है ॥ २२ ॥

सीता—अच्छा, पर्वत के सहित (यह) अशोकवन क्यों कांप-सा रहा है ?

त्रिजटा—(सोचकर) चन्द्रमा की किरणों से बढ़े हुए काम-वेगवाला निर्लज्ज अपनी दुष्टता के लिए प्रसिद्ध (सः) यह लङ्कापति (रावण) सूर्यकुल की बहू तथा रामचन्द्र में ही अपने चित्त को लगानेवाली भी तुमको मनाने के लिए उद्यान के कुञ्जों में सम्प्रति (अयम्) आ रहा है ॥ २३ ॥

(सीता भय का अभिनय करती है)

(इसके बाद रावण प्रवेश करता है)

(सीता मुँह फेरे बैठी रहती है)

रावण—हे जानकि।

काम-ज्वर की पीडा के कारण गिरनेवाले अश्रु-प्रवाह से स्नान किये हुए, स्वर्ग की सुन्दरियों के विशाल पयोधरों के केसर-पराग को चुरा लेने (छीन लेने) के अपराध के कारण धवल, देवताओं के मतवाले हाथियों के दाँतों की नोक के खरोंचों के चिह्नों से सूचित किया गया है तेजस्वी चारों दिशाओं के अन्त तक का विश्व-विजय जिसका ऐसा यह (हमारा) वक्षस्थल तुम से याचना कर रहा है ॥ २४ ॥

रावणागमनं कथयन्त्याह—तुहिनकरेति। तुहिनकरमयूखैः—तुहिनकस्य = चन्द्रस्य मयूखैः = किरणैः, दीप्तकन्दर्पदर्पः—दीप्तः = वृद्धिङ्गतः कन्दर्पस्य = कामस्य दर्पः = वेगः यस्य सः, अतो मुक्तलज्जः—मुक्ता = परित्यक्ता लज्जा = व्रीडा येन सः, सः = दुष्टतायै जगद्विदितः, अयम् अयम् = एषः, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः, लङ्काधिनाथः = लङ्कापतिरावणः, तपनकुलवधूटीम्—तपनस्य = सूर्यस्य कुलम् = वंशः तस्य वधूटीम् = स्नुषाम्, तपनेति कुलस्य पवित्रतामुच्चताञ्च द्योतयितुमुपन्यस्तम्, तथा रामचन्द्रैकचित्ताम् = रामचन्द्रे = रामे एकम् = केवलम् चित्तम् = हृदयम् यस्याः सा ताम्, अपिना रावणस्य वैफल्ये निश्चयमुद्योतितम्, त्वाम् = भवतीम्, अनुनेतुम् = स्वायत्तीकर्तुम्, विपिनवीथिम्—विपिनस्य = उद्यानस्य वीथिम् = श्रेणीम्, अयम् = सम्प्रति, एति = आगच्छति। मालिनीवृत्तम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—कन्दर्पज्वरवेदनापरिपतद्बाष्पस्रुतिक्षालितम्, स्वर्गस्त्रीकुचकुम्भकुङ्कुमरजस्तेयापराधोज्ज्वलम्, सुरदन्तिशिखरोल्लेखाङ्कविख्यापितप्रस्फूर्जच्चतुरन्तविश्वविजयम्, एतत्, वक्षस्थलम्, त्वाम्, याचते ॥ २४ ॥

कन्दर्पेति। कन्दर्पज्वरवेदनापरिपतद्बाष्पस्रुतिक्षालितम्—कन्दर्पस्य = कामस्य ज्वरः=परितापः तस्य वेदनया = पीडया परिपततः = प्रवहमानस्य वाष्पस्य=अश्रुणः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता—(अनाकर्णितकेन) अपि नाम पुनरपि रामचन्द्रमुखचन्द्रं विलोकयिष्ये ।
[अवि णाम पुणोवि रामचन्दमुहचन्दं पुलोवइस्सम् ।]

त्रिजटा—जानकि, एवं प्रलापिनि लङ्केश्वरे कर्णावधानमपि तावद्देहि ।

रामः—साधु त्रिजटे, प्रलाप इत्युक्तवत्यसि ।

रावणः—यत्संतुष्टवतः पुरा पुरभिदश्छन्दोत्सवच्छेदिनो
न क्रोधादनमन्नवोद्गतशिरःश्रेणौ नमन्त्यामपि ।
एतत्तद्दशमं शिरो मम नमत्त्वत्पादपाथोजयो-
रव्याजं मिथिलेन्द्रपुत्रि भवतीं प्रेमातुरं याचते ॥ २५ ॥

सीता—(संस्कृतमाश्रित्य)
निजे पाणौ कृत्वा कमललतिकाबालमुकुलं
ययोश्चक्रे गुञ्जन्मधुपमवतंसं रघुपतिः ।
अपीमौ कर्णौ मे वचनमिदमाकर्ण्य न कथं
विशीर्णौ युक्तं वा चरितमिदमन्तः कुटिलयोः ॥ २६ ॥

रावणः—अयि जानकि, अवलोकनमात्रेणापि तावन्मां सम्भावय ।

सीता—अयि निशाचर, एतावत्प्रार्थनाभङ्गलाघवात्कथं राघवादपि न बिभेषि ।

लुला=प्रवाहेण, क्षालितम्=कृतस्नानम्, स्वर्गस्त्रीकुचेत्यादिः— स्वर्गस्त्रीणाम्=स्वर्गरमणीनाम् ये कुचकुम्भाः=विशालपयोधराः तेषु यानि कुङ्कुमरजांसि=काश्मीरजधूलयः तेषां यत् स्तेयम्=चौर्यम् तदेव अपराधः=दूषणम् तेन उज्ज्वलम्=धवलम्, सुरदन्तिदन्तेत्यादिः— सुराणाम्=देवानाम् ये दन्तिनः=मदस्राविणः गजाः तेषां दन्ताः=दशनानि तेषां शिखरैः= तीक्ष्णाग्रभागैः यः उल्लेखः=क्षतम् तस्य अङ्कः=चिह्नम् तेन विख्यापितः=उद्घोषितः प्रस्फुरन्=तेजस्वी चतुरन्तविश्वस्य=दिगन्तससारस्य विजयः=जयः यस्य तत्, एतत्= मामकीनम्, वक्षस्थलम्=उरःस्थलम्, त्वाम्=भवतीम्, याचते=याचनां करोति, प्रार्थनां करोतीत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे मिथिलेन्द्रपुत्रि, सन्तुष्टवतः, छन्दोत्सवच्छेदिनः, पुरभिदः, पुरः, नवोद्गतशिरःश्रेणौ, नमन्त्याम्, अपि, यत्, क्रोधात्, न, अनमत्; तत्, एतत् मम, दशमम्, शिरः, त्वत्पादपाथोजयोः, नमत्, अव्याजम्, प्रेमातुरम्, सत्, भवतीम्, याचते ॥ २५ ॥

यत्सन्तुष्टवत इति । हे मिथिलेन्द्रपुत्रि—मिथिलायाः इन्द्रः=शासकः तस्य पुत्री तत्सम्बुद्धौ, सन्तुष्टवतः=प्रसन्नस्य, तपश्चरणप्रसन्नस्येत्यर्थः, छन्दोत्सवच्छेदिनः—छन्दः= स्वेच्छा तस्य उत्सवः=पूर्तिरूपः आनन्दः सकलशिरश्छेदनजन्यहर्षः तं छिनत्ति=निवारयतीति तच्छीलः तस्य, पुरभिदः=त्रिपुरारेः, पुरः=समक्षम्, नवोद्गतशिरःश्रेणौ—नवोद्गतानाम्=नूतनोत्पन्नानाम् शिरसाम्=मस्तकानाम् श्रेणौ=पङ्क्तौ, नमन्त्याम्=प्रणमन्त्याम्, अपि, यत्=शिरः, क्रोधात्=कोपात्, छन्दोत्सववारणजनितात् कोपादिति यावत्, न अनमत्=न नम्रमभूत्; तत्=तादृशम्, एतत्=इदम्, मम=रावणस्य,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
सीता—(न सुनने का अभिनय करती हुई)।

क्या (मैं) फिर रामचन्द्र के मुखचन्द्र को देखूँगी ?

त्रिजटा—जानकि इस तरह प्रलाप (बकवास) करनेवाले रावण की ओर जरा कान तो लगाओ।

राम—त्रिजटे, (तुमने) प्रलाप यह ठीक ही कहा है।

रावण—हे जनकपुत्रि, सन्तुष्ट हुए तथा (दशों शिर काटने की) अभिलाषा रूप आनन्द को (बीच में ही) रोक देनेवाले, त्रिपुरारि (शङ्कर) के सामने (पुनः) नये निकले हुए शिरों की पंक्ति के झुकने पर भी जो शिर क्रोध के कारण नहीं झुका था, वही यह मेरा दशवां शिर तुम्हारे चरण-कमलों पर झुकता हुआ निष्कपट रूप से प्रेम से आतुर होकर आप से याचना कर रहा है ॥ २५ ॥

सीता—(संस्कृत भाषा का आश्रयण करके)

रामचन्द्र ने अपने हाथ में गुनगुनानेवाले भौरों से युक्त, कमलल्लता की नवीन कली को लेकर जिनमें आभूषण पहनाया था; (वे ही) ये मेरे कान (रावण के) इस वचन को सुनकर भी क्यों नहीं फट गये ? अथवा भीतर कुटिल = टेढ़े (इन कानों का) यह व्यवहार ठीक ही है ॥ २६ ॥

रावण—अयि सीते, आँख से देखने मात्र से भी भला मुझे कृतार्थ कर दो।

सीता—अयि राक्षस, प्रार्थना के भङ्ग होने से होनेवाली लघुता से तथा राघव से भी क्या नहीं डरते हो ?

दशमम् = दशसंख्याकम्, शिरः = मस्तकम्, त्वत्पादपाथोजयोः = त्वच्चरणकमलयोः, नमत् = प्रणमत्, अव्याजम् = निष्कपटं यथा तथा, प्रेमातुरम् = प्रणयव्याकुलम्, सत्, भवतीम् = त्वाम्, याचते = प्रार्थयते, तव प्रीतिं याचते इति यावत्। अत्रोपमालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—रघुपतिः, निजे, पाणौ, गुञ्जन्मधुपम्, कमलल्लतिकाबालमुकुलम्, कृत्वा, ययोः, अवतंसम्, चक्रे; इमौ, मे, कर्णौ, इदम्, वचनम्, आकर्ण्य, अपि, कथम्, न, विशीर्णौ ! वा, अन्तः, कुटिलयोः, इदम्, चरितम्, युक्तम् ॥ २६ ॥

निजे पाणाविति। रघुपतिः = रामः, निजे = स्वकीये, पाणौ = हस्ते, गुञ्जन्मधुपम्—गुञ्जन्तः = शब्दायमानाः मधुपाः = भ्रमराः यस्मिन् तत् तादृशम्, कमलल्लतिकाबालमुकुलम्—कमलल्लतिकायाः = कमलिन्याः बालम् = नवीनम् मुकुलम् = कुड्मलम्, कृत्वा = विधाय, गृहीत्वेत्यर्थः, ययोः = कर्णयोरित्यर्थः, अवतंसम् = आभूषणम्, चक्रे = कृतवान्, इमौ = एतौ, मे = मम, कर्णौ = श्रोत्रे, इदम् = एतत्, वचनम् = वाक्यम्, दुष्टवाक्यमित्यर्थः, आकर्ण्य = श्रुत्वा, अपि, कथं न = कस्मात् न, विशीर्णौ = द्विधा जातौ ! विदीर्णौ इति यावत्; वा = अथवा, अन्तः = अभ्यन्तरे, कुटिलयोः = वक्रयोः, साधारणपक्षे—अन्तः = हृदये कुटिलयोः = दुष्टयोरित्यर्थः, इदम् = एतत्, चरितम् = व्यवहारः, युक्तम् = समीचीनमित्यर्थः। अर्थान्तरन्यासालङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ २६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—अये, क एष राघवो नाम यं किल जनो राम इति जल्पति। (विहस्य)

काम: कियानसिलतानिहितैकबाहु-
क्रीडार्दितत्रिभुवनस्य दशाननस्य।
रामस्तु केवलमयं सुमुखि त्वदर्थे
मां हन्ति हन्त न चिरान्निशितैः शरौघैः ॥ २७ ॥

सीता—सत्यमेतत्।

रावणः—(स्वगतम्) कथमन्यदेव किमप्युक्तवानस्मि। (तदेव विपरीतं पठित्वा) अयि जानकि, तावन्मां जीवय नयनामृतेन।

सीता—तदा त्वामपि लङ्केश, विलोकयिष्यति जानकी।

रावणः—(सप्रत्याशम्) तत्कथय समयम्। अयं हि—

मन्दोदरीमपि विमुञ्चति राज्यमेत-
दप्युन्मदं तव पदाब्जतले करोति।
किं जल्पितेन बहुना सुमुखि त्वदर्थे
स्वान्युच्छिनत्त्यपि शिरांसि पुनर्दशास्यः ॥ २८ ॥

सीता—अपि खद्योतभासापि समुन्मीलति पद्मिनी।

रावणः—(सक्रोधम्) आः पापे, यावत्किल तपनखद्योतयोस्तावदेवान्तरं रामरावणयोः। यदियं हन्यसे। (इति खड्गमुत्पाटयति)

अन्वयः—असिलतानिहितैकबाहुक्रीडार्दितत्रिभुवनस्य, दशाननस्य, कामः, कियान्? हे सुमुखि, अयम्, रामः, तु, केवलम्, त्वदर्थे, निशितैः, शरौघैः, न चिरात्, माम्, हन्ति, (इति) हन्त ॥ २७ ॥

काम इति। असिलतानिहितैकबाहुक्रीडार्दितत्रिभुवनस्य—असिलतायाम्=खड्गलतायाम् निहितः=स्थापितः यः एकबाहुः=अद्वितीयः भुजदण्डः तस्य क्रीडया=लीलया अर्दितम्=पीडितम् त्रिभुवनम्=त्रिलोकी येन तस्य तादृशस्य, दशाननस्य=रावणस्य, कामः=मनोजः, राम इति वक्तव्ये काम इति जल्पति मदनातुरत्वात्, कियान्=कीदृशः? हे सुमुखि=हे सुन्दरि, अयम्=एषः, रामः=रामचन्द्रः, काम इति वक्तव्ये राम इति जल्पति मदनान्धत्वात्, तु, केवलम्=पूर्णं यथा स्यात्तथा, त्वदर्थे=त्वत्कृते, निशितैः=सुतीक्ष्णैः, शरौघैः=बाणसमुदायैः, न चिरात्=शीघ्रमेव, माम्=रावणम्, हन्ति=विनाशयति, (इति), हन्तेति खेदे। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—दशास्यः, त्वदर्थे, मन्दोदरीम्, अपि, विमुञ्चति, उन्मदम्, एतत्, राज्यम्, अपि, तव, पदाब्जतले, करोति; हे सुन्दरि, बहुना, जल्पितेन, किम्? स्वानि, शिरांसि, अपि, पुनः, उच्छिनत्ति ॥ २८ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
रावण—अरे, राघव नामवाला यह कौन है ? जिसे लोग 'राम' कहते हैं (वही यह है) ! (जोर से हँसकर)

तलवार पर रक्खे गये अद्वितीय बाहु की क्रीडा से त्रिभुवन को पीडित कर देनेवाले रावण के लिए काम क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं) । हे सुन्दर मुखवाली, यह राम ही एकमात्र तुम्हारे लिए तीखे-तीखे बाण-समूहों से शीघ्र ही मुझे मार रहा है—(यही) खेद है ॥ २७ ॥

विशेषः—काम से विह्वल होने के कारण रावण राम की जगह काम को तथा काम की जगह राम को कह रहा है ॥ २७ ॥

सीता—यह सच है ।

रावण—(अपने आप) क्या कुछ दूसरा ही कह डाला है ? (पीछे के ही श्लोक को उलट कर अर्थात् राम के स्थान पर काम को और काम के स्थान पर राम को पढ़ कर) अयि सीते, तो मुझे (तुम) अपने नेत्रामृत से (अर्थात् अमृततुल्य देखने से) जीवित करो ।

सीता—हे लङ्केश, जानकी तुम्हें भी तब देखेगी ।

रावण—(आशा के साथ) तो समय बतलाओ (अर्थात् कब मेरी ओर देखोगी ?) । निश्चय ही यह—

रावण तुम्हारे लिए मन्दोदरी को भी छोड़ता है; समृद्ध इस राज्य को भी तुम्हारे चरणकमल के नीचे करता है; हे सुन्दरि, अधिक कहने से क्या लाभ ? अपने शिरों को भी फिर से काट रहा है ॥ २८ ॥

सीता—क्या जुगनू के प्रकाश से भी कमलिनी खिलती है ? (अर्थात् सूर्य के प्रकाश से खिलनेवाली कमलिनी का विकास जैसे जुगनू के प्रकाश से सम्भव नहीं है उसी तरह रामप्रिया सीता का तुमसे प्रसन्न होना सम्भव नहीं है) ।

रावण—(क्रोध के साथ) आह दुष्ट सीते, जितना अन्तर सूर्य और जुगनू में है उतना ही अन्तर क्या राम और रावण में भी है ? तो (तुम्हारा) वध ही किया जा रहा है । (ऐसा कह कर तलवार निकालता है)

मन्दोदरीमिति । दशास्यः = दशमुखो रावणः, त्वदर्थे = त्वत्कृते, मन्दोदरीमपि = स्वकीयां धर्मपत्नीमपि, विमुञ्चति = परित्यजति; उन्मदम् = अतिसमृद्धम्, एतत् = इदम्, राज्यम् = राष्ट्रम्, अपि, तव = भवत्याः, पदाब्जतले = चरणकमलाधस्तले, करोति = विदधाति; हे सुन्दरि = हे शोभने, बहुना = अधिकेन, जल्पितेन = कथनेन, किम् = किं प्रयोजनम् ? न किमपीति भावः; स्वानि = स्वकीयानि, शिरांसि = मस्तकानि, अपि, पुनः = मुहुः, द्वितीये कालेऽपीति भावः, उच्छिनत्ति = कृन्तति । अत्रोपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २८ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—

हा जानकि त्वमधुनासि कथं भवित्री

(सविचिकित्सम्)

धिग्दैवतं तव सुदारुण एष पाकः ।

(सक्रोधम्)

आः पाप राक्षसकुलाधम संहतोऽसि

(ससम्भ्रमम्)

हे वत्स लक्ष्मण धनुर्धनुरेष कालः ॥ २९ ॥

लक्ष्मणः—आर्य, किमिदमैन्द्रजालिकविलोकनादलीकमेव सम्भ्रम्यते ।

रावणः—अयि जानकि, अयमसावुदीर्णकरालकरवालः कालभुजङ्गः । तदिदानीमपि दशकण्ठभुजाश्लेषभेषजमनुजानीहि ।

सीता—

विरम विरम रक्षः किं मुधा जल्पितेन
स्पृशति नहि मदीयां कण्ठसीमानमन्यः ।
रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्ते-
र्दशमुख भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात् ॥ ३० ॥

रावणः—किमतः परं कालक्षेपेण । तदहमिदानीमस्याः कण्ठरुधिरेण कालिकामर्चयामि । (इति खड्गधारां परामृशति)

रामः—अहह ।

अन्वयः—हा जानकि, अधुना, त्वम्, कथम्, भवित्री, असि ? दैवतम्, धिक्, (येन), तव, सुदारुणः, एषः, पाकः; आः पाप, राक्षसकुलाधम, संहृतः, असि; हे वत्स लक्ष्मण, धनुः, धनुः, (देहि), एषः, कालः ॥ २९ ॥

हा जानकीति । हा जानकि=हा सीते, अधुना=सम्प्रति, रावणस्य खड्गोत्पाटनकाले इत्यर्थः, त्वं कथम्=कीदृशी, भवित्री असि=भाविनी असि ? दैवतम्=भाग्यम्, ब्रह्माणं वा, धिक्=धिगस्तु, (येन) तव=सीतायाः इत्यर्थः, सुदारुणः=अतिभयङ्करः, एषः=अयम्, पाकः=फलभोगः, अस्तीति शेषः, आः क्रोधद्योतकमव्ययपदम्, पाप=पापिन्, राक्षसकुलाधम—राक्षसकुले=निशाचरवंशे, अधम=नीच, संहृतः=घातितः, असि=भवसि, न चिरात्त्वं घातितो भविष्यसीति भावः । हे वत्स लक्ष्मण, धनुः धनुः=चापं चापम्, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः, देहीति शेषः, एषः=अयम्, कालः=समयः, अस्ति दुष्टविनाशस्येति शेषः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २९ ॥

लक्ष्मण इति । ऐन्द्रजालिकविलोकनात्—इन्द्रजालस्येदमैन्द्रजालिकम् = इन्द्रजालोपन्यस्तम् तस्य विलोकनात्=अवलोकनात् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
राम—हाय सीते, सम्प्रति तुम कैसी होओगी ?

(सन्देहपूर्वक)

दैव को धिक्कार है, (जिसके कारण) तुम्हारा अति दुःखदायी यह फलभोग है।

(क्रोध के साथ)

आह ! पापी, राक्षस कुल में सर्वाधिक नीच, (बस अब तू) मारे ही गये हो।

(शीघ्रतापूर्वक)

हे वत्स लक्ष्मण, धनुष धनुष (दो), यही समय है ॥ २९ ॥

लक्ष्मण—आर्य, इन्द्रजाल के द्वारा प्रदर्शित इसको देखकर व्यर्थ में ही क्यों उतावली की जा रही है ?

रावण—अयि जानकि, (म्यान से) निकाली गई भयङ्कर यह तलवार काल सर्प है। अतः अब भी रावण को भुजाओं के आलिङ्गन रूप दवा के लिए अनुमति दो।

सीता—हे राक्षस, रुको, रुको। व्यर्थ बकवास से क्या (लाभ) ? हे रावण, नीलकमल के समान श्यामवर्णवाले रामचन्द्र के भुजदण्ड अथवा निर्दय तुम्हारे कृपाण के अलावा दूसरा मेरे कण्ठ-प्रदेश को नहीं छू सकता ॥ ३० ॥

रावण—इससे अधिक समय बिताने से क्या लाभ ? तो मैं सम्प्रति इस (सीता) के कण्ठ के रक्त से काली जी की पूजा करूँगा। (ऐसा कह कर तलवार की धार को सहलाता है)

राम—अहह !

रावण इति। उदीर्णकरालकरवालः—उदीर्णः = कोषान्निःसारितः करालः = भीषणः करवालः = खड्गः। दशकण्ठभुजाश्लेषभेषजम्—दशकण्ठस्य = रावणस्य भुजानाम् = बाहूनाम् आश्लेषः = आलिङ्गनम् एव भेषजम् = औषधम् ॥

अन्वयः—हे रक्षः, विरम विरम; मुधा, जल्पितेन, किम् ? हे दशमुख, उत्पलश्यामकान्तेः, रघुपतिभुजदण्डात्, वा, निष्कृपात्, भवदीयात्, कृपाणात्, अन्यः, मदीयाम्, कण्ठसीमानम्, नहि, स्पृशति ॥ ३० ॥

विरमेति। हे रक्षः = हे राक्षस, विरम विरम = विरतो भव, मुधा = व्यर्थम्, जल्पितेन = जल्पनेन, कथनेनेत्यर्थः, किम् = को लाभः ? हे दशमुख = हे रावण, उत्पलश्यामकान्तेः—उत्पलम् = नीलकमलमिव श्यामा = नीलवर्णा कान्तिः = आभा यस्य तस्य, रघुपतिभुजदण्डस्य कृपाणस्य च साभाम्येन विशेषणमिदम्, रघुपतिभुजदण्डात् = रामचन्द्रबाहुदण्डात्, वा = अथवा, निष्कृपात् = निष्करुणात्, भवदीयात् = तव सम्बन्धिनः, कृपाणात् = खड्गात्, अन्यः = अतिरिक्तः, मदीयाम् = मामकीनाम्, कण्ठसीमानम्—कण्ठस्य = ग्रीवायाः सीमानम् = सीमाम् ('सीमसीमे स्त्रियामुभे' इत्यमरः), नहि = न, स्पृशति = आमृशति। खण्डय मदीयं कण्ठं नाहं तव प्रार्थनां स्वीकरोमीति भावः। अत्र विकल्पालङ्कारः। मालिनी वृत्तम् ॥ ३० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विधिरकरुणः स्फीतं स्फीतं तमः परिजृम्भते
जलधिसलिले मग्नं विश्वं युगं परिवर्तते ।
कुवलयदलस्रक्संश्लेषोत्सवैकपदे पदं
यदयमदयः सीताकण्ठे करोति कृपाणकः ॥ ३१ ॥

(पुनर्विभाव्य) हन्त भोः,

चान्द्रीं लेखां दशति दशनैर्दारुणः सैंहिकेयो
नव्यां वल्लीं दवदहनकश्चान्दनीं दन्दहीति ।
अप्युन्मत्तः कुवलयमयीं मालिकामालुनीते
मूलादुन्मूलयति नलिनीं दुष्टहस्ती करेण ॥ ३२ ॥

सीता—

चन्द्रहास हर मे परितापं रामचन्द्रविरहानलजातम् ।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं धारया वहसि शीतलमम्भः ॥ ३३ ॥

रावणः—कः कोऽत्र भोः । सत्वरं मम करे कपालपात्रमर्प्यतां येनास्याः कण्ठरुधिरं प्रतीच्छामि । (इत्यशोकविटपान्तराले हस्तं प्रसार्य) कथं न्यस्तमेव केनापि मम करतले कपालम् । (विलोक्य सचमत्कारं) अये, न कपालमेतत् । किन्तु शस्त्रच्छिन्नं शिर एव कस्यापि । (विमृश्य) कस्य पुनरिदम् । नूनमक्षयकुमारस्य । (इति मूर्च्छितः पतति)

अन्वयः—विधिः, अकरुणः, (अस्ति); स्फीतं स्फीतम्, तमः, परिजृम्भते; विश्वम्, जलधिसलिले, मग्नम्, (भवति); युगम्, परिवर्तते; यत्, अदयः, अयम्, कृपाणकः, कुवलयदलस्रक्संश्लेषोत्सवैकपदे, सीताकण्ठे, पदम्, करोति ॥ ३१ ॥

विधिरिति । विधिः = विधाता, अकरुणः = निर्दयोऽस्ति । स्फीतं स्फीतम् = अतिनिविडमित्यर्थः, तमः = अन्धकारः, परिजृम्भते = वर्द्धते । विश्वम् = जगत्, जलधिसलिले— जलधीनाम् = सागराणाम् सलिले = जले, भग्नम् = त्रुडितम्, भवतीति शेषः । युगं परिवर्तते = त्रेतायुगं समाप्तिं गच्छतीति यावत् । दुःखनिमग्नस्य नेत्रयोरग्रेऽन्धकार उन्मीलति, जगज्जले मग्नमिवाभाति तथा युगपरिवर्तनजन्यं प्रलयकालिकं दृश्यं सर्वत्राव-लोक्यत इव । रामस्येयं दशाऽत्र वर्णिता । यत् = यस्मात्, अदयः = अकरुणः, अयम् = एषः, कृपाणकः = चन्द्रहासः, कुवलयदलानाम् = नीलकमलपत्राणाम् या स्रक्माला तस्याः संश्लेषः = मिलनम् तेन यः उत्सवः = आनन्दः शोभा वा तस्य एकम् = केवलम् पदम् = स्थानम् तस्मिन्, सीताकण्ठे = जानकिग्रीवायाम्, पदम् = स्थानम, करोति = विदधाति । हरिणी वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—दारुणः, सैंहिकेयः, दशनैः, चान्द्रीम्, लेखाम्, दशति; दवदहनकः, चान्दनीम्, नव्याम्, वल्लीम्, दन्दहीति; उन्मत्तः, कुवलयमयीम्, मालिकाम्, आलु-नीते; दुष्टहस्ती, करेण, नलिनीम्, मूलात्, उन्मूलयति ॥ ३२ ॥

चान्द्रीमिति । दारुणः = भयङ्करः, सैंहिकेयः = सिंहिकापुत्रः, राहुरित्यर्थः, दशनैः = दन्तैः, चान्द्रीम् = चन्द्रसम्बन्धिनीम्, लेखाम् = कलाम्, दशति = चर्वति ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
विधाता निर्दय (है); अत्यन्त घना अँधेरा बढ़ रहा है; सारा संसार सागर के जल में डूब रहा है; युग बदल रहा है; जो कि दयाशून्य यह (रावण की) तलवार नीले कमलों की माला के पहनने से आनन्द के एकमात्र स्थान सीता के गण्ठ में जगह बना रही है (अर्थात् प्रहार कर रही है) ॥ ३१ ॥

(फिर से विचार करके) हाय ! रे !

भयङ्कर राहु दाँतों से चन्द्रमा की कला को ग्रस रहा है। वनाग्नि चन्दन की नूतन निकली हुई लता को दग्ध कर रहा है। पागल नीले कमलों की माला को तोड़ रहा है। दुष्ट हाथी सूँड़ से कमललता को जड़ से उखाड़ रहा है ॥ ३२ ॥

विशेष—राम के कहने का भाव यह है कि सीता का वध करना उक्त कुकृत्यों जैसा है ॥ ३२ ॥

सीता—हे चन्द्रहास, रामचन्द्र के विरहाग्नि से उत्पन्न मेरे सन्ताप का हरण करलो, क्योंकि तुम आभा से जीत लिया है मोतियों के चूर्ण को जिसने ऐसे शीतल जल को (अपनी) धार से (में) धारण करते हो (अर्थात् तुम्हारी धार अत्यन्त सुतीक्ष्ण है अतः एक प्रहार से ही मुझे शान्ति मिल जायगी) ॥ ३३ ॥

विशेष—चन्द्रहास—रावण की तलवार का नाम चन्द्रहास था ॥ ३३ ॥

रावण—अरे कौन, कौन है यहाँ ? शीघ्र मेरे हाथ में कपालपात्र (खोपड़ी का खप्पर) दो, जिससे (जिसमें) इस (सीता) के कण्ठ का रक्त ले लेता हूँ। (ऐसा कह कर अशोक की शाखा में हाथ फैला कर) क्या किसी ने मेरी हथेली पर कपाल रख ही दिया ! (देखकर, आश्चर्य के साथ) अरे ! यह कपाल नहीं अपितु शस्त्र से कटा हुआ किसी का शिर ही है। (सोच कर) यह किसका (शिर) है ? निश्चय ही यह अक्ष कुमार का (शिर है)। (ऐसा कह कर मूर्च्छित होकर गिरता है)।

दवदहनकः = वनाग्निः, चान्दनीम् = मलयजसम्बन्धिनीम्, नव्याम् = अचिरोद्गताम्, अतिसुकोमलामिति यावत्, वल्लीम् = लताम्, दन्दहीति = पुनःपुनर्दहति। उन्मत्तः = विक्षिप्तः, कुवलयमयीम् = नीलकमलनिर्मिताम्, मालिकाम् = स्रजम्, आलुनीते = खण्डयति। दुष्टहस्ती = उन्मत्तो गजः, करेण = शुण्डादण्डेन, नलिनीम् = कमललताम्, मूलात् = मूलभागात्, उन्मूलयति = उत्पाटयति। रावणेन सीतापीडनमेतत्कुकृत्यादिरूपमेवेति भावः। मालारूपनिदर्शनालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे चन्द्रहास, रामचन्द्रविरहानलजातम्, मे, परितापम्, हर; हि, त्वम्, कान्तिजितमौक्तिकचूर्णम्, शीतलम्, अम्भः, धारया, वहसि ॥ ३३ ॥

चन्द्रहासेति। हे चन्द्रहास = हे रावणस्य खड्ग, रामचन्द्रविरहानलजातम्—रामचन्द्रस्य = रामस्य विरहः = वियोगः एव अनलः = अग्निः तस्मात् जातम् = उत्पन्नम्, मे = मम, परितापम् = सन्तापम्, हर = विनाशय; हि = यतः, त्वम् = भवान्, कान्तिजिन्मौक्तिकचूर्णम्—कान्त्या = प्रभया जितम् = अधरीकृतम् मौक्तिकचूर्णम् = मौक्तिककणसमवायः इत्यर्थः येन तादृशम्, शीतलम् = शैत्यपूर्णम्, अम्भः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

त्रिजटा—अयि लङ्केश्वर, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(समाश्वस्य) नूनमिदं तस्य दुष्टकर्पेविजृम्भितम् । तेन तमेव तावदग्रतः पातयामि । (इति निष्क्रान्तः)

रामलक्ष्मणौ—(सहर्षम्) अहो संविधानवैदग्धी ।

त्रिजटा—(सीतामालिङ्ग्य) सखि, पुण्येन जीवितासि ।

सीता—अपुण्येनेति भण ।

[अपुण्णेणेति भणिज्ज ।]

त्रिजटा—कथमिव ।

सीता—कथं पुनस्तदपुण्यं न भवति यत्किल रामचन्द्रविरहतापनिर्वापिण्या चन्द्रहासधारयोपेक्षितास्मि । तत्किमनेन जीवितेन । इह दारुसञ्चयेऽग्निं प्रज्वाल्य यत्रेमान्यङ्गानि शीतलयामि ।

[कहं उण तं अपुण्णं ण होइ जं किर रामचन्दविरहतावणिव्वावणीए चन्दहासधाराए उवेक्खिदह्मि । ता किं इमिणा जीविदेण । इह दारुसंचअम्मि अग्गिं पज्जालेहि जत्थ इमाइं अङ्गाइं सीअलअम्मि ।]

त्रिजटा—शान्तं पापम् । नन्वचिरादेव निजाङ्कानाम् ।

> **हिमकरकिरणकरम्बितमरकतमयपीनपट्टकप्रतिमे ।**
> **मलयजपरागरजसि रामोरसि तापमपहरसि ॥ ३४ ॥**

सीता—हला, किमनेनालीकजल्पितेन । सर्वमेवानलप्रवेशेन व्यवसितास्मि । तदुपनय मेऽङ्गारखण्डकम् ।

[हला, किं इमिणा अलीअजप्पिदेण । सव्वं जेव्व अणलपवेसेण ववसिदह्मि । ता उवणेहि मे अङ्गालखण्डअम् ।]

रामः—हन्त भोः, कथमपि शार्दूलमुखान्मुक्तायाः पुनरपि शबरवागुरामवतीर्णायाः कुरङ्गवध्वा भङ्गीमङ्गीकृतवती जानकी ।

त्रिजटा—(निर्गत्य प्रविश्य च) असुलभानलोऽयं प्रदेशः ।

रामः—(सहर्षम्) त्रिजटे, दिष्ट्या रक्षितस्त्वया रामः ।

जलम्, धारया=प्रान्तभागेनेत्यर्थः, वहसि=धारयसि । हे असि, त्वं सुतीक्ष्णोऽसि, अतस्त्वैकेन प्रहारेणैवाऽहं शान्तिमधिगमिष्यमीति भावः । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । स्वागता वृत्तम् ॥ ३३ ॥

सीतेति । रामचन्द्रविरहतापनिर्वापिण्या—रामचन्द्रस्य = रामस्य विरहतापः = वियोगज्वाला तस्य निर्वापिणी = शमयित्री तया, चन्द्रहासधारया—चन्द्रहासस्य = रावणखड्गस्य धारया—तीक्ष्णाग्रभागेन । दारुसञ्चये = काष्ठसमुदाये ॥

अन्वयः—हिमकरकिरणकरम्बितमरकतमयपीनपट्टप्रतिमे, मलयजपरागरजसि, रामोरसि, तापम्, अपहरसि ॥ ३४ ॥

हिमकरेति । हिमकरकिरणेत्यादिः—हिमकरः = चन्द्रः तस्य किरणैः = अंशुभिः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
त्रिजटा—हे लङ्केश्वर, आश्वस्त होओ, आश्वस्त होओ।

रावण—(आश्वस्त होकर) निश्चय ही यह उसी दुष्ट बानर का कार्य है। अतः सम्प्रति उसी को पहले मारता हूँ। (ऐसा कह कर निकल गया)

राम और लक्ष्मण—(प्रसन्नता के साथ) रचना की निपुणता (अर्थात् विधि का विधान) आश्चर्यजनक होता है।

त्रिजटा—(सीता को गले लगा कर) सखि, भाग्य से जीवित बच गई हो।

सीता—अभाग्य से (बच गई हूँ) ऐसा कहो।

त्रिजटा—कैसे ?

सीता—अच्छा, वह अभाग्य क्यों नहीं होगा ? जो कि रामचन्द्र के विरह-सन्ताप को बुझानेवाली चन्द्रहास (रावण की तलवार) की धार के द्वारा उपेक्षित कर दी गई हूँ। तो इस जीवन से क्या लाभ ? यहाँ लकड़ी की ढेर में आग जलाओ जिसमें इन अङ्गों को शीतल करूँ।

त्रिजटा—पाप शान्त हो। शीघ्र ही अपने अङ्गों को—

चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से पिघले हुए (सजल) मरकतमणि से निर्मित मोटी पटिया के सदृश, चन्दन के धूलिकणों से धूसरित, रामचन्द्र के वक्षस्थल पर सन्ताप को दूर करोगी॥ ३४॥

सीता—सखि, इस मिथ्याकथन से क्या लाभ ? आग में प्रवेश करके (अपने अङ्गों के सन्ताप को दूर करने के लिए) पूर्ण रूप से निश्चय किये बैठी हूँ। तो मुझे अङ्गार का टुकड़ा ले आ दो।

राम—हाय रे ! किसी-किसी तरह बाघ के मुख से बच कर निकली हुई तथा पुनः बहेलिया के कपट पूर्वक (बिछाये गये) जाल में कूदी हुई हरिणी के चरित्र को जानकी ने अङ्गीकार किया है।

त्रिजटा—(निकलकर तथा पुनः प्रवेश करके) इस स्थान में आग का मिलना आसान नहीं है।

राम—(बड़ी प्रसन्नता के साथ) त्रिजटे, भाग्य से तुमने राम को बचा लिया।

करश्चितम् = सम्पर्कात् सजलम् यत् मरकतमयम् = मरकतमणिनिर्मितम् पीनम् = दीर्घम्, पट्टम् = पाषाणखण्डः तत्प्रतिमे = तत्सदृशे, मलयजपरागरजसि—मलयजपरागः = चन्दन-चूर्णम् एव रजः = धूलिः यस्मिन् तस्मिन्, रामोरसि—रामस्य=रामचन्द्रस्य उरसि=वक्षः-स्थले, तापम् = सन्तापम्, अपहरसि = दूरीकरिष्यसि। भविष्यदर्थे लट्। शीघ्रमेव मिलितस्य रामस्य वक्षःस्थले निजाङ्गकानां सन्तापं दूरीकरिष्यसीति भावः। उपमाऽलङ्कारः। आर्या वृत्तम्॥ ३४॥

राम इति। शार्दूलमुखात्—शार्दूलस्य = व्याघ्रस्य मुखात् = आननात्। शबर-वागुराम्—शबरस्य = किरातस्य वागुराम् = कपटजालम्॥

त्रिजटेति। असुलभानलः—असुलभः = दुर्लभः अनलः = अग्निः यस्मिन् असौ, प्रदेशः = स्थानम्। अत्राग्निप्राप्तिस्तु सुदुर्लभेति भावः॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता—(संस्कृतमाश्रित्य । अशोकं प्रति)

कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोकवनस्पते
दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु ।
ननु विरहिणां सन्तापाय स्फुटीकुरुते भवा-
न्नवकिसलयश्रेणीव्याजात्कृशानुशिखावलिम ॥ ३५ ॥

(विलोक्य सहर्षम्) हला, पश्य पश्य । निपतितं तावदस्य शिखरादङ्गारखण्डकम् । [हला, पेक्ख पेक्ख । निवदिदं दाव इमस्स सिहरादो अङ्गालखण्डअम् ।] (इत्युपसृत्य ग्रहीतुमिच्छति)

रामः—अये कथमशोकोऽपि ममायं शोकतां गतः ।

लक्ष्मणः—आर्य, अनुपपन्नमिदं यत्किल तरुशिखरमङ्गारखण्डकमुद्गिरति ।

रामः—किं न सम्पादयेद्वत्स रामस्य विधिवैधुरी ॥ ३६ ॥

(सीताङ्गारखण्डं हस्तेनादत्ते)

रामः—अनल नलिनकोमले करेऽस्याः
स्फुरदरुणोत्पलकुड्मलोपमः स्याः ।

(विमृश्य)

चरितमुचितमस्ति वा कुतस्ते
ननु भुवने विदितोऽसि कृष्णवर्त्मा ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे श्रीमन् अशोकवनस्पते, चेतः, सकरुणम्, कुरु; तावत्, एकाम्, दहनकणिकाम्, प्रकटीकुरु; ननु, भवान्, विरहिणाम्, सन्तापाय, नवकिसलयश्रेणीव्याजात्, कृशानुशिखावलीम्, स्फुटीकुरुते ॥ ३५ ॥

कुरु सकरुणमिति । श्रीमन = ऐश्वर्यशालिन्, अशोकवनस्पते = अशोकवृक्ष, चेतः= स्वकीयं चित्तम्, सकरुणम्=सदयम्, कुरु=विधेहि; तावत् = सम्प्रति, एकाम् = केवलाम्, दहनकणिकाम् दहनस्य = अग्नेः कणिकाम = स्फुलिङ्गम्, प्रकटीकुरु = उत्पादय, उत्पाद्य मां समर्पयेति भावः । नन्वित्युन्मुखीकरणे, भवान्=त्वम्, विरहिणाम्=वियुक्तानाम, सन्तापाय = दाहाय, नवकिसलयश्रेणीव्याजात्—नवकिसलयानाम् = अचिरोद्गतपत्राणाम श्रेण्याः = लेखायाः व्याजात् = छलात्, कृशानुशिखावलीम्—कृशानोः = अग्नेः शिखानाम् = ज्वालानाम् अवलीम् = श्रेणीम्, स्फुटीकुरुते = प्रकटीकरोति । वह्निज्वालावलीप्रकाशस्तव स्वभाव एव । अतो मह्यमप्येकं स्फुलिङ्गं समर्पयेति भावः । हरिणी वृत्तम् ॥ ३५॥

अन्वयः—अये ! अयम्, अशोकः, अपि, कथम्, मम, शोकताम्, गतः— इति पूर्वार्द्धाऽन्वयः ।

अये कथमिति । अये इत्याश्चर्येऽव्ययम्, अयम् = एषः, अशोकः = वञ्जुलः ('वञ्जुलो वञ्जुलोऽशोके' इत्यमरः), न शोको यस्मादसौ अशोकः = शोककारणशून्यः इति गूढाऽभिप्रायः, अपि = च, भूत्वेति भावः, कथय = ब्रूहि, मम = रामस्य, शोकताम् = शोककारणताम्, गतः = यातः, सीतां वह्निकणं समर्प्येति शेषः— इति पूर्वार्द्धे व्याख्या ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता - (संस्कृत भाषा में अशोक के प्रति)

हे श्रीमन् अशोकवृक्ष, (अपने) चित्त को दयालु कीजिये। सम्प्रति (मेरे लिए) आग के एक कण को प्रकट कीजिये। अरे, आप विरहीजनों के सन्ताप के लिए नूतन कोमल पत्तों की श्रेणी के बहाने अग्नि की लपटों की कतार को व्यक्त करते हो (अतः यह आपके लिए कोई बड़ी बात नहीं है) ॥ ३५ ॥

(देख कर प्रसन्नता के साथ) सखि, देखो, देखो। सम्प्रति इस (अशोक) की चोटी से अङ्गार का एक टुकड़ा गिरा है। (ऐसा कह कर, आगे बढ़ कर लेना चाहती है)

राम—अरे! यह अशोक भी क्या मेरे शोक के कारणभाव को प्राप्त हो गया है (अर्थात् शोक का कारण बन गया है) ?

लक्ष्मण—आर्य, यह युक्तियुक्त (व्यवहारानुकूल) नहीं है कि वृक्ष की चोटी अङ्गार के टुकड़े को उगलती है।

राम—हे वत्स, राम के भाग्य की विपरीतता क्या नहीं करेगी ? (अर्थात् सब कुछ करेगी) ॥ ३६ ॥

(सीता अङ्गार के टुकड़े को हाथ में लेती है)

राम—हे अग्निदेव, कमल के समान कोमल, इस (सीता) के हाथ में विकसित होते हुए लाल कमल की कली के समान बन जाओ।

(विचार कर)

अथवा कहाँ से तुम्हारा (यह) चरित उचित है ? (अर्थात् तुमसे ऐसी आशा कैसे की जा सकती है ?)। क्योंकि संसार में (तुम) 'कृष्णवर्त्मा' (इस) नाम से प्रसिद्ध हो ॥ ३७ ॥

विशेष—कृष्णवर्त्मा—अग्नि के बहुत से नामों में 'कृष्णवर्त्मा' भी एक नाम है। इसकी व्युत्पत्ति है—कृष्णः = धूमः वर्त्माऽस्येति कृष्णवर्त्मा = धूम ही है ज्ञान कराने का मार्ग जिसका (अर्थात् धूम के द्वारा जाना जानेवाला)। किन्तु राम व्यङ्ग्य के साथ इस नाम का प्रयोग कर रहे हैं। अतः इसका अर्थ निकलेगा—कृष्णः = काला वर्त्म = मार्ग है जिसका अर्थात् काले मार्ग वाला ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे वत्स, रामस्य, विधिवैधुरी, किम्, न, सम्पादयेत् ॥ ३६ ॥

किं नेति। हे वत्स = हे लघुभ्रातः, रामस्य = रामचन्द्रस्य, ममेति यावत्, विधिवैधुरी—विधेः=भाग्यस्य वैधुरी=विपरीतता, किमिति प्रश्ने, न = नहि, सम्पादयेत् = कुर्यात् ? सर्वमसंभाव्यमपि करिष्यतीति भावः। इत्युत्तरार्द्धव्याख्या। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे अनल, नलिनकोमले, अस्याः, करे, स्फुरदरुणोत्पलकुड्मलोपमः, स्याः। वा, कुतः, ते, (एतत्), चरितम्, उचितम्, अस्ति ? ननु, भुवने, (त्वम्), कृष्णवर्त्मा, (इति), विदितः, असि ॥ ३७ ॥

अनलेति। हे अनल = हे अग्ने, नलिनकोमले—नलिनम् = कमलमिव कोमले =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सीता—(हस्ते गृहीत्वा सविषादम्) कथं ममापुण्येनाग्निरपि शीतलः संवृत्तः। अये, (निपुणं निरूप्य सचमत्कारम्) अङ्गारखण्डकं न खल्वेतत्। अपि पुनः पद्मरागरत्नखण्डम्।

[कहं मह अपुण्णेण अग्गीवि सीअलो संवुत्तो। अये, अङ्गालखण्डअं ण हु एदं। अवि उण पम्मराअरअणखण्डअम्।]

त्रिजटा—अये, पुण्यवतामग्निरेव रत्नं भवतीति प्रवादः सत्य एव संवृत्तः।

सीता—(पुनर्विलोक्य) कथं सेयं रत्नमुद्रिका। (पुनः संस्कृतमाश्रित्य मुद्रिकां प्रति)

[कहं सा इमा रअणमुद्दिआ।]

या शैशवावधि मनोरमरामचन्द्र-
हस्ताङ्गुलिप्रणयिनी सुभगा सुवृत्ता।
अन्येव सा जनकराजसुता कथं नु
लङ्कामुपागतवती मणिमुद्रिकेयम् ॥ ३८ ॥

(पुनः सादरं कराङ्गुलिकिसलयेन लालयन्ती) अये रत्नाङ्गुलीयक, अपि तावत्कुशलं सलक्ष्मणयो रामचन्द्रचरणयोः।

[अए, रअणङ्गुलीअ, अविदाव कुसलं सलक्खणाणं रामचन्दचलणाणं।]

(पटाक्षेपेण प्रविश्य)

हनूमान्—कुशलं देवि, कुशलम्।

सीता—अमृतमुख, कोऽसि त्वम्।

[अमिअमुह, का सि तुमम्।]

हनूमान्—

तारापतेरनुचरो रघुनन्दनस्य
दूतः सुतोऽस्मि मरुतः प्रथितो हनूमान्।
त्वां हन्तुमुद्यतवतो दशकन्धरस्य
न्यस्तं करे निभृतमक्षशिरो मयैव ॥ ३९ ॥

मृदुले, अस्याः = वियोगिन्याः सीतायाः, करे = हस्ते, स्फुरदरुणोत्पलकुड्मलोपमः—स्फुरत् = विकसत् अरुणम् = रक्तवर्णम् यत् उत्पलम् = कमलम् तस्य कुड्मलेन = कलिकया उपमा = सादृश्यं यस्य तादृशः, स्याः = भवेः। वा = अथवा, कुतः = कस्मात्, ते = तव, (एतत् = कुड्मलसादृश्यम्), चरितम् = आचरणम्, उचितम् = समीचीनम्, अस्ति = वर्तते। नन्विति निश्चये, भुवने = जगति, (त्वम् = अग्निः), कृष्णवर्त्मा—कृष्णः = धूमः वर्त्म = मार्गः यस्य सः ('अग्निर्वैश्वानरो वह्निः······कृष्णवर्त्मा' इत्यमरः), कृष्णवर्त्मेति अग्नेर्नाम। किन्तु कृष्ण = कृष्णवर्णः, पापपूर्ण इति यावत् वर्त्म = पन्थाः यस्य तादृशः इति भावे प्रयुनक्ति, (इति = इति नाम्ना), विदितः = ज्ञातः, असि = वर्तसे। अतस्त्वया कृष्णचरितेन शुभ्रचरितस्य आशैव नास्तीति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ३७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(हाथ में लेकर, खेद के साथ) क्या मेरे दुर्भाग्य से आग भी शीतल हो गयी ? (बड़ी सावधानी से देख कर, आश्चर्य के साथ) अरे, यह तो अङ्गार का खण्ड नहीं है। किन्तु यह तो पद्मराग मणि का टुकड़ा है।

त्रिजटा—अहा ! पुण्यशाली जनों के लिए अग्नि ही रत्न हो जाता है—यह लोक कहावत (आज) सच हो गयी है।

सीता—(फिर देख कर) क्या यह वही (मेरी) रत्नजटित अँगूठी है ? (फिर संस्कृत भाषा के माध्यम से अँगूठी के प्रति)।

जो बचपन से रामचन्द्र के हाथ की सुन्दर अंगुली में प्रेम करनेवाली, सौभाग्यवती, सचरित्र, दूसरी जानकी के समान (थी); वही यह मणिमुँदरी कैसे लङ्का में आ गयी ? ॥ ३८ ॥

(फिर आदर के साथ; हाथ की कोमल अंगुलियों से सहलाती हुई) अरे रत्नजटित मुँदरी, सम्प्रति लक्ष्मण के सहित रामचन्द्र के चरणों का कुशल तो है न ?

(हाथ से पर्दा हटा कर, प्रवेश करके)

हनूमान्—कुशल है देवि, कुशल (है)।

सीता—सुधावदन (अर्थात् मुख से अमृत के तुल्य वचन बोलनेवाले), तुम कौन हो ?

हनूमान्—तारा के पति (सुग्रीव) का सेवक, रामचन्द्र का दूत, वायु का पुत्र, हनूमान् (इस नाम से) प्रसिद्ध हूँ। आप को मारने के लिए तत्पर रावण के हाथ में अक्षयकुमार का शिर मेरे द्वारा ही चुप-चाप रख दिया गया था ॥ ३९ ॥

अन्वयः—या, शैशवावधि, मनोरमरामचन्द्रहस्तांगुलिप्रणयिनी, सुभगा, सुवृत्ता, अन्या, जनकराजसुता, इव, (असीत्), सा, इयम्, मणिमुद्रिका, कथं नु, लङ्काम् उपागतवती ? ॥ ३८ ॥

या शैशवावधीति। या—मुद्रिकेत्यर्थः, शैशवावधि = बाल्यकालादारभ्य, मनोरमरामचन्द्रहस्तांगुलिप्रणयिनी—मनोरमा = मनोहरा या रामचन्द्रहस्तस्य = रामकरस्य अङ्गुलिः = करशाखा तत्र प्रणयिनी = प्रेमवती, अतः सुभगा = सौभाग्यशालिनी, सुवृत्ता = सुन्दरचरित्रसम्पन्ना, अन्या = इतरा, जनकराजसुता = जानकी, इव = यथा, आसीदिति शेषः; सा = तादृशी, इयम् = दृष्टा, मणिमुद्रिका = रत्नखचिता मुद्रिका, कथम् = केन प्रकारेण, नु इति वितर्के, लङ्काम् = रावणपुरीम्, उपागतवती = प्राप्ता अत्र श्लेषोपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—तारापतेः, अनुचरः; रघुनन्दनस्य, दूतः; मरुतः, सुतः; हनूमान्, (इति), प्रथितः, अस्मि। त्वाम्, हन्तुम्, उद्यतवतः, दशकन्धरस्य, करे, अक्षशिरः, मया, एव, निभृतम्, न्यस्तम् ॥ ३९ ॥

हनूमान् स्वकीयं परिचयं ददाति—तारापतेरिति। तारापतेः = सुग्रीवस्य, अनुचरः = सेवकः; रघुनन्दनस्य = रामचन्द्रस्य, दूतः=सन्देशहरः; मरुतः = वायोः, सुतः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—अहो, कथमिदं हनूमन्नामधेयस्य मद्बान्धवस्य विलसितमेतत् ।

लक्ष्मणः—अहो, सचमत्कारता संविधानस्य ।

सीता—अयि भद्रमुख, कः पुनरयं तारापतिः ।

[अइ भद्दमुह, को उण इमो तारावई ।]

हनूमान्—

योवालिनः शौर्यनिधेरमित्रं त्रैलोक्यबन्धोस्तपनस्य सूनुः ।
रामस्य पादाब्जतलाभिवर्ती सुग्रीवनामा कपिचक्रवर्ती ॥ ४० ॥

सीता—केन पुनर्नरवानराणामीदृशं सखित्वं निर्मितम् ।

[केण उण नरवाणराणं एरिसं सखित्तणं णिम्मिदम् ।]

हनूमान्—रामबाणेनैव

वालिने विसृजता धनुरङ्कं नाकलोकललनाकुचकेलिः ।
तारया सममदीयत चास्मै वानरेन्द्रपदवीमणिमौलिः ॥ ४१ ॥

सीता—कथय तावत् । अपि नाम मम मन्दभागिन्याः कृते दुर्बल इदानीं किमपि रघुनाथः ।

[कहेहि दाव । अवि णाम मए मन्दभाइणीए किदे दुब्बलो दाणिं किंपि रहुणाहो ।]

हनूमान्—किमपीति किमुच्यते । इदानीं हि

बहुलपक्षशशीव दिने दिने रघुपतिः कृशतामुपयाति सः ।

सीता—हा धिक् हा धिक् ।

[हद्धी हद्धी ।]

हनूमान्—कुवलयप्रतिमद्युतिरस्य तु प्रविकसत्यनुभाववशंवदा ॥ ४२ ॥

सीता—इदानीं किमप्युज्जीवितास्मि ।

[दाणीं किंपि उज्जीविदह्मि ।]

पुत्रः; हनूमान् (इति नाम्ना) प्रथितः = प्रख्यातः, अस्मि । त्वाम् = भवतीम्, हन्तुम् = विनाशयितुम्, उद्यतवतः = तत्परस्य, दशकन्धरस्य = रावणस्य, करे = हस्ते, अक्षशिरः = अक्षयकुमारमस्तकम्, मया = हनुमता, एवेत्यन्यनिरासार्थम्, निभृतम् = निःशब्दम्, न्यस्तम् = अर्पितम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यः, शौर्यनिधेः, वालिनः, अमित्रम्; त्रैलोक्यबन्धोः, तपनस्य, सूनुः, रामस्य, पादाब्जतलाभिवर्ती, सुग्रीवनामा, कपिचक्रवर्ती, (तारापतिः, अस्ति) ॥ ४० ॥

यो वालिन इति । यः = कपिरित्यर्थः, शौर्यनिधेः = बलशालिनः, वालिनः = वालिनाम्नः इन्द्रपुत्रस्य, अमित्रम् = शत्रुः, त्रैलोक्यबन्धोः—त्रैलोक्यस्य = त्रिलोक्याः बन्धुः = हितकर्ता तस्य, तपनस्य = सूर्यस्य, सूनुः = सुतः, रामस्य = रामचन्द्रस्य, पादाब्जतलाभिवर्ती—पादाब्जतलस्य = चरणकमलाऽधोभागस्य अभिवर्ती = परिचारकः, सुग्रीवनामा = सुग्रीवनाम्ना प्रसिद्धः, कपिचक्रवर्ती = कपीनां सम्राट्, तारापतिरस्तीति शेषः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ ४० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—अहा ! क्या हनूमान् नाम वाले मेरे बन्धु (हितकर्ता) का यह कार्य है ?

लक्ष्मण—घटनाओं की चमत्कारपूर्णता आश्चर्यजनक है।

सीता—हे भले मुँहवाले, यह तारापति कौन है ?

हनूमान्—जो महाबलशाली वाली के शत्रु, त्रिलोकी के हितकर्ता सूर्य के पुत्र, राम के चरणकमल के तलुवे के सेवक, सुग्रीव नामक वानरों के चक्रवर्ती (हैं, वहीं तारापति हैं) ॥ ४० ॥

सीता। अच्छा, नर और वानरों की यह मित्रता किसके द्वारा करायी गयी ?

हनूमान्—धनुष की गोद को छोड़नेवाले (अर्थात् धनुष से छूटनेवाले) (रामचन्द्र के बाण के द्वारा ही) वालि के लिए स्वर्गलोक की सुन्दरियों के स्तनों की क्रीडा (तथा) इस (सुग्रीव) के लिए भी तारा के साथ ही 'वानराधिराज' यह अत्युच्च पदवी प्रदान की गयी। (अर्थात् राम ने अपने बाण से वालि को मार कर स्वर्ग भेज दिया तथा सुग्रीव को वानरों का सम्राट् बना दिया) ॥ ४१ ॥

सीता—अच्छा, बतलाइये। क्या मुझ अभागिन के लिए सम्प्रति रामचन्द्र कुछ दुर्बल हो गये हैं ?

हनूमान—कुछ (दुर्बल हो गये हैं) ऐसा क्यों कहा जा रहा है ? सम्प्रति—

(आपके विरह में व्याकुल) वे रामचन्द्र कृष्णपक्ष की चन्द्रमा की तरह प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे हैं।

सीता—हाय ! धिक्, हाय ! धिक्।

हनूमान्—किन्तु इनकी प्रभाव के आधीन, नीलकमल के समान कान्ति बढ़ रही है ॥ ४२ ॥

सीता—सम्प्रति कुछ जीवित हो गयी हूँ।

अन्वयः—धनुरङ्कम्, विसृजता, (रामबाणेन, एव), वालिने, नाकलोकललनाकुचकेलिः, (तथा), अस्मै, च, तारया, समम्, वानरेन्द्रपदवीमणिमौलिः, अदीयत ॥ ४१ ॥

वालिन इति। धनुरङ्कम्—धनुषः = चापस्य अङ्कम् = उत्सङ्गम् ('उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः' इत्यमरः), विसृजता = त्यजता, (रामबाणेन = रघुपतिशरेण, एव), वालिने = वालिनामकाय वानरराजाय, नाकलोकललनाकुचकेलिः—नाकलोकस्य = स्वर्गलोकस्य याः ललनाः = सुन्दर्यः, अप्सरस इति यावत्, तासां कुचकेलिः = पयोधरक्रीडा, रतिकाले पयोधरादिसम्मर्दनम्, (तथा), अस्मै = सुग्रीवाय, च = अपि, तारया = तारानाम्न्या स्त्रिया, समम् = साकम्, वानरेन्द्रपदवीमणिमौलिः—वानराणाम् = कपीनाम् इन्द्रः = सम्राट् तस्य पदवी = पदम् एव मणिमौलिः = मणिमयमुकुटः, अदीयत = दत्तः। वालिनं विनाश्य रामस्तारया साकं वानराधिराजपदवीं चापि सुग्रीवाय प्रदत्तवान्। अत्र सहोक्तिरलङ्कारः। स्वागता वृत्तम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—सः, रघुपतिः, बहुलपक्षशशी, इव, दिने दिने, कृशताम्, उपयाति। तु, अस्य, अनुभाववशंवदा, कुवलयप्रतिमद्युतिः, प्रविकसति ॥ ४२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हनूमान्—अयि देवि, आकर्णय तावद्यत्संदिष्टं देवेन देव्याः ।

हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिश्वासपवनः ।
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात्सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ॥ ४३ ॥

अपि च ।

कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं
को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम् ।
जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे
त्वामेवैतच्चिरमनुगतं तत्प्रिये किं करोमि ॥ ४४ ॥

(सीता लज्जते)

त्रिजटा—सखि, त्वमपि रघुपतेः किमपि संदेशं प्रत्यभिज्ञानं च समर्पय ।

सीता—अयं मे प्रति संदेशः ।

[इमो मे पडिसंदेसो ।]

बहलगलन्नयनजलनिर्झरपर्याकुलापि मम दृष्टिः ।
तव सुभग वदनशशधरलावण्यरसं पिपासति ॥ ४५ ॥
[बहलगलन्तणअणजलणिज्झरपज्जाउलावि मह दिट्ठी ।
तुह सुहअ वअणससहरलावण्णरसं पिपासेदि ॥]

बहुलपक्षेति । सः = त्वद्विरहव्याकुलः इत्यर्थः, रघुपतिः = रामचन्द्रः, बहुलपक्षशशी—बहुलपक्षस्य = कृष्णपक्षस्य शशी = चन्द्रः, इव=यथा, दिने दिने = प्रतिदिनमित्यर्थः, कृशताम् = दुर्बलताम्, उपयाति = उपगच्छति । तु = किन्तु, अस्य = रामचन्द्रस्येत्यर्थः, अनुभाववशंवदा—अनुभावस्य = प्रभावस्य ('अनुभावः प्रभावे च' इत्यमरः) वशंवदा = आश्रिता, कुवलयप्रतिमद्युतिः —कुवलस्य = नीलकमलस्य प्रतिमा= सदृशी द्युतिः = कान्तिः, प्रविकसति = वर्द्धते । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हिमांशुः, चण्डांशुः (इव); नवजलधरः, दावदहनः (इव); सरिद्वीचीवातः, कुपितफणिनिःश्वासपवनः (इव); नवा, मल्ली, भल्ली (इव); कुवलयवनम्, कुन्तगहनम् (इव, प्रतिभाति); हे सुमुखि, त्वद्विश्लेषात्, मम, इदम्, जगत्, विपरीतम्, (जातम्) ॥ ४३ ॥

सन्देशं वर्णयति—हिमांशुरिति । हिमांशुः = चन्द्रः, चण्डांशुः—चण्डाः = प्रचण्डाः, तीक्ष्णा इति यावत्, अंशवः = किरणाः यस्य सः तादृशः इव; नवजलधरः—नवीनजलभरितो मेघः, दावदहनः = वनाग्निः इव; सरिद्वीचीवातः—सरिताम् = नदीनाम् वीचीवातः = तरङ्गागतवायुः, कुपितफणिनिश्वासपवनः—कुपितः = क्रुद्धो यः फणिः = सर्पः तस्य निश्वासपवनः = श्वासवायुरिव, नवा = नवीना, मल्ली = मल्लिका, भल्ली = वक्रः स्वल्पः कुन्तः इव, कुवलयवनम्—कुवलयानाम् = नीलकमलानाम् वनम् = समवायः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
हनूमान्—देवि, अब महाराज (रामचन्द्र) ने देवी (आपके लिए) जो कुछ सन्देश दिया है (उसे) सुनें।

चन्द्र सूर्य (के समान), नवीन जलभरा बादल वनाग्नि (के समान), नदी के तरङ्गों को छू कर आयी हुई हवा क्रुद्ध सर्प के श्वास-वायु (की तरह), नयी निकली हुई मल्ली (वेली का फूल) बर्छी (के समान), नीले कमलों का वन भालों के जङ्गल (के समान मालूम पड़ता है)। हे चन्द्रवदने, तुम्हारे वियोग से मेरे लिए यह संसार उलटा (हो गया है) ॥ ४३ ॥

और भी—

इस दुःख को किससे कह कर आश्वस्त होऊँ ? हम दोनों के गुप्त प्रेम-तत्त्व को कौन जानता है ? हे चन्द्रवदने, (उस) अद्वितीय प्रेम-तत्त्व को मेरा मन जानता है। हे प्रिये, (किन्तु) यह (मेरा मन) बहुत दिन हो गये तुम्हारे ही पीछे चला गया। तो (मैं) क्या करूँ ? ॥ ४४ ॥

(सीता लज्जित होती है)

त्रिजटा—सखि, तुम भी रामचन्द्र के लिए किसी सन्देश तथा बदले में निशानी को भेजो।

सीता—यह मेरा प्रतिसन्देश (सन्देश के बदले में सन्देश) (है)—

हे सुन्दर, प्रचुर रूप से बहने वाली आँसुओं के निर्झर (झरना) से आकुल भी मेरी आँख आपके मुखचन्द्र के सौन्दर्य-रस की प्यासी है ॥ ४५ ॥

कुन्तगहनम् = भल्लवनम् इव प्रतिभातीति शेषः। किं बहुना हे सुमुखि = हे शोभनानने, त्वद्विश्लेषात् = त्वद्वियोगात्, मम = रामस्य, इदम् = एतत्, जगत् = संसारः, विपरीतम् = अन्यथागतम्, जातमिति शेषः। संयोगकाले सुखकारणानि वस्तूनि सति वियोगे सन्तापकारणानि जायन्ते। अतः सर्वं सुखकरं वियोगिनो रामस्य दुःखकरं जातमिति भावः। अत्र परिणामाऽलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—इमम्, व्यतिकरम्, कस्य, आख्याय, मुक्तदुःखः, भवेयम् ? आवयोः, उभयोः, निभृतम्, स्नेहसारम्, कः, जानीते ? (हे शशधरमुखि, तत्), एकम्, प्रेम-तत्त्वम्, मे, मनः, जानाति; हे प्रिये, एतत्, चिरम्, त्वाम्, एव, अनुगतम्, तत्, किम्, करोमि ॥ ४४ ॥

कस्याख्यायेति। इमम् = अमुम्, व्यतिकरम् = दुःखम्, कस्य = कस्यान्यस्येत्यर्थः, आख्याय = कथयित्वा, मुक्तदुःखः—मुक्तम् = किञ्चित्स्वल्पम् दुःखम् = कष्टम् यस्य सः तादृशः, भवेयम् = स्याम् ? "शोकक्षोभे हि हृदयं प्रलापैरेव धार्यते" इति भवभूतिनयेन। आवयोः उभयोः = आवयोः द्वयोः, निभृतम् = प्रच्छन्नम्, स्नेहसारम् = प्रेमतत्त्वम्, कः = कः अन्यो जनः, जानीते = वेत्ति ? न कोऽपि वेत्तीति भावः। हे शशधरमुखि = हे चन्द्रवदने, (तत् = तादृशम्), एकम् = अद्वितीयम्, प्रेमतत्त्वम् = स्नेहसारम्, मे = मम, मनः = चेतः, जानाति=वेत्ति; किन्तु, हे प्रिये = हे प्रेयसि, एतत् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(चूडारत्नमाकृष्य हनूमतः करे समर्पयन्ती) अयि चूडारत्न,
[अइ चूडारअण,]

अपि क्षालय निजमङ्गं रजनीकरदृष्टिपांसुपांसुलितम् ।
रघुपतिपदनिर्मलनखरजनिकरज्यौत्स्ननीरनिकरे ॥ ४६ ॥
[विच्छालअ णिअमङ्गं रअणीअरदिट्ठिपंसुपंसुलिअम् ।
रहुवइपअणिम्मलणहरअणीअरजौह्ननीरणिअरम्मि ॥]

हनूमान्—देवि, अनुजानीहि । त्वरयति मां रामचन्द्रचरणदर्शनोत्कण्ठा ।

सीता—(सवाष्पगद्गदम्) अय्यकारणस्निग्ध, प्रतिगते त्वयि पुनरपि को मम कथयिष्यति रघुनाथस्य प्रवृत्तिम् ।

[अइ अकारणसिणिद्ध, पडिगदे तुह्मि पुणोवि को मह कहिस्सदि रहुणाहस्स पउत्तिम् ।]

हनूमान्—अयि देवि, दिष्ट्या स्मारितोऽस्मि । नन्विदं ते संदिष्टं देवेन देव्याः ।

मा ताम्य तामरसपत्त्रविशालनेत्रे
विख्याप्यते पुनरपि त्वयि मत्प्रवृत्तिः ।
सौमित्रिकार्मुकगुणध्वनिभिर्गभीरै-
स्तैः किञ्च राक्षसवधूरुदितैरधीरैः ॥ ४७ ॥

(नेपथ्ये)

हत्वा कथञ्चिदपि राजकुमारमक्षं
रे वानरापसद कुत्र पलायितोऽसि ।
त्वां हन्तुमिच्छति दशाननशासनेन
दर्पोद्धता धृतधनुर्ननु मेघनादः ॥ ४८ ॥

मदीयं मनः, चिरम्=बहोः कालादेव, त्वाम्=भवतीं सीताम् , एव, अनुगतम्=अनुयातम् । तत्=तस्मात् , किं करोमि=किं विदधामि ? नैतज्ज्ञायते । अत्रोपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे सुभग, बहलगलन्नयनजलनिर्झरपर्याकुला, अपि, मम, दृष्टिः, तव, वदनशशधरलावण्यरसम् , पिपासति ॥ ४५ ॥

प्रतिसन्दिशति—बहलेति । हे सुभग=हे सुन्दरगात्र, बहलगलन्नयनजलनिर्झरपर्याकुला—बहलम्=अधिकं यथा स्यात्तथा, गलन्ति=निर्गच्छन्ति यानि नयनजलानि=अश्रूणि तेषां निर्झरैः=प्रवाहैः पर्याकुला=व्याप्ता, अपि, मम=सीतायाः, दृष्टिः=नेत्रम् , तव=भवतः, वदनशशधरलावण्यरसम्—वदनम्=मुखम् एव शशधरः=चन्द्रः तस्य लावण्यरसम्=सौन्दर्यामृतम् , पिपासति=सतृष्णा वर्तते । जलनिर्झरपर्याकुलाऽपि पिपासतीति विरोधाभासः । गाथा वृत्तम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—रजनीकरदृष्टिपांसुपांसुलितम् , निजम् , अङ्गम् , रघुपतिपदनिर्मलनखरजनिकरज्यौत्स्ननीरनिकरे, क्षालय, अपि ॥ ४६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(चूडारत्न को निकाल कर हनूमान् के हाथ में देती हुई) हे चूडारत्न, राक्षस (रावण) की दृष्टि रूप धूलि से मलिन अपने अङ्ग को रामचन्द्र के निर्मल नखरूप चन्द्रमा के चाँदनीरूप जलप्रवाह में धो लेना ॥ ४६ ॥

हनूमान्—देवि, (मुझे जाने की) आज्ञा दें। रामचन्द्र के चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा मुझे शीघ्रता करने के लिए प्रेरित कर रही है।

सीता—(आँसुओं से रुँधे हुए (गले के) साथ) हे अकारण कृपा करनेवाले, तुम्हारे लौट जाने पर फिर से मुझे रामचन्द्र के समाचार को कौन बतलायेगा ?

हनूमान्—हे देवि, सौभाग्य से याद दिला दिया गया हूँ। आप देवी के लिए महाराज (रामचन्द्र) के द्वारा यह भी सन्देश भेजा गया है।

हे कमलपत्र के समान विशाल नेत्रोंवाली (सीते), खेद मत करो ! गम्भीर, लक्ष्मण के धनुष की डोरी की ध्वनियों और धीरजरहित उन राक्षस की स्त्रियों के रुदनों के द्वारा फिर से तुम्हें मेरा समाचार कहा जायगा (अर्थात् शीघ्र ही राक्षसों का विनाश कर तुम्हारा उद्धार करूँगा) ॥ ४७ ॥

(पर्दे के पीछे)

रे दुष्ट वानर, राजकुमार अक्ष को जिस किसी तरह मार कर कहाँ भाग गये हो ? अरे, गर्व से उद्धत, धनुष धारण किये हुए मेघनाद, रावण की आज्ञा से, तुमको मारना चाहता है ॥ ४८ ॥

अपि क्षालयेति। रजनीकरदृष्टिपांसुपांसुलितम्—रजनीकरः = राक्षसः तस्य या दृष्टिः = नेत्रम् सैव पांसुः = धूलिः तेन पांसुलितम् = धूसरितम्, दूषितमित्यर्थः, निजम् = स्वकीयम्, अङ्गम् = अवयवम्, रघुपतिपदनिर्मलनखरजनिकरज्योत्स्ननीरनिकरे—रघुपतिः = रामः तस्य पदस्य = चरणस्य निर्मलः = स्वच्छः यो नखः = नखरः स एव रजनिकरः = चन्द्रः तस्य ज्योत्स्नम् = चन्द्रिकासम्बन्धि यत् नीरम् = जलम् तस्य निकरे = समूहे, क्षालय = पवित्रं कुरु। अत्र रूपकमलङ्कारः। गीतिर्वृत्तम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे तामरसपत्रविशालनेत्रे, मा ताम्य; गभीरैः, सौमित्रिकार्मुकगुणध्वनिभिः; किञ्च, अधीरैः, तैः, राक्षसवधूरुदितैः, पुनः, अपि, त्वयि, मत्प्रवृत्तिः, विख्याप्यते ॥ ४७ ॥

रामस्यापरं सन्देशमाह—मा ताम्येति। हे तामरसपत्रविशालनेत्रे—तामरसस्य = कमलस्य पत्रे इव = दले इव विशाले = दीर्घे नेत्रे = लोचने यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, मा ताम्य = खेदं मा कुरु। गभीरैः = गम्भीरैः, सौमित्रिकार्मुकगुणध्वनिभिः—सौमित्रेः = लक्ष्मणस्य कार्मुकम् = धनुः तस्य गुणध्वनिभिः = प्रत्यञ्चाशब्दैः, किञ्च = तथा, अधीरैः = विगलितधैर्यैः, तैः = भविष्यद्भिः, राक्षसवधूरुदितैः—राक्षसवधूनाम् = राक्षसपत्नीनाम् रुदितैः = रोदनैः, पुनरपि = मुहुरपि, त्वयि = भवति, भवत्याः सविधे इत्यर्थः मत्प्रवृत्तिः = मम समाचारः; विख्याप्यते = प्रस्तूयते, सूचयिष्यसे इति यावत्। अत्र पर्यायोक्तमलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—रे वानरापसद, राजकुमारम्, अक्षम्, कथञ्चिदपि, हत्वा, कुत्र, पलायितः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हनूमान्—देवि, कृतकार्योऽस्मि । तदलमतः परमात्मापलापेन । तदिदं प्रणम्यसे आपृच्छयसे च ।

सीता—अये पवननन्दन, अनायासेनेमं दुर्निशाचरसागरमतिक्रमस्व ।

[अए पवणणन्दण, अणाआसेण इमं दुण्णिसाअरसाअरं अदिक्कमेहि ।]

हनूमान्—अयं मूर्ध्नि गृहीतो देव्याः प्रसादः । (इति निष्क्रान्तः)

सीता—हला त्रिजटे, खेचरीभूत्वा प्रेक्षस्व तावदस्य वृत्तान्तम् ।

[हला तिअडे, खेअरी भविअ पेक्ख दाव इमस्स उत्तन्तम् ।]

त्रिजटा—तथा । (इति निष्क्रान्ता)

(नेपथ्ये)

वाणौघानेष वीरः कलयति च रुषा मेघनादेन मुक्तान्

(सर्वे हर्षं नाटयन्ति)

(पुनर्नेपथ्ये)

बद्धोऽयं राक्षसेन ज्वलदनलशिखादीप्तपुच्छः कृतश्च ।

(सर्वे विषादं नाटयन्ति)

(पुनर्नेपथ्ये)

क्रामन्नट्टालिकानामुपरि कृतपदो दन्दहीत्येष लङ्कां

(सर्वे हर्षविषादौ नाटयन्ति)

(पुनर्नेपथ्ये)

अक्लान्तोऽयं पयोधेः पयसि शमयति स्वाङ्गलग्नं कृशानुम् ॥ ४९ ॥

(सर्वे हर्षं नाटयन्ति)

(पुनर्नेपथ्ये)

असि ? ननु, दर्पोद्धतः, धृतधनुः, मेघनादः, दशाननशासनेन, त्वाम्, हन्तुम्, इच्छति ॥ ४८ ॥

हनूमन्तमन्विष्यतां राक्षसानां नेपथ्यवचनम्—हत्वेति । रे वानरापसद—वानरेषु= कपिषु अपसदः = नीचः तत्सम्बुद्धौ, राजकुमारम् = राजपुत्रम्, अक्षम् = अक्षनामानं रावणपुत्रम्, कथञ्चिदपि = येन केनाऽपि रूपेण, हत्वा = विनाश्य, कुत्र = कस्मिन् स्थाने, पलायितः = पलायनं कृत्वा गतः, असि ? ननु = रे, दर्पोद्धतः—दर्पेण = अभिमानेन उद्धतः = उद्दण्डः, धृतधनुः—धृतम् = गृहीतम् धनुः = कोदण्डः येन सः, मेघनादः = इन्द्रजेता रावणात्मजः, दशाननशासनेन—दशाननस्य = रावणस्य शासनेन = आज्ञया, त्वाम् = त्वां दुष्टं वानरमित्यर्थः, हन्तुम् = विनाशयितुम्, इच्छति—वाञ्छति । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४८ ॥

हनूमानिति । आत्मापलापेन—आत्मनः = स्वस्य अपलापेन = गोपनेन ॥

अन्वयः—एषः, वीरः, मेघनादेन, रुषा, मुक्तान्, वाणौघान्, कलयति; राक्षसेन, अयम्, बद्धः; च, ज्वलदनलशिखादीप्तपुच्छः, कृतः; अट्टालिकानाम्, उपरि, कृतपदः, क्रामन्, एषः, लङ्काम्, दन्दहीति; अक्लान्तः, अयम्, पयोधेः, पयसि, स्वाङ्गलग्नम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हनूमान्—देवि, कार्य कर चुका हूँ। तो इसके बाद अपने को छिपाना व्यर्थ है। अतः (तुम) अब प्रणाम की जा रही हो तथा आज्ञा देने के लिए प्रार्थित भी हो रही हो (अर्थात् मैं आपको प्रणाम कर रहा हूँ तथा आपसे आज्ञा की माँग कर रहा हूँ)।

सीता—हे पवनकुमार, विना परिश्रम के ही दुष्ट राक्षसों के इस सागर को पार कर जाओ।

हनूमान्—देवी का यह अनुग्रह (पूर्ण आशीर्वाद) मस्तक पर धारण कर लिया गया। (ऐसा कह कर निकल गये)।

सीता—सखि त्रिजटे, आकाशचारिणी होकर इस (पवनकुमार) के वृत्तान्त को देखो।

त्रिजटा—जैसी आज्ञा। (इस प्रकार निकल गयी)।

(फिर पर्दे के पीछे)

यह वीर मेघनाद के द्वारा क्रोधपूर्वक छोड़े गये बाण-समूहों को सहन कर रहा है।

(सभी प्रसन्नता का अभिनय करते हैं)

(फिर पर्दे के पीछे)

राक्षस (मेघनाद) के द्वारा यह बाँध लिया गया और जलती हुई आग की लपटों से (इसकी) पूँछ में आग लगा दी गयी।

(सभी शोक का अभिनय करते हैं)

(फिर पर्दे के पीछे)

अटारियों के ऊपर पैरों को रख कर (चारों ओर) घूमता हुआ यह लङ्का को चारों ओर से जला रहा है।

(सभी लोग हर्ष तथा विषाद का अभिनय करते हैं)

(फिर पर्दे के पीछे)

विना किसी थकान के यह (वीर) सागर के जल में अपने अङ्ग में लगी आग को बुझा रहा है ॥ ४९ ॥

(सभी लोग प्रसन्नता का अभिनय करते हैं)

(फिर पर्दे के पीछे)

कृशानुम्, शमयति ॥ ४९ ॥

खेचरीभूता त्रिजटा हनूमतश्चरितं वर्णयन्त्याह—बाणौघानिति। एषः = अयम्, वीरः = शूरः, मेघनादेन = मेघनादनाम्ना रावणतनयेन, रुषा = क्रोधेन, मुक्तान् = क्षिप्तान्, बाणौघान् = शरसमूहान्, कलयति = सहते। राक्षसेन = निशाचरेण मेघनादेन, अयम् = एष कपिर्वीरः, बद्धः = संयमितः, ब्रह्मास्त्रेण बद्धः इति भावः, च = तथा, ज्वलदनलशिखादीप्तपुच्छः—ज्वलन् = दीप्यमानः यः अनलः = अग्निः तस्य शिखाभिः = ज्वालाभिः दीप्तम् = प्रज्वालितम् पुच्छम् = लाङ्गूलम् ('पुच्छोऽस्त्री लूमलाङ्गूले' इत्य-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अहो आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

वेलाद्रेरस्य हेलाक्रमणपरिणतस्तुङ्गमाक्रम्य शृङ्गं
मौलिं पूर्वाचलस्य द्युमणिरिव नभो लङ्घयत्यम्बुराशिम्
वेगप्रोद्भूतवातप्रतिहतसलिलोन्मुक्तगम्भीरगर्भ-
व्यक्तीभूतोरगेन्द्रस्तुतिशतविकसत्कीर्तिहारो हनूमान् ॥ ५० ॥

सीता—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) हला त्रिजटे, अवतीर्णासि महीतलम् । तत्प्रियं-वदायास्तवालिङ्गयाम्यङ्गानि ।

[हला तिअडे, अवतिण्णासि महीअलम् । ता पिअंवदाए तुह आलिङ्गेमि अङ्गाइं ।]

(इति निष्क्रान्ता)

रामः—प्रिये, मामपि प्रतीक्षस्व ।

लक्ष्मणः—आर्य, किमिदं लङ्कावृत्तान्तानुसारिणि विद्याधरप्रणीते महेन्द्रजाले पुनः संभ्रम्यते ।

रामः—तर्हि दिष्ट्यास्माभिर्निजविक्रमकथापराङ्मुखस्यापि हनूमतश्चरितरहस्यमाकलितम् ।

(नेपथ्ये)

अये रघुनाथ, अयमसौ

दर्पोद्धतं दधिमुखं तरसा निपीड्य
पीत्वा चिरं मधुवने स्वरसं मधूनि ।
द्रष्टुं समेति भवतः पदपद्मलीलां
नीलाङ्गदप्रभृतिभिः सहितो हनूमान् ॥ ५१ ॥

मरः) यस्य स तादृशः, कृतः = सम्पादितः । अट्टालिकानाम् = सौधशिखराणाम्, उपरि = ऊर्ध्वभागे, कृतपदः = संस्थापितचरणः, क्रामन् = चरणविन्यासं कुर्वन्, एषः = अयम्, लङ्काम् = रावणपुरीम्, दन्दहीति = पुनः पुनः दहति । अक्लान्तः = अश्रान्तः, अयम् = एषः, पयोधेः = सागरस्य, पयसि = जले, स्वाङ्गलग्नम् = स्वपुच्छप्रज्वलितम्, कृशानुम् = अग्निम्, शमयति = निर्वापयति । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—द्युमणिः, पूर्वाचलस्य, मौलिम्, आक्रम्य, नभः, इव, हेलाक्रमणपरिणतः, हनूमान्, अस्य, वेलाद्रेः, तुङ्गम्, शृङ्गम्, (आक्रम्य), वेगप्रोद्भूतवातप्रतिहतसलिलोन्मुक्तगम्भीरगर्भव्यक्तीभूतोरगेन्द्रस्तुतिशतविकसत्कीर्तिहारः, (सन्), अम्बुराशिम्, लङ्घयति ॥ ५० ॥

वेलाद्रेरिति । द्युमणिः = सूर्यः, पूर्वाचलस्य = उदयगिरेः, मौलिम् = शृङ्गम्, आक्रम्य = आरुह्य, नभः = आकाशम्, इव = यथा, यथा सूर्यः उदयाचलमारुह्य नभो लङ्घयति तथैवेत्यर्थः, हेलाक्रमणपरिणतः—हेलया = खेलया यत् क्रमणम् = लङ्घनम् तदर्थं परिणतः = वृद्धिङ्गतः, हनूमान् = वायुपुत्रः, अस्य = एतस्य, वेलाद्रेः = समुद्रतटपर्वतस्य,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
अहो ! आश्चर्य है, आश्चर्य है।

सूर्य उदयाचल की चोटी पर चढ़ कर जैसे आकाश को (लाँघते हैं उसी तरह) आसानी से (सागर को) लाँघने के लिए विशाल रूपधारी हनूमान् इस त्रिकूट पर्वत की अत्यन्त ऊँची चोटी पर (चढ़ कर) वेग के कारण उत्पन्न वायु से ताडित जल के द्वारा खाली की गयी गहरी (सागर की) तलहटी में दिखलाई पड़नेवाले शेषनाग की सैकड़ों स्तुतियों से सुशोभित कीर्तिरूपी हारवाले (होकर) सागर को लाँघ रहे हैं ॥ ५० ॥

सीता—(पर्दे की ओर देख कर) सखि त्रिजटे, भूतल पर उतर आयी हो ? तो प्रिय समाचार देनेवाली तुम्हारे अङ्गों का (मैं) आलिङ्गन करूँ।

राम—प्रिये, मेरी भी प्रतीक्षा करो।

लक्ष्मण—आर्य, लङ्का के वृत्तान्त को प्रदर्शित करनेवाले विद्याधर के द्वारा प्रदर्शित इन्द्रजाल में फिर क्यों इस तरह भ्रान्त हो रहे हैं ?

राम—तो सौभाग्य से हम लोगों के द्वारा अपने पराक्रम को न कहनेवाले हनुमान् के चरित के रहस्य को भी ज्ञात कर लिया गया।

(पर्दे के पीछे)

हे रघुनाथ, अभी यह—

नील, अङ्गद आदि के सहित हनुमान् गर्व के कारण उद्दण्ड दधिमुख को वेग से मर्दित कर, मधुवन में यथेच्छ देर तक मधु (मीठे-मीठे फलों का रस) पीकर आपके चरणकमल की लीला देखने के लिए आ रहे हैं ॥ ५१ ॥

त्रिकूटस्येत्यर्थः, तुङ्गम् = उन्नतम, शृङ्गम् = शिखरम्, (आक्रम्य), वेगप्रोद्भूतवाते-त्यादिः—वेगेन = अतितीव्रोत्पतनेन प्रोद्भूतः = उत्पन्नः यो वातः = वायुः तेन प्रति-हतम् = ताडितम् यत् सलिलम् = सागरजलम् तेन उन्मुक्तः = रिक्तीकृतः गम्भीरः यः गर्भः = आभ्यन्तरभागः तत्र व्यक्तीभूतः = दृष्टः यः उरगेन्द्रः = शेषः तस्य स्तुतिशतेन = प्रशंसाशतेन विकसन्ती = प्रकाशमाना या कीर्तिः = यशः सैव हारः = दाम यस्य स तथा-भूतः, सन्, अम्बुराशिम् = सागरम्, लङ्घयति = अतिक्रामति। उपमोत्प्रेक्षयोः सङ्करा-लङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ५० ॥

राम इति। निजविक्रमकथापराङ्मुखस्य—निजस्य = स्वस्य विक्रमस्य = पराक्रमस्य कथा = कथनम् तत्र पराङ्मुखस्य = विपरीतस्य। आकलितम्=ज्ञातम् ॥

अन्वयः—नीलाङ्गदप्रभृतिभिः, सहितः, हनूमान्, दर्पोद्धतम्, दधिमुखम्, तरसा, निपीड्य, मधुवने, स्वरसम्, चिरम्, मधूनि, पीत्वा, भवतः, पदपद्मलीलाम्, द्रष्टुम्, समेति ॥ ५१ ॥

दर्पोद्धतमिति। नीलाङ्गदप्रभृतिभिः = नीलाङ्गदादिभिः, सहितः = युक्तः, हनू-मान् = वायुपुत्रः, दर्पोद्धतम्—दर्पेण = गर्वेण उद्धतम्=उद्दण्डम्, दधिमुखम् = दधिमुख-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—वत्स, आकर्णितम् । तदागच्छ । कृतकार्यं हनूमन्तं प्रत्युद्गच्छावः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

नामानमुद्यानरक्षकं कपिम्, तरसा = वेगेन, ('रंहस्तरसी तु रयः स्यदः जवः' इत्यमरः), निपीड्य = अत्यर्थं पीडयित्वा, मधुवने = मधुवनाख्ये फलसम्भरिते वने, स्वरसम् = यथेच्छम्, चिरम् = बहुकालम्, मधूनि = फलरसान्, पीत्वा—आचम्य, भवतः = श्रीमतस्तव, पदकमललीलाम्=चरणकमलचरितम्, द्रष्टुम् = अवलोकयितुम्, समेति = समागच्छति । अत्रोपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५१ ॥

राम इति । आकर्णितम् = श्रुतम् । कृतकार्यम्—कृतम् = सम्पादितम् कार्यं येन तम् । प्रत्युद्गच्छावः = प्रत्युद्गतं कुर्वः ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां प्रसन्नराघवव्याख्यायां रमाख्यायां षष्ठोऽङ्कः ॥

———

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—वत्स, सुन लिया। अतः आओ कार्य सम्पन्न किये हुए हनूमान् की अगवानी करें।

(इस प्रकार सभी निकल गये)

॥ षष्ठ अङ्क समाप्त ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पुलस्त्यशिष्यः)

पुलस्त्यशिष्यः—(परितो विलोक्य) अपरिशीलितलङ्कानिवेशोऽस्मि । तत्कथं पृच्छामि तस्य भवनम् । (पुनर्विलोक्य) कथमयं लङ्केश्वरमहामन्त्रिणो माल्यवतः परिचारकः करालकः । (उच्चैः) सखे करालक, इत इतः ।

(प्रविश्य)

करालकः—मुने, प्रणम्यसे ।

मुनिः—समीहितं लभस्व । कथय तावन्मे विभीषणस्य भवनम् ।

करालकः—किं तत्र ।

मुनिः—आदिष्टोऽस्मि भगवता पुलस्त्येन कमपि संदेशमुपनेतुं पौत्रस्य ।

करालकः—न तावदिदानीमिह विभीषणः ।

मुनिः—कथय किमेतत् ।

करालकः—एकदाभिप्रणमतो विभीषणस्य करात्सकौतुकं लिखिताक्षरपङ्क्तिपत्रमेकं गृहीतं लङ्केश्वरेण वाचितं च—

उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते ।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ॥ १ ॥

मुनिः—अहो, प्रभुविज्ञप्तिचातुरी विभीषणस्य ।

करालकः—ततो विहस्यैवं लङ्केश्वरेणोक्तम्—'नूनं केनापि भीरुणा भाषितमेतत् । ख्यातं हि यत्किल

परस्त्रीकुचकुम्भेषु कुम्भेषु परदन्तिनाम् ।
निपतन्ति न भीरूणां दृष्टयः शरवृष्टयः ॥ २ ॥

अन्वयः—उदर्कभूतिम्, इच्छद्भिः, सद्भिः, परस्त्रीभालपट्टिका, चतुर्थीचन्द्रलेखा, इव, खलु, न, दृश्यते ॥ १ ॥

उदर्केति—उदर्कभूतिम्—उदर्के = उत्तरे फले ('उदर्कः फलमुत्तरम्' इत्यमरः) परिणामे इति यावत्, भूतिम् = ऐश्वर्यम्, इच्छद्भिः = वाञ्छद्भिः, सद्भिः = सज्जनैः, परस्त्रीभालपट्टिका—परेषाम् = अन्येषाम् स्त्रियः = वनिताः तासां भालपट्टिका = ललाटतटी, चतुर्थीचन्द्रलेखा = भाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रकला इव=यथा, खल्विति निश्चये, न = नहि, दृश्यते = अवलोक्यते । सज्जनाः परस्त्रीमुखावलोकनं चतुर्थीचन्द्रदर्शनमिव परिहरन्तीति भावः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—परस्त्रीकुचकुम्भेषु, परदन्तिनाम्, कुम्भेषु, भीरूणाम्, दृष्टयः, (तथा), शरवृष्टयः, न, निपतन्ति ॥ २ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सप्तम अङ्क

(तदनन्तर पुलस्त्य शिष्य प्रवेश करता है)

पुलस्त्यशिष्य--(चारों ओर देख कर) यहाँ के स्थानों के बारे में (मैं) अपरिचित हूँ। तो किस तरह उनका घर पूछूँ ? (फिर देख कर) क्या यह लङ्केश्वर के महामन्त्री माल्यवान् का सेवक करालक (है) ? (जोर से) मित्र करालक, इधर, इधर (आइये)।

(प्रवेश करके)

करालक—मुनि आपको प्रणाम कर रहा हूँ।

मुनि—मनचाही (वस्तु) पाओ। अच्छा, मुझे विभीषण का घर बतलाओ।

करालक—वहाँ क्या (है) ?

मुनि—भगवान् पुलस्त्य के द्वारा (उनके) पौत्र (विभीषण) को कुछ सन्देश पहुँचाने के लिए मुझे आज्ञा दी गयी है।

करालक—तो सम्प्रति यहाँ (लङ्का में) विभीषण नहीं है।

मुनि—बतलाओ, यह क्या (बात है) ?

करालक—एक समय प्रणाम करते हुए विभीषण के हाथ से लिखी गयी हैं अक्षर की पंक्तियाँ जिसमें ऐसा एक पत्र रावण ने पाया और बड़ी उत्कण्ठा के साथ पढ़ा भी—

भविष्य में कल्याण की कामना करनेवाले सज्जनों के द्वारा दूसरे की स्त्री का ललाट-पट्ट, चौथ के चन्द्रमा की कला की तरह, निश्चय ही नहीं देखा जाता ॥ १ ॥

मुनि—प्रभु (मालिक) को (अच्छी बात) सूचित करने की विभीषण की चतुरता प्रशंसनीय है।

करालक—तदनन्तर हँस कर लङ्केश्वर ने यह कहा—'निश्चय ही यह (बात) किसी डरपोक व्यक्ति के द्वारा कही गयी है। क्योंकि यह प्रसिद्ध ही है—

परनारियों के विशाल स्तनों पर और शत्रुओं के हाथियों के गण्डस्थलों पर डरपोक व्यक्तियों की दृष्टियाँ तथा बाणों की वृष्टियाँ (बौछारें) नहीं पड़ती हैं ॥ २ ॥

परस्त्रीति । परस्त्रीकुचकुम्भेषु—परस्त्रीणाम् = अन्यललनानाम् कुचकुम्भेषु = स्तनकलशेषु, परदन्तिनाम्—परेषाम् = शत्रूणाम् दन्तिनाम् = गजानाम्, कुम्भेषु = गण्डस्थलेषु, भीरूणाम् = कापुरुषाणाम्, दृष्टयः = नेत्राणि, तथा, शरवृष्टयः—शराणाम् = बाणानाम् वृष्टयः = वर्षणानि, न निपतन्ति = न पतन्ति। भीरवः एव परस्त्रीकुचकुम्भान् अवलोकयितुं तथा शत्रुगन्धगजकपोलान् भेत्तुं नोत्सहन्ते न तु मादृशाः वीरा इति भावः। यथासंख्यमलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मुनिः—अहो, निजचित्तवृत्तिभित्तिभूमिकानुसारीणि वाक्चित्राणि लोकस्य।

करालकः—ततः सप्रणयकोपविषादमिदमाह लङ्केश्वरं विभीषणः—

यस्य त्र्यम्बकमौलिखेलदमलस्वर्लोककल्लोलिनी—
लीलालङ्घनलम्पटेन यशसा दिग्भित्तयः क्षालिताः।
सोऽपि त्वं जनकाधिराजतनयाबद्धाभिलाषः कथं
हा जातोऽसि पुलस्त्यसंततियशःशीतद्युतेर्लाञ्छनम् ॥ ३॥

मुनिः—(सकौतुकम्) ततस्ततः।

करालकः—ततश्च।

कोपपाटलितलोलदृष्टिना किञ्चिदुन्नमितखड्गयष्टिना।
रावणेन नयधर्मभूषणस्ताडितो हृदि पदा विभीषणः॥ ४॥

मुनिः—हन्त, नूनं

लङ्केश्वरेण दुष्टेन नयधर्मविभूषणः।
विभीषणश्च न परं विभवोऽपि पदा हतः॥ ५॥

ततस्ततः।

करालकः—ततः कतिपयपरिवारेण विभीषणेन लङ्केश्वरं विहाय राम एव समाश्रितः।

मुनिरिति। निजचित्रवृत्तिभित्तिभूमिकानुसारीणि--निजा = स्वकीया या चित्रवृत्तिः = मनोव्यापारः सैव भित्तिर्भूमिका = कुड्यस्थलम् आधारशिलेति यावत् तदनुसारीणि=तदनुकूलानि, वाक्चित्राणि—वाचः = वाण्यः एव चित्राणि = प्रतिमाः॥

अन्वयः—हा ! यस्य, त्र्यम्बकमौलिखेलदमलस्वर्लोककल्लोलिनीलीलालङ्घनलम्पटेन, यशसा, दिग्भित्तयः, क्षालिताः, सः, अपि, त्वम्, जनकाधिराजतनयाबद्धाभिलाषः, (सन्), कथम्, पुलस्त्यसन्ततियशःशीतद्युतेः, लाञ्छनम्, जातः, असि॥ ३॥

यस्येति। हा इति खेदद्योतकमव्ययपदम्, यस्य = यस्य तवेत्यर्थः, त्र्यम्बकमौलीत्यादिः—त्रीणि अम्बकानि = नेत्राणि यस्य स त्र्यम्बकः = शङ्करः तस्य मौलौ = मस्तके खेलन्ती = क्रीडन्ती अमला=स्वच्छा या स्वर्लोककल्लोलिनी = वियद्गङ्गा तस्याः लीलया = अनायासेन यत् लङ्घनम्=अतिक्रमणम् तस्मिन् लम्पटेन—कामुकेन, पटुनेत्यर्थः, यशसा = कीर्त्या, दिग्भित्तयः = दिगन्ताः इत्यर्थः, क्षालिताः = धौताः, व्याप्ता इति यावत्; सोऽपि = तादृशः भूत्वाऽपीति, त्वम् = भवान्, जनकाधिराजतनयाबद्धाभिलाषः—जनकाधिराजस्य = विदेहस्य या तनया = पुत्री तस्यां बद्धा = कृता अभिलाषा = तृष्णा येन तादृशः, सन्, कथम् = केन प्रकारेण, पुलस्त्यसन्ततियशःशीतद्युतेः—पुलस्त्यस्य = पुलस्त्यमहर्षेः सन्ततिः=वंशः तस्य यशः=कीर्तिः एव शीतद्युतिः = चन्द्रः तस्य, लाञ्छनम्= कलङ्कः, जातः = सम्पन्नः, असि। अत्र पर्यायोक्तरूपकयोः संसृष्टिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ३॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मुनि—वाह ! लोगों के वाक्यरूप चित्र अपने चित्तवृत्तिरूपी भीत (दीवाल) की भूमि का अनुसरण करनेवाले होते हैं (जैसी दीवाल वैसा चित्र अर्थात् लोगों की बातें उनके मनोभावों की परिचायिका हुआ करती हैं)।

करालक—तदनन्तर प्रेम, क्रोध और खेद के साथ विभीषण ने रावण से यह कहा—

हाय ! शङ्कर के मस्तक पर क्रीडा करनेवाली निर्मल आकाश गङ्गा को अनायास ही लाँघने के आदी जिसके यश के द्वारा दिशाओं की दिवारें (अर्थात् दिगन्त) प्रक्षालित कर दी गयी हैं, ऐसे होकर भी तुम जानकी के विषय में लालायित होकर कैसे पुलस्त्य के कुल के यशरूप चन्द्रमा के कलङ्क हो गये हो ॥ ३ ॥

मुनि—(उत्कण्ठा के साथ) उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

करालक—तब—

क्रोध के कारण लाल और चञ्चल नेत्रवाले तथा थोड़ा उठाये हुए तलवारवाले रावण के द्वारा नीति एवं धर्म रूप अलङ्कारों से विभूषित विभीषण छाती में पैर से मारा गया ॥ ४ ॥

मुनि—खेद है । निश्चय ही—

दुष्ट रावण के द्वारा नीति एवं धर्म रूप अलङ्कारों से विभूषित विभीषण ही नहीं अपितु ऐश्वर्य भी पैर से मारे गये ॥ ५ ॥

उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

करालक—उसके बाद विभीषण ने कुछ पारिवारिक जनों के साथ रावण को छोड़ कर राम का ही आश्रयण लिया ।

अन्वयः—कोपपाटलितलोलदृष्टिना, किञ्चिदुन्नमितखड्गयष्टिना, रावणेन, नयधर्मभूषणः, विभीषणः, हृदि, पदा, ताडितः ॥ ४ ॥

कोपपाटलितेति । कोपेन = क्रोधेन पाटलिते = रक्तवर्णे लोले = चञ्चले दृष्टी = लोचने यस्य स तेन, किञ्चिदुन्नमितखड्गयष्टिना—किञ्चित् = स्वल्पम् उन्नमिता = उर्ध्वीकृता खड्गयष्टिः = करवाललता येन सः तादृशेन, रावणेन = लङ्काधिराजेन, नयधर्मभूषणः—नयः = नीतिः धर्मः = सनातनी मर्यादा तौ भूषणम् = अलङ्करणम् यस्य सः, विभीषणः = रावणानुजः, हृदि = वक्षःस्थले, पदा = चरणेन, ताडितः=प्रहृतः । खड्गयष्टिनेत्यत्राऽऽभासरूपकालङ्कारः । रथोद्धता वृत्तम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—दुष्टेन, लङ्केश्वरेण, नयधर्मविभूषणः, विभीषणः, च, न, परम्, विभवः, अपि, पदा, हतः ॥ ५ ॥

लङ्केश्वरेणेति । दुष्टेन = नीचेन, लङ्केश्वरेण = रावणेन, नयधर्मविभूषणः—नयधर्मौ = नीतिसनातनमर्यादे विभूषणे = आभूषणे यस्य स तादृशः, विभीषणः = रावणानुजः, च = एव, न = नहि; परम् = किन्तु, विभवः = ऐश्वर्यम् , अपि, पदा = चरणेन, हतः = ताडितः । धार्मिकस्य विभीषणस्यापमानेन नूनमैश्वर्यमपि तिरस्कृतं स्वकीयं रावणेनेति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मुनिः—(स्वगतम्) अनुष्ठितं तर्हि पुलस्त्यसंदेशरहस्यं विभीषणेन । (प्रकाशम्) भवान्पुनः किमधुना कर्तुकामः ।

करालकः—अहमादिष्टोऽस्मि माल्यवता जानकीविरहविह्वलहृदयस्य लङ्केश्वरस्य मनोविनोदनाय केनापि चित्रकारेण विरचितं चित्रमिदं दृग्गोचरीकरणीयमिति ।

मुनिः—(विहस्य) कथमित्थमासन्नशत्रौ लङ्केश्वरे तादृशस्य महामन्त्रिणो माल्यवत एवमुपचरितुमुचितम् । तन्नूनं प्रस्तुतोचितमेव किमप्येतद्भविष्यति ।

(नेपथ्ये)

रे रे चन्दनमिन्दुमण्डलशिलापट्टे समुद्घृष्यतां
रे रे चामरमुज्ज्वलैः शशिकरैः श्वेतं विनिर्मीयताम् ।
रे रे बालमृणालतन्तुलतिकासूत्रेण पाथोजिनी-
पत्रस्थैरुदबिन्दुभिर्मणिमयो हारः समासूत्र्यताम् ॥ ६ ॥

मुनिः—(सोपहासमात्मगतम्) यादृशोऽयं शीतोपचारस्तादृश एव सीतोपचारो लङ्केश्वरस्य भविष्यतीति । (प्रकाशम्) कथमिदं विरहततस्य दशकंधरस्य शीतोपचारार्थमादिश्यन्ते निशाचराः ।

करालकः—खेचराश्च । इदानीं हि

अङ्गं लिम्पति चन्दनेन मृदुभिः शीतद्युतिः स्वैः करैः
किञ्चिच्चञ्चलनालवृन्तकलनव्यग्रो वसन्तानिलः ।
किञ्चायं नलिनीदलैर्वितनुते तल्पं प्रतीचीपति-
र्देवैरित्थमनङ्गतप्तहृदयो लङ्केश्वरः सेव्यते ॥ ७ ॥

करालक इति । जानकीविरहविह्वलहृदयस्य—जानक्याः = सीतायाः विरहे = वियोगे विह्वलम्=आतुरम् हृदयम् = चेतः यस्य तस्य ॥

अन्वयः—रे रे, इन्दुमण्डलशिलापट्टे, चन्दनम्, समुद्घृष्यताम् ; रे रे, उज्ज्वलैः, शशिकरैः, श्वेतम्, चामरम्, विनिर्मीयताम् ; रे रे, बालमृणालतन्तुलतिकासूत्रेण, पाथोजिनीपत्रस्थैः, उदबिन्दुभिः, मणिमयः, हारः, समासूत्र्यताम् ॥ ६ ॥

रे रे चन्दनमिति । रे रे इति हीनान् परिचारकान् प्रति सम्बोधनपदम्, इन्दुमण्डलशिलापट्टे—इन्दुमण्डलम् = चन्द्रबिम्बम् एव शिलापट्टम् = प्रस्तरखण्डः तस्मिन्, चन्दनम् = मलयजम्, समुद्घृष्यताम् = सम्मृद्यताम्, युष्माभिरिति सर्वत्रोह्यम् । रे रे, उज्ज्वलैः = धवलैः, शशिकरैः = चन्द्रकिरणैः, श्वेतम् = धवलम्, चामरम् = प्रकीर्णकम्, विनिर्मीयताम् = विरच्यताम्, वीजनार्थमिति शेषः । रे रे, बालमृणालतन्तुलतिकासूत्रेण—बालम् = अचिरोत्पन्नम् यत् मृणालम् = कमलमूलम् तस्य तन्तुलतिका = सूत्रप्रततिः एव सूत्रम् = तन्तुस्तेन, पाथोजिनीपत्रस्थैः—कमललतापत्रस्थितैः, उदबिन्दुभिः = जलबिन्दुभिः, मणिमयः = मणिनिर्मितः हारः = माला, समासूत्र्यताम् = ग्रथ्यताम् । सर्वमसम्भावनीयमेवादिशतीति ध्येयम् । अत्र रूपकमलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मुनि—(अपने आप) तब तो पुलस्त्य के सन्देश के रहस्य को विभीषण ने कर डाला। (प्रकट रूप से) अच्छा, आप सम्प्रति क्या करना चाहते हैं ?

कराल्क—माल्यवान् के द्वारा मुझे आज्ञा दी गयी है—जानकी के विरह से विह्वल हृदयवाले रावण के मनबहलाव के लिए किसी चित्रकार के द्वारा बनाये गये इस चित्र को दिखलाने के लिए।

मुनि—(जोर से हँस कर)

इस प्रकार समीप में ही स्थित शत्रुवाले रावण के विषय में उस तरह (अत्यन्त बुद्धिमान्) महामन्त्री माल्यवान् के लिए इस प्रकार उपचार की व्यवस्था करना क्या उचित है ? तो निश्चय ही यह कुछ प्रसङ्गानुकूल ही होगा ॥

(पर्दे के पीछे)

रे रे (परिचारकों), चन्द्रबिम्बरूप पाषाणखण्ड पर चन्दन घिसा जाय। रे रे, सफेद चन्द्रकिरणों से श्वेत चामर बनाया जाय। रे रे, अत्यन्त कोमल (नूतन) भिसाड़ (कमल की जड़) की सूत्रलता के सूत से कमललता के पत्ते पर स्थित जल की बूँदों से मणिमय हार गूँथा जाय ॥ ६ ॥

मुनिः—(उपहास के साथ अपने आप ही) जैसा (असम्भव) यह शीतोपचार (काम की गर्मी को शान्त करने का उपचार) है वैसा ही रावण का सीता विषयक उपचार (अर्थात् सीता को प्राप्त करने का उद्यम) भी होगा। (प्रकट रूप से) क्या विरह से सन्तप्त रावण के शीतोपचार के लिए निशाचरों को आदेश दिया जा रहा है ?

कराल्क—आकाशचारी (देव) भी (आदेश दिये जा रहे हैं)। सम्प्रति तो—

चन्द्रमा कोमल अपनी किरणों के द्वारा (अथवा अपने हाथों के द्वारा) चन्दन से अङ्ग में लेप कर रहे हैं। वसन्त वायु धीरे धीरे हिलनेवाले पङ्खा को डुलाने में व्यस्त (है)। और यह वरुण कमललता के पत्तों से शय्या बना रहे हैं। इस तरह काम से पीड़ित हृदयवाला रावण देवताओं के द्वारा सेवा किया जा रहा है ॥ ७ ॥

मुनिरिति। यथा शशिकरैश्चामरनिर्माणादिकं सर्वमसम्भाव्यं तथैवास्य सीतार्थमायासोऽपि भविष्यतीति भावः ॥

अन्वयः—शीतद्युतिः, मृदुभिः स्वैः, करैः, चन्दनेन, अङ्गम्, लिम्पति। वसन्तानिलः, किञ्चिच्चञ्चलतालवृन्तकलनव्यग्रः, (अस्ति)। किञ्च, अयम्, प्रतीचीपतिः, नलिनीदलैः, तल्पम्, वितनुते। इत्थम्, अनङ्गतप्तहृदयः, लङ्केश्वरः, देवैः, सेव्यते ॥ ७ ॥

देवैर्विहितां सेवां वर्णयन्नाह—अङ्गमिति। शीतद्युतिः = चन्द्रः, मृदुभिः = सुकोमलैः, स्वैः = स्वकीयैः, करैः = किरणैः, हस्तैरित्यपि, चन्दनेन = मलयजेन, अङ्गम् = अवयवम्, लिम्पति = लिप्तं करोति। वसन्तानिलः = वसन्तवायुः, किञ्चिच्चञ्चलतालवृन्त-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मुनिः—(स्वगतम्) अये, अलीकवाग्डम्बरं निशाचरस्य ।

करालकः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथमयं प्रहस्तो राजद्वारमुपसर्पति । तदस्य हस्ते चित्रपटमर्पयिष्ये । भवानपि समीहितं साधयतु ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इतिविष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशति रावणश्चित्रहस्तः प्रहस्तश्च)

रावणः—(स्वगतम्)

राजल्ललाटफलका कमनीयकूज-
त्काञ्चीगुणप्रणयिनी धृतकेशपक्षा ।
हा किं करोमि मम सा हृदयं प्रविष्टा
नाराचयष्टिरिव पुष्पशिलीमुखस्य ॥ ८ ॥

(विमृश्य) अहो, कथमद्यापि हठाहरणखिन्नां नितान्तक्लेशधूसराङ्गीमपि जानकीं जनस्थानस्थितामिवाहमखण्डमण्डनां पश्यामि । अथवोचितमिदम् ।

कलनव्यग्रः—किञ्चित् = स्वल्पम् चञ्चलम् = चलितम् यत् तालवृन्तम् = तालव्यजनम् तस्य कलने = ग्रहणे व्यग्रः = संलग्नः, अस्तीति क्रियाशेषः । किञ्च = तथा, अयम् = एषः, प्रतीचीपतिः = पश्चिमदिगधिपतिः वरुणः, नलिनीदलैः = कमलिनीपत्रैः, तल्पम् = शय्याम्, वितनुते = निर्माति । इत्थम् = अनेन प्रकारेण, अनङ्गतप्तहृदयः—अनङ्गेन = कामेन तप्तम् = सन्तप्तम् हृदयम् = चेतः यस्य स तादृशः, लङ्केश्वरः = रावणः, देवैः = सुरैः, सेव्यते = परिचर्यते । अत्र करैरित्यत्र शब्दश्लेषाऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—(१)—राजल्ललाटफलका, कमनीयकूजत्काञ्चीगुणप्रणयिनी, धृतकेशपक्षा, सा, पुष्पशिलीमुखस्य, नाराचयष्टिः, इव, मम, हृदयम्, प्रविष्टा, हा ! किम्, करोमि ॥ ८ ॥

अन्वयः—(२)—सा, राजल्ललाटफलका, कमनीयकूजत्काञ्चीगुणप्रणयिनी, धृतकेशपक्षा, पुष्पशिलीमुखस्य, नाराचयष्टिः, इव, मम, हृदयम्, प्रविष्टा, हा ! किम्, करोमि ॥ ८ ॥

रावण आत्मनः कामव्यथां वर्णयन्नाह—राजदिति । सीतापक्षे—(१)—राजल्ललाटफलका—राजत् = शोभमानम् ललाटफलकम् = भालपट्टिका यस्याः सा, कमनीयकूजत्काञ्चीगुणप्रणयिनी—कमनीयम् = मनोहरम् यथा तथा कूजन्ती = शब्दायमाना या काञ्ची = मेखला तस्याः गुणेषु = तन्तुषु प्रणयिनी = प्रेमवती, कमनीयकाञ्चीगुणराजत्कटितटेति भावः, धृतकेशपक्षा—धृतः = स्वीकृतः केशपक्षः = केशकलापः यया सा, प्रशस्तकेशधारिणीत्यर्थः, सा = सीता, पुष्पशिलीमुखस्य—पुष्पाणि एव शिलीमुखाः = बाणाः ('अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः) यस्य तस्य, नाराचयष्टिः = सर्वलौहमयी

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
मुनि—(अपने आप) अरे ! निशाचर का (यह) झूठा वागाडम्बर है ।

कराळक—(पर्दे की ओर देख कर) क्या यह प्रहस्त राज-दरवाजा की ओर जा रहे हैं । तो इनके हाथ में चित्रपट समर्पित करूँगा । आप भी (अपना) अभीष्ट (कार्य) सिद्ध करें ।

(इस तरह दोनों निकल गये)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तदनन्तर रावण और चित्र हाथ में लिये हुए प्रहस्त प्रवेश करता है)

रावण—(अपने आप)

(१)—सुन्दर ललाटपट्ट से युक्त, मनोहरतापूर्वक झनझनानेवाली करधनी की लड़ियों में प्रेम करनेवाली (अर्थात् उक्त लड़ियों से शोभित), सुन्दर केशपाशवाली वह (सीता) कामदेव की बाणलता की तरह मेरे हृदय में घुस गयी है । हाय ! क्या करूँ ? ॥ ८ ॥

(२)—वह (सीता) चमचमाते हुए अग्रभागवाले, मनोहर ढङ्ग से सनसनानेवाली प्रत्यञ्चा के तन्तु में प्रेम करनेवाली, केश के समान कङ्क (नामक पक्षी के) पक्ष (पाँख) को धारण करनेवाली, काम की बाणलता के समान मेरे हृदय में घुस गयी है । हाय ! क्या करूँ ॥ ८ ॥

(सोच कर) अहो ! किस तरह आज भी जबर्दस्ती हरण कर लाने से उदासीन तथा अत्यन्त दुर्बल एवं मलिन अङ्गोंवाली भी जानकी को जनस्थान में स्थित एवं पूर्ण अलङ्कृत सी देख रहा हूँ । अथवा यह ठीक ही है ।

बाणलता, इव, मम = रावणस्य, हृदयम् = वक्षःस्थलम्, प्रविष्टा = प्राविशत् । हा इति खेदसूचकमव्ययम्, किं करोमि = किं विदधामि ॥ ८ ॥

बाणपक्षे—(२)—सा = सीता, राजल्ललाटफलका—राजत् = शोभमानम् ललाटफलकम् = तीक्ष्णाग्रभागः यस्याः सा, कमनीयकूजत्काञ्चीगुणप्रणयिनी—कमनीयं यथा तथा कूजन्ती = शब्दायमाना काञ्ची = ज्या तस्याः गुणे = तन्तौ प्रणयिनी = अनुरागवती, धृतकेशपक्षा—धृतः = गृहीतः केशः—कचः इव पक्षः = कङ्कपत्रम् यया सा, बाणस्य पश्चाद्भागे कङ्कपक्षिणः पक्षयोजनस्य प्रथा प्रचलिताऽऽसीत् । अन्यत्सर्वं समानमेव । रूपकाऽलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

विमृश्येति । हठाद्धरणखिन्नाम्—हठात् = बलात् हरणेन = आनयनेन खिन्नाम् = विषण्णाम्, नितान्तकृशधूसराङ्गीम्—नितान्तम् = अतिशयम् कृशानि = दुर्बलानि धूसराणि = रूक्षाणि अङ्गानि = अवयवाः यस्याः तादृशीम्, जनस्थानस्थिताम्—जनस्थाने = निशाचरनिवासस्थानभूते सीताहरणस्थाने स्थिताम् = वर्तमानाम्, अखण्डमण्डनाम्—अखण्डम् = समग्रम् मण्डनम् = आभरणम् पुष्पादिनिर्मितमाभरणमित्यर्थः यस्याः सा ताम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

आचान्तकान्तिरुन्निद्रैर्मयूखैरहिमत्विषः ।
धूसरापि कला चान्द्री किं न बध्नाति लोचनम् ॥ ९ ॥

प्रहस्तः—अयि देव, इदमालोक्यतां चित्तविनोदनं चित्रम् ।

रावणः—किं पुनरिहालिखितम् ।

प्रहस्तः—अयं तावत्तरलतिमिनिकरकरालकल्लोलकोलाहलोज्जागरः सागरः ।

रावणः—(विलोक्य) किमिदमुत्तरेण तरङ्गमालिनमनुतमालषण्डमाखण्डलधनुःसहस्रानुकारि कपिशयति गगनतलम् ।

प्रहस्तः—तदिदं सुग्रीवपालितं कपिकुलम् ।

रावणः—(विहस्य) अयि, वालिपालितमिति वक्तव्यम् । भवतु । किं पुनरनेन । कौ पुनरिमौ कार्मुकधरौ ।

प्रहस्तः—ताविमौ रामलक्ष्मणौ ययोरग्रजस्य बाणपातविलसितेन सुग्रीवपालितमधुना कपिकुलम् ।

रावणः—(अनाकर्णितकेन) कः पुनरयं नितान्तकृशकमनीयतनुरमन्दमन्दराघातनिर्मन्थनोत्थिततरलतरङ्गदूरविक्षिप्तशंकरशिरःशेखराधिरोहणकुतूहली कलानिधिरिवतरङ्गमालिनस्तटभुवमधिशेते ।

प्रहस्तः—स एव लङ्कागमनकुतूहली निजकुलगुरुं सागरमुपचरितुं कुशशयनविन्यस्तगात्रः प्रथमो दाशरथिः ।

रावणः—(विहस्य) कथमित्थमेव जानकीलाभकौतुकः सोऽयमस्मानप्युपचरिष्यति ।

प्रहस्तः—इतो विलोक्यतामयं रामनाराचनिर्मुक्तबहलानलहेलातरलदीनमीननिकरपरिवारः पारावारः ।

अन्वयः—उन्निद्रैः, अहिमत्विषः, मयूखैः, आचान्तकान्तिः, धूसरा, अपि, चान्द्री, कला, किम्, लोचनम्, न, बध्नाति ? ॥ ९ ॥

आचान्तेति । उन्निद्रैः = विकसितैः, सर्वत्र प्रसृतैरित्यर्थः, अहिमत्विषः—घर्मदीधितेः, सूर्यस्येत्यर्थः, मयूखैः=किरणैः, आचान्तकान्तिः—आचान्ता=आपीता कान्तिः=प्रभा यस्याः सा, धूसरा = मलिना, अपि, चान्द्री = चान्द्रमसी, कला = लेखा, किं लोचनम् = किं नेत्रम्, न = नहि, बध्नाति = आकर्षति, अपि त्वाकर्षतीति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ९ ॥

प्रहस्त इति । तरलतिमिनिकरकरालकल्लोलकोलाहलोज्जागरः—तरलाः = चञ्चलाः तिमीनाम् = मत्स्यानाम् ये निकराः = समूहाः तैः करालाः = भयङ्कराः ये कल्लोलाः = महातरङ्गाः तेषां कोलाहलैः = गर्जनैः उज्जागरः = उत्कालितः, सागरो लिखितः इति वाक्यपूर्तिरिति ॥

रावण इति । तरङ्गमालिनम् = सागरम्, आखण्डलधनुःसहस्रानुकारि—आखण्डलस्य = इन्द्रस्य धनूंषि = चापानि तेषां सहस्रमनुकरोतीति = अनुसरतीति ॥

प्रहस्त इति । बाणपातविलसितेन—बाणस्य = शरस्य पातः = पतनम्, प्रहार इति यावत्, तस्य विलसितेन = कार्येण, परिणामेनेत्यर्थः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

फैली हुई सूर्य की किरणों से निस्तेज तथा मलिन भी चन्द्रमा की कला क्या नेत्र को नहीं आकृष्ट करती है ? (अर्थात् करती ही है) ॥ ९ ॥

प्रहस्त—हे महाराज, चित्त को बहलानेवाले इस चित्र को देखिये।

रावण—अच्छा, इसमें क्या लिखा है ?

प्रहस्त—यह तो चञ्चल मत्स्य-समूहों से भयङ्कर महातरङ्गों के कोलाहल से उफनता हुआ सागर (लिखा) है।

रावण—(देख कर) सागर के उत्तर तमाल-वन के पास हजार इन्द्रधनुष का अनुकरण करनेवाला यह क्या आकाशमण्डल को कपिशरङ्ग का बना रहा है ?

प्रहस्त—यह तो सुग्रीव के द्वारा रक्षित वानरसमूह है।

रावण—(जोर से हँस कर) अरे, बाली से रक्षित (वानरसमूह)—ऐसा कहना चाहिये। अच्छा, इससे क्या (लाभ) ? धनुर्धारी ये दोनों कौन हैं ?

प्रहस्त—ये वही दोनों राम-लक्ष्मण हैं, जिनमें ज्येष्ठ राम के बाण-प्रहार के फल-स्वरूप सम्प्रति (यह) वानर-समूह सुग्रीव से रक्षित हुआ।

रावण—(न सुनने का अभिनय करते हुए) नितान्त दुर्बल तथा मनोहर शरीरवाला यह कौन है ? (जो), मन्थराचल के तीव्र आघात के मन्थन से उठी हुई चञ्चल तरङ्गों से दूर फेंके गये तथा शङ्करजी के शिर-मुकुट पर चढ़ने के लिए उत्कण्ठित चन्द्र की तरह, सागर के तट-भूभाग पर सो रहा है।

प्रहस्त—लङ्का आने के लिए उत्कण्ठित, अपने कुलगुरु सागर को मनाने के लिए कुश के आसन पर स्थित वही यह प्रथम दाशरथि (दशरथ पुत्र राम) हैं।

रावण—(जोर से हँस कर) जानकी को पाने की उत्कण्ठावाला यह राम (सः) क्या इसी तरह हम लोगों की भी सेवा करेगा (हम लोगों को भी मनायेगा) ?

प्रहस्त—इधर देखिये, राम के बाण से निकले हुए पर्याप्त अग्नि से अनायास ही चञ्चल तथा व्याकुल मत्स्यसमूह-रूप परिवारों से युक्त यह सागर है॥

रावण इति। नितान्तकृशकमनीयतनुः—नितान्तम् = अत्यर्थम् कृशम् = दुर्बलम् कमनीयम् = सुन्दरम् तनुः = शरीरम् यस्य सः तादृशः, अयं कोऽस्ति यः, अमन्दमन्दराघातेत्यादिः—अमन्दः = तीव्रः मन्दरस्य = मन्दराचलस्य यः आघातः = प्रहारः तेन निर्मन्थनेन = नितरां विलोडनेन उत्थितैः = उद्गतैः तरलैः = चञ्चलैः तरङ्गैः = लहरीभिः दूरे = किञ्चिद्विप्रकृष्टे विक्षितः = प्रक्षिप्तः अथ च शङ्करस्य = शिवस्य शिरःशेखराधिरोहणे = शिरोमुकुटाधिरोहणे कुतूहली = उत्कण्ठितः, कलानिधिः = चन्द्रः, इव, तरङ्गमालिनः = सागरस्य ॥

प्रहस्त इति। लङ्कागमनकुतूहली—लङ्कायाम् = तव नगर्याम् आगमने = प्राप्तौ कुतूहली = उत्कण्ठितः, कुशशयनविन्यस्तगात्रः—कुशशयने = कुशनिर्मिते आसने विन्यस्तम् = स्थापितम् गात्रम् = शरीरम् येन तादृशः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—कौ पुनरिमौ ज्येष्ठतापसस्य सादरं वानरवीरैः पार्श्वपरिसरमानीयेते ।

प्रहस्तः—अयं तावत्सागर एव । अयमपि देवस्यैव–(इत्यर्धोक्ते) अथवा किमस्य बन्धुविरोधिनो नामग्रहणेन ।

रावणः—कथमयं विभीषणोऽस्मद्विरोधेन राममाश्रयति । भवतु ।

निशाचरशिरोरत्नरञ्जिताङ्घ्रिशिरोरुहः ।
प्रियोऽपि दशकण्ठस्य नैष दर्शनमेष्यति ॥ १० ॥

रावणः—(सकौतुकम्) किं पुनरिदमक्षरपङ्क्तिद्वयम् ।

प्रहस्तः—नूनमिदं समुद्रविभीषणौ प्रति लक्ष्मणस्य वचनद्वयं भविष्यतीति ।

रावणः—एकं तावद्वाचय ।

प्रहस्तः—(वाचयति)

'त्रासं मुञ्च समुद्र कोपदहनो रामस्य पास्यत्ययं
बन्दीभूतसुरेन्द्रसुन्दरदृशामक्ष्णोरमुद्रं पयः ।
कामं ते मकरीगणो विहरतामेतस्य लङ्केश्वर-
स्त्रीगण्डस्थलपत्रभङ्गमकरीविध्वंसिनः सायकाः ॥ ११ ॥'

रावणः—अन्यदपि वाचय ।

प्रहस्तः—(वाचयति)

'अद्यैवास्य विभीषणस्य शरणापन्नस्य मूर्ध्ना नते-
रानृण्यं विदधात्ययं रघुपतिर्लङ्काधिपत्यश्रियम् ।
एतस्यैव भुजाविह प्रतिभुवौ सुग्रीवराज्यार्पण-
त्रैलोक्यप्रथमानसत्यचरितौ सर्वे वयं साक्षिणः ॥ १२ ॥'

प्रहस्त इति । रामनाराचनिर्मुक्तबहलानलहेलातरलदीनमीननिकरपरिवारः—रामस्य = रामचन्द्रस्य नाराचेन = बाणेन निर्मुक्तः = प्रक्षिप्तः बहलः = पर्याप्तः यः अनलः = अग्निः तेन हेलया = अनायासेन तरलाः = चञ्चलाः दीनाः = व्याकुलाः मीननिकरपरिवाराः = मत्स्यसमूहबान्धवाः यस्य स तादृशः ॥

अन्वयः—निशाचरशिरोरत्नरञ्जिताङ्घ्रिशिरोरुहः, प्रियः, अपि, एषः, दशकण्ठस्य, दर्शनम्, न, एष्यति ॥ १० ॥

निशाचरेति । निशाचरशिरोरत्नरञ्जिताङ्घ्रिशिरोरुहः—निशाचराणाम् = राक्षसानाम् शिरोरत्नैः = मस्तकमणिभिः रञ्जिते = चित्रिते अङ्घ्रिशिरोरुहे = चरणकमले यस्य सः, प्रियः = स्नेह्यः, अपि, एषः = अयम्, दशकण्ठस्य = रावणस्य, दर्शनम् = साक्षात्कारम्, न एष्यति = न प्राप्स्यति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे समुद्र, त्रासम्, विमुञ्च, रामस्य, अयम्, कोपदहनः, बन्दीभूतसुरेन्द्रसुन्दरदृशाम्, अक्ष्णोः, अमुद्रम्, पयः, पास्यति । (हे सागर), ते, मकरीगणः, कामम्, विहरताम् । एतस्य, सायकाः, लङ्केश्वरस्त्रीगण्डस्थलपत्रभङ्गमकरीविध्वंसिनः, (सन्ति) ॥ ११ ॥

त्रासमिति । हे समुद्र = हे सागर, त्रासम् = भीतिम्, विमुञ्च = त्यज; रामस्य =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावण—ये दो कौन हैं ? (जो) वानर वीरों के द्वारा आदरपूर्वक ज्येष्ठ तापस के पास ले जाये जा रहे हैं ?

प्रहस्त—यह तो सागर ही है। यह भी महाराज के ही (ऐसा आधा ही कहने पर) अथवा भाई से द्रोह करनेवाले इसका नाम लेने से क्या (लाभ) ?

रावण—क्या यह विभीषण हमारे विरोध के कारण राम का आश्रय ले रहा है ? अच्छा ?

राक्षसों के शिर का मणियों से रञ्जित चरणकमलवाला प्रिय भी यह (विभीषण) रावण के दर्शन को (पुनः) नहीं प्राप्त करेगा ॥ १० ॥

रावण—(कुतूहलपूर्वक) ये दो अक्षरपंक्तियाँ क्या हैं ?

प्रहस्त—निश्चय ही यह समुद्र और विभीषण के प्रति (कहे गये) लक्ष्मण के दो वचन होंगे।

रावण—पहले एक को पढ़ो।

प्रहस्त—(पढ़ता है)

हे समुद्र भयभीत मत होओ। राम का यह क्रोधानल (रावण के द्वारा) बन्दी बनायी गयी इन्द्र की सुन्दरियों के नेत्रों के निरन्तर बहनेवाले जल (अश्रु) का पान करेगा। (हे सागर), तुम्हारे (भीतर स्थित) ग्राहवधूसमूह यथेच्छ विहार करें। इन (राम) के बाण लङ्केश्वर की स्त्रियों के गालों पर पत्रों के आकार की (बनी) मकरियों (रचनाओं) को विनष्ट करनेवाले (हैं) ॥ ११ ॥

रावण—दूसरा भी पढ़ो।

प्रहस्त—(पढ़ता है)

यह रामचन्द्र शरण में आये हुए इस विभीषण को शिर से प्रणाम करने का आज ही लङ्का के साम्राज्य की लक्ष्मी (अर्थात् साम्राज्य का स्वामित्व) ऋण चुकाने के रूप में प्रदान कर रहे हैं। इस विषय में सुग्रीव को राज्य देने से त्रिलोकी में विख्यात सत्य-पराक्रमवाली इन (राम) की भुजाएँ ही उत्तरदायी (जामिन) है। (और) हम सब

रामचन्द्रस्य, अयम् = एषः, कोपदहनः = क्रोधाग्निः, बन्दीभूतसुरेन्द्रसुन्दरदृशाम्—बन्दीभूताः = कारागारे निक्षिप्ताः, रावणेनेति शेषः, सुरेन्द्रस्य = देवराजस्य सुन्दरदृशः = सुलोचनाः तासाम्. अक्ष्णोः = नेत्रयोः असुद्रम् = अजस्रं प्रवहमानम्, पयः = सलिलम्, अश्रु इत्यर्थः. पास्यति = पानं करिष्यति। (हे सागर), ते = तव, मकरीगणः = मकरीसमवायः, जलचरसमूहः इत्यर्थः, कामम् = यथेच्छम्, विहरताम् = क्रीडतु। अस्य = रामस्य, सायकाः = बाणाः, लङ्केश्वरस्त्रीगण्डस्थलपत्रभङ्गमकरीविध्वंसिनः—लङ्केश्वरस्य = रावणस्य स्त्रीणाम् = ललनानाम् गण्डस्थलेषु = कपोलस्थलेषु याः पत्रभङ्गमकर्यः = मकरिकाकाराः पत्ररचनाः तासां विध्वंसिनः = विनाशकाः, सन्तीति क्रियाशेषः, तासां पतीनां वधादित्याशयः। न तु त्वज्जलमकरीगणानामित्यभिप्रायः। अत्र रूपकालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमिति ॥ ११ ॥

अन्वयः—अयम्, रघुपतिः, शरणापन्नस्य, अस्य, विभीषणस्य, मूर्ध्ना, नतेः, अद्य,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—अहो, वाग्डम्बरैकसारता कनिष्ठतापसस्य । भवतु । किं पुनरिदं मध्ये समुद्रमालोक्यते ।

प्रहस्तः—स एष कपिकुलोन्मूलितशैलशिखरनिर्मितः काकुत्स्थकुलकीर्तिप्रसक्तिप्रबन्धः सेतुबन्धः ।

रावणः—अहो, चित्रकरस्य चातुरी । यदलीकमपि सत्यमिव दर्शितवान् ।

प्रहस्तः—कथमद्यापीदमलीकमिति संभावना देवस्य ।

(नेपथ्ये कलकलः)

रावणः—किमेतत् ।

प्रहस्तः—

एषामयं रामचमूचराणां दर्पोद्धतानां कपिकुञ्जराणाम् ।
नवोद्गतानामिव नीरदानां कोलाहलः कोऽपि समुज्जिहीते ॥ १३ ॥

प्रहस्तः—तदिदं शङ्कितव्यं प्रतिविधातव्यं वा ।

रावणः—आः ! किमिह शङ्कया प्रतिविधानेन वा । अनेन हि—

एव, लङ्काधिपत्यश्रियम्, आनृण्यम्, विदधाति । इह, सुग्रीवराज्यार्पणत्रैलोक्यप्रथमानसत्यचरितौ, एतस्य, भुजौ, एव, प्रतिभुवौ । वयम्, सर्वे, साक्षिणः, (स्मः) ॥ १२ ॥

विभीषणस्य विषये रामस्याभिलषितं कार्यमाह—अद्यैवेति । अयम् = एषः, रघुपतिः = रामचन्द्रः, शरणापन्नस्य—शरणे = रक्षणे ('शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः), आपन्नस्य = प्राप्तस्य, अस्य = एतस्य, विभीषणस्य = रावणानुजस्य, मूर्ध्ना = मस्तकेन, = नतेः नमनस्य, प्रणामस्येत्यर्थः, अद्यैव = अस्मिन्नेव दिने, लङ्काधिपत्यश्रियम्—लङ्कायाः = रावणनगर्याः आधिपत्यस्य = साम्राज्यस्य श्रियम् = लक्ष्मीम्, आनृण्यम् = अनृणताम्, प्रत्युपकारमित्यर्थः, विदधाति = करोति । प्रणतेः पर्याये लङ्काधिपत्यं ददातीत्यर्थः । इह = अस्मिन् विषये, सुग्रीवराज्यार्पणत्रैलोक्यप्रथमानसत्यचरितौ = सुग्रीवस्य = वालिनोऽनुजस्य यत् राज्यार्पणम् = वानरराज्यप्रदानम् तेन त्रैलोक्ये = त्रिलोक्याम् प्रथमानम् = विख्यातम् सत्यम् = यथार्थम् चरितम् = चरित्रम् ययोः तौ, एतस्य = अस्य रामचन्द्रस्य, भुजौ = बाहू, एव, प्रतिभुवौ = लग्नकौ ('लग्नकाः प्रतिभुवः' इत्यमरः) स्त इति शेषः । वयम् = लक्ष्मणादयः, सर्वे = निखिलाः, साक्षिणः = प्रमाणभूताः, स्म इति शेषः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १२ ॥

वाग्डम्बरैकसारता—वाचाम् = वाणीनाम् डम्बरे = आडम्बरे एकः = मुख्यः सारः यस्य स तस्य भावस्तत्ता ॥

प्रहस्त इति । कपिकुलोन्मूलितशैलशिखरनिर्मितः—कपीनाम् = वानराणाम् कुलेन = समूहेन उन्मूलितानि = उत्पाटितानि यानि शैलशिखराणि = पर्वतशृङ्गाः तैः निर्मितः = रचितः, काकुत्स्थकुलकीर्तिप्रसक्तिप्रबन्धः—काकुत्स्थकुलस्य = रघुवंशस्य कीर्तेः = यशसः, असाध्यसाधनोत्पन्नयशसः इत्यर्थः, प्रसक्तिः = संसर्गः यस्मिन् असौ

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लोग प्रमाण (गवाह) हैं ॥ १२ ॥

रावण— अहो ! छोटे तपस्वी के वागाडम्बर में ही एकमात्र बल है। अच्छा। तो फिर यह समुद्र के मध्य में क्या दिखलाई पड़ रहा है ?

प्रहस्त— यह वानर-समूह के द्वारा उखाड़े गये पर्वत-शृङ्गों से निर्मित रघुकुल के यश से संवलित काव्यरूप सेतुबन्ध (सागर पर पुल की रचना) है।

रावण—चित्रकार की (चित्रनिर्माण की) कुशलता आश्चर्यजनक है। जो कि असत्य को भी सत्य की तरह दिखलाया है।

प्रहस्त—क्या महाराज को आज भी 'यह झूठा है'—ऐसी सम्भावना है ?

(पर्दे के पीछे कोलाहल होता है)

रावण—यह क्या है ?

प्रहस्त—नूतन प्रादुर्भूत बादलों की तरह रामचन्द्र के सैनिक, दर्पोद्धत, इन वानरों का विलक्षण यह कोलाहल उठ रहा है ॥ १३ ॥

प्रहस्त—तो यह शङ्का करने के योग्य है अथवा प्रतिकार करने के (अर्थात् इसके विषय में केवल शङ्का ही की जायगी कि इसका कुछ प्रतिकार भी किया जायगा) ?

रावण—आह, इस विषय में शङ्का अथवा प्रतिकार से क्या मतलब ? निश्चय ही—

तादृशः यः प्रबन्धः = काव्यरचनारूप इत्यर्थः, सेतुबन्धः = सेतुरचना। यथा काव्यं पठित्वा यः कोऽपि कस्याऽपि वर्णनीयकुलस्य कीर्तिमवगच्छति तथैव सेतुमनुं विलोक्य कोऽपि रघुवंशमाहात्म्यमवगमिष्यतीति भावः ॥

अन्वयः—नवोद्गतानाम्, नीरदानाम्, इव, रामचमूचराणाम्, दर्पोद्धतानाम्, एषाम्, कपिकुञ्जराणाम्, कोऽपि, अयम्, कोलाहलः, समुज्जिहीते ॥ १३ ॥

एषामिति। नवोद्गतानाम् = नभसि सञ्जातानाम्, नीरदानाम् = पयोदानाम्, इव = यथा, रामचमूचराणाम्—रामस्य = रामचन्द्रस्य चमूचराणाम् = सैनिकानाम्, दर्पोद्धतानाम्—दर्पेण = गर्वेण उद्धतानाम् = उद्दण्डानाम्, एषाम् = अमीषाम्, एषामिति बुद्धिस्थपरामर्शः, कपिकुञ्जराणाम् = वानरवीराणाम्, कोऽपि = विलक्षणः, अयम् = एषः, कोलाहलः = कलकलः, समुज्जिहीते = उज्जृम्भते। उपमालङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ १३ ॥

प्रहस्त इति। शङ्कितव्यम् = इदं सत्यमिदमसत्यमित्यादिरूपा शङ्का कर्तव्या, वा = अथवा, प्रतिविधातव्यम् = प्रतिकर्तव्यम्। त्रयोदशश्लोकादनन्तरं प्रहस्तस्यास्या उक्तेः पूर्वः कश्चिदधिकोऽन्योऽपि पाठः आसीदिति प्रतीयते ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कोलाहलेनोल्लसता कपीनां मनो मदीयं मुदमेव धत्ते ।
मन्दोदरीभूषणनूपुराणां महामणीनामिव शिञ्जितेन ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

मदोन्दरी—जयतु जयतु देवः ।
[जेदु जेदु देवो ।]
रावणः—देवि, इत आस्यताम् ।

(मन्दोदरी यथोचितमुपविश्याधोमुखी तिष्ठति)

रावणः—

भुग्नालकं स्मितपराजितचन्द्रलेखं
दृग्लीलया कुवलयश्रियमादधानम् ।
एतन्मुखं दिविषदामपि दुर्निरीक्ष्यं
तन्वङ्गि मामिव मुधा किमधः करोषि ॥ १५ ॥

प्रहस्तः—देव, कपिसेनाकोलाहलचिन्तयैव नूनमधरीकृतमुखी देवीति तर्कयामि ।
रावणः—आः, क एव चिन्ताविषयः ।

अन्वयः—मन्दोदरीभूषणनूपुराणाम्, महामणीनाम्, शिञ्जितेन, इव, उल्लसता, कपीनाम्, कोलाहलेन, मदीयम्, मनः, मुदम्, एव, धत्ते ॥ १४ ॥

कोलाहलेनेति । मन्दोदरीभूषणनूपुराणाम्—मन्दोदर्याः = मम पत्न्या मयपुत्र्याः भूषणानाम् = अलङ्काराणाम्, अलङ्कारलग्नानामित्यर्थः, नूपुराणाम् = मञ्जीराणाम्, महामणीनाम् = महार्हरत्नानाम्, शिञ्जितेन = झणत्कारेण, इव = यथा, उल्लसता = उद्गच्छता, कपीनाम् = वानराणाम्, कोलाहलेन = कलकलेन, मदीयम् = मामकीनम्, मनः = चेतः, मुदम् = हर्षम्, एवेति शोकव्यवच्छेदार्थम्, धत्ते = धारयति । अतो न काऽपि चिन्ता विधेयेति । उपजातिर्वृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—(१) हे तन्वङ्गि, भुग्नालकम्, स्मितपराजितचन्द्रलेखम, दृग्लीलया, कुवलयश्रियम्, आदधानम्, दिविषदाम्, अपि, दुर्निरीक्ष्यम्, एतत्, मुखम्, माम्, इव, मुधा, किम्, अधः, करोषि ? ॥ १५ ॥

अन्वयः—(२) हे तन्वङ्गि, एतत्, मुखमिव, भुग्नालकम्, स्मितपराजितचन्द्रलेखम्, दृग्लीलया, कुवलयश्रियम्, आदधानम्, दिविषदाम्, अपि, दुर्निरीक्ष्यम्, माम्, मुधा, किम्, अधः, करोषि ? ॥ १५ ॥

भुग्नालकमिति—

(१) मुखपक्षे—हे तन्वङ्गि = हे कृशशरीरे, भुग्नालकम्—भुग्नाः = कुटिलाः अलकाः = चूर्णकुन्तलाः यस्मिन् तत्, स्मितपराजितचन्द्रलेखम्—स्मितेन = ईषद्धास्येन पराजिता = तिरस्कृता चन्द्रलेखा = चन्द्रकला येन तत्, दृग्लीलया—दृशोः = नेत्रयोः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मन्दोदरी के आभूषणों में लगे नूपुरों के श्रेष्ठ रत्नों के झङ्कार की तरह उठने वाले वानरों के कोलाहल से मेरा मन प्रसन्नता को ही धारण कर रहा है ॥ १४ ॥

(प्रवेश करके)

मन्दोदरी—महाराज की जय हो ।

रावण—देवि, इधर बैठिए ।

(मन्दोदरी शिष्टाचार के अनुकूल बैठ कर मुँह लटकाए रहती है)

रावण—(१) हे कृशोदरि, घुघराले केशों से युक्त, मुस्कान से चन्द्रकला को तिरस्कृत करनेवाले, नेत्रों के विलास से नीले कमल की कान्ति को धारण करने वाले, देवताओं के लिए भी दुर्दर्शनीय इस मुख को, मेरे समान, व्यर्थ में ही क्यों नीचा कर रही हो ॥ १५ ॥

(२) हे कृशोदरि, इस (अपने) मुख की ही तरह (कुबेर की पुरी) अलका को जीतने वाले, अनायास ही चन्द्रमा तथा देवताओं की श्रेणी को वश में करनेवाले, आँखों के इशारे से ही भूमण्डल की सम्पत्ति को ग्रहण करने वाले, देवताओं के लिए भी दुर्दर्शनीय, मुझको क्यों नीचा कर रही हो ? (अर्थात् तुम्हारे मुँह नीचा करने से मेरा स्वयं अपमान है) ॥ १५ ॥

प्रहस्त—महाराज, निश्चय ही वानरी सेना के कोलाहल की चिन्ता से ही महारानी ने (अपना) मुँह नीचा किया है—ऐसा (मैं) सोचता हूँ ।

रावण—अरे, चिन्ता करने की यह कैसी बात ?

लीलया = विलासेन, कुवलयश्रियम्—कुवलस्य = नीलकमलस्य श्रियम् = शोभाम्, आदधानम् = धारयत्, दिविषदाम् = देवानाम्, अपि, का कथाऽन्येषामित्यपिना व्यज्यते, दुर्निरीक्ष्यम् = दुर्दर्शनीयम्, देवाः अपि यद्द्रष्टुं न समर्थाः एतत् = इदम्, मुखम् = आननम्, माम् = त्रिलोकीजेतार रावणम्, इव = यथा, मुधा = व्यर्थमेव, किम् = कस्मात्, अधः = नीचैः, करोषि = विदधासि ? अनेन तवाननाधरीकरणेन ममाप्यधरीकरणमिति भावः ॥ १५ ॥

(२) रावणपक्षे–हे तन्वङ्गि=हे कृशोदरि, एतत्=इदम्, मुखमिव=स्वकीयमाननमिव, भग्नालकम्—भग्ना = पराजिता अलका = कुबेरपुरी येन असौ तम्, स्मितपराजितचन्द्रलेखम्—स्मितेन = हास्येन, अनायासेनेत्यर्थः, पराजिताः = वशीकृताः चन्द्रः = शशी लेखाः = देवश्रेणयश्च येन तम्, दृग्लीलया = नेत्रेङ्गितेन, कुवलयश्रियम्—कुवलस्य = भूमण्डलस्य ('कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्मा' इत्यमरः) श्रियम् = सम्पत्तिम्, आदधानम् = धारयन्तम्, दिविषदाम् = देवानाम्, अपि, दुर्निरीक्ष्यम् = द्रष्टुमशक्यमिति भावः, शेषं पूर्ववत् । अत्र श्लेषालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १५ ॥

प्रहस्त इति । कपिसेनाकोलाहलचिन्तया—कपिसेनायाः = वानरसैन्यस्य कोलाहलेन या चिन्ता तया ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

इयं लीलालोलाङ्गदभुजलता नीलचिकुरा
समुन्मीलत्तारा कुमुदहसिता चारुनयना ।
प्लवङ्गानां सेना युवतिरिव तारापतिमुखी
ममाग्रे कन्दर्पं प्रकटयितुमद्य प्रभवति ॥ १६ ॥

मन्दोदरी—देव, अन्यदप्यस्ति कारणम् । अद्य हि मया देवस्य शकुननिरूपणार्थं गिरिशिखरगहनगर्भस्थितां शबरपल्लीं प्रस्थापिता निजपरिचारिका । तया च कस्या अपि शबरकुटुम्बिन्या निजगृहपर्यन्तवासिनं केसरिकिशोरकं लालयन्त्या ईदृशं वचनमाकर्णितम्—

मा भव नागपतेः परिभवमात्रेण गर्वनिर्व्यूढः ।
वसुधामिमां गिरिसङ्कटां मृगेन्द्र शरभस्य नन्दनः प्राप्तः ॥ १७ ॥

[देव,; अण्णं पि अत्थि कारणं । अज्ज हि मए देवस्स सउणणिरूवणत्थं गिरिसिहरगहणगब्भट्ठिदं सवरपल्लीं पट्ठाविदा णिअ परिआरिआ । ताए अ किए वि सवरकुडुम्बिणीए णिअघरपेरन्तवासिणं केसरिकिसोरअं उल्लावअन्तीए एरिसं वअणं आअण्णिदम्—]

['मा होहि णाअवइणो परिहवमेत्तेण गव्वणिव्वूढो ।
वसुहमिमं गिरिसंकडं मइन्द सरहस्स णन्दणो पत्तो ॥]

अन्वयः—(१) सेनापक्षे—लीलालोलाङ्गदभुजलता, नीलचिकुरा, समुन्मीलत्तारा, कुमुदहसिता, चारुनयना, तारापतिमुखी, प्लवङ्गानाम्, इयम्, सेना, युवतिः, इव, अद्य, मम, अग्रे, कम्, दर्पम्, प्रकटयितुम्, प्रभवति ॥ १६ ॥

(२) युवतीपक्षे—लीलालोलाङ्गदभुजलता, नीलचिकुरा, समुन्मीलत्तारा, कुमुदहसिता, चारुनयना, तारापतिमुखी, इयम्, युवतिः, प्लवङ्गानाम्, सेना, इव, अद्य, मम, अग्रे, कन्दर्पम्, प्रकटयितुम्, प्रभवति ॥ १६ ॥

कपिसैन्यमकिञ्चित्करं वर्णयन् तस्य युवतिसादृश्यमुद्भावयति—इयमिति । (१) सेनापक्षे—लीलालोलाङ्गदभुजलता—लीलया=क्रीडया लोलः=चञ्चलः अङ्गदः=वालिपुत्रः एव भुजलता=बाहुवल्लरी यस्याः सा अथवा लीलालोलः अङ्गदः भुजलतायाम्=पार्श्वभागे यस्याः सा, नीलचिकुरा—नीलः=नीलनामा वानरः एव चिकुरः=केशपाशः यस्याः सा, अथवा नीलः चिकुरे=शिरःस्थाने यस्याः सा, समुन्मीलत्तारा—समुन्मीलन्=प्रकाशमानो योद्धुं चञ्चलो वा तारः=तारनामा वानरो यस्यां सा, कुमुदहसिता—कुमुदः=कुमुदाख्यः वानरः हसितम्=हास्यम् यस्याः सा यद्वा कुमुदस्य=कुमुदवानरस्य हसितम्=शत्रुं तृणवदाकलय्य हसनं यस्यां सा, चारुनयना—चारुणा=चारुनामकवानरेण नयनम्=प्रेरणं यस्याः सा यद्वा चारु=शोभनम् नयनम्=प्रेरणम् यस्याः सा यद्वा चारुः=तदाख्यो वानरो नयने=नेत्रस्थाने यस्यां सा, तारापतिमुखी—तारापतिः=सुग्रीवः मुखे=अग्रे यस्याः यस्यां वा सा, तारापतिमुख्या वा, प्लवङ्गानाम्=वानराणाम्, इयम्=एषा, सेना=चमूः, युवतिरिव=प्राप्तयौवना कामिनीव, अद्य=सम्प्रति, मम=त्रैलोक्यजयिनो रावणस्य, अग्रे=समक्षम्, कम्=कीदृशम्, दर्पम्=अभिमानम्, प्रकटयितुम्=प्रकाशयितुम्, प्रभवति=शक्नोति ? न कमपीति भावः ॥ १६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सेना के पक्ष में—लीलापूर्वक चञ्चल अङ्गद रूप भुजलतावाली, नील नामक वानर रूप केशकलाप से सम्पन्न, तार नामक वानर से प्रकाशित, कुमुद नामक वानररूप हास्य से सम्पन्न, चारु नामक वानर रूप नेत्र से युक्त, सुग्रीव के द्वारा सञ्चालित, वानरों की यह सेना, युवती के समान, आज मेरे सामने किस अभिमान को प्रकट करने में समर्थ हो सकता है ? ॥ १६ ॥

युवती के पक्ष में—विलास के साथ चञ्चल केयूर (बाजूबन्द) से अलंकृत भुजलतावाली, नीले केश-कलाप से सुशोभित, चञ्चल नेत्रपुतलियों से युक्त, कुमुद की तरह (स्वच्छ) हास्यवाली, सुनयनी, चन्द्रमुखी, यह युवती, वानरों की सेना के समान, आज मेरे समक्ष काम को प्रकट करने में समर्थ हो रही है ॥ १६ ॥

मन्दोदरी—महाराज, दूसरा भी कारण है। आज मैंने महाराज (आप) के शकुन विचारने के लिए अपनी एक दासी को पर्वत की चोटी के वन के मध्य में स्थित शबरग्राम में भेजा था। उसने अपने घर के पास में ही निवास करनेवाले सिंह के बच्चे को प्यार करती हुई किसी शबर-स्त्री के इस प्रकार के वचन को सुना—

हे सिंह, (तुम) गजराज की पराजयमात्र से (ही) गर्वीले मत बनो। शरभ का बच्चा पर्वत से दुर्गम इस भू-भाग पर आ गया है ॥ १७ ॥

---

(२) युवतिपक्षे—लीलालोलाङ्गदभुजलता—लीलया = विलासेन वा लीलायाम् = कामक्रीडायाम्, लोलम् = चलाचलम् अङ्गदम् = केयूरम् यस्यां सा तादृशी भुजलता यस्याः सा, नीलचिकुरा—नीलाः = कृष्णवर्णाः चिकुराः = केशाः यस्याः सा ('चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः' इत्यमरः), समुन्मीलत्तारा—समुन्मीलन्त्यौ = कामातुरत्वात् भ्रमन्त्यौ तारे = कनीनिके यस्याः सा, कुमुदहसिता—कुमुदमिव = कैरवमिव धवलं हसितम् = हास्यम् यस्याः सा, चारुनयना—चारुणी = शोभने नयने = नेत्रे यस्याः सा यद्वा चारु = सुन्दरम् नयनम् = सङ्केतस्थाने प्रापणं यया सा, तारापतिमुखी—तारापतिः = चन्द्रः इव मुखम् = आननम् यस्याः सा, इयम् = एषा, काऽपीत्यर्थः, युवतिः = तरुणी, प्लवङ्गानाम् = वानराणाम्, सेना = सैन्यम्, इव, अद्य = अधुना, ममाग्रे = मम समक्षम्, कन्दर्पम् = कामभावम्, प्रकटयितुम् = प्रकाशयितुम्, प्रभवति = समर्था भवति। अत्र श्लेषोपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ १६ ॥

मन्दोदरीति। गिरिशिखरगहनगर्भस्थिताम्—गिरेः = पर्वतस्य शिखरस्य = शृङ्गस्य यत् गहनम् = वनम् तस्य गर्भे = मध्ये स्थिताम् = वर्तमानाम्, शबरपल्लीम्—शबराणाम् = म्लेच्छजातिविशेषाणाम् पल्लीम् = ग्रामटिकाम् ॥

अन्वयः—हे मृगेन्द्र, नागपतेः, परिभवमात्रेण, गर्वनिर्व्यूढः, मा भव; शरभस्य, नन्दनः, गिरिसङ्कटाम्, इमाम्, वसुधाम्, प्राप्तः ॥ १७ ॥

मा भवेति। हे मृगेन्द्र = हे मृगराज, नागपतेः = गजराजस्य, परिभवमात्रेण = पराजयमात्रेण, गर्वनिर्व्यूढः—गर्वेण = अभिमानेन निर्व्यूढः = ग्रस्तः, गर्वित इत्यर्थः, मा भव = मा भूः, यतः, शरभस्य = अष्टपदयुक्तस्य श्वापदविशेषस्य, नन्दनः = सुतः, गिरि-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—किमिह विषादस्थानमस्मान्प्रत्युदासीनमेवैतत् । तथा हि ।

मा भव नागपतेः परिभवमात्रेण गर्वनिर्व्यूढः ।
वसुधामिमां गिरिसङ्कटां मृगेन्द्र शरभस्य नन्दनः प्राप्तः ॥ १८ ॥

प्रहस्तः—देव, अन्यथा घटमानमिदम् ।

मा भव नाकपतेः परिभवमात्रेण गर्वनिर्व्यूढः ।
वसुधामिमां गिरिसङ्कटमयीं दशरथस्य नन्दनः प्राप्तः ॥ १९ ॥

रावणः—आः, केयं निसर्गनिःशङ्के लङ्केश्वरे मयि शकुनोपश्रुतिपरीक्षा ।

(नेपथ्ये)

हेलास्फालितरामलक्ष्मणधनुर्ज्यावल्लरीझल्लरी-
झाङ्कारप्रसरप्ररूढपुलकप्राग्भारनीरन्ध्रिताः ।
व्यावल्गत्कपिकण्ठकाण्डकदनक्रीडत्कृपाणाञ्चल-
स्फूर्जद्दुर्जयदोर्बलैकचपलाश्चञ्चन्ति रात्रिञ्चराः ॥ २० ॥

रावणः—(सहर्षम्) अये, निशाचरवीरविजयोत्तरः समरः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

अग्रेसरी रघुपतेः परिणद्धपाक-
किम्पाकपाटलमुखी कपिवीरसेना ।
निःशेषमापिवति राक्षसवीरचक्रं
प्रातः प्रभेव तपनस्य तमिस्रजालम् ॥ २१ ॥

सङ्कटाम्—गिरिभिः = पर्वतैः सङ्कटाम् = संकुलाम्, इमाम = एताम, वसुधाम् = पृथिवीम्, प्राप्तः = आगतः । यस्त्वां हनिष्यतीति वक्तव्यशेषः । शरभः सिंहादपि बलवत्तरः कथ्यते । अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः । आर्याप्रभेदो वृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—नाकपतेः, परिभवमात्रेण, गर्वनिर्व्यूढः, मा भव, गिरिसंकटमयीम्, इमाम्, वसुधाम्, दशरथस्य, नन्दनः, प्राप्तः ॥ १९ ॥

महाराजविप्रयेऽप्येतद्घटत इति प्रदर्शयितुमन्यथा संस्कृतयति प्रहस्तः—मा भवेति । नाकपतेः = इन्द्रस्य, परिभवमात्रेण = पराजयमात्रेण, गर्वनिर्व्यूढः = गर्वितः, मा भव; गिरिसङ्कटमयीम् = पर्वतसङ्कटाम्, इमां वसुधाम् = भूभागम्, दशरथस्य, नन्दनः = सुतः, प्राप्तः = आगतः ॥ १९ ॥

अन्वयः—हेलास्फालितरामलक्ष्मणधनुर्ज्यावल्लरीझल्लरीझाङ्कारप्रसरप्ररूढपुलकप्राग्भार-नीरन्ध्रिताः, व्यावल्गत्कपिकण्ठकाण्डकदनक्रीडत्कृपाणाञ्चलस्फूर्जद्दुर्जयदोर्बलैकचपलाः, रात्रिञ्चराः, चञ्चन्ति ॥ २० ॥

हेलास्फालितेति । हेलास्फालितेत्यादिः—हेलया = क्रीडया अनायासेनेत्यर्थः आस्फालिते = ताडिते टाङ्कृते इत्यर्थः, रामलक्ष्मणयोः धनुषोः = चापयोः ये ज्यावल्ल्यौ= प्रत्यञ्चालते एव झल्लर्यौ = चर्च्यौं ('झल्लरी चर्चरी पारी' इत्यमरः) तयोः यः झाङ्कारस्य = झंकृतेः प्रसरः = विस्तारः तेन प्ररूढाः = उत्पन्नाः ये पुलकाः = रोमाञ्चाः तेषां प्राग्भारेण नीरन्ध्रिताः = निश्छिद्राः, निबिडा इति यावत्; व्यावल्गन्तः = शब्देन सह

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावण—इसमें विषाद का क्या कारण है ? यह (कथन) तो हम लोगों के प्रति तटस्थ है ।

जैसे कि—

फिर उसी श्लोक को दुहराता है ॥ १८ ॥

प्रहस्त—महाराज, यह (वाक्य) दूसरे प्रकार से (भी) घटित (अर्थसङ्गत) होता है ।

इन्द्र के पराजय मात्र से गर्वीले मत बनो । पर्वतो से संकुल इस पृथिवी पर दशरथ का पुत्र आ गया है ॥ १८ ॥

रावण—आह ! स्वभावतः निडर मुझ लङ्काधिपति के विषय में शकुन सुनने की यह कैसी परीक्षा (है) ?

(पर्दे के पीछे)

अनायास (ही) टङ्कार कराई गई, राम और लक्ष्मण के धनुष की, प्रत्यञ्चा-लता रूपी झांझ की झङ्कार के फैलाव से उत्पन्न रोमाञ्च के विस्तार से निरछिद्र (अर्थात् टङ्कार सुनकर अत्यन्त उत्साहित), शब्द करनेवाले वानर के कण्ठरूपी ठूठ (डण्ठल) को काटने में घूमनेवाली तलवारों की धार से प्रकाशित दुर्जय बाहुबल के कारण चञ्चल राक्षस इधर-उधर कूद रहे हैं ॥ २० ॥

रावण—(प्रसन्नता के साथ) अहा ! निशाचर वीरों का संग्राम अन्त में विजय प्रदान करनेवाला होगा (ऐसा प्रतीत हो रहा है) ।

(फिर पर्दे के पीछे)

रामचन्द्र की आगे बढ़नेवाली, खूब पके हुए किम्पाक (फल) की तरह लाल मुँहवाली, वानरवीरों की सेना राक्षस वीरों के समूह को, सूर्य की प्रातः कालीन प्रभा जैसे अन्धकार को (पी जाती है, उसी तरह) पूर्णरूप से पी रही है (अर्थात् विनष्ट कर रही है) ॥ २१ ॥

नृत्यन्तः ये कपिकण्ठाः = वानरगलप्रदेशाः काण्डाः = स्थूणाः, फलपत्रादिविहीनाः शुष्का वृक्षखण्डा इत्यर्थः, तेषां कदने = खण्डने क्रीडन्तः = चलन्तः ये कृपाणाञ्चलाः = करवाल-धाराः तैः स्फुरत् = प्रकाशमानम् दुर्जयम् = जेतुमशक्यम् दोर्दलम् = भुजबलम् तेन, एके = मुख्याः चपलाः = चञ्चलाः, तादृशाः ये, रात्रिञ्चराः = निशाचराः, चञ्चन्ति = इतस्ततः कूर्दनं कुर्वन्ति । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २० ॥

रावण इति । निशाचरवीरविजयोत्तरः—निशाचरवीराणाम् = राक्षसशूराणाम् विजयः = जय एव उत्तरः = परिणामः यस्य यस्मिन् वा तादृशः ॥

अन्वयः—रघुपतेः, अग्रेसरी, परिणद्धपाककिम्पाकपाटलमुखी, कपिवीरसेना, राक्षस-वीरचक्रम्, तपनस्य, प्रातः प्रभा, तमिस्रजालम्, इव, निःशेषम्, आपिबति ॥ २१ ॥

अग्रेसरीति । रघुपतेः = रामचन्द्रस्य, अग्रेसरी = अग्रे वर्धमाना, परिणद्धपाक-किम्पाकपाटलमुखी—परिणद्धः = परिपूर्णः पाकः = पक्विमा यस्य तादृशो यः किम्पाकः=

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावणः—आः, कथमुत्कण्ठायितं मर्कटैः। (उच्चैः) कः कोऽत्र भोः। मदाज्ञया—

कृत्वा विनिद्रमपनिद्रभुजावलेपः
प्रोद्दामरामसमराय स कुम्भकर्णः।
आदिश्यतां निजभुजार्दितवज्रपाणि-
रद्यैव लक्ष्मणरणाय च मेघनादः॥ २२॥

(पुनर्नेपथ्ये)

देव, भवदाशयविदा महामन्त्रिणा माल्यवता पूर्वमेव संविहितमिदम्। इदानीं हि

रामेण सार्धमयमुद्धतबाहुदर्पः
संग्रामभूमिमधितिष्ठति कुम्भकर्णः।
रक्षःशिखण्डिहृदयोत्सवमेघनादः
सौमित्रिणा सममसावपि मेघनादः॥ २३॥

(पुनर्नेपथ्ये)

यद्दंष्ट्रावज्रघातैः समिति विदलिताः शैलकल्पाः कपीन्द्राः
यन्नाराचाम्बुवर्षैर्दवदहनसमाः शामिता वानरेन्द्राः।
वीरोऽसौ कुम्भकर्णः स च समरकथाकौतुकी मेघनादः
सञ्जातौ

रावणः—किमतःपरं वदिष्यति।

(पुनर्नेपथ्ये)

हा पतङ्गौ दशरथसुतयोर्दारुणे बाणवह्नौ॥ २४॥

अभक्ष्यफलविशेषः इव पाटलम् = रक्तम् मुखम् = आननम् यस्याः सा, कपिवीरसेना—कपिवीराणाम् = वानरवीराणाम् सेना = चमूः, राक्षसवीरचक्रम् = राक्षसवीरसमूहम्, तपनस्य = सूर्यस्य, प्रातः = प्रातःकालीना, प्रभा = कान्तिः, तमिस्रजालम्—अन्धकारसमूहम्, इव = यथा, निःशेषम् = सम्पूर्णं यथा तथा, आपिबति = आचामति, विनाशङ्कयतीति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ २१॥

अन्वयः— विनिद्रम्, कृत्वा, अपनिद्रभुजावलेपः, सः, कुम्भकर्णः, प्रोद्दामरामसमराय, निजभुजार्दितवज्रपाणिः, मेघनादः, च, लक्ष्मणरणाय, अद्य, एव, आदिश्यताम्॥ २२॥

स्वानुचरानादिशति रावणः—कृत्वेति। विनिद्रम्—विगता = अपगता निद्रा = स्वापः यस्य सः तादृशम्, प्रबुद्धमित्यर्थः, कृत्वा = विधाय, अपनिद्रभुजावलेपः—अपनिद्रः = जाग्रत् भुजयोः = बाह्वोः अवलेपः = गर्वः यस्य सः, उद्दण्डभुजगर्वः इत्यर्थः, सः = वीरत्वेन विख्यातः, कुम्भकर्णः=तदाख्यो मदनुजः, प्रोद्दामरामसमराय—प्रोद्दामः = प्रचण्डः रामेण = रामचन्द्रेण समरः तस्मै निजभुजार्दितवज्रपाणिः—निजाभ्याम् = स्वकीयाभ्याम् भुजाभ्याम् = बाहुभ्याम् अर्दितः = मर्दितः वज्रपाणिः = कुलिशायुधः इन्द्र इत्यर्थः येन सः, मेघनादः = इन्द्रजेता मदीयः पुत्रः, च = अपि, लक्ष्मणरणाय—लक्ष्मणेन = सौमित्रिणा रणाय = संग्रामाय, अद्यैव = अस्मिन्नेव दिने, आदिश्यताम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रावण—आह ! क्या वानरों ने उत्कण्ठा का प्रदर्शन किया है ? (जोर से) अरे, यहाँ कौन-कौन (है) ? मेरी आज्ञा से—

जगाकर प्रबुद्ध बाहुगर्व से युक्त अद्वितीय योद्धा कुम्भकर्ण राम के साथ भयङ्कर संग्राम के लिए तथा अपनी भुजाओं से मर्दित किया है इन्द्र को जिसने ऐसा मेघनाद लक्ष्मण के साथ युद्ध के लिए आज ही आज्ञा दे दिये जायँ ॥ २२ ॥

(फिर पर्दे के पीछे)

महाराज, आपके अभिप्राय को जाननेवाले महामन्त्री माल्यवान् ने पहले से यह (कार्य) कर दिया है। सम्प्रति—

प्रचण्ड भुजदर्पवाले यह कुम्भकर्ण राम के साथ (तथा) राक्षसरूप मयूरों के हृदय में आनन्द (उत्पन्न करने) के लिए मेघगर्जन के समान गर्जन करनेवाले यह मेघनाद भी लक्ष्मण के साथ समराङ्गण में विद्यमान है ॥ २३ ॥

(फिर पर्दे के पीछे)

संग्राम में जिसके दाँतों के वज्रतुल्य प्रहारों से पर्वतसदृश बड़े-बड़े वानर विदीर्ण कर दिये गये। जिसके बाण रूपी जल की वृष्टियों से वनाग्नि के समान महान् बन्दर शान्त कर दिये (अर्थात् मार डाले) गये। वही वीर कुम्भकर्ण और संग्राम की कला में उत्सुक जगद्विदित योद्धा (सः) मेघनाद भी।

रावण—इसके बाद क्या कहेगा ?

(फिर पर्दे के पीछे)

हाय ! दशरथ के पुत्रों के भयङ्कर बाणाग्नि में पतङ्ग (कीड़ा) हो गये (अर्थात् जैसे आग के ऊपर कूद कर पतङ्ग मर जाते हैं उसी तरह वे भी मर गये) ॥ २४ ॥

आज्ञाप्यताम्। कुम्भकर्णो रामेण तथा मेघनादो लक्ष्मणेन च सह योद्धुं व्रजत्विति भावः। अत्र रूपकमलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—उद्धतबाहुदर्पः, अयम्, कुम्भकर्णः, रामेण, सार्धम्, रक्षःशिखण्डिहृदयोत्सवमेघनादः, असौ, मेघनादः, अपि, सौमित्रिणा, समम्, संग्रामभूमिम्, अधितिष्ठति ॥ २३ ॥

रामेणेति। उद्धतबाहुदर्पः—उद्धतः=उन्मत्तः बाहुदर्पः=भुजबलगर्वः यस्य स तादृशः, अयम् = एषः, कुम्भकर्णः, रामेण = रामचन्द्रेण, सार्धम् = साकम्, तथा, रक्षःशिखण्डिहृदयोत्सवमेघनादः—रक्षांसि = निशाचराः एव शिखण्डिनः = मयूराः तेषां हृदयेषु = चेतःसु उत्सवाय = आनन्दाय मेघस्य = जलदस्य नादः = गर्जनमिव नादः यस्य स तादृशः, असौ = सः, मेघनादः = इन्द्रजित्, अपि, सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन, समम् = साकम्, संग्रामभूमिम् = युद्धाङ्गणम्, अधितिष्ठति = आश्रयति। अत्र रूपकमलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—समिति, यद्ग्रावज्रघातैः, शैलकल्पाः, कपीन्द्राः, विदलिताः; यन्नाराचाम्बुवर्षैः, दवदहनसमाः, वानरेन्द्राः, शमिताः; असौ, वीरः, कुम्भकर्णः, समरकलाकौतुकी, सः, मेघनादः, च, हा ! दशरथसुतयोः, दारुणे, बाणवह्नौ, पतङ्गाः, सञ्जाताः ॥ २४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(मन्दोदरीरावणौ मूर्च्छतः)

प्रहस्तः—देव, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(समाश्वस्य) देवि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

मन्दोदरी—(समाश्वस्य) परित्रायतु मामार्यपुत्रः । एषा निमग्नास्मि शोकतिमिरे । [परित्ताअदु मं अज्जउत्तो । एसा णिमग्गम्हि सोअतिमिरे ।]

रावणः—अयि, अलं कातरतया । अयं चन्द्रहासचन्द्र एव शोकतिमिरादुद्धरिष्यति भवतीम् । (पुनरुत्थाय खड्गमुद्यम्य) पश्यात्यमसौ मे—

भिन्नप्रभिन्नसुरकुञ्जरकुम्भमुक्त-
मुक्ताफलैर्विचलितैः कलिताधिवासः ।
अद्यैव खेचरनिशाचरलोचनाना-
मुन्मीलयन्मुदमुदञ्चति चन्द्रहासः ॥ २५ ॥

(इति प्रहस्तेन सह निष्क्रान्तः)

मन्दोदरी—अये, आश्चर्यम् । समरसंरम्भविलोकनविस्मयास्तिमितमिदं विद्याधरमिथुनं किमपि मन्त्रयति । तेन आर्यपुत्रस्य विजयार्थमहमपि निजकुलदेवता अर्चितुं गच्छामि ।

[अये, अच्चरिअं । समरसंरम्भविलोअणविह्मअत्थिमिदमिदं विज्जाहरमिहुणं किंपि मन्तेदि । तेण ह्नि अज्जउत्तस्स विजअत्थं अहं पि णिअकुलजेवदाओ अच्चिदु गच्छह्मि । (इति निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति विद्याधरमिथुनम्)

विद्याधरी—आर्यपुत्र, कोऽयं रणरभसविलसत्पुलकभरकुड्मलितभुजवनः कश्चिन्मृ-चक्रमभिवर्तते ।

कुम्भकर्णस्य मेघनादस्य च निधनं वर्णयन्नाह—यद्दंष्ट्रेति । समिति = समरे, यद्दंष्ट्रावज्रघातैः—यस्य = कुम्भकर्णस्य दंष्ट्राभिः = दशनैः ये वज्रघाताः = वज्रवत्प्रहाराः तैः, शैलकल्पाः = पर्वतसदृशाः, कपीन्द्राः = वानरेन्द्राः, विदलिताः = मर्दिताः, यन्नाराचाम्बुवर्षैः—यस्य = मेघनादस्येत्यर्थः, नाराचाः = बाणाः एव अम्बूनि = जलानि तेषां वर्षणैः दवदहनसमाः = वनाग्नितुल्याः, वानरेन्द्राः = श्रेष्ठाः कपयः, शामिताः = शान्ताः कृताः, मारिता इत्यर्थः; असौ = सः, वीरः = शूरः, कुम्भकर्णः, समरकलाकौतुकी—समरकलायाम् = संग्रामक्रियायाम् कौतुकी = उत्कण्ठितः, सः = जन्द्रिदितो वीरः, मेघनादः; च = अपि, हा = इति खेदद्योतकमव्ययम्, दशरथसुतयोः = दशरथपुत्रयोः, रामलक्ष्मणयोरित्यर्थः, दारुणे = भयङ्करे, बाणवाह्नौ = शराग्नौ, पतङ्गौ = कीटौ, सञ्जातौ = संवृत्तौ । यथा वह्नौ आक्रम्य पतङ्गाः मृत्युमधिगच्छन्ति तथैव कुम्भकर्णमेघनादावपि रामलक्ष्मणयोर्बाणाग्नौ दग्धाविति भावः । अत्र रूपकोपमयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—विचलितैः, भिन्नप्रभिन्नसुरकुञ्जरकुम्भमुक्तमुक्ताफलैः, कलिताधिवासः, चन्द्रहासः, अद्यैव, खेचरनिशाचरलोचनानाम्, मुदम्, उन्मीलयन्, उदञ्चति ॥ २५ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
(मन्दोदरी और रावण मूच्छित होते हैं)

प्रहस्त—महाराज, धैर्य रक्खें, धैर्य रक्खें।

रावण—(धैर्य धारण कर) देवि, आश्वस्त होओ, आश्वस्त होओ।

मन्दोदरी—(आश्वस्त होकर) आर्य पुत्र मुझे बचाओ। यह (मैं) शोकान्धकार में डूब गयी हूँ।

रावण—अरे, दुःखी होने की आवश्यकता नहीं। यह चन्द्रहास (रावण की तलवार) रूपचन्द्र ही शोक रूपी अन्धकार से आपको बचायेगी। (फिर उठकर तथा तलवार उठाकर) देखो यह मेरी—

चञ्चल (गतिशील) देवगज (ऐरावत आदि) के छिन्न-भिन्न गण्डस्थलों से निकले हुए बड़े-बड़े मोती के दानों से संयुक्त तलवार आज ही (राम के भय से) आकाश में विचरण करनेवाले राक्षसों के हर्ष को बढ़ाती हुई (म्यान से) निकल रही है॥ २५॥

(ऐसा कहकर प्रहस्त के साथ निकल गया)

मन्दोदरी—अरे, आश्चर्य है! संग्राम की तीव्रता को देखकर आश्चर्य से स्तब्ध विद्याधरों की यह जोड़ी कुछ बातचीत कर रही है। अतः आर्यपुत्र के विजय के लिए मैं भी अपने कुल के देवताओं की पूजा करने के लिए जा रही हूँ। (ऐसा कह कर निकल गयी)।

(तदनन्तर विद्याधरों की जोड़ी प्रवेश करती है)

विद्याधरी—आर्यपुत्र, संग्राम करने के उत्साह के कारण सुशोभित रोमाञ्च-समूह से मुकुलित भुजवनवाला यह कौन वानर-सेना की ओर बढ़ रहा है?

स्वकीयं भाविनं कार्यं प्रकटयन्नाह—भिन्नप्रभिन्नेति। विचलितैः = प्रसरणशीलैः गतियुक्तैरित्यर्थः, भिन्नप्रभिन्नसुरकुञ्जरकुम्भमुक्तमुक्ताफलैः—भिन्नप्रभिन्नः = अतिशयेन विदीर्णः सुरकुञ्जरस्य = देवगजस्य, ऐरावतस्येत्यर्थः, यौ कुम्भौ = गण्डप्रदेशौ ताभ्यां मुक्तानि = निःसृतानि यानि मुक्ताफलानि = फलाकाराः मुक्ता इत्यर्थः, तैः, कलिताधिवासः—कलित = स्वीकृतः अधिवासः = निवासः यस्मिन् सः, चन्द्रहासः = रावणकृपाणः ('चन्द्रहासोऽसिमात्रके। दशग्रीवकृपाणे च' इति हैमः), अत्रैव = अस्मिन्नेव दिने, खेचरनिशाचरलोचनानाम्—खेचराः = रामभयात् पलाय्याकाशे गता इत्यर्थः ये निशाचराः = राक्षसाः तेषां लोचनानाम् = नेत्राणाम्, मुदम् = प्रसन्नताम्, उन्मीलयन् = सञ्जनयन्, उदञ्चति = कोशान्निसरतीत्यर्थः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ २५॥

मन्दोदरीति। समरसंरम्भविलोकनविस्मयस्तिमितम्—समरे = संग्रामे यः संरम्भः = वेगः तस्य विलोकनात् = अवलोकनात् विस्मयेन = आश्चर्येण स्तिमितम् = चकितम्॥

विद्याधरीति। रणरभसविलसत्पुलकभरकुड्मलितभुजवनः—रणे = संग्रामे रभसः = हर्षः ('रभसो वेगहर्षयोः' इत्यमरः) तेन विलसन् = शोभमानः यः पुलकभरः =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

[अज्जउत्त, को इमो रणरहसविअसन्तपुलअभरकुड्मलिदभुअवणो कविचमूचक्कं अहिवट्टदि ।]

विद्याधरः—प्रिये, स एष रामसमरकौतुकी दशकण्ठः ।

विद्याधरी—कः पुनरयमञ्जनपुञ्जच्छविशरीरः कपिवीरस्तस्य सम्मुखं परावर्तते ।

[को उण इमो अञ्जणपुञ्जच्छविसरीरो कविवीरो तस्स संमुहं परावट्टदि ।]

विद्याधरः—प्रिये, स एष विचित्रसमरशीलो नीलः । (विलोक्य सविस्मयम्) अहो,

वक्षस्थले किमपि नीलकरोज्झितेन
नीलाचलस्य शिखरेण कृतप्रहारः ।
लङ्केश्वरः स्मरति नूनमसौ वसन्त-
नीलोत्पलप्रहरणं हरिणेक्षणानाम् ॥ २६ ॥

(पुनः सकौतुकम्) पश्य पश्य ।

नीलोऽयं दशमुखपाणिपङ्कजाना-
मङ्केषु भ्रमरतुलां भ्रमन्बिभर्ति ।
अप्येको दशसु किरीटपीठिकासु
द्राक्प्रेङ्खन्ननुभवतीन्द्रनीललीलाम् ॥ २७ ॥

विद्याधरी—कः पुनरयं निशाचरेन्द्रेण समं समरसाहसमङ्गीकृत्य तिष्ठति ।

[को उण इमो णिसाअरेन्देण समं समरसाहसमङ्गीकरिअ चिट्ठदि ।]

विद्याधरः—स एष स्वामिपक्षपाती विभीषणः । (सविषादम्) हन्त भोः,

येयं विभीषणे शक्तिर्मुक्ता क्रूरेण रक्षसा ।

विद्याधरी—अथ किं तस्याः ।

[अह किं ताए ।]

विद्याधरः—

लक्ष्मणेन गृहीतेयं प्रियेव निजवक्षसा ॥ २८ ॥

रोमाञ्चसमूहः तेन कुड्मलितम् = कलिकाच्छादितम् भुजवनम् = बाहुसमूहः यस्य सः, कपिचमूचक्रम् = वानरसैन्यसमवायम्, अभिवर्तते = अभिवर्द्धते ॥

अन्वयः—नीलकरोज्झितेन, नीलाचलस्य, शिखरेण, वक्षःस्थले, किमपि, कृतप्रहारः, लङ्केश्वरः, नूनम्, हरिणेक्षणानाम्, वसन्तनीलोत्पलप्रहरणम्, स्मरति ॥ २६ ॥

वक्षःस्थल इति । नीलकरोज्झितेन—नीलस्य = नीलनामकस्य वानरस्य करोज्झितेन = हस्तप्रक्षितेन, नीलाचलस्य = नीलपर्वतस्य, शिखरेण = शृङ्गेण, वक्षःस्थले = उरःस्थले, किमपि = किञ्चित्, कृतप्रहारः = आहतः, असौ = एषः, लङ्केश्वरः = रावणः, नूनम् = अवश्यम्, हरिणेक्षणानाम् = मृगलोचनानाम्, वसन्तनीलोत्पलप्रहरणम्—वसन्ते = ऋतुराजे नीलोत्पलैः = नीलकमलैः प्रहरणम् = क्रीडायां ताडनम्, स्मरति = ध्यायति । अत्र स्मरणोत्प्रेक्षयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—अयम्, नीलः, दशमुखपाणिपङ्कजानाम्, अङ्केषु, भ्रमन्, भ्रमरतुलाम्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विद्याधर—प्रिये, यह राम के साथ संग्राम करने के लिए उत्कण्ठित दशकण्ठ है।

विद्याधरी—काजल की ढेर की तरह शरीर की कान्ति से सम्पन्न यह कौन वानर वीर उसके सामने बढ़ रहा है ?

विद्याधर—प्रिये, यह विलक्षण संग्राम करने की आदतवाला नील है। (देखकर, आश्चर्य के साथ) अहो,

नील (नामक वानर) के हाथ से छोड़े गये, नीलपर्वत की चोटी से वक्षःस्थल पर कुछ ताड़ित होकर यह रावण निश्चय ही सुन्दरी स्त्रियों के द्वारा वसन्त ऋतु में नीले कमल के प्रहार का स्मरण कर रहा है। २६ ॥

विशेष—वसन्तनीलोत्पलप्रहरणम्—प्राचीन समय में सम्पन्न विलासी व्यक्ति वसन्त ऋतु आने पर अपने उद्यान में सुन्दरियों के साथ काम-क्रीडा किया करते थे। वैसी अवस्था में स्त्रियाँ पुरुष को फूलों से मारती थीं। कामोद्दीपन का यह एक विलक्षण प्रकार था ॥ २६ ॥

(फिर कौतुक के साथ) देखो, देखो—

यह नील रावण के कर कमलों के मध्य में घूमता हुआ भौंरे की समानता को धारण कर रहा है (अर्थात् भौंरे के समान मालूम पड़ रहा है)। अकेला भी (यह) दशों मुकुटपटलों पर शीघ्रता से भ्रमण करता हुआ इन्द्रनील मणि की शोभा का अनुभव कर रहा है ॥ २७ ॥

विद्याधरी—अच्छा, राक्षसराज (रावण) के साथ संग्राम करने के साहस को स्वीकार करके यह कौन स्थित है ? (अर्थात् यह कौन व्यक्ति रावण के साथ संग्राम करने का साहस कर रहा है ?) ।

विद्याधरी—यह प्रभु-पक्षपाती विभीषण है। (खेद के साथ) हाय, अरे !

क्रूर राक्षस (रावण) के द्वारा विभीषण के ऊपर जो यह शक्ति छोड़ी गयी थी।

बिभर्ति; एकः, अपि, दशसु, किरीटपीठिकासु, द्राक्, प्रेङ्खन्, इन्द्रनीललीलाम्, अनुभवति ॥ २७ ॥

नीलोऽयमिति। अयम् = एषः, नीलः = नीलनामा वानरः, दशमुखपाणिपङ्कजानाम्—दशमुखस्य = रावणस्य पाणिपङ्कजानाम् = हस्तकमलानाम्, अङ्केषु = क्रोडेषु, भ्रमन् = विहरन्, भ्रमरतुलाम्—भ्रमरस्य = द्विरेफस्य तुलाम् = सादृश्यम्, बिभर्ति = धारयति। एकोऽपि = केवलोऽपि, दशसु = दशसंख्याकासु, किरीटपीठिकासु = मुकुटपटलेषु, द्राक् = झटिति, प्रेङ्खन् = चलन्, इन्द्रनीललीलाम्—इन्द्रनीलस्य = इन्द्रनीलमणेः लीलाम् = शोभाम्, अनुभवति = लभते। रावणमुकुटखचितनीलमणिरिव नीलः प्रतीभातीत्यर्थः। एतेन रावणशरीरापेक्षया नीलशरीरस्य स्वल्पता प्रतिपादिता। अत्र रूपकोपमयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः। प्रहर्षिणी वृत्तम्। वृत्तलक्षणम्—'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ॥' २७ ॥

अन्वयः—क्रूरेण, रक्षसा, विभीषणे, या, इयम्, शक्तिः, मुक्ता; इयम्, लक्ष्मणेन,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विद्याधरी—हा धिक् हा धिक् ।

[हद्धी हद्धी ।]

विद्याधरः—

वर्षन्नेव समन्ततो दशमुखं चापच्युतैः सायकैः
सौमित्रिं च विसंज्ञमङ्कनिहितं नेत्रच्युतैरम्बुभिः ।
एतत्तर्कय हर्षशोकतरलाः कुर्वन्कपीनां दृशो
रामश्चामलकेलिवीरकरुणव्यामिश्रतां गाहते ॥ २९ ॥

(विलोक्य) कथमपगत एव रामबाणपीडितो दशकण्ठः ।

(नेपथ्ये)

हा वत्स लक्ष्मण विकासय नेत्रपद्मे
मा गादिदं युगपदेव समस्तमस्तम् ।
भाग्यं दिवाकरकुलस्य च जीवितं च
रामस्य किं च नयनाञ्जनमूर्मिलायाः ॥ ३० ॥

विद्याधरः—हन्त, सोऽयमनुवत्सलस्य रामस्य विलापः ।

(नेपथ्ये)

देव, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

प्रिया, इव, निजवक्षसा, गृहीता ॥ २८ ॥

येयमिति । क्रूरेण = दयाशून्येन, रक्षसा = निशाचरेण, रावणेनेत्यर्थः, विभीषणे = रामपक्षपातिनि स्वानुजे विभीषणे, या, इयम् = एषा, अङ्गुल्या निर्दिष्टेत्यर्थः, शक्तिः = शक्तिनामकं प्रहरणम् , मुक्ता = प्रक्षिप्ता, इयम् = एषा, लक्ष्मणेन = सौमित्रिणा, प्रियेव = प्रेयसीव, निजवक्षसा—निजेन = स्वकीयेन वक्षसा = उरःस्थलेन, गृहीता = स्वीकृता । यथा प्रिया वक्षसाऽऽलिङ्ग्यते तथैव शक्तिरपि लक्ष्मणेन वक्षसा गृहीतेति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—चापच्युतैः, सायकैः, समन्ततः, दशमुखम् , नेत्रच्युतैः, अम्बुभिः, विसंज्ञम् , अङ्कनिहितम् , सौमित्रिम् , च, वर्षन् , एव, कपीनाम् , दृशः, हर्षशोकतरलाः, कुर्वन्, रामः, अमलकेलिवीरकरुणाव्यामिश्रताम् , गाहते;—एतत् , तर्कय ॥ २९ ॥

रामस्यावस्थां वर्णयन्नाह—वर्षन्निति । चापच्युतैः—चापात् = धनुषः च्युतैः = निर्गतैः, सायकैः = बाणैः, समन्ततः = सर्वतः, दशमुखम् = रावणम् , तथा, नेत्रच्युतैः = नेत्राभ्याम् = लोचनाभ्याम् च्युतैः = पतितैः, अम्बुभिः = जलैः, अश्रुभिरित्यर्थः, विसंज्ञम्—विगता = अपगता संज्ञा = चेतना यस्य तम् , मूर्च्छितमित्यर्थः, अङ्कनिहितम्—अङ्के = क्रोडे निहितम् = स्थापितम् , सौमित्रिम् , = लक्ष्मणम् , च, वर्षन् = वर्षणं कुर्वन् , एव, कपीनाम् = वानराणाम् , दृशः = लोचनानि, हर्षशोकतरलाः—हर्षशोकाभ्याम् = प्रसन्नता-खेदाभ्याम् , रावणे समन्ततः बाणमोक्षणात् हर्षोऽपगतचेतने लक्ष्मणे नेत्राम्बुवर्षणात्

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विद्याधरी—उसका क्या हुआ ?

विद्याधर—उसे लक्ष्मण ने प्रिया की तरह, अपने वक्षःस्थल से ग्रहण किया ॥ २८ ॥

विद्याधरी—हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है।

विद्याधर—धनुष से छूटे हुए बाणों से चारों ओर से रावण पर तथा आँखों से गिरी हुई आँसुओं से मूर्च्छित (एवं) गोद में रक्खे गये लक्ष्मण पर वर्षा करते हुए ही, वानरों के नेत्रों को (रावण पर बाण वर्षा कर) हर्ष तथा (लक्ष्मण पर आँसू बहाकर) शोक से चञ्चल करते हुए राम निर्मल विलासवाले वीर तथा करुण (रस) के सङ्गम का अवगाहन कर रहे हैं—ऐसा समझो ॥ २९ ॥

(देखकर) राम के बाण से पीड़ित रावण क्या (संग्रामस्थल से) चला ही गया ?

(पर्दे के पीछे)

हाय वत्स लक्ष्मण, (अपने) नेत्रकमलों को विकसित करो (अर्थात् खोलो)। सूर्य वंश का भाग्य, राम का जीवन और उर्मिला की आँखों का काजल—यह सब कुछ एक साथ ही अस्त न हो जाय (मिट न जाय) ॥ ३० ॥

विद्याधर—हाय, छोटे भाई पर स्नेह रखनेवाले राम का यह विलाप है।

(पर्दे के पीछे)

महाराज, धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये।

शोको ज्ञेयः, तरलाः = चञ्चलाः, कुर्वन् = विदधत्, रामः = रामचन्द्रः, अमलकेलिवीरकरुणाव्यामिश्रताम्—अमला = स्वच्छा केलिः = विलसितं ययोः तौ तादृशौ यौ वीरकरुणौ = वीरकरुणरसौ तयोः व्यामिश्रताम् = सङ्गमम्, गाहते = प्रविशति; एतत् = इति, तर्कय = विचारय। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—हा वत्स लक्ष्मण, नेत्रपद्मे, विकासय; दिवाकरकुलस्य, भाग्यम्, च, रामस्य, जीवितम्, च, ऊर्मिलायाः, नयनाञ्जनम्,—इदम्, समस्तम्, युगपत्, एव, अस्तम्, मा गात् ॥ ३० ॥

मूर्च्छितं लक्ष्मणं विलोक्य विलपन् राम आह—हा वत्सेति। हा वत्स लक्ष्मण = हा स्नेह्य लक्ष्मण, नेत्रपद्मे—नयनकमले, विकासय = उन्मीलय; यतः, दिवाकरकुलस्य—दिवाकरस्य = सूर्यस्य कुलम् = वंशः तस्य, भाग्यम् = भागधेयम्, च = तथा, रामस्य = रामचन्द्रस्य, ममेत्यर्थः, जीवितम् = जीवनम्, च = तथा, ऊर्मिलायाः = तव लक्ष्मणस्य पत्न्याः, नयनाञ्जनम् = नेत्रकज्जलम्, विधवायाः नेत्राञ्जनादिप्रतिषेधः शास्त्रे, इदम् = एतत्, समस्तम् = सर्वम्, युगपत् = एककालम्, एव, अस्तम् = विनाशम्, मा गात् = न गच्छतु। 'माङि लुङ्' इति लुङ्, 'न माङ्योगे' इत्यडभावः। तव मरणे मम मरणं ध्रुवम्। मयि विनष्टे रघुकुलं विनङ्क्ष्यतीति निश्चितम्। वैधव्यशीलत्वादूर्मिलायाः नेत्रादिप्रसाधनञ्चाप्यपगतं भविष्यतीति सर्वमेवास्तङ्गमिष्यतीति भावः। तुल्ययोगिताऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विद्याधरी—कथं सुग्रीवेण समाश्वास्यते रामचन्द्रः । तत्किमिदानीमालपिष्यति ।
[कहं सुग्गीवेण समासासीअदि रामचन्दो । ता किं दाणीं आलविस्सदि ।]
विद्याधरः—आकर्णयावत्तावत्सुग्रीवेण समाश्वास्यमानः किमाह रामः ।

(नेपथ्ये)

सखे सुग्रीव, कथमाश्वास्यते ।

अयि राघवाविति सुधामधुरं विनिपीय पौरमुनिलोकवचः ।
अयि राघवेति गरलप्रतिमं कथमद्य रामहतकः पिबतु ॥ ३१ ॥

अपि च—

कनीयस्या मातुः कृतचरणपातः कथमहं
सहिष्ये मत्पार्श्वे विफलपरिवर्तं नयनयोः ।
अये शान्तं पापं कठिन इव चेज्जीवितुमना
विना वत्सं रामः पुनरयमयोध्यां प्रविशति ॥ ३२ ॥

विद्याधरः—अहह ! करुणैकार्णवो वर्तते । (विमृश्य) कः पुनरिह प्रतीकारः । (विचिन्त्य) अथवा का प्रतीकारकथा । वक्रो हि विधिः ।

विद्याधरी—वक्रतर इति भणितव्यम् । इदं पश्य । नन्वयं वानर एव कोऽपि लङ्केश्वर-कृतसन्धानः करकलितशैलशिखरो रामसम्मुखमेव परिवर्तते ।

[वक्कदरोत्ति भणिज्जं । इदं पेक्ख । णं इमो वाणरो जेव्व कोवि लङ्केसरकिदसंधाणो करकलिदसैलसिहरो रामसंमुहं जेव्व परिवट्टदि ।]

विद्याधरः—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् । अयि मुग्धे, मैवं वादीः । अयं हि—

अन्वयः—'अयि, राघवौ', इति, सुधामधुरम् , पौरमुनिलोकवचः, विनिपीय; अद्य, 'अयि, राघव', इति गरलप्रतिमम् , (वचः), रामहतकः, कथम् , पिबतु ॥ ३१ ॥

सुग्रीवं प्रति आह—अयि राघवाविति । अयि राघवौ = हे रघुकुलोत्पन्नौ रामलक्ष्मणौ, इति = इत्थं द्विवचने सम्बोधनरूपमित्यर्थः, सुधामधुरम् = अमृतस्वादु, पौरमुनिलोकवचः—पौराः = नगरनिवासिनः मुनयः = ऋषयः लोकाः = सामान्यजनाः तेषां वचः = वचनम् , विनिपीय = प्रेम्णा श्रुत्वेत्यर्थः, 'अयि राघव' = हे राम, इति = इत्थं केवलमेकवचनरूपम् , अतः गरलप्रतिमम् = विषतुल्यम् , वचः इति शेषः, राम-हतकः = भाग्यविरहितो रामः, कथम् = केन प्रकारेण, पिबतु = शृणोत्वित्यर्थः । अत्रो-पमालङ्कारः । प्रमिताक्षरा वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—कृतचरणपातः, अहम् , मत्पार्श्वे, कनीयस्याः, मातुः, नयनयोः, विफल-परिवर्तम् , कथम् , सहिष्ये ! अये ! वत्सम् , विना, जीवितुमनाः, इव, अयम् , रामः, पुनः, अयोध्याम् , चेत् , प्रविशति, पापम् , शान्तम् ॥ ३२ ॥

कनीयस्या इति । कृतचरणपातः—कृतः=विहितः चरणयोः पातः = पतनम् येन सः, कृतप्रणामः इत्यर्थः, अहम् = रामः, मत्पार्श्वे = मदन्तिके, लक्ष्मणोचिताधिष्ठाने इत्यर्थः, कनीयस्याः मातुः = मातुः सुमित्रायाः इत्यर्थः, नयनोः = नेत्रयोः, विफलपरिवर्तम् = अवलोकनार्थं तथा लक्ष्मणाभावे निष्फलं परिवर्तनमिति भावः, कथम् = केन प्रकारेण,

In Public domain, Digitization Muthulakshmi Research Academy

विद्याधरी—क्या सुग्रीव के द्वारा रामचन्द्र को ढाँढस बँधाया जा रहा है ? तो अब क्या कहेंगे ?

विद्याधर—सुना जाय कि सुग्रीव के द्वारा ढाँढस बँधाये गये राम क्या कहते हैं ?

(पर्दे के पीछे)

मित्र सुग्रीव, कैसे धैर्य धारण किया जाय ?

'हे राघवौ (अर्थात् राम और लक्ष्मण दोनों के लिए एक साथ द्विवचन का सम्बोधन), ऐसा अमृत के समान मधुर नागरिकों, मुनियों तथा साधारण जनता के वचन को सुनकर आज 'हे राघव' (अर्थात् केवल राम के लिए एक वचन का सम्बोधन पद)—ऐसा विष के सदृश (वचन) अभागा राम कैसे सुनेगा ? ॥ ३१ ॥

और भी—

चरणों में प्रणाम करके स्थित मैं अपने बगल में छोटी माँ (सुमित्रा) के नेत्रों के (लक्ष्मण के बिना) निष्फल परिवर्तन (मुड़-मुड़ कर देखने) को कैसे सहन करूँगा ? (अर्थात् जिस समय माँ सुमित्रा को प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो जाऊँगा उस समय वह मेरे अगल-बगल झाँक कर लक्ष्मण को देखने का प्रयास करेंगी। किन्तु लक्ष्मण के न होने से उनका यह प्रयास निष्फल होगा। तब इस दृश्य को देख कर मैं कैसे बर्दाश्त करूँगा ?)। अरे ! प्रिय छोटे भाई के बिना जीने की इच्छावाला (अतः) कठोर-सा यह राम फिर अयोध्या में यदि प्रवेश करता है—(तो) पाप शान्त हो ॥ ३२ ॥

विद्याधर—अहह ! करुणा का महान् सागर उपस्थित है। (सोचकर) इस विषय में क्या प्रतिकार (हो सकता है) ? (गहराई के साथ सोच कर) अथवा प्रतिकार की क्या बात है ? भाग्य ही (सम्प्रति) टेढ़ा है।

विद्याधरी—अधिक टेढ़ा है—ऐसा कहना चाहिये। यह देखिये—रावण के साथ सन्धि किया हुआ यह कोई वानर ही हाथ में पर्वत की चोटी लिये हुए राम की ओर ही लौट रहा है।

विद्याधर—(कानों को ढँक कर) पाप शान्त हो। अरी अनभिज्ञे, ऐसा मत कहो। यह—

सहिष्ये = मर्पयिष्यामि, सहनं करिष्यामि ? सोढुमशक्यमेतद्दृश्यं भविष्यतीति भावः। अये = विषादद्योतकमव्ययपदमिदम्, वत्सम् = प्रियं लक्ष्मणम्, विना, जीवितुमनाः—जीवितुम् = प्राणितुम् मनः = अभिलाषा यस्य स तादृशः, 'तुं काममनसोरपी'ति मकारलोपः, अतः कठिनः = वज्रहृदयः, इव, अयम् = एषः, रामः = रामचन्द्रः, लक्ष्मणाग्रजः इति भावः, पुनः = मुहुः, अयोध्याम् = स्वपुरीम्, चेत् = यदि, प्रविशति = प्रवेशं करोति, तर्हीति शेषः, पापम् = दुरितम्, एतत्कल्पनारूपं पापमित्यर्थः, शान्तम् = विनष्टम्, भवत्विति शेषः। लक्ष्मणं विना नाऽहमयोध्यां गमिष्यामीति भावः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ३२ ॥

विद्याधरीति। लङ्केश्वरकृतसन्धानः—लङ्केश्वरेण = रावणेन कृतम् = सम्पादितम्

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

महौषधीनामाधारं भूधरं गन्धमादनम् ।
आदाय लक्ष्मणप्राणत्राणायाभ्येति मारुतिः ॥ ३३ ॥

(पुनर्विलोक्य । सहर्षम्)

आमोदमाघ्राय महौषधीनां सौमित्रिरुन्मीलितपद्मनेत्रः ।
भूयोऽपि चक्रीकृतचारुचापः करोति रामं परिपूर्णकामम् ॥ ३४ ॥

विद्याधरी—कथं पुनरपि रामरणकौतूहलपुलकद्भुजमण्डलो निशाचराखण्डलः परापतित एव ।

[कहं पुणो वि रामरणकोदूहलपुलअन्तभुअमण्डलो णिसाअराखण्डलो परावडिदा जेव्व ।]

विद्याधरः—प्रिये, तदिदानीं सावधानं विलोकय । तुलाधिरोहः खल्वयं वीरलक्ष्म्याः । यन्नाम रामरावणयोः समर इति ।

विद्याधरी—कथं पुनः सकललोकवीरस्य रामचन्द्रस्यानेकवीरपरिभूतस्य रावणस्य तुलाधिरोहो वीरलक्ष्म्या भविष्यति ।

[कहं उण सअललोअवीरस्स रामचन्दस्स अणेकवीरपरिहूदस्स रावणस्स तुलाधिरोहो वीरलच्छीए हविस्सदि ।]

विद्याधरः—प्रिये, न जानासि । कथं दशकण्ठं विना

विन्यासं नाकनारीकुचकलशलसत्कुङ्कुमस्थासकाना-
मस्पृष्ट्वा मार्ष्टुर्सीदसिकलहकलाकोविदः को विदग्धः ।
भिन्नस्वर्गेभकुम्भस्थलबहलगलन्मौक्तिकव्यक्तहासः
कस्याक्रीडत्कराग्रे त्रिदशपतियशश्चन्द्रहाश्चन्द्रहासः ॥ ३५ ॥

सन्धानम् = सन्धिः येन तादृशः, करकलितशैलैकशिखरः—करे कलितम् = गृहीतम् शैलस्य = पर्वतस्य एकम् = केवलम् शिखरम् = शृङ्गम् येन तादृशः ॥

अन्वयः—मारुतिः, महौषधीनाम्, आधारम्, गन्धमादनम्, भूधरम्, आदाय, लक्ष्मणप्राणत्राणाय, अभ्येति ॥ ३३ ॥

महौषधीनामिति । मारुतिः = वायुपुत्रः हनुमान्, महौषधीनाम् = अत्यन्तलाभप्रदभेषजानाम, आधारम् = आकरम्, गन्धमादनम् = गन्धमादननामानम्, भूधरम् = पर्वतम्, आदाय = गृहीत्वा, लक्ष्मणप्राणत्राणाय—लक्ष्मणस्य = सौमित्रेः प्राणानाम् = असूनाम् त्राणाय = रक्षणाय, अभ्येति = आगच्छति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—महौषधीनाम्, आमोदम्, आघ्राय, उन्मीलितपद्मनेत्रः, सौमित्रिः, भूयः, अपि, चक्रीकृतचारुचापः, (सन्), रामम्, परिपूर्णकामम्, करोति ॥ ३४ ॥

आमोदमिति । महौषधीनाम्=अत्यन्तगुणप्रदौषधानाम्, आमोदम्=सौरभम्, आघ्राय =घ्राणविषयं कृत्वा, उन्मीलितपद्मनेत्रः—उन्मीलिते = उद्घाटिते पद्मनेत्रे = कमलनयने येन सः, सौमित्रिः = लक्ष्मणः, भूयः = मुहुः, अपि, चक्रीकृतचारुचापः—चक्रीकृतः = मण्डलीकृतः, आरोपित इत्यर्थः, चारुः = शोभनः चापः = धनुः येन तादृशः, सन्, रामम् =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
हनुमान् अत्यन्तगुणकारी ओषधियों के आधार गन्धमादन पर्वत को लेकर लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा के लिए आ रहे हैं ॥ ३३ ॥

(फिर देखकर, प्रसन्नता के साथ)

अत्यन्त गुणकारी ओषधों की खुशबू सूंघ कर, (अपने) कमलवत् नेत्रों को खोल कर लक्ष्मण फिर से सुन्दर धनुष को मण्डलाकार करते हुए (अर्थात् चढ़ाते हुए) राम को सफलमनोरथ बना रहे हैं ॥ ३४ ॥

विद्याधरी—क्या राम के साथ युद्ध करने की उत्कण्ठा से फूल रहा है भुजमण्डल जिसका ऐसा राक्षसेन्द्र (रावण) फिर से (संग्राम-भूमि) में आ ही गया ?

विद्याधरः—प्रिये, तो अब सावधानी के साथ देखो। वीरता-देवी का यह तुलाधिरोहण (तराजू पर चढ़ना) है (अर्थात् विजय एकदम बीच में स्थित है किसकी जीत होगी तथा किसकी हार यह अभी निर्णय हो जायगा)। क्योंकि (यह) राम और रावण का युद्ध है (किन्हीं साधारण व्यक्तियों का नहीं)।

विद्याधरी—सकल लोकों के अप्रतिम वीर राम तथा अनेक वीरों से पराजित रावण की वीरलक्ष्मी (वीरता-देवी) का फिर तुलाधिरोहण कैसे होगा ? (अर्थात् वीरतालक्ष्मी का तुलाधिरोह तो तब सम्भव है जब कि दोनों समान वीर हों। किन्तु राम और रावण में तो कोई समानता है ही नहीं। अतः उन दोनों की वीर लक्ष्मी का तुलाधिरोह कैसे सम्भव है ?)।

विद्याधर—प्रिये, नहीं जानती हो। क्या दशकण्ठ के बिना—

देवस्त्रियों के स्तनकलशों पर सुशोभित केसर के लेप के विन्यास को बिना हुए ही पोंछने में कौन, खड्ग-युद्ध की कला में पण्डित, निपुण है ? स्वर्ग के हाथियों के विदारित गण्डस्थल से पर्याप्त गिरनेवाली मोतियों के माध्यम से व्यक्त हास्यवाला, स्वर्ग के अधिपति (इन्द्र) के यशरूपी चन्द्र को विनष्ट करनेवाला, चन्द्रहास किसकी मुट्ठी में क्रीडा करता है ? ॥ ३५ ॥

रामचन्द्रम्, परिपूर्णकामम्—परिपूर्णः = सम्पन्नः कामः = मनोरथः यस्य स तादृशम्, करोति = विदधाति। अत्रोपमालङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ ३४ ॥

विद्याधरीति। रामरणकौतूहलफुल्लद्भुजमण्डलः—रामेण = रामचन्द्रेण सह रणे = संग्रामे यत् कौतूहलम् = उत्कण्ठा तेन फुल्लत् = पीवरता गच्छत् भुजमण्डलम् = बाहुवनम् यस्य सः, 'स्फुरद्भुजमण्डलः' इतिपाठे तु स्फुरत् = चलत् भुजमण्डलम् यस्य सः, निशाचराणाम् = राक्षसानाम् आखण्डलः = इन्द्रः, रावण इत्यर्थः ॥

विद्याधरीति। सकललोकवीरस्य—सकलेषु = समग्रेषु = भुवनेषु वीरस्य = वीरशब्दाभिधेयस्य, रामचन्द्रस्य = रामस्य, अनेकवीरपरिभूतस्य—अनेकैः = बहुभिः वीरैः = शूरैः, वालिकार्तवीर्यप्रभृतिभिः, परिभूतस्य = तिरस्कृतस्य; तुलाधिरोहः = मध्यस्थितिः ॥

अन्वयः—नाकनारीकुचकलशलसत्कुङ्कुमस्थासकानाम्, विन्यासम्, असृष्ट्वा,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च—

किं ब्रूमो दशकन्धरं निजचमूरक्षाकपाटी भव-
द्वक्षःपीठपतत्कठोरकुलिशाघातेषु जातस्मितम् ।
व्योमाभोगसरोविलासिनि वने यत्पाणिपङ्केरुहां
कैलासेन शिरःस्थितेन्दुकलिकोत्तंसेन हंसायितम् ॥ ३६ ॥

(नेपथ्ये)

हेलोन्मूलितचन्द्रचूडगिरयस्त्रैलोक्यदत्तापदो
लङ्कातङ्कहराः पुरन्दरपुरस्त्रीवृन्दबन्दीकृतः ।
वैदेहीकुचकुम्भकुङ्कुमरसव्यासङ्गबद्धस्पृहाः
सोत्कण्ठं दशकन्धरस्य जयिनः खेलन्ति दोःकेलयः ॥ ३७ ॥

(एव). मार्ष्टुम् , कः. असिकलहकलाकोविदः, विदग्धः, आसीत ? भिन्नस्वर्गेभकुम्भस्थलबहलगलन्मौक्तिकव्यक्तहासः, त्रिदशपतियशश्चन्द्रहा:, चन्द्रहासः, कस्य. कराग्रे. अक्रीडत् ? ॥ ३५ ॥

विन्यासमिति । नाकनारीकुचकलशलसत्कुङ्कुमस्थासकानाम्— नाकनार्यः=स्वर्गस्त्रियः तासां कुचकलशेषु=विशालस्तनेषु लसन्तः=शोभमानाः ये कुङ्कुमस्थासकाः=काश्मीरजविलेपनानि तेषाम् , विन्यासम = स्थितिम , अस्पृष्ट्वा = स्पर्शमकृत्वा, एवेति शेषः, मार्ष्टुम् = दूरीकर्तुम् , कः, असिकलहकलाकोविदः— असिकलहे = खड्गयुद्धे या कला = चातुरीत्यर्थः तस्यां कोविदः = निपुणः, विदग्धः = चतुरः, आसीत् = अस्ति ? देवान् विनास्य तेषां स्त्रीणां प्रसाधनं दूरीकर्तुं नान्यः प्रभवति विना रावणमिति भावः । भिन्नस्वर्गेभकुम्भेत्यादिः—भिन्नानि = खण्डितानि यानि स्वर्गेभानाम् = देवगजानाम् कुम्भस्थलानि = गण्डप्रदेशाः तेभ्यो बहलम् = प्रभूतं यथा स्यात्तथा गलन्ति = पतन्ति यानि मौक्तिकानि = मुक्ताफलानि तैः व्यक्तः = स्पष्टः हासः = हास्यम् , उज्ज्वलतेति भावः, यस्य सः, त्रिदशपतियशश्चन्द्रहा—त्रिदशपतिः = देवराज इन्द्रः तस्य यशः = कीर्तिः एव चन्द्रः = विधुः तं हन्ति = विनाशयतीति यः स एवम्भूतः, चन्द्रहासः = खड्गः, कस्य = रावणादृते कस्यान्यस्येत्यर्थः, कराग्रे = हस्ताग्रे, मुष्टावित्यर्थः, अक्रीडत् = क्रीडां करोतीति भावः । न कस्याऽपीति भावः । अत्र रूपकमलङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—निजचमूरक्षाकपाटीभवद्वक्षःपीठपतत्कठोरकुलिशाघातेषु, जातस्मितम् , दशकन्धरम् , किम् , ब्रूमः ? व्योमाभोगसरोविलासिनि, यत्पाणिपङ्केरुहाम् , वने, शिरःस्थितेन्दुकलिकोत्तंसेन, कैलासेन. हंसायितम् ॥ ३६ ॥

रावणस्य पराक्रमं वर्णयन्नाह—किं ब्रूम इति । निजचमूरक्षेत्यादिः—निजचमूनाम् = स्वसैन्यानाम् रक्षायाम् = त्राणे कपाटीभवत् = अररीभवत् यत् वक्षःपीठम्=विस्तीर्णमुरःस्थलम् तत्र पतन्तः = हन्यमानाः, प्रक्षिप्ताः इत्यर्थः, ये कठोराः = प्रबलाः कुलिशाः = वज्राणि तेषाम् आघातेषु = प्रहारेषु, जातस्मितम् = कृतपरिहासम् , दशकन्धरम् = रावणम् , किं ब्रूमः = किं कथयामः ? तत्प्रशंसावर्णनन्त्वशक्यसम्भव-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
और भी—

अपनी सेना की रक्षा में किवाड़ का काम देनेवाले विस्तीर्ण वक्षःस्थल पर गिरनेवाले कठोर वज्र के प्रहारों के होने पर (भी) मुस्करानेवाले रावण को क्या कहूं ? आकाश की परिधि रूप तालाब में क्रीडा करनेवाले, जिसके करकमलों के वन में, चोटी पर स्थित शङ्कर से युक्त कैलास (पर्वत) हंस के समान प्रतीत हुआ ॥ ३६ ॥

(पर्दे के पीछे)

बिना परिश्रम ही कैलाश पर्वत को उखाड़नेवाले, त्रिलोकीको आतङ्कित करनेवाले, लङ्का के भय को दूर करनेवाले, स्वर्ग की सुन्दरियों के समूह को बन्दी बनानेवाले, सीता के स्तन-कलशों के ऊपर केशर के रस को लगाने के लिए अभिलाषा करनेवाले, विजयी, रावण के बाहु-विलास (युद्ध-स्थल में) उत्कण्ठापूर्वक क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ३७ ॥

मित्यर्थः । व्योमाभोगसरोविलासिनि—व्योम्न. = आकाशस्य यः आभोगः = विस्तारः, परिधिरिति यावत् , स एव यत् सरः = जलाशयः तस्मिन् विलासिनि = प्रकाशमाने, यत्पाणिपङ्करुहाम्—यस्य = रावणस्य पाणयः = करः एव पङ्करुहः = पङ्कजानि तेषाम् , वनं = समूहे, शिरःस्थितेन्दुकलिकोत्तंसेन—इन्दुकलिका = बालचन्द्रः उत्तंसः = शिरोभूषणं यस्य स इन्दुकलिकोत्तंसः = महादेवः, शिरसि = शृङ्गे स्थितः = वर्तमानः इन्दुकलिकोत्तंसः = चन्द्रशेखरः शिवः यस्य स तेन तादृशेन, कैलासेन = कैलासपर्वतेन, हंसायितम् = हंसवदाचरितम् । अनायासेनाऽनेनोत्तालितः कैलासः इति भावः । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हेलोन्मूलितचन्द्रचूडगिरयः, त्रैलोक्यदत्तापदः, लङ्कातङ्कहराः, पुरन्दरपुरस्त्रीवृन्दबन्दीकृतः, वैदेहीकुचकुम्भकुङ्कुमरसव्यासङ्गबद्धस्पृहाः, जयिनः, दशकन्धरस्य, दोःकेलयः, सोत्कण्ठम् , खेलन्ति ॥ ३७ ॥

राक्षसा रावणं प्रशंसन्ते—हेलोन्मूलितेति । हेलोन्मूलितचन्द्रचूडगिरयः—हेलया = अनायासेन उन्मूलितः = उत्पाटितः चन्द्रचूडस्य = शशाङ्कशेखरस्य, शङ्करस्येत्यर्थः, गिरिः = पर्वतः यैस्ते, त्रैलोक्यदत्तापदः—त्रैलोक्यस्य = त्रिलोक्याः दत्ता = कृता आपत् = विपत्तिः यैस्ते, लङ्कातङ्कहराः—लङ्कायाः = स्वनगर्याः आतङ्कम् = शत्रुकृता भीतिम् हरन्ति = दूरीकुर्वन्ति ये ते, पुरन्दरपुरस्त्रीवृन्दबन्दीकृतः—पुरन्दरपुरस्य = इन्द्रनगरस्य, स्वर्लोकस्येत्यर्थः, यत्स्त्रीवृन्दम् = ललनासमवायः तस्य बन्दीकृतः = बन्धनकर्तारः, वैदेहीकुचकुम्भकुङ्कुमरसव्यासङ्गबद्धस्पृहाः—वैदेह्याः = जानक्याः यौ कुचकुम्भौ = स्तनकलशौ तयोः कुङ्कुमरसस्य = काश्मीरजद्रवस्य व्यासङ्गे = लेपने बद्धा = कृता स्पृहा = अभिलाषा यैस्ते, जयिनः = जयशीलाः, दशकन्धरस्य = रावणस्य, दोःकेलयः—दोष्णाम् = बाहूनाम् केलयः = विलासाः, सोत्कण्ठम् = साभिलाषम् , यथा तथा, खेलन्ति = क्रीडन्ति, युद्धाङ्गणे पराक्रमं प्रदर्शयन्तीति भावः । अत्र उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनर्नेपथ्ये)

हेलोन्मूलितचन्द्रचूडधनुषस्त्रैलोक्यदत्ताभया
लङ्कातङ्ककराः पुरन्दरपुरस्त्रीवृन्दवन्दीमुचः ।
वैदेहीकुचकुम्भकुङ्कुमरसव्यासङ्गलब्धोत्सवाः
सोत्कर्षं रघुनन्दनस्य जयिनः खेलन्ति दोःकेलयः ॥ ३८ ॥

विद्याधरः—नूनमयं राक्षसवानरयोर्निजस्वामिवर्णनानुसारी व्याहारः ।

विद्याधरी—कथं पुना रथस्थितेन रावणेन समं भूमिस्थितस्य राघवस्य समरो भविष्यति ।

[कहं उण रहट्ठिदेण रावणेण समं भूमिट्ठिदस्स राहवस्स समरो हविस्सदि ।]

विद्याधरः—प्रिये, पश्य । आनीत एव मातलिना पुरुहूतरथः । अधिष्ठितश्च विनयाभिरामेण रामेण ।

(नेपथ्ये)

अये, कथं

पूर्वमेव प्रयातानां खरमारीचवालिनाम् ।
सौजन्यमुग्धः पन्थानमधिवर्तितुमीहसे ॥ ३९ ॥

विद्याधरः—आकर्णयामस्तावदनेन रामवचनेन पीडितः किमाह रावणः ।

(नेपथ्ये)

खरः कीदृग्वाली कपिरपि च मारीचहतकः
कुरङ्गस्तान्हत्वा कथमपि कथं दृप्यसि मनाक् ।
अयं पश्य प्राप्तो दशवदननामा सुरपुरी-
करीन्द्राणां हेलारचितकदनः पञ्चवदनः ॥ ४० ॥

अन्वयः—हेलोन्मूलितचन्द्रचूडधनुषः, त्रैलोक्यदत्ताभयाः, लङ्कातङ्ककराः, पुरन्दरपुरस्त्रीवृन्दवन्दीमुचः, वैदेहीकुचकुम्भकुङ्कुमरसव्यासङ्गलब्धोत्सवाः, जयिनः, रघुनन्दनस्य, दोःकेलयः, सोत्कर्षम्, खेलन्ति ॥ ३८ ॥

वानरा विपरीतेन रामं स्तुवन्ति—हेलोन्मूलितेति । हेलोन्मूलितेत्यादिः—हेलया = क्रीडया उन्मूलितम् = खण्डितम् चन्द्रचूडस्य = शशाङ्कशेखरस्य, शिवस्येत्यर्थः, धनुः, यैस्ते, त्रैलोक्यदत्ताभयाः—त्रैलोक्याय = त्रिलोक्यै दत्तम् = समर्पितम् अभयम् = यैस्ते, लङ्कातङ्ककराः—लङ्कायाः = रावणनगर्याः आतङ्कम् = भीतिं कुर्वन्ति ये ते, पुरन्दरपुरेत्यादिः—पुरन्दरपुरस्त्रीवृन्दस्य = स्वर्नगरीललनासमूहस्य वन्दीम् = बन्धनम् मोचयन्ति ये ते, वैदेहीकुचेत्यादिः—वैदेहीकुचकुम्भयोः = जानकीस्तनकलशयोः कुङ्कुमरसस्य = काश्मीरजद्रवस्य व्यासङ्गेन = संसर्गेण लब्धः = प्राप्तः उत्सवः = आनन्दः यैस्ते, जयिनः = विजयशीलाः, रघुनन्दनस्य = रामस्य, दोःकेलयः = भुजविलासाः, सोत्कर्षम् = उत्कर्षेण सहितं यथा तथा, खेलन्ति = क्रीडन्ति । अत्रोपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—पूर्वम्, एव, प्रयातानाम्, खरमारीचवालिनाम्, पन्थानम्, (त्वम्)

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
(फिर पर्दे के पीछे)

अनायास ही चन्द्रशेखर (शङ्कर) के धनुष को तोड़नेवाले, त्रिलोकी को अभय प्रदान करनेवाले, लङ्का को आतङ्कित करनेवाले, इन्द्र की नगरी (अर्थात् स्वर्ग) की स्त्रियों के समूह को कारागार से छुड़ानेवाले, जानकी के स्तनकलशों पर केसर के रस को लगाने के आनन्द को प्राप्त करनेवाले, विजयशील, रामचन्द्र की भुजाओं के विलास उत्कृष्टतापूर्वक (युद्ध-स्थल में) खेल रहे हैं ॥ ३८ ॥

विद्याधर—निश्चय ही यह अपने-अपने स्वामी के वर्णन का अनुसरण करनेवाले राक्षसों और वानरों की उक्ति है।

विद्याधरी—अच्छा, रथ पर बैठे हुए रावण के साथ भूमि पर स्थित रामचन्द्र का संग्राम कैसे होगा ?

विद्याधर—प्रिये, देखो। मातलि ने इन्द्र का रथ (रामचन्द्र के लिए) ले आ ही दिया और विनय के कारण मधुर राम उस पर बैठ भी गये।

(पर्दे के पीछे)

अरे, क्या—

पहले ही गये हुए खर, मारीच और वाली के मार्ग का (तुम) मित्रता वश विवेकहीन होकर अनुसरण करना चाहते हो ? ॥ ३९ ॥

विशेष—सौजन्यमुग्धः—खर, मारीच और वाली रावण के अपने व्यक्ति थे। वे मर गये। अतः रावण उनके बिना नहीं जीवित रहना चाहता। यही कारण है कि वह मर कर उनके पास पहुँचना चाहता है। यह उसकी सुजनता है। इस बात को रामचन्द्र जी रावण से व्यङ्ग्यपूर्वक कह रहे हैं ॥ ३९ ॥

विद्याधर—अच्छा, सुना जाय कि राम के इस वचन से पीडित होकर रावण ने क्या कहा ?

(पर्दे के पीछे)

खर कैसा (वीर) था ? वाली वानर था तथा अभागा मारीच हरिण था। जिस किसी प्रकार से उनको जरा मार कर क्यों गर्वीले बन रहे हो ? देवपुरी (स्वर्ग) के विशाल गजराजों का बिना परिश्रम के ही मर्दन करनेवाला (यह) सिंह आ गया है—(ऐसा निश्चय ही) समझो (पश्य) ॥ ४० ॥

सौजन्यमुग्धः, (सन्), अधिवर्तितुम् , ईहसे ? ॥ ३९ ॥

रावणं प्रति राम आह—**पूर्वमेवेति**। पूर्वम् = प्राक् , एव, प्रयातानाम् = गतानाम् , मृतानामिति भावः, खरमारीचवालिनाम् = तत्तदाख्यबन्धूनाम् , पन्थानम् = मार्गम् , (त्वम् = रावणः), सौजन्यमुग्धः—सौजन्येन = सुजनभावेन मुग्धः = विवेकहीनः, सन् , अधिवर्तितुम् = अनुगन्तुम् , ईहसे = वाञ्छसि ? त्वमपि मद्बाणेन मृत्युं प्राप्स्यसीति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—खरः, कीदृक् ? वाली, कपिः, (आसीत्); अपि च, मारीचहतकः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अथवा—

कालीकेसरिकेसराञ्चलसटासाटोपसम्पादित-
क्रीडाचामरकोमलानिललवाचान्तश्रमाम्भःकणः ।
श्रीमानेष दशाननो विजयते तस्यास्यपञ्चानन-
व्यापारप्रतिपादनैरपि यशः कीदृक्समुन्मीलति ॥ ४१ ॥

विद्याधरः—अये, दशवदनवचनकुपितः किमपि वक्तुकाम इव लक्ष्यते लक्ष्मणः ।

(नेपथ्ये)

किं ते पञ्चाननतया दशाननतया वा । त्वमिदानीं

दूरोन्मुक्तमदो विभीषण इव न्यञ्चच्छिरःशेखरः
स्वच्छन्दं चरणारविन्दयुगले रामस्य भृङ्गो भव ।
रे नक्तञ्चर कुम्भकर्ण इव वा कर्णान्तचक्रीभव-
च्चापोत्सङ्गविमुक्तबाणदहने सद्यः पतङ्गो भव ॥ ४२ ॥

कुरङ्गः, (आसीत्); कथमपि, तान् , मनाक् , हत्वा, कथम् , दृप्यसि ? सुरपुरीकरीन्द्राणाम् , हेलारचितकदनः, पञ्चवदनः, प्राप्तः, (इति), पश्य ॥ ४० ॥

स्वं प्रशंसन् रामं प्रति रावण आह—खर इति । खरः = तन्नामको राक्षसः, कीदृक् = कीदृशः, वीर आसीदिति प्रश्नशेषः । वाली = अङ्गदपिता, कपिः = वानरः, आसीत् अतो न तस्याऽपि वीरेषु गणना कर्तव्येति भावः । अपि च = तथा, मारीचहतकः = भाग्यप्रताडितो मारीचराक्षसः, कुरङ्गः = हरिणः, आसीत् । अतो न तस्यापि वीरेषु गणना । कथमपि = येन केनापि प्रकारेण, पदत्रय परावृत्य खरम् , व्याध इव प्रच्छन्नो भूत्वा वालिनम् , पलायमानं मारीचमिति भावः, तान् = खरादीन् , मनाक् = किञ्चित् , हत्वा = विनाश्य, कथम् = केन हेतुना, दृप्यसि = गर्वितो भवसि । सुरपुरीकरीन्द्राणाम् —सुरपुर्याः = देवनगर्याः, स्वर्गस्येत्यर्थः, करीन्द्राणाम् = गजराजानाम् , हेलारचितकदनः—हेलया = क्रीडया रचितम् = कृतम् कदनम् = मर्दनम् येन स तादृशः, पञ्चवदनः = सिंहः ('सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः' इत्यमरः), अयमहमिति शेषः, प्राप्तः = आगतः, योद्धुमिति शेषः, इति, पश्य = अवलोकय । अत्र रूपकालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—कालीकेसरिकेसराञ्चलसटासाटोपसम्पादितक्रीडाचामरकोमलानिललवाचान्तश्रमाम्भःकणः, एष, दशाननः, विजयते, तस्य, अस्य, पञ्चाननव्यापारप्रतिपादनैः, अपि, कीदृक् , यशः, समुन्मीलति ॥ ४१ ॥

स्वकीयां सिंहोत्कृष्टतां प्रतिपादयन्नाह रावणः—कालीति । कालीत्यादिः—काल्याः = दुर्गायाः, अतिभयङ्करत्वप्रतिपादनार्थं कालीपदापादानम् यः केसरी = सिंहः तस्य केसराञ्चलसटा = स्कन्धदेशोत्पन्नरोमावली तया साटोपम् = साहङ्कारम् यथा तथा सम्पादितम् = रचितम् यत् क्रीडाचामरम् = क्रीडाप्रकीर्णकम् तस्य कोमलानिलस्य = स्निग्धवायोः लवेन = स्वल्पांशेन आचान्ताः = पीताः शोषं प्रापिता इत्यर्थः, श्रमाम्भ-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
अथवा—

(देवी) दुर्गा के (वाहन) सिंह के स्कन्ध पर स्थित बाल से साभिमान निर्मित तथा क्रीडापूर्वक (सञ्चालित) चामर के कोमल वायु के स्वल्पांश से सुखा दी गयी हैं पसीना की बूँदें जिसकी ऐसा यह श्रीमान् रावण सर्वाधिक उत्कृष्टता के साथ विराजमान है। वैसे इस (रावण) के लिए सिंह के व्यापार (अर्थात् पराक्रम-कार्य) को करने से भी कैसा यश मिलता है ? (अर्थात् महान् पराक्रमी रावण के लिए सिंह भी उपमान नहीं हो सकता) ॥ ४१ ॥

विद्याधर—अरे, रावण के वचन से कुपित लक्ष्मण कुछ कहने की इच्छावाले-से दिखाई पड़ रहे हैं।

(पर्दे के पीछे)

तुम्हारे पञ्चानन (सिंह) होने से अथवा दशानन होने से क्या ? तुम अभी—

रे निशाचर, दूर से ही गर्व छोड़ कर विभीषण के समान (अपने) शिर-मुकुट को झुका कर राम के चरण कमलों की जोड़ी में यथेच्छ भ्रमर बन जाओ, अथवा कुम्भकर्ण के समान कान तक (खींच कर) कुण्डलाकार बने हुए धनुष के मध्य भाग से छोड़े गये बाण की ज्वाला में शीघ्र ही फतिङ्गा बन जाओ (अर्थात् फतिङ्गे की तरह जल कर मर जाओ) ॥ ४२ ॥

साम = श्रमनिर्गतजलानाम् कणाः = शीकराः यस्य स तादृशः, श्रीमान् = शोभासम्पन्नः, दशाननः = दशग्रीवः, विजयते = सर्वोत्कृष्टतां भजते। तस्य = तादृशस्य, अस्य = एतस्य, रावणस्येत्यर्थः, पञ्चाननव्यापार-प्रतिपादनैः = पञ्चाननस्य = सिंहस्य व्यापारस्य = कार्यस्य प्रतिपादनैः = सम्पादनैः, अपि, कीदृक् = कीदृशम्, यशः = कीर्तिः, समुन्मीलति = समुल्लसते। पञ्चाननेन सह दशाननस्य साधारणत्वमधरीकरणमेव तस्येति भावः। आननसंख्यायाः द्विगुणत्वादिलपि। लक्ष्मीविलसित इत्यर्थः, एषः = तव पुरतः विलसन्, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—रे नक्तञ्चर, दूरोन्मुक्तमदः, विभीषणः, इव, न्यञ्चच्छिरःशेखरः, रामस्य, चरणारविन्दयुगले, स्वच्छन्दम्, भृङ्गः, भव; वा, कुम्भकर्णः, इव, कर्णान्तचक्रीभवच्चापोत्सङ्गविमुक्तबाणदहने, सद्यः, पतङ्गः, भव ॥ ४२ ॥

लक्ष्मणो रावणं प्रत्याह—दूरोन्मुक्तेति। रे नक्तञ्चर = रे निशाचर, रे इति तिरस्कारद्योतकमव्ययपदम्, दूरोन्मुक्तमदः—दूरात् = विप्रकृष्टस्थानात् उन्मुक्तः = परित्यक्तः मदः = गर्वः येन स तथाभूतः सन्, विभीषणः = स्वलघुभ्राता, इव = यथा, न्यञ्चच्छिरःशेखरः—न्यञ्चन् = नम्रीभवन् शिरःशेखरः = शिरोमुकुटः यस्य स तथा—भूतः भूत्वा, रामस्य = रामचन्द्रस्य, चरणारविन्दयुगले = पदपद्ममिथुने, स्वच्छन्दम् = यथेच्छं यथा तथा, भृङ्गः = भ्रमरः, भव = एधि। यथा भृङ्गः कमलमेकभावेन समाश्रयति तथैव त्वमपि रामचरणकमलमाश्रयस्वेति भावः। वा = अथवा, कुम्भकर्णः = स्वमध्यमभ्राता, इव = यथा, कर्णान्तचक्रीभवच्चापोत्सङ्गविमुक्तबाणदहने—कर्णान्ते =

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विद्याधरी—पश्य पश्य । इतः शरान्धकारं विस्तारयता निशामुखायितं दशमुखेन ।
[पेक्ख पेक्ख । इदो सरन्धआरं वित्थारअन्तेण णिसामुहायिदं दसमुहेण ।]

विद्याधरः—नन्वितस्तदेव निजविशिखमयूखधारया विनिवारयता चन्द्रायितं रामचन्द्रेण । (पुनः सकौतुकम्) अये, नूनमयं दिव्यास्त्रलीलया प्रतिहत-दिव्यास्त्रं निकृत्तचापं रावणं किमपि वक्तुकाम इव रामः ।

(नेपथ्ये)

निकृत्तचाप इति मा संक्षोभतरलो भव ।
शस्त्रमन्यदपि स्वैरं ननु रे समरे कुरु ।। ४३ ।।

विद्याधरी—आकर्णयतु तावत्किमिदानीं भणति रावणः ।
[आकण्णिअदु दाव किं दाणीं भणदि रावणो ।]

(नेपथ्ये)

आकर्णितस्तव दशाननबाहुदण्ड-
श्रीखण्डकाननफणी नवचन्द्रहासः ।
येन स्वनामभवसाम्यरुषेव पीतः
स्वर्लोकलोलनयनामुखचन्द्रहासः ।। ४४ ।।

विद्याधरः—लीलादलितचन्द्रहासः सोत्प्रासः किमधुना वदति रावणं रामचन्द्रः ।

(नेपथ्ये)

श्रोत्रान्ते चक्रीभवन्=कुण्डलीभवन् यः चापः=धनुः तस्य उत्सङ्गात्=अङ्कात् विमुक्तः=त्यक्तः यो बाणः=शरः तस्य दहने=वह्नौ, सद्यः=झटिति, पतङ्गः=कीटः, भव=एधि । यथा कीटो वह्निज्वालासमूहे पतन् विनाशमनुभवति तथैव त्वमपि रामबाणदहने भस्मीभवेति भावः । जीवन धारय हारय वेति तवेच्छानिर्भरमिति । उपमारूपकयोरत्र संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। ४२ ।।

विद्याधर इति । निजविशिखमयूखधारया—निजाः=स्वकीयाः ये विशिखाः=बाणाः तेषां मयूखधारया=किरणजालेन, चन्द्रायितम्=चन्द्र इवाऽऽचरितम् । प्रतिहतदिव्यास्त्रम्—प्रतिहतानि=विनाशितानि दिव्यानि=अलौकिकानि अस्त्राणि=आयुधानि यस्य तम् ।।

अन्वयः—ननु रे, निकृत्तचापः, (असि), इति, संक्षोभतरलः, मा भव; समरे, अन्यत्, अपि, शस्त्रम्, कुरु ।। ४३ ।।

निकृत्तचाप इति । 'ननु रे' इत्युन्मुखीकरणमव्ययपदम्, निकृत्तचापः—निकृत्तः=खण्डितः चापः=धनुः यस्य तादृशः, असीति शेषः, इति=एतत् विचार्य, संक्षोभतरलः—संक्षोभेन=मनःसन्तापेन तरलः=चञ्चलः, मा भव । कोऽन्यः प्रतिकारस्तदेत्याह—समरे=युद्धे, अन्यत्=इतरत्, अपि, शस्त्रम्=प्रहरणम्, कुरु=धारयेत्यर्थः ।। ४३ ।।

अन्वयः—दशाननबाहुदण्डश्रीखण्डकाननफणी, नवचन्द्रहासः, तव, आकर्णितः ? येन, स्वनामभवसाम्यरुषा, इव, स्वर्लोकलोलनयनामुखचन्द्रहासः, पीतः ।। ४४ ।।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विद्याधरी—देखो-देखो, इधर बाणों से अन्धकार फैलाते हुए दशमुख के द्वारा सन्ध्या के समान आचरण किया गया है।

विद्याधर—अरे, इधर उस (बाणान्धकार) को ही अपने बाण की किरणों के समूह से निवारण करते हुए रामचन्द्र के द्वारा चन्द्रमा के समान आचरण किया गया है। (फिर उत्कण्ठा के साथ) वाह, निश्चय ही यह राम (अपने) दिव्यास्त्र की लीला से कटे हुए दिव्यास्त्रवाले रावण को कुछ कहना-सा चाहते हैं।

(पर्दे के पीछे)

अरे (रावण), 'धनुष कट गया' ऐसा सोच कर क्षोभ से व्यग्र मत होओ। समर में दूसरे भी शस्त्र को धारण करो ॥ ४३ ॥

विद्याधरी—अच्छा सुनिये, अब रावण क्या कहता है ?

(पर्दे के पीछे)

रावण के बाहुदण्डरूप चन्दनवन का सर्परूप नूतन चन्द्रहास (खड्ग) तुमने सुना है ? जिस (चन्द्रहास) के द्वारा अपने नाम के साथ समानता होने के क्रोध से मानो स्वर्ग की सुनयनी स्त्रियों के मुखचन्द्र का हास्य पी लिया गया ॥ ४४ ॥

विशेष–स्वनामभवसाम्यरुषा—रावण ने अपनी तलवार (चन्द्रहास) के बल पर देवों को पराजित कर उनकी स्त्रियों को बन्दी बना लिया था। अतः उन स्त्रियों के मुखचन्द्र की मुस्कान (हास) समाप्त हो गयी थी। रावण का कहना है कि मेरा चन्द्रहास उन स्त्रियों के 'मुखचन्द्रहास' में अपने नाम को देख कर क्रुद्ध हो गया और उनके हास को पी लिया। ताकि नाम की समानता समाप्त हो जाय। नाम की समानता से उत्पन्न यह क्रोध लोक में सर्वत्र देखा जाता है ॥ ४४ ॥

विद्याधर—लीलापूर्वक चन्द्रहास को खण्डित करनेवाले, (अतः) उल्लसित रामचन्द्र सम्प्रति रावण को क्या कहते हैं ?

(पर्दे के पीछे)

आकर्णित इति। दशाननेत्यादिः—दशाननस्य=रावणस्य बाहुदण्डाः=भुजदण्डा एव ये श्रीखण्डाः=चन्दनवृक्षाः तेषां काननम्=अरण्यम् तस्य फणी=सर्पः, सर्परूप इति भावः, प्राणिहिंसत्वात् सर्पसाम्यम्. नवचन्द्रहासः=अचिरोद्गतचन्द्रविकास इव मम खड्ग इत्यर्थः, तव=त्वयेत्यर्थः, आकर्णितः=श्रुतः किम् ? येन=चन्द्रहासेन, स्वनामभवसाम्यरुषा—स्वनाम्नि=चन्द्रहास इति नामनि भवम्=जातम् यत् साम्यम्=समानता तेन या रुट्=क्रोधः तेन, इव, स्वर्लोकलोलनयनामुखचन्द्रहासः—स्वर्लोकस्य=स्वर्गस्य याः लोलनयनाः=मृगनयनाः तासां मुखचन्द्रस्य=आननसुधांशोः हासः=हास्यम्, पीतः=आचान्तः, विनाशित इति भावः। अत्र रूपकोत्प्रेक्षयोरसियोऽन-पेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४४ ॥

विद्याधर इति। लीलादलितचन्द्रहासः—लीलया=क्रीडया दलितः=खण्डितः चन्द्रहासः=रावणस्य खड्गः येन सः, सोल्लासः=सोल्लासः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अयि, तावदधुना लङ्केश्वरः खिद्यते ।
विद्याधरी—किमपीदानीं जल्पिष्यति रावणः ।
[किंपि दाणीं जप्पिस्सदि रावणो ।]

(नेपथ्ये)

कथमद्यैव लङ्केश्वरः खिद्यते । ननु रे,

विध्वस्ता दशभिर्भुजैर्दशदिशः प्रत्येकमेते पुन-
भारायैव दशापरे मम गिरिप्राग्भारभाजो भुजाः ।
आराध्यः शशिमौलिरम्बुधिजले निद्राति नारायणः
किङ्कर्तव्यतयानयानुदिवसं लङ्केश्वरः खिद्यते ॥ ४५ ॥

विद्याधरी—वचनमात्रमिदानीम् ।
[वअणमेत्तं दाणीं ।]
विद्याधरः—नहि नहि । पश्य पश्य । नन्वयमिदानीमपि—

धनुर्निस्त्रिंशादिप्रहरणगणच्छेदकुपितो
दशास्यः स्वान्मूर्ध्नो रघुपतिशिरश्रेणिदलितान्
करैरेकैरेकैर्नभसि भृशमादाय युगप-
त्क्षिपन्नन्यैरन्यैः सफलयति दोर्विंशतिमपि ॥ ४६ ॥

(पुनः सकौतुकम्)

अन्वयः—मम, दशभिः, भुजैः, प्रत्येकम्, दश, दिशः, विध्वस्ताः । गिरिप्राग्भारभाजः, मम, अपरे, दश, भुजाः, भाराय, एव । शशिमौलिः, आराध्यः । नारायणः, अम्बुधिजले, निद्राति । अनया, किङ्कर्तव्यतया, लङ्केश्वरः, अनुदिवसम्, खिद्यते ॥ ४५ ॥

अन्येन कारणेन स्वखेदं वर्णयन् निजपराक्रमं वर्णयति—विध्वस्ता इति । मम=जगद्विदितस्य रावणस्य, दशभिः=दशसंख्यकैः, भुजैः=बाहुभिः, प्रत्येकम्=एकैकं यथा स्यात्तथा, दश दिशः=दश काष्ठाः ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः), विध्वस्ताः=निर्जिताः, स्ववशीकृता इति भावः । गिरिप्राग्भारभाजः—गिरीणाम्=पर्वतानाम् प्राग्भारम्=शृङ्गम् ('शैलाग्रे शिखरं शृङ्गं दन्तः प्राग्भारमित्यपि' इति त्रिकाण्डशेषः) भजन्ति=पीवरतां स्वीकुर्वन्तीति तथाभूताः, मम = विंशतिभुजस्य रावणस्य, अपरे=अन्ये, दशभुजाः=दश बाहवः, भाराय=भारभूता एवेत्यर्थः, निरर्थकत्वादित्यभिप्रायः । कस्मात्तर्हि शङ्करेण नारायणेन वा सह सङ्ग्रामाम्बरं न रचयसीति जिज्ञासायामाह—शशिमौलिः=शङ्करः, आराध्यः=मम सेव्यः अस्तीति शेषः । नारायणः=विष्णुः, अम्बुधिजले=सागराभ्यन्तरे, निद्राति=स्वपिति ।

In Public domain, Digitization Muthulakshmi Research Academy

अरे, सम्प्रति लङ्केश्वर खिन्न हो रहा है।

विद्याधरी——अब रावण क्या कहेगा ?

(पर्दे के पीछे)

क्या आज ही लङ्केश्वर खिन्न हो रहा है ? सुन रे,

मेरी दश भुजाओं के द्वारा एक-एक करके दश दिशाएँ जीत कर वश में कर ली गयीं। पर्वत की चोटी के समान मेरी अन्य दश भुजाएँ भार के लिए ही (हैं)। शङ्कर (हमारे) आराध्य हैं (अतः उनसे युद्ध नहीं कर सकता)। नारायण सागर के जल में सो रहे हैं (अतः उनके साथ भी युद्ध का अवसर नहीं है)। (बस) इसी किङ्कर्तव्यविमूढता से लङ्केश्वर प्रतिदिन खिन्न हो रहा है (न कि आयुधों के कट जाने से) ॥ ४५ ॥

विद्याधरी——यह वागाडम्बर (बन्दरघुड़की) मात्र है।

विद्याधर——नहीं नहीं, देखो देखो, यह अभी भी——

धनुष तथा तलवार आदि आयुधों के काट दिये जाने से क्रुद्ध दशकन्धर रामचन्द्र के बाणों के द्वारा काटे गये अपने मस्तकों को एक-एक हाथों से लेकर दूसरे-दूसरे (हाथों) से तेजी के साथ आकाश में एक ही साथ फेंकता हुआ बीसों भुजाओं को भी सफल बना रहा है ॥ ४६ ॥

(फिर कौतुक के साथ)

अनया = इत्थम्भूतया, किङ्कर्तव्यतया = कर्तव्यान्वेषणव्यग्रचित्ततयेत्यर्थः, लङ्केश्वरः = रावणः, अनुदिवसम् = प्रतिदिनम् , खिद्यते = खेदमनुभवति, न तु प्रहरणखण्डनेन खिद्यते इति वक्तव्यशेषः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः——धनुर्निस्त्रिंशादिप्रहरणगणच्छेदकुपितः, दशास्यः, रघुपतिशरश्रेणिदलितान् , स्वान् , मूर्ध्नः, एकैः, एकैः, करैः, आदाय, अन्यैः, अन्यैः, भृशम् , नभसि, युगपत् , क्षिपन् , दोर्विंशतिम् , अपि, सफलयति ॥ ४६ ॥

रावणः स्वस्य विक्रमं वर्णयन्नाह——धनुरिति। धनुर्निस्त्रिंशादिप्रहरणगणच्छेदकुपितः—धनुर्निस्त्रिंशादीनि = चापकरवालप्रभृतीनि यानि प्रहरणानि = शस्त्राणि तेषां गणस्य = समूहस्य छेदेन = खण्डनेन कुपितः = क्रुद्धः, दशास्यः = दशवदनः, रघुपतिशरश्रेणिदलितान्—रघुपतेः = रामस्य शराणाम् = बाणानाम् श्रेण्या = पंक्त्या दलितान् = खण्डितान्, स्वान् = स्वकीयान् , मूर्ध्नः = शिरांसि, एकैरेकैः करैः = हस्तैः, आदाय = गृहीत्वा, अन्यैः = अपरैः, भृशम् = वेगेन, नभसि = आकाशे, रामोपरीत्यर्थः, युगपत् = एककालम् , क्षिपन् = प्रक्षिपन् , दोर्विंशतिम्——दोष्णाम् = बाहूनाम् विंशतिम् = विंशतिपरिमितसमूहम् , अपि, सफलयति = सफलां करोति। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

एतान्यस्य यथा यथा सुविशिखैः कृत्तानि रक्षःपते-
रुद्गच्छन्ति शिरांसि भीतिपुलकैः साकं दिवौकःपतेः ।
उन्मीलन्ति तथातथा रघुपतेरन्तः प्रमोदोर्मयः
कण्ठच्छेदविनोदकौतुकभरव्यग्रीभवच्चेतसः ॥ ४७ ॥

विद्याधरी—कथमद्यापि निशाचरेन्द्रबन्दीकृतसुरसुन्दरीणां दर्शनं दुर्लभं यदस्य शीर्षाणि पुनः पुनरप्युन्मीलन्ति ।

[कहं अज्जावि णिसाअरेन्दबन्दीकिदसुरसुन्दरीणं दंसणं दुल्लहं जं इमस्स सीसाइं पुणो पुणोवि उम्मीलन्ति ।]

विद्याधरः—अलं तापेन । क्रीडति खलु रामः सह रावणेन । न पुनरद्यापि कुप्यति । (पुनर्विलोक्य सकौतुकम्) प्रिये, पश्य पश्य ।

अन्तः सान्द्रवसन्महेश्वरशिरःशीतांशुलेखोल्लस-
त्पीयूषद्रवशीकरव्यतिकरप्राग्भारभाजामिव ।
छिन्नानामपि रामचन्द्रविशिखैर्भूयः समुद्गच्छतां
काप्यन्यैव निशाचरेन्द्रशिरसां कान्तिः समुज्जृम्भते ॥ ४८ ॥

(पुनः सकौतुकं विहस्य) अहो अस्य चित्तवृत्तिः ।

अयं यावद्यावत्पृथुहृदयपीठं रघुपतिः
शिरश्छेदासक्तो न दशवदनस्य व्यथयति ।
अयं तावत्तावद्वहति मुदमुच्चैर्दशमुखः
किलैतस्मिन्देवी जनकपतिपुत्री निवसति ॥ ४९ ॥

अन्वयः—सुविशिखैः, कृत्तानि, अस्य, रक्षःपतेः, एतानि, शिरांसि, दिवौकःपतेः, भीतिपुलकैः, साकम्, यथा यथा, उद्गच्छन्ति, तथा तथा, कण्ठच्छेदविनोदकौतुकभरव्यग्रीभवच्चेतसः, रघुपतेः, अन्तः, प्रमोदोर्मयः, उन्मीलन्ति ॥ ४७ ॥

एतानीति । सुविशिखैः = अत्यन्ततीक्ष्णैः बाणैः, कृत्तानि = द्विधाकृतानि, शरीरात् पृथक्कृतानीत्यर्थः, अस्य = एतस्य, रक्षःपतेः = राक्षसाधिपस्य रावणस्य, एतानि = इमानि, शिरांसि = मस्तकानि, दिवौकःपतेः = स्वर्गाधिपस्येन्द्रस्य, भीतिपुलकैः = भयजनितरोमाञ्चैः, साकम् = सह, यथा यथा = येन येन प्रकारेण, उद्गच्छन्ति = निर्गच्छन्ति, तथा तथा = तेन तेन प्रकारेण, कण्ठच्छेदविनोदकौतुकभरव्यग्रीभवच्चेतसः- कण्ठानाम् = रावणशिरसामित्यर्थः छेदे = कर्तने यः विनोदः = प्रसन्नता तस्मिन् यत् कौतुकम् = कुतूहलम् तस्य भरेण = भारेण, आधिक्येनेत्यर्थः, व्यग्रीभवत् = व्याकुलीभवत् चित्तम् = चेतः यस्य स तस्य, रघुपतेः = रामचन्द्रस्य, अन्तः = आभ्यन्तरे, प्रमोदोर्मयः = आनन्दलहर्यः, उन्मीलन्ति = प्रादुर्भवन्ति । सहोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमिति ॥ ४७ ॥

विद्याधरीति । निशाचरेन्द्रबन्दीकृतसुरसुन्दरीणाम्—निशाचरेन्द्रेण = राक्षसराजेन रावणेन बन्दीकृताः = कारागारे बद्धाः सुरसुन्दर्यः = देवललनाः तासाम् ॥

अन्वयः—अन्तः, सान्द्रवसन्महेश्वरशिरःशीतांशुलेखोल्लसत्पीयूषद्रवशीकरव्यतिकर-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से काटे गये इस राक्षसराज (रावण) के ये मस्तक स्वर्गाधिपति (इन्द्र) के भयवश निकले रोमाञ्चों के साथ जैसे-जैसे निकल रहे हैं, वैसे-वैसे (रावण के) कण्ठ को काटने की प्रसन्नता में होनेवाले कौतुक की अधिकता से व्यग्रचित्तवाले रामचन्द्र के अन्तस्तल में आनन्द की लहरें हिलोरें ले रही हैं ॥ ४७ ॥

विद्याधरी—क्या आज भी रावण के द्वारा बन्दी बनाई गई देव सुन्दरियों का दर्शन सुलभ हो रहा है, जो कि इसके (काटे गये) शिर बार-बार निकल रहे हैं।

विद्याधर—सन्ताप करने की आवश्यकता नहीं है। निश्चय ही रावण के साथ राम खेल रहे हैं। और अभी भी नहीं क्रुद्ध हो रहे हैं। (फिर देखकर, उत्कण्ठा के साथ) प्रिये, देखो-देखो—

(रावण के हृदय के) भीतर दृढ़ता के साथ निवास करनेवाले शङ्कर के शिर की चन्द्रकला से निकलते हुए अमृत रस के कणों के सम्पर्क की अधिकता का सेवन करते हुए से, रामचन्द्र के बाणों से काटे गये भी, फिर से निकलनेवाले, रावण के शिरों की कोई एक दूसरी ही (अर्थात् विलक्षण ही) कान्ति प्रकाशित हो रही है ॥ ४८ ॥

(फिर कुतूहल के साथ, हँस कर) इस (रावण की) चित्तवृत्ति विलक्षण है।

'इसमें जानकी निवास करती हैं, (ऐसा सोचकर) शिर काटने में लगे हुए यह रामचन्द्र रावण के विशाल वक्षःस्थल को जब तक पीडित नहीं करते हैं, यह रावण तब तक अतिशय हर्ष को धारण कर रहा है (अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है) ॥ ४९ ॥

विशेष—जनकपतिपुत्री निवसति—कामुक रावण सर्वदा जानकी का ध्यान करता रहता है। यही कारण है कि जानकी उसके हृदय में निवास करती हैं। इसी बात को विचार कर राम उसके हृदय को विदीर्ण नहीं कर रहे हैं कि कहीं जानकी को आघात न पहुँचे ॥ ४९ ॥

प्राग्भारभाजाम्, इव, रामचन्द्रविशिखैः, छिन्नानाम्, अपि, भूयः, समुद्गच्छताम्, निशाचरेन्द्रशिरसाम्, कापि, अन्या, एव, कान्तिः, समुज्जृम्भते ॥ ४८ ॥

अन्तः सान्द्रेति। अन्तः = रावणस्य हृदयाभ्यन्तरे, सान्द्रम् = निविडम्, दृढमित्यर्थः, वसन् = निवसन् यः महेश्वरः = शिवः तस्य शिरसि = मस्तके या शीतांशुलेखा = चन्द्रकला तस्याः उद्गसन् = उद्गच्छन् यः पीयूषद्रवः = अमृतस्यन्दः तस्य शीकराणाम् = बिन्दूनाम् यः व्यतिकरः = सततसम्बन्धः तस्य यः प्राग्भारः = गुरुता तं भजन्ति = आश्रयन्ति तेषाम्, इव, रामचन्द्रविशिखैः = रामचन्द्रबाणैः, छिन्नानाम् = कृत्तानाम्, अपि, भूयः = मुहुः, समुद्गच्छताम् = निःसरताम्, निशाचरेन्द्रशिरसाम्—निशाचरेन्द्रस्य = राक्षसराजस्य रावणस्य शिरसाम् = मस्तकानाम्, कापि अन्या = काचित् विलक्षणा, कान्तिः = प्रभा, समुज्जृम्भते = उल्लसति। हृदयस्थशिवशिरसि स्थितस्य चन्द्रस्यामृतसंसर्गेण कृत्तान्यपि रावणशिरांसि मुहुर्मुहुर्जायन्ते। जायमानानां तेषां कान्त्यैव शोभा समुल्लसतीति भावः। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—'एतस्मिन्, जनकपतिपुत्री, निवसति', (इति), शिरश्छेदासक्तः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(नेपथ्ये)

अयि प्रिय राम,

किं क्रीडसि शरस्तोमैर्ननन्वेकेनैव पत्रिणा ।
परिपूरय नः कामं यशसा च जगत्त्रयम् ॥ ५० ॥

विद्याधरः—नूनममी दिवौकसस्त्वरयन्ति रामचन्द्रम् । तच्छृण्वन्किमधुना वक्ष्यति रावणः ।

(नेपथ्ये)

रे रे मम भुजाः,

मुक्त्वैकां हरशेखरप्रणयिनीं पीयूषभानोः कलां
दिक्पालावलिमौलिमण्डनमणीन्गृहीत सर्वानपि ।
तैः काञ्चीं रचितां चिराय वहतु श्रोणीतटे जानकी
गायन्ती कमनीयशिञ्जितभरैर्मद्विक्रमाडम्बरम् ॥ ५१ ॥

विद्याधर—(विहस्य) लङ्केश्वर, समयज्ञोऽसि यद्भुजानेव नियुक्तवानसि । अधुना हि भुजमण्डलमेव परिवारवर्गस्ते । (विलोक्य साकूतम्) अये कथमनेन दशाननवचनेन किञ्चित्कुपित इव दृश्यते जानकीकान्तः । (पुनः सहर्षविषादम्) हन्त भोः,

---

अयम्, रघुपतिः, दशवदनस्य, पृथु, हृदयपीठम्, यावत् यावत्, न, व्यथयति; अयम्, दशमुखः, तावत् तावत्, उच्चैः, मुदम्, वहति, किल ॥ ४९ ॥

अयमिति । एतस्मिन् = अस्मिन् रावणहृदये, जनकपतिपुत्री = जानकी, निवसति = रावणेन निध्याता तिष्ठति, (इति = इत्थं विचार्य), शिरश्छेदासक्तः—शिरसाम् = रावणस्य मस्तकानाम् छेदे = शरीरात् पृथक्करणे आसक्तः = संलग्नः, अयम् = एषः, रघुपतिः = रामः, दशवदनस्य = रावणस्य, पृथु = विशालम्, हृदयपीठम् = वक्षःस्थलम्, यावत् यावत् = यावत्कालमित्यर्थः, न व्यथयति=न पीडयति, न भिनत्तीत्यर्थः, अयम् = एषः, सम्मुखस्थ इत्यर्थः, दशमुखः = रावणः, तावत् तावत् = तावत्कालमित्यर्थः, उच्चैः = अत्यधिकमिति भावः, मुदम् = हर्षम्, वहति = धारयति, किलेति सम्भावनायां ('वार्तासम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः) । रावणस्य हृदये मत्प्राणभूता जानकी निवसतीति विचिन्त्य रामस्तस्य हृदये न प्रहरति । अतः स न व्यथामनुभवति न च म्रियते । शिरसां छेदेन केवलमानन्दमेवानुभवतीति भावः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—शरस्तोमैः, किम्, क्रीडसि ? ननु, एकेन, एव, पत्रिणा, नः, कामम्, यशसा, च, जगत्त्रयम्, परिपूरय ॥ ५० ॥

किं क्रीडसीति । शरस्तोमैः—शराणाम् = बाणानाम् स्तोमैः = समूहैः, किम् = किमर्थम्, क्रीडसि = क्रीडां करोषि ? ननु, एकेन = अद्वितीयेन, एव, पत्रिणा = बाणेन, नः = अस्माकम्, कामम् = मनोरथम्, तथा यशसा = स्वकीर्त्या, जगत्त्रयम् = त्रिलोकीम्, परिपूरय = पूर्णं कुरु । तुल्ययोगिताऽलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पर्दे के पीछे)

अयि प्रिय राम,

बहुत से बाणों के द्वारा क्यों खिलवाड़ कर रहे हो ? अरे, एक ही बाण से हम लोगों की इच्छा और (अपने) यश से त्रिलोकी को पूर्ण कर दो ॥ ५० ॥

विद्याधर—निश्चय ही ये देवता लोग रामचन्द्र को शीघ्रता करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। उस (देव वचन) को सुनकर अब रावण क्या कहेगा ?

(पर्दे के पीछे)

रे रे मेरी भुजाओं,

शङ्कर के शिर पर निवास करनेवाली, चन्द्रमा की एक कला को छोड़कर सभी दिक्पालों के शिर-मुकुट की मणियों को छीन लो। उन (मणियों) से बनाई गई करधनी को, मनोहर झङ्कारों से हमारे पराक्रम की प्रचण्डता का गान करती हुई जानकी (अपने) नितम्ब-प्रदेश (कटि-भाग) में बहुत दिनों तक धारण करे ॥ ५१ ॥

विद्याधर—(हँसकर) लङ्केश्वर, (तुम) समय जाननेवाले हो जो कि (अपनी) भुजाओं को ही (इस कार्य के लिए) नियुक्त किये हो। क्योंकि सम्प्रति भुजाएँ ही तुम्हारा परिवार-समूह है। (देखकर, साभिप्राय) अरे, क्या दशानन के इस वचन से जानकी-पति (श्रीराम) कुछ क्रुद्ध के समान दिखलाई पड़ रहे हैं ? हाय रे,

---

अन्वयः—हरशेखरप्रणयिनीम्, पीयूषभानोः एकाम्, कलाम्, मुक्त्वा, सर्वान्, अपि, दिक्पालावलिमौलिमण्डनमणीन्, गृहीत, तैः, रचिताम्, काञ्चीम्, कमनीयशिञ्जितभरैः, मद्विक्रमाडम्बरम्, गायन्ती, जानकी, श्रोणीतटे, चिराय, वहतु ॥ ५१ ॥

देवान् भीषयन् स्वभुजान् प्रत्याह रावणः—मुक्त्वैकामपि। हरशेखरप्रणयिनीम्—हरस्य = शङ्करस्य शेखरे = मौलौ प्रणयिनीम् = शायिनीमित्यर्थः, पीयूषभानोः = चन्द्रस्य, एकाम् = केवलाम्, कलाम् = लेखाम्, मुक्त्वा = परित्यज्य, हरशिरःस्थितत्वेन पूज्यत्वात्तस्याः परिहारः; सर्वान् = निखिलान्, अपि, दिक्पालावलिमौलिमण्डनमणीन्—दिक्पालाः = दिग्देवाः तेषाम् अवलिः = श्रेणी तस्याः मौलिषु = शेखरेषु ये मण्डनमणयः = भूषणरत्नानि तान्, गृहीत = आदत्त। तैः = गृहीतैः मणिभिः, रचिताम् = निर्मिताम्, काञ्चीम् = मेखलाम् ('मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा' इत्यमरः), कमनीयशिञ्जितभरैः—कमनीयानि = मनोहराणि यानि शिञ्जितानि = झङ्कृतानि तेषां भरैः = समूहैः, मुहुर्मुहुर्झङ्कृतैरित्यर्थः, मद्विक्रमाडम्बरम्—मम = त्रैलोक्यजयिनः रावणस्य विक्रमः = पराक्रमः तस्य आडम्बरम् = प्रचण्डताम्, गायन्ती = गानं कुर्वती, जानकी = जनकपतिपुत्री, श्रोणीतटे = नितम्बप्रदेशे, चिराय = बहुकालम्, वहतु = धारयतु। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विकचकुसुमस्तोमाकीर्णे परागविभूषितः
शशिमणिशिलातल्पेऽनल्पे सलीलमशेत यः ।
अयमयमसौ रोपारूढे क्षणं रघुनन्दने
भुवि दशमुखः शेते धूलिच्छटापरिधूसरः ॥ ५२ ॥

विद्याधरी—(सहर्षम्) तदिदानीमेव जनकनन्दिनी रामचन्द्रेण समं संगमिष्यति ।
[ता दाणीं जेव्व जणअणन्दिणी रामचन्द्रेण समं संगमिस्सदि ।]

विद्याधरः अथ किम् ।

उद्दामहेतिवलयैः परिदीपिताशं
पश्य प्रविश्य जनकेन्द्रसुता हुताशम् ।
प्रत्युद्गता समधिकां द्युतिमावहन्ती
प्रातर्मयूखकलिकेव दिवाकरस्य ॥ ५३ ॥

विद्याधरी— पश्य पश्य ! अयमसमसमरकदर्थितं प्रदेशमवतरति रामचन्द्रः ।
[पेक्ख पेक्ख । इमो असमसमरकअत्थिदं पदेसं अवतरइ रामचन्दो ।]

विद्याधरः—तदेहि । कर्णामृतं पुलोमजायै निवेदयावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणौ सुग्रीवविभीषणौ च)

रामः—अये, कथमुपगत एव भगवानम्बरमणिश्चरमाचलचूडम् ।

लक्ष्मणः—पश्चिमपयोधिवेला च । नन्विदानीम्—

उद्दामदिग्द्विरदचञ्चलकर्णपूर-
गण्डस्थलोच्चलदलिस्तवकाकृतीनि ।
मीलन्नभांसि मृगनाभिसमानभांसि
दिक्कन्दरेषु विलसन्तितमां तमांसि ॥ ५४ ॥

अन्वयः—विकचकुसुमस्तोमाकीर्णे, अनल्पे, शशिमणिशिलातल्पे, परागविभूषितः, यः, सलीलम्, अशेत । अयम्, असौ, दशमुखः, रघुनन्दने, क्षणम्, रोपारूढे, (सति), धूलिच्छटापरिधूसरः, (सन्), भुवि, शेते ॥ ५२ ॥

रावणवधं वर्णयन्नाह—विकचेति । विकचकुसुमस्तोमाकीर्णे—विकचानि = प्रफुल्लानि यानि कुसुमानि = पुष्पाणि तेषां स्तोमेन = समूहेन आकीर्णे = व्याप्ते, अनल्पे = विशाले, शशिमणिशिलातल्पे—शशिमणेः = चन्द्रकान्तमणेः शिलातल्पे = पट्टशयने, परागविभूषितः—परागैः = पुष्पधूलिभिः विभूषितः = भूषितशरीरः, यः = यो रावणः, सलीलम् = सविलासम्, अशेत = शयनं कृतवान् । अयम् = एषः, असौ = सः, दशमुखः = दशाननः, रघुनन्दने = रामचन्द्रे, क्षणम् = स्वल्पकालमेव, रोपारूढे = क्रुद्धे, सति, धूलिच्छटापरिधूसरः—धूलिच्छटाभिः = धूलिसमूहैः परिधूसरः = मलिनः, सन्, भुवि = पृथिव्याम्, शेते = शयनं करोति, रामबाणेन मृत्युमधिगम्य पतितः इति भावः । हरिणी वृत्तम् ॥ ५२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

विकसित पुष्प-समूह से व्याप्त, विशाल, चन्द्रमणि की शिला-शय्या पर परागों (सुगन्धित पाउडरों) से विभूषित जो विलास के साथ सोता था, यह वही दशानन, रामचन्द्र के क्षण भर के लिए क्रुद्ध होने पर, धूलिसमूह से मलिन होकर पृथिवी पर सो रहा है ॥ ५२ ॥

विद्याधरी—(प्रसन्नता के साथ) तो अभी ही जानकी रामचन्द्र से मिलेंगी ?

विद्याधर—और क्या (अर्थात् हाँ मिलेंगी ही) ।

देखो, प्रचण्ड लपटों के जालों से दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली आग में प्रवेश करके जानकी, प्रातःकाल सूर्य की किरण-कली के समान, पर्याप्त कान्ति को धारण करती हुई निकल आई हैं ॥ ५३ ॥

विद्याधरी—देखो देखो, यह रामचन्द्र अत्यन्त भीषण संग्राम से विकृत स्थान पर उतर रहे हैं ।

विद्याधर—तो आओ । (इस) कर्णामृत (कानों के लिए सुखद वृत्तान्त) को इन्द्र-पत्नी से सादर कहें ।

(ऐसा कहकर निकल गये)

(तदनन्तर राम, सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण प्रवेश करते हैं)

राम—अरे, क्या भगवान् सूर्य अस्ताचल की चोटी पर पहुँच ही गये ?

लक्ष्मण—पश्चिम सागर के तट पर भी (पहुँच गये) । सम्प्रति—

अत्यन्त मतवाले दिग्गजों के चञ्चल (पुष्पनिर्मित) कर्णाभूषणों के कारण गण्ड-स्थलों पर उड़नेवाले भ्रमर समूह की तरह आकारवाले, आकाश को आच्छादित करनेवाले, कस्तूरी के समान कान्तिवाले अन्धकार दिशारूप गुफाओं में तेजी के साथ फैल रहे हैं ॥ ५४ ॥

अन्वयः—पश्य, उद्दामहेतिवलयैः, परिदीपिताशम्, हुताशम्, प्रविश्य, जनकेन्द्र-सुता, प्रातः, दिवाकरस्य, मयूखकलिका, इव, समधिकाम्, द्युतिम्, आवहन्ती, प्रगुद्गता ॥ ५३ ॥

जानकीवह्निपरीक्षां वर्णयन्नाह—उद्दामेति । पश्य = अवलोकय, उद्दामहेतिवलयैः—उद्दामानाम् = प्रचण्डानाम् हेतीनाम् = शिखानाम् वलयैः = समूहैः, परिदीपिताशम्—परिदीपिताः = प्रकाशिताः आशाः = दिशः येन स तम्, हुताशम् = अग्निम्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, जनकेन्द्रसुता = जानकी, प्रातः = दिनमुखे, दिवाकरस्य = सूर्यस्य, मयूख-कलिका = बालकिरणः, इव = यथा, समधिकाम् = पर्याप्ताम्, द्युतिम् = कान्तिम्, आवहन्ती = धारयन्ती, प्रगुद्गता = निर्गता । अत्रोपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ५३ ॥

अन्वयः—उद्दामदिग्द्विरदचञ्चलकर्णपूरगण्डस्थलोच्चलदलिस्तबकाकृतीनि, भीलन-भांसि, मृगनाभिसमानभासि, तमांसि, दिक्कन्दरेषु, विलसन्तितमाम् ॥ ५४ ॥

सन्ध्यागमनं वर्णयन्नाह—उद्दामेति । उद्दामदिग्द्विरदेत्यादिः—उद्दामाः = मद-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—अये, कथमुज्जृम्भितमेव निशाचरचक्रानुकारिणा तिमिरनिकरेण।

विभीषणः—नन्वितोऽपि समुन्मीलितमेव रामनाराचानुकारिणा तुहिनकरकिरण-प्रकरेण।

सुग्रीवः—एवमेतत्। अमी हि—

क्षीराब्धेर्लहरीषु फेनधवलाश्चन्द्रोपलेषु स्रव-
त्पाथःशीकरिणो विकासिकुमुदक्रोडे रजःपिञ्जराः।
उन्मीलन्ति चकोरचञ्चुगहने छिन्नप्ररूढाश्चम-
त्कुर्वन्तः प्रियविप्रयुक्तरमणीगात्रे सुधांशोः कराः॥ ५५॥

विभीषणः—एवमेतत्। इदानीं हि

शङ्करार्धतनुबद्धपार्वतीकुङ्कुमाक्तकुचकोरकाकृतिः।
सूच्यते कमलिनीभिरुन्नमत्पद्मकोशकरलीलया शशी॥ ५६॥

मत्ताः ये दिग्द्विरदाः = दिग्दन्तिनः तेषां चञ्चलैः = चपलैः इतस्ततश्चालितैरित्यर्थः कर्णपूरैः = पुष्पनिर्मितैः कर्णभूषणैः गण्डस्थलेषु = कपोलेषु उच्चलन्तः = उद्गच्छन्तः अलीनाम् = भ्रमराणाम् स्तबकाः = समूहाः तेषामिव आकृतिः = आकारः येषां तानि, मीलन्नभांसि—मीलत् = आच्छादितम् नभः = आकाशम् यैस्तानि, मृगनाभिसमानभांसि—मृगनाभेः = कस्तूर्याः समाना = सदृशी भाः = कान्तिः येषां तानि, तमांसि = अन्धकाराः, दिक्कन्दरेषु = दिग्गुहासु, विलसन्तितमाम् = नितरां शोभन्ते, नितरां प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ ५४॥

राम इति। निशाचरचक्रानुकारिणा—निशाचराणाम् = राक्षसानाम् चक्रस्य = समूहस्य अनुकारिणा = अनुसरणकर्त्रा, तिमिरनिकरेण—तिमिराणाम् = अन्धकाराणाम् निकरेण = समूहेन॥

विभीषण इति। रामनाराचानुकारिणा—रामस्य = रामचन्द्रस्य नाराचमनुकरोतीति तेन। तुहिनकरकिरणप्रकरेण—तुहिनकरस्य = चन्द्रस्य किरणानाम् = मयूखानाम् प्रकरेण = समूहेन॥

अन्वयः—क्षीराब्धेः, लहरीषु, फेनधवलाः; चन्द्रोपलेषु, स्रवत्पाथःशीकरिणः; विकासिकुमुदक्रोडे, रजःपिञ्जराः; चकोरचञ्चुगहने, छिन्नप्ररूढाः; प्रियवियुक्तरमणीगात्रे, चमत्कुर्वन्तः, सुधांशोः, कराः, उन्मीलन्ति॥ ५५॥

चन्द्रोदयं वर्णयन्नाह—क्षीराब्धेरिति। क्षीराब्धेः = क्षीरसागरस्य, लहरीषु = तरङ्गेषु, फेनधवलाः = डिण्डीरोज्ज्वलाः ('डिण्डीरोऽब्धिकफः फेन' इत्यमरः), चन्द्रोपलेषु = चन्द्रकान्तमणिषु, स्रवत्पाथःसीकरिणः—स्रवन्तः = स्यन्दमानाः ये पाथसः = जलस्य शीकराः = कणाः ते सन्ति येषां ते, विकासिकुमुदक्रोडे—विकासिनाम् = प्रस्फुटताम् कुमुदानाम् = कैरवाणाम् क्रोडे = अभ्यन्तरे, रजःपिञ्जराः = परागगौराः, चकोरचञ्चुगहने—चकोराणाम् = चकोरपक्षिणां चन्द्रपायिनाम् चञ्चुगहने = त्रोटिगह्वरे, छिन्नप्ररूढाः—पूर्वं मुखसङ्कोचकाले छिन्नाः=खण्डिताः पुनः व्यादानसमये प्ररूढाः=उत्पन्नाः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—अये, निशाचर-समूह का अनुकरण करनेवाला अन्धकार-समूह क्या फैल ही गया ?

विभीषण—अरे, इधर भी राम के बाणों का अनुकरण करनेवाला चन्द्र के किरणों का समूह भी प्रकट हो गया है।

सुग्रीव—हाँ, यह ऐसा ही है। यह—

क्षीरसागर की तरङ्गों के ऊपर फेन के समान सफेद, चन्द्रकान्तमणियों के ऊपर पिघलनेवाले जल के कणों से युक्त, विकसित होते हुए कुमुदों के मध्य में पराग के समान गौर, चकोर (पक्षियों) की चोंचरूप गुफा में (पहले मुँह बन्द करने के कारण) छिन्न और (पीछे मुँह खोलने पर) उत्पन्न, प्रिय से वियुक्त रमणी के शरीर पर चमत्कार करनेवाली (अर्थात् विलक्षण भावनाओं को उत्पन्न करनेवाली), चन्द्रमा की किरण प्रादुर्भूत हो रही है ॥ ५५ ॥

विभीषण—हाँ यह ऐसा ही है। सम्प्रति—

शङ्कर के आधे शरीर में वर्तमान पार्वती के केशर-पराग से लिप्त स्तन के कोरक (चूचुक, अगला नुकीला भाग) की आकृतिवाला चन्द्रमा कमललताओं के द्वारा (अपने) उन्नत कमल-कली रूपी हाथ के इशारे से (अथवा कमल-कली में चाँदनी के विकास से) निर्दिष्ट किया जा रहा है ॥ ५६ ॥

विशेष—उन्नमत्पद्मकोशकरलीलया—इस अंश का पहला किया गया अर्थ ही समीचीन है। लोक में भी लोग जब किसी दूरस्थ वस्तु की ओर इशारा करते हैं तब पूरी हथेली को सङ्कुचित करके हाथ उठाकर केवल एक अँगुली से उस वस्तु को दिखलाते हैं ॥ ५६ ॥

प्रियवियुक्तरमणीगात्रे—प्रियेण = वल्लभेन वियुक्ता = विरहिता या रमणी = सुन्दरी तस्याः गात्रे = शरीरे, चमत्कुर्वन्तः = चमत्कारं कुर्वन्तः, विलक्षणं भावं जनयन्तः इत्यर्थः, सुधांशोः = चन्द्रस्य, कराः = किरणाः, उन्मीलन्ति = उद्गच्छन्ति, चतुर्दिक्षु प्रसरन्तीति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—शङ्करार्द्धतनुबद्धपार्वतीकुङ्कुमाक्तकुचकोरकाकृतिः, शशी, कमलिनीभिः, उन्नमत्पद्मकोशकरलीलया, सूच्यते ॥ ५६ ॥

शङ्करेति। शङ्करेत्यादिः—शङ्करस्य = अर्द्धनारीश्वरस्य शिवस्य अर्द्धतनौ = शरीरार्द्धभागे बद्धा = कृताश्रया या पार्वती = हिमालयसुता तस्याः कुंकुमेन = काश्मीरजेन लिप्त = कृताङ्गरागः यः कुचकोरकः = स्तनचूचुकः, स्तनाग्रभागः इत्यर्थः, तस्य आकृतिः = आकारः इव आकृतिः यस्य सः, शशी = चन्द्रः, कमलिनीभिः = कमललताभिः, कर्त्रीभिः, उन्नमत्पद्मकोशकरलीलया—उन्नमन् = उन्नतो भवन् यः पद्मकोशः = कमलकोरकः स एव करः = हस्तः तस्य लीलया = विलासेन इङ्गितेनेत्यर्थः, करणेन, उन्नमन् यः पद्मकोशः तस्मिन् कराणाम् = चन्द्रकिरणानाम् लीलया = चमत्कारे विलासेन वेति व्याख्या प्रसङ्गविरुद्धा ग्रन्थकृदभिप्रायविपरीता लोकाननुरूपा चेत्युपेक्षणीयेति विचारणा, सूच्यते = निर्दिश्यते। अत्रोपमालङ्कारः। रथोद्धता वृत्तम् ॥ ५६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः—(सकौतुकम्) एवमेतत् । अहो !

ध्वान्तौघे शितिकण्ठकण्ठमहसि प्राप्ते प्रतीचीमुखं
प्राचीमञ्चति किञ्च दुग्धलहरीमुग्धे विधोर्धामनि ।
एतत्कोकचकोरशोकरभसम्लानप्रसन्नोल्लस-
दृक्पातोर्मिकदम्बचुम्बितमिव त्रैलोक्यमाभासते ॥ ५७ ॥

रामः—वत्स, एवमेतत् । इदानीं हि

शीतांशुस्फटिकालवालवलयद्रागुल्लसत्कौमुदी-
वल्लीनूतनपल्लवाञ्चितमिव प्राप्य क्षणं ताम्रताम् ।
चञ्चन्मत्तचकोरचञ्चुघटनाच्छिन्नाग्रकाण्डस्रुत-
क्षीरस्यन्दनिरन्तराप्लुतमिव श्वेतं वियद्भासते ॥ ५८ ॥

(पुनर्विलोक्य सकौतुकम्) वत्स लक्ष्मण,

अन्वयः—शितिकण्ठकण्ठमहसि, ध्वान्तौघे, प्रतीचीमुखम्, प्राप्ते; किञ्च, दुग्धलहरीमुग्धे, विधोः, धामनि, प्राचीम्, अञ्चति; एतत्, त्रैलोक्यम्, कोकचकोरशोकरभसम्लानप्रसन्नोल्लसद्दृक्पातोर्मिकदम्बचुम्बितम्, इव, आभासते ॥ ५७ ॥

ध्वान्तौघ इति । शितिकण्ठकण्ठमहसि—शितिकण्ठः = नीलकण्ठः, शिवः इत्यर्थः, तस्य कण्ठः = गलप्रदेशः इव महः = कान्तिः यस्य तस्मिन्, ध्वान्तौघे = अन्धकारसमूहे, ('अन्धकारो······ ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः), प्रतीचीमुखम् = पश्चिमदिक्प्रान्ते, प्राप्ते = आगते; किञ्च = तथा, दुग्धलहरीमुग्धे = दुग्धतरङ्गसुन्दरे, विधोः = चन्द्रमसः, धामनि = तेजसि, चन्द्रिकायामित्यर्थः, प्राचीम् = पूर्वां दिशम्, अञ्चति = शोभयति, सति; पूर्वस्यां दिशि जाते चन्द्रोदये इति भावः । अनेन पूर्णिमातिथिः प्रतिपादिता । एतत् = इदम्, त्रैलोक्यम् = त्रिलोकी, कोकचकोरेत्यादिः—कोकाः = चक्रवाकाः चकोराः = चन्द्रिकापायिनः पक्षिणः तेषां क्रमेण शोकरभसाभ्याम् = खेदहर्षाभ्याम् म्लानप्रसन्नौ = खिन्नविकसितौ यौ उल्लसन्तौ = शोभमानौ दृक्पातौ = दृष्टिपातौ तयोः उर्मिकदम्बैः = लहरीसमूहैः चुम्बितम् = करम्बितम्, युक्तमित्यर्थः, इव, आभासते = प्रतिभाति । समागतायां रात्रौ प्रियाभिर्वियुक्ताः कोका खिन्नाः चन्द्रपायित्वाचकोराः प्रसन्नाः जायन्ते इति साहित्यप्रसिद्धिः । अत्रोपमायथासख्योत्प्रेक्षाणामङ्गाङ्गिभावः सङ्करः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—शीतांशुस्फटिकालवालवलयद्रागुल्लसत्कौमुदीवल्लीनूतनपल्लवाञ्चितम्, इव, क्षणम्, ताम्रताम्, प्राप्य, चंचन्मत्तचकोरचञ्चुघटनाच्छिन्नाग्रकाण्डस्रुतक्षीरस्यन्दनिरन्तराप्लुतम्, इव, श्वेतम्, वियत्, भासते ॥ ५८ ॥

सान्ध्यकाले नभसः प्रथमं रक्तिमानं ततः श्वेततामुत्प्रेक्षमाण आह—शीतांशिवति ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मण—(उत्कण्ठा के साथ) हाँ यह ऐसा ही है। अहो,—

नीलकण्ठ (शङ्कर) के कण्ठ के समान कान्तिवाले अन्धकार-समूह के पश्चिम दिशा के छोर में आने पर, तथा दूध की लहरी के समान सुन्दर चन्द्रमा की चाँदनी के पूरब दिशा को सुशोभित करने पर, यह त्रिलोकी चकई-चकवाओं (चक्रवाकों) एवं चकोरों के (क्रमशः) शोक और हर्ष से (क्रमशः) उदासीनता तथा प्रसन्नता से युक्त दृष्टिपातों के तरङ्ग समूह से युक्त-सी मालूम पड़ रही है ॥ ५७ ॥

विशेष—कोकचकोर०—रात्रि के समय कोक-कोकी (चकई-चकवा) का जोड़ा परस्पर अलग हो जाता है, अतः रात्रि के समय वे उदास पड़ जाते हैं। चकोर चाँदनी को पीनेवाला पक्षी है। अतः वह रात्रि के समय प्रसन्न होता है ॥ ५७ ॥

राम—वत्स, यह ऐसा ही है (जैसा तुम कह रहे हो)। सम्प्रति

चन्द्रमारूप स्फटिकमणि के आलवाल (थाला = क्यारी) की गोलाई (मण्डल) में शीघ्र निर्गत चाँदनीरूप लता के नवीन पल्लवों (कपोलों) से युक्त-सा क्षण भर के लिए लाल, इधर-उधर घूमनेवाले मतवाले चकोरों की चोंच के बन्द करने से कटी हुई छोर की डाल से बहे हुए दुग्ध-प्रवाहों से पूर्ण व्याप्त-सा (अतः) श्वेत आकाश प्रकाशित हो रहा है ॥ ५८ ॥

विशेष—चकोरचञ्चुघटनाच्छिन्न—चकोर पक्षी मुँह फाड़-फाड़कर चाँदनी को पीते हैं। जब वे मुँह फाड़ते हैं तब चाँदनी रूप लता का अन्तिम अंश उनके मुँह में दृष्टिगोचर होता है और जब बन्द कर लेते हैं तब मानों वह अंश कट जाता है ॥ ५८ ॥

(फिर देखकर उत्कण्ठा के साथ) वत्स लक्ष्मण—

शीतांशुस्फटिकेत्यादिः—शीतांशुः = चन्द्रः एव स्फटिकालवालवलयः = स्फटिकमण्यावाप-मण्डलम् तस्मिन् द्राक् = झटिति उल्लसन्ती = जायमाना या कौमुदी = चन्द्रिका सैव वल्ली = लता तस्याः नूतनानि = अचिरोद्गतानि यानि पल्लवानि = पत्राणि तैः अङ्कितम् = शोभितम्, इव, क्षणम् = स्वल्पकालम्, ताम्रताम् = रक्तताम्, प्राप्य = आसाद्य, चञ्चन्मत्तेत्यादिः - चञ्चन्तः = चञ्चलाः मत्ताः = माद्यन्तः ये चकोराः = चन्द्रिका-पायिनः पक्षिणः तेषां चञ्चुघटनया = त्रोटिसंयोगेन छिन्नाः = खण्डिताः ये अग्रकाण्डाः = शाखाग्रभागाः तेभ्यः स्रुताः = प्रवहमानाः ये क्षीरस्यन्दाः = दुग्धप्रवाहाः तैः निर-न्तरम् = अनवकाशं यथा स्यात्तथा आप्लुतम् = व्याप्तम्, इव, श्वेतम् = धवलम्, वियत् = आकाशम्, भासते = शोभते। अत्र रूपकोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५८ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पश्योदेति वियोगिनां दिनमणिः शृङ्गारदीक्षामणिः
प्रौढानङ्गभुजङ्गमस्तकमणिश्चण्डीशचूडामणिः ।
तारामौक्तिकहारनायकमणिः कन्दर्पसीमन्तिनी-
काञ्चीमध्यमणिश्चकोरपरिषच्चिन्तामणिश्चन्द्रमाः ॥ ५९ ॥

लक्ष्मणः—एवमेतत् । अयमसौ

स्वैरं कैरवकोरकान्विदलयन्यूनां मनः खेदय-
न्नम्भोजानि निमीलयन्मृगदृशां मानं समुन्मीलयन् ।
ज्योत्स्नां कन्दलयन्दिशो धवलयन्नुद्वेलयन्वारिधी-
न्कोकानाकुलयंस्तमः कवलयन्निन्दुः समुज्जृम्भते ॥ ६० ॥

विभीषणः—सखे सुग्रीव, पश्य ।

मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलो-
च्छलत्तरलतारकाकपटकीर्णमुक्तागणः ।
पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थित—
स्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ॥ ६१ ॥

अन्वयः—पश्य, वियोगिनाम्, दिनमणिः, शृङ्गारदीक्षामणिः, प्रौढानङ्गभुजङ्ग-मस्तकमणिः, चण्डीशचूडामणिः, तारामौक्तिकहारनायकमणिः, कन्दर्पसीमन्तिनी-काञ्ची-मध्यमणिः, चकोरपरिषच्चिन्तामणि, चन्द्रमाः, उदेति ॥ ५९ ॥

पश्योदेति । पश्य = अवलोकय, वियोगिनाम् = विरहिणाम् दिनमणिः = सूर्यः, सूर्यः इव चन्द्रोऽपि विरहिणां कृते सन्तापकः इति भावः । शृङ्गारदीक्षामणिः—शृङ्गार-स्य = शृङ्गाररसस्य दीक्षामणिः = दीक्षारत्नम्, शृङ्गारस्य प्रधानोद्दीपक इत्यर्थः । प्रौढा-नङ्गभुजङ्गमस्तकमणिः—प्रौढः = वृद्धिङ्गतः यः अनङ्गः = काम एव भुजङ्गः = सर्पः तस्य मस्तकमणिः = फणारत्नम्, चण्डीशचूडामणिः— चण्डीशस्य = भवानीपतेः शङ्करस्य चूडामणिः=शिरोरत्नम्, तारामौक्तिकहारनायकमणिः—ताराः = नक्षत्राणि एव मौक्ति-कानि = मुक्ताफलानि तेषां हारः = माला तस्य नायकमणिः = मध्यमणिः । कन्दर्प-सीमन्तिनी-काञ्चीमध्यमणिः—कन्दर्पस्य = कामस्य या सीमन्तिनी = स्त्री तस्याः या काञ्ची = मेखला तस्याः मध्यमणिः = सुमेरुमणिः, उद्दीपकत्वात् । चकोरपरिषच्चिन्ता-मणिः—चकोराणाम् = चन्द्रप्रायिपक्षिणाम या परिषद् = समवायः तस्याः चिन्तामणिः = इच्छापूरको मणिः, तस्यां अभीप्सितपूरकत्वात् । एतादृशः चन्द्रमाः = चन्द्रः, उदेति = निर्गच्छतीति । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम ॥ ५९ ॥

अन्वयः—कैरवकोरकान्, स्वैरम्, विदलयन्; यूनाम्, मनः, खेदयन्; अम्भो-जानि, निमीलयन्; मृगदृशाम्, मानम्, समुन्मीलयन्; ज्योत्स्नाम्, कन्दलयन्, दिशः, धवलयन्; वारिधीन्, उद्वेलयन्; कोकान्, आकुलयन्; तमः, कवलयन्; इन्दुः, समुज्जृम्भते ॥ ६० ॥

स्वैरमिति । कैरवकोरकान्—कैरवाणाम् = कुमुदानाम् कोरकान् = कुड्मलानि,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
देखो, वियोगियों का सूर्य, शृङ्गार की दीक्षा का मणि (अर्थात् शृङ्गार रस का प्रधान उद्दीपक) प्रगल्भ कामदेवरूप सर्प का मस्तक-मणि, भवानी-पति (शङ्कर) का मुकुटमणि, ताराओं रूपी मोती की माला का प्रधान मणि, कामदेव की स्त्री (रति) की करधनी का मध्य-मणि, चकोरों के समूह का चिन्तामणि (इच्छा पूर्ण करनेवाला मणि), चन्द्रमा निकल रहा है ॥ ५ ॥

लक्ष्मण—हाँ, यह ऐसा ही है। यह—

कुमुद की कलियों को यथेच्छरूप से विकसित करते हुए, युवकों के मन को (काम विकार से) पीडित करते हुए, कमलों को संकुचित (मुकुलित) करते हुए, मृगनयनी (स्त्रियों) के मान को बढ़ाते हुए, चाँदनी को बिखेरते हुए, दिशाओं को धवल बनाते हुए, सागरों को उफानते हुए (सागरों में ज्वार को उत्पन्न करते हुए), चकई-चकवाओं को व्याकुल करते हुए, अन्धकार को समाप्त करते हुए चन्द्र (गगन में) बढ़ रहा है ॥ ६० ॥

विभीषण—मित्र सुग्रीव, देखो—

किरणरूप नाखूनों से छिन्न होते हुए अन्धकाररूप हाथी के कपोलस्थल से निकलते हुए चञ्चल, तारकाओं के बहाने, मुक्तागणों को फैला देनेवाला, पूरब दिशारूपी गुफा के अन्तराल से सोकर उठा हुआ चन्द्रमारूप सिंह आकाशरूप जङ्गल में भ्रमण कर रहा है ॥ ६१ ॥

स्वैरम्=यथेच्छम्, विदलयन्=विकासयन्, यूनाम्=तरुणानाम्, मनः=चेतः, खेदयन्=शृङ्गारोद्दीपनेन पीडयन्, अम्भोजानि=कमलानि, निमीलयन्=मुकुलयन्, सति चन्द्रोदये कमलानि सङ्कुचितानि जायन्ते; मृगदृशाम्=हरिणनयनानाम्, सुन्दरीणामित्यर्थः, मानम्=प्रियापराधादिजन्यं कोपम्, समुन्मीलयन्=विकासयन्; आगते चन्द्रे कामज्वालादग्धा प्रियपुरुषाः अवश्यमेव चरणपातादिकं विधास्यन्तीति विचार्य तासां मान वर्द्धत एव। ज्योत्स्नाम्=चन्द्रिकाम्, कन्दलयन्=अङ्कुरयन्; दिशः=काष्ठाः ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः), धवलयन्=धवलाः कुर्वन्; वारिधीन्=सागरान्, उद्वेलयन्=उत्कालयन्, विकसिते पूर्णिमाचन्द्रे स्वजनवृद्धिदर्शनात् सागराः वृद्धिं गच्छन्तीति। कोकान्=चक्रवाकान्, आकुलयन्=व्याकुलान् कुर्वन्; चक्रवाका चन्द्रे चञ्चति चक्रवाकीभिः वियुज्य भृशं दुःखमनुभवन्तीति साहित्यप्रसिद्धिः। तमः=अन्धकारम्, कवलयन्=ग्रासयन्, दूरीकुर्वन्; इन्दुः=चन्द्रः, समुज्जृम्भते=वर्द्धते। दीपकमत्रालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६० ॥

अन्वयः—मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलोच्छलत्तरलतारकाकपटकीर्णमुक्तागणः, पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थितः, तुषारकरकेशरी गगनकाननम्, गाहते ॥ ६१ ॥

मयूखेत। मयूखनखरेत्यादिः—मयूखाः=किरणाः एव नखराः=नखाः तैः त्रुटत्=स्फुटत् तिमिरम्=अन्धकार एव कुम्भी=हस्ती तस्य यत् कुम्भस्थलम्=गण्डस्थलम् तस्मात् उच्छलन्=वेगेन निःसरन् तरलानाम्=चञ्चलानाम् तारकाणाम्=

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सुग्रीवः—सखे बिभीषण, पश्य ।

यः श्रीखण्डतमालपत्रति दिशः प्राच्याः स्मरक्ष्मापतेः
पाण्डुच्छत्रति दन्तपत्रति वियल्लक्ष्मीकुरङ्गीदृशः ।
केलिश्वेतसहस्रपत्रति रतेः किं च क्षपायोषितः
क्रीडाराजतसीधुपात्रति शशी सोऽयं जगन्नेत्रति ॥ ६२ ॥

रामः—(निर्वर्ण्य)

सितकिरणकपोलामालिमालोकयन्ती
तिमिरविरहतापव्याकुलां व्योमलक्ष्मीम् ।
रजनिरमलताराशीकरैः सिक्तमस्याः
परिमलयति गात्रं चन्द्रिकाचन्दनेन ॥ ६३ ॥

(पुनर्विमृश्य स्वगतम्)

इन्दुरिन्दुरिति किं दुराशया बिन्दुरेष पयसो विलोक्यते ।
नन्विदं विजयते मृगीदृशः श्यामकोमलकपोलमाननम् । ६४ ॥

नक्षत्राणाम् कपटेन = छलेन कीर्णः = विस्तारितः मुक्तागणः = मुक्तासमवायः येन सः, पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थितः—पुरन्दरस्य = इन्द्रस्य या हरित् = दिक् ('दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः) सैव दरी = कन्दरा तस्याः गर्भे = कुहरे पूर्वं सुप्तः = निद्राङ्गतः पश्चात् उत्थितः = निद्रां परित्यज्योत्थानङ्गतः, तुषारकरकेशरी—तुषारकरः = चन्द्रः एव केशरी = सिंहः, गगनकाननम्—गगनम् = आकाशमेव काननम् = अरण्यम् तत् , गाहते = प्रविश्य भ्रमति । अत्र साङ्गरूपकालङ्कारः । पृथ्वी वृत्तम् । वृत्तलक्षणम्—'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥' ६१ ॥

अन्वयः—यः, प्राच्याः, दिशः, श्रीखण्डतमालपत्रति; स्मरक्ष्मापतेः, पाण्डुच्छत्रति; वियल्लक्ष्मीकुरङ्गीदृशः, दन्तपत्रति; रतेः, केलिश्वेतसहस्रपत्रतिः किञ्च, क्षपायोषितः, क्रीडाराजतसीधुपात्रति; सः, अयम् , शशी, जगन्नेत्रति ॥ ६२ ॥

य इति । यः = शशी, प्राच्याः = पूर्वस्याः, दिशः = काष्ठायाः, नायिकास्वरूपाया इति भावः, श्रीखण्डतमालपत्रति—श्रीखण्डस्य = चन्दनस्य तमालपत्रति = तिलकवदाचरति (तमालपत्रतिलकचित्रकाणि' इत्यमरः); स्मरक्ष्मापतेः—स्मरः = कामः एव क्ष्मापतिः = पृथिवीपतिः तस्य, पाण्डुच्छत्रति—श्वेतच्छत्रमिवाचरति; वियल्लक्ष्मीकुरङ्गीदृशः— वियतः = आकाशस्य लक्ष्मीः = शोभा एव कुरङ्गीदृक् = हरिणनयना तस्याः, दन्तपत्रति = नागदन्तविरचितकर्णाभूषणमिवाचरति; रतेः = कामपत्न्याः, केलिश्वेतसहस्रपत्रति—केल्यर्थम् = क्रीडार्थम् श्वेतसहस्रपत्रम् = श्वेतकमलमिवाचरति; किञ्च = तथा च, क्षपायोषितः—क्षपा = रात्रिः एव योषित् = स्त्री तस्याः, क्रीडाराजतसीधुपात्रति—क्रीडायाम् = खेलायाम् राजतम् = रजतनिर्मितम् सीधुपात्रम् = पानपात्रमिवाचरतीति; सः = तादृशः, अयम् = एषः, शशी = चन्द्रः, जगन्नेत्रति—जगतः = लोकस्य नेत्रति = नेत्रमिवाचरति । उत्प्रेक्षारूपकयोः सङ्करः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सुग्रीव—मित्र विभीषण, देखो—

जो पूरब दिशा के चन्दन के तिलक के समान, कामदेवरूपी राजा के श्वेत छत्र के समान, आकाश की शोभारूप सुन्दरी के हाथी दाँत से निर्मित कर्णाभूषण के समान, (कामदेव की स्त्री) रति के क्रीडा के लिए सफेद कमल के समान, तथा रात्रि स्वरूप स्त्री की क्रीडा में रचित चाँदी के मदिरा-पात्र के समान आचरण करता है, वही यह चन्द्रमा संसार के नेत्र के समान आचरण कर रहा है (अर्थात् लोगों को देखने में सहायक बन रहा है) ॥ ६२ ॥

राम—(ध्यान से देखकर)

अन्धकार से विरह के सन्ताप के कारण व्याकुल, चन्द्रमारूप (सफेद) कपोल-वाली आकाशलक्ष्मीरूप सखी को देखती हुई रात्रि निर्मलतारारूप जल के छींटों से सींचे गये इस (आकाश लक्ष्मी) के शरीर को चाँदनीरूप चन्दन से लिप्त कर रही है ॥ ६३ ॥

(फिर विचार कर, अपने आप)

'(यह) चन्द्रमा (ही सच्चा) चन्द्रमा है'—ऐसी व्यर्थ धारणा से क्या (लाभ) ? (वस्तुतः आकाश में) यह जल का बुलबुला दिखलाई पड़ रहा है। निश्चय ही हरिण के समान नेत्रवाली (सीता) का कोमल गालों से युक्त यह मुख सर्वश्रेष्ठ होकर विराजमान है (अर्थात् सच्चा चन्द्रमा है) ॥ ६४ ॥

अन्वयः—तिमिरविरहतापव्याकुलाम्, सितकिरणकपोलाम्, व्योमलक्ष्मीम्, आलिम्, आलोकयन्ती, रजनिः, अमलताराशीकरैः, सिक्तम् , अस्याः, गात्रम्, चन्द्रिकाचन्दनेन, परिमलयति ॥ ६३ ॥

सितकिरणेति । तिमिरविरहतापव्याकुलाम्—तिमिरात् = अन्धकारात् यः विरहः = वियोगः तेन यः सन्तापः = व्यथा तेन व्याकुलाम् = व्यथिताम् , सत्यन्धकारे एव वियल्ल-क्ष्म्याः स्फुटनक्षत्रादिभिः शोभा सञ्जायते इति बोध्यम् सितकिरणकपोलाम्— सित-किरणः = चन्द्रः एव कपोलः = गण्डस्थलम् यस्याः सा ताम् , प्रियवियोगे स्त्रीणां कपो-लस्य पाण्डुता सम्पद्यते, व्योमलक्ष्मीम् = आकाशशोभाम , आलिम् = सखीम्, आलोक-यन्ती = पश्यन्ती, रजनिः = रात्रिः, अमलताराशीकरैः—अमलाः = स्वच्छाः ताराः = नक्षत्राणि एव शीकराः = जलबिन्दवस्तैः; सिक्तम् = उक्षितम्, अस्याः = व्योमलक्ष्म्याः, गात्रम् = शरीरम् , चन्द्रिकाचन्दनेन--चन्द्रिका = कौमुदी एव चन्दनम् = मलयजरसः तेन, परिमलयति = लिप्तं करोति । विरहिणीनां शरीरे शीतलजलेन सिञ्चनं ततश्चन्दनरस-लेपनञ्च क्रियते तापशमनार्थमिति । अत्र रूपकालङ्कारः । मालिनी वृत्तम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—इन्दुः, इन्दुः, इति, दुराशया, किम् ? एषः, पयसः, बिन्दुः, विलोक्यते; ननु, मृगीदृशः; कोमलकपोलम्, इदम्, आननम्, विजयते ॥ ६४ ॥

सीतामुखचन्द्रं मनसि निधायाह रामः—इन्दुरिति । इन्दुः = आकाशस्थोऽयं चन्द्रः, इन्दुः = वस्तुतश्चन्द्रः, इति = इत्थम्, दुराशया = असत्यधारणया, किम् = कि

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(पुनः सीतां प्रत्यपवार्य)

तन्वि त्वद्वदनस्य विभ्रमलवं लावण्यवारान्निधे-
रिन्दुः सुन्दरि दुग्धसिन्धुलहरीबिन्दुः कथं विन्दतु ।
उत्कल्लोलविलोचने क्षणमयं शीतांशुरालम्बता-
मुन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मरालश्रियम् ॥ ६५ ॥

सीता—(लज्जां नाटयति । विलोक्य सहर्षम्) अहो, कथमयमुन्मीलित एव ।

मुकुलीकृतारविन्दो मानवतीमानवारणमृगेन्द्रः ।
त्रिभुवननयनानन्दो रजनीमुखचन्दनश्चन्द्रः ॥ ६६ ॥

[अहो, कहमिमो उम्मीलिदो जेव्व ।]

[मुउलीकिदारविन्दो माणवईमाणवारणमइन्दो ।
तिहुअणणअणारविन्दो रअणीमुहचन्दणो चन्दो ॥]

रामः—सखे सुग्रीव, पश्य पश्य—

प्रयोजनम् ? नायं यथार्थश्चन्द्र इति भावः । किं तर्हीत्याह—एषः = अयम्, पयसः = जलस्य, बिन्दुः = पृषतः, वस्तुतो बुद्बुदः इत्यर्थः, विलोक्यते = अवलोक्यते । कस्तर्हि यथार्थश्चन्द्र इत्याह—नन्विति निश्चये, मृगीदृशः = हरिणनयनायाः, सीतायाः इत्यर्थः, इदम् = एतत्, कोमलामलकपोलम्—कोमलः = स्निग्धः अमलः = निर्मलकान्तिः कपोलः = गण्डः यस्मिन् तत् तादृशम्, श्यामकोमलकपोलमिति पाठे तु—श्यामः = कृष्णः, अलकसंयोगेनेति भावः, कोमलः = स्निग्धः कपोलः यस्मिन् तत् तादृशम्, आननम् = मुखम्, विजयते = सर्वोत्कर्षेण वर्तते, वस्तुतश्चन्द्रः इति भावः। प्रतीपालङ्कारः। रथोद्धता वृत्तमिति ॥ ६४ ॥

अन्वयः—हे तन्वि, दुग्धसिन्धुलहरीबिन्दुः, इन्दुः, लावण्यवारान्निधेः, त्वद्वदनस्य, विभ्रमलवम्, कथम्, विन्दतु ? हे सुन्दरि, उत्कल्लोलविलोचने, अयम्, शीतांशुः, क्षणम्, उन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मरालश्रियम्, आलम्बताम् ॥ ६५ ॥

उक्तमेवार्थं द्रढयन्नाह—तन्वीति । हे तन्वि = हे कृशशरीरे, दुग्धसिन्धुलहरीबिन्दुः—दुग्धसिन्धोः = क्षीरसागरस्य लहरी = तरङ्गः तस्याः बिन्दुः = पृषतः, क्षीरसागरस्य स्वल्पांश इति भावः, इन्दुः = चन्द्रः, लावण्यवारान्निधेः—लावण्यस्य = सौन्दर्यस्य वारान्निधेः = सागरस्य, त्वद्वदनस्य = त्वन्मुखस्य, विभ्रमलवम्—विभ्रमस्य = विलासस्य लवम् = कणम्, स्वल्पांशमित्यर्थः, कथम् = केन प्रकारेण, विन्दतु = प्राप्नोतु ? न कथमपि प्राप्तुं शक्नोतीति भावः । हे सुन्दरि = हे शोभने, उत्कल्लोलविलोचने— उत् = ऊर्ध्वम् कल्लोलः = कान्तितरङ्गः यस्य तादृशं यत्तव विलोचनम् = नेत्रम् तस्मिन्, अयम् = एषः, शीतांशुः=चन्द्रः, क्षणम्=किञ्चित्कालम्, उन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मरालश्रियम्—उन्मीलन्ति = विकसन्ति यानि नवानि = नूतनानि नीलनीरजानि = नीलकमलानि तेषां

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(फिर अलग से सीता के प्रति)

हे कृशशरीरे, क्षीरसागर की लहरी का बूंद स्वरूप चन्द्रमा सौन्दर्य के सागर रूप तुम्हारे मुख के विलास के लेश को (भी भला) कैसे प्राप्त कर सकता है ? (अर्थात् नहीं प्राप्त कर सकता है) । हे सुन्दरि, (तुम्हारे) ऊपर उठाये गये (कान्ति की) तरङ्गवाले नेत्रों के विषय में यह चन्द्रमा क्षण भर के लिए विकसित होते हुए नूतन नील कमलों की कतारों में खेलते हुए हंस की शोभा को प्राप्त करे (अर्थात् तुम क्षण भर के लिए आकाश की ओर देखो । उस समय तुम्हारी आँखों की कान्ति पूरे आकाश में फैल जाय और उसमें यह चन्द्रमा, नील कमलों की कतारों में खेलते हुए हंस की तरह प्रतीत हो) ॥ ६५ ॥

सीता—(लज्जा का अभिनय करती है । देखकर प्रसन्नतापूर्वक) अहो । यह—

कमलों को मुकुलित करनेवाले, मान करनेवाली स्त्री के मान (रति-कोप) रूप हाथी के लिए सिंह, त्रिलोकी के नेत्रों को आनन्दित करनेवाले, रात्रि (रूप नायिका) के मुख के चन्दन के सदृश चन्द्र (क्या उदित ही हो गये) ॥ ६६ ॥

राम—मित्र सुग्रीव, देखिये देखिये—

वनी = श्रेणी तस्यां खेलन् = क्रीडां कुर्वन् यो मरालः=हंसः तस्य श्रियम् = शोभाम्, आलम्बताम् = गृह्णातु । यथा विकसितनीलकमलपंक्तौ खेलन् मरालः शोभते तथैव नील-कमलद्युते त्वन्नेत्रस्य ऊर्ध्वङ्गते कान्तिप्रवाहेऽयं चन्द्रः शोभां लभतामित्यर्थः । क्षणं चन्द्रमसं विलोकयेति गलितार्थः । अत्रोपमातिशयोक्त्योः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमिति ॥ ६५ ॥

अन्वयः—मुकुलीकृतारविन्दः, मानवतीमानवारणमृगेन्द्रः, त्रिभुवननयनानन्दः, रजनीमुखचन्दनः, चन्द्रः, (कथम्, उन्मीलितः, एव) ॥ ६६ ॥

मुकुलीकृतेति । मुकुलीकृतारविन्दः—मुकुलीकृतानि = निमीलितानि, स्वोदयेनेति भावः, अरविन्दानि = कमलानि येन तादृशः, मानवतीमानवारणमृगेन्द्रः—मानवती = पत्युरपराधे कृतकोपा स्त्री तस्याः मानम् = प्रणयकोपः एव वारणः = हस्ती तस्य मृगेन्द्रः= सिंहः, यथा सिंहं दृष्ट्वा गजा भयेन पलाय्यान्यत्र गच्छन्ति तथैव चन्द्रमसं दृष्ट्वा कामातुरतया मानवतीनां मानमपि विगलितं भूत्वाऽदर्शनं यातीति भावः; त्रिभुवननयनानन्दः—त्रिभुवनस्य = त्रिलोक्याः, त्रिभुवनस्य जनानामिति भावः, यानि नयनानि = नेत्राणि तेषाम् आनन्दः = अह्लादकः इति लाक्षणिकोऽर्थः, रजनीमुखचन्दनः—रजनी = रात्रिः, रात्रि-नायिकेत्यर्थः, तस्याः मुखे = आनने चन्दनः = मलयजबिन्दुः, रात्रिनायिकायाः तिलक-स्वरूप इति भावः, तादृशः चन्द्रः = इन्दुः (कथम् = किम्, उन्मीलितः = उदितः, एव—इतिगद्यभागादानेयमिति) । आर्या वृत्तम् ॥ ६६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

इन्दोरस्य त्रियामायुवतिकुचतटीचन्दनस्थासकस्य
व्योमश्रीचामरस्य त्रिपुरहरजटावल्लरीकोरकस्य ।
कन्दर्पक्षोणिपालस्फटिकमणिगृहस्यैतदाखण्डलाशा-
नासामुक्ताफलस्य स्थगयति जगतीं कोऽपि भासां विलासः ॥ ६७ ॥

सुग्रीवः—अये रघुनाथ, पुनरुक्तमिदमाचष्टे चन्द्रमसः किरणविलासः ।

रामः—कथमिव ।

सुग्रीवः—नन्वत एव

कर्पूरादपि कैरवादपि दलत्कुन्दादपि स्वर्णदी-
कल्लोलादपि केतकादपि चलत्कान्तादृगन्तादपि ।
दूरोन्मुक्तकलङ्कशंकरशिरःशीतांशुखण्डादपि
श्वेताभिस्तव कीर्तिभिर्धवलिता सप्तार्णवा मेदिनी ॥ ६८ ॥

रामः—अलं तुच्छप्रायजल्पितेन ।

विभीषणः—देव, तुच्छप्रायमेव जल्पितं सुग्रीवेण । यदुक्तं मेदिनी धवलितेति । ननु त्रिलोकीतलमेव धवलितमिति वक्तव्यम् । संप्रति हि—

समुन्नतघनस्तनस्तबकचुम्बितुम्बीफल-
कणन्मधुरवीणया विबुधलोकवामभ्रुवा ।
त्वदीयमुपगीयते हरकिरीटकोटिस्फुर-
त्तुषारकरकन्दलीकिरणपूरगौरं यशः ॥ ६९ ॥

अन्वयः—त्रियामायुवतिकुचतटीचन्दनस्थासकस्य, व्योमश्रीचामरस्य, त्रिपुरहरजटावल्लरीकोरकस्य, कन्दर्पक्षोणिपालस्फटिकमणिगृहस्य, एतदाखण्डलाशानासामुक्ताफलस्य, अस्य, इन्दोः, भासाम्, कोऽपि, विलासः, जगतीम्, स्थगयति ॥ ६७ ॥

इन्दोरिति। त्रियामायुवतिकुचतटीचन्दनस्थासकस्य—त्रियामा = रात्रिः एव युवतिः= तरुणी तस्याः कुचतटी = स्तनप्रदेशः तत्र चन्दनस्थासकस्य = मलयजलेपस्य, व्योमश्रीचामरस्य—व्योम्नः = आकाशस्य श्रीः = शोभा तस्याः चामरस्य = प्रकीर्णकस्य, त्रिपुरहरजटावल्लरीकोरकस्य—त्रिपुरहरः=शङ्करः तस्य जटा = केशभारः एव वल्लरी = लता तस्याः कोरकस्य = कुड्मलस्य, कन्दर्पक्षोणिपालस्फटिकमणिगृहस्य—कन्दर्पः = कामः एव क्षोणिपालः = भूपालः तस्य स्फटिकमणिगृहस्य = स्फटिकमणिनिर्मितस्य भवनस्य, एतदाखण्डलाशानासामुक्ताफलस्य—एषा = पुरो दृश्यमाना या आखण्डलस्य = इन्द्रस्य आशा = दिक्, आशारूपा नायिकेत्यर्थः, तस्याः नासायाः = नासिकायाः मुक्ताफलस्य = मौक्तिकाभरणस्य, अस्य = एतस्य, इन्दोः = चन्द्रस्य, भासाम् = ज्योतिषाम्, कोऽपि = अनिर्वचनीयः, विलासः = विलसितम्, जगतीम् = समुद्ररसनामुर्वीम्, समस्तं भूमण्डलमित्यर्थः, स्थगयति = व्याप्नोति । आकाशमण्डले चन्द्रोऽभिवर्द्धते इत्यभिप्रायः । अत्र रूपकमलङ्कारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ६७ ॥

अन्वयः—कर्पूरात्, अपि; कैरवात्, अपि; दलत्कुन्दात्, अपि; स्वर्णदीकल्लोलात्,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रात्रिस्वरूप युवती के स्तनों के आस-पास चन्दन का लेपरूप, आकाश की शोभा का चामरस्वरूप, शङ्कर की जटारूप लता का कलीरूप, कामदेवरूप राजा के स्फटिक-मणि का गृहस्वरूप, इस पूरब दिशा रूप नायिका की नाक का मोतीरूप, इस इन्द्रमा की कान्ति का अनिर्वचनीय विलास संसार को व्याप्त कर रहा है ॥ ६७ ॥

सुग्रीव—हे रघुकुलतिलक, चन्द्रमा की किरणों का (यह) विलास पुनरुक्त (पिष्ट-पेषण) है।

राम—कैसे ?

सुग्रीव—इसीलिए कि—

कपूर से भी, कुमुद से भी, खिलते हुए कुन्दपुष्प से भी, आकाश गङ्गा की तरङ्ग से भी, केतकी के फूल से भी, कामिनी के चञ्चल कटाक्ष से भी, दूर से (ही) कलङ्क छोड़नेवाली (अर्थात् निष्कलङ्क), शङ्कर के शिर पर स्थित, चन्द्रकला से भी धवल आपकी कीर्तियों के द्वारा सात समुद्रोंवाली (यह) पृथिवी (पहले से ही) शुभ्र है ॥ ६८ ॥

राम—निरर्थकप्राय बकवास करना व्यर्थ है।

बिभीषण—महाराज सुग्रीव के द्वारा निरर्थक प्राय ही बकवास की गयी। जो कि इन्होंने कहा कि पृथिवी श्वेत कर दी गयी है। अरे, कहना चाहिये कि (समग्र यह) त्रिलोकीतल ही श्वेत कर दिया गया है। इस समय तो—

पर्याप्त ऊपर उठे हुए (अत्यन्त मोटे अतः) परस्पर सटे हुए स्तन—गुच्छ को स्पर्श करनेवाले तुम्बीफलवाली झङ्कार करती हुई मधुर वीणा (को बजाने) वाली देव-लोक की सुन्दरी के द्वारा, शङ्कर के मुकुटके अग्रभाग में प्रकाशित चन्द्र-कला के किरण-समूह के समान गौर, आपका यश गाया जा रहा है ॥ ६९ ॥

अपि; केतकात्, अपि; चलत्कान्तादृगन्तात्, अपि; दूरोन्मुक्तकलङ्कशङ्करशिरःशीतांशु-खण्डात्, अपि; श्वेताभिः, तव, कीर्तिभिः, सप्तार्णवा, मेदिनी, धवलिता (आस्ते) ॥६८॥

कर्पूरादिति। कर्पूरादपि = घनसारादपि ('कर्पूरमस्त्रियाम्। घनसारश्चन्द्रसंज्ञः' इत्य-मरः); कैरवादपि = कुमुदादपि; दलत्कुन्दादपि—दलतः = विकसतः कुन्दादपि = माघ्य-पुष्पादपि; स्वर्णदीकल्लोलात्—स्वर्णद्याः = आकाशगङ्गायाः कल्लोलात् = तरङ्गात्, अपि; केतकादपि = केतकीप्रसूनादपि; चलत्कान्तादृगन्तात्—चलन् = चञ्चलः यः कान्तायाः = रमण्याः दृगन्तः = कटाक्षः तस्मात्, अपि; दूरोन्मुक्तकलङ्कशङ्करशिरःशीतांशुखण्डात्—दूरात् = विप्रकृष्टात् उन्मुक्तः = परित्यक्तः कलङ्कः = लाञ्छनम् येन तादृशः यः शङ्करस्य = शिवस्य शिरसि=मस्तके शीतांशुखण्डः = चन्द्रकला तस्मात्, अपि; श्वेताभिः = शुभ्राभिः, तव = भवतः, कीर्तिभिः = यशोभिः, सप्तार्णवा—सप्त अर्णवाः = सागराः यस्यां सा तादृशी, मेदिनी = पृथिवी, (पूर्वतः एव), धवलिता = शुभ्रा, आस्ते इति शेषः। अतो नभसि भासमानेन चन्द्रेण यत् क्रियते तत्तु पुनरुक्तमेवेति भावः। अत्र व्यतिरेकालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—समुन्नतघनस्तनस्तबकचुम्बितुम्बीफलक्वणन्मधुरवीणया, विबुधलोकवाम-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—अयि लङ्केश्वर, भवानपि किष्किन्धानाथमतमेवानुगतः। (पुनर्विलोक्य सहर्षं सुग्रीवं प्रति)

संरम्भोद्रिक्तनक्तंसमयदशमुखोच्चण्डदोर्दण्डहेला-
कैलासः सप्तलोकीजयमुदितमनोजन्मवादित्रशङ्खः।
लोलाक्षीगण्डपालीलवणिमजलधेरुद्गतः फेनपिण्डः
पश्य व्योमावकाशं विशति विरहिणां दत्तशंङ्कः शशाङ्कः ॥७०॥

(निर्वर्ण्य स्वगतम्)

अयं नेत्रादत्रेरजनि रजनीवल्लभ इति
भ्रमः कोऽयं प्रज्ञापरिचयपराधीनमनसाम्।
सुधानामाधारः स खलु रतिबिम्बाधरसुधा-
रसासेकस्निग्धादजनि नयनात्पुष्पधनुषः ॥ ७१ ॥

लक्ष्मणः—आर्ये जानकि, पश्य पश्य।

भ्रुवा, हरकिरीटकोटिस्फुरत्तुषारकरकन्दलीकिरणपूरगौरम्, त्वदीयम्, यशः, उपगीयते ॥ ६९ ॥

कीर्तिस्त्रिलोकव्यापिनीति प्रदर्शयन्नाह—समुन्नतेति। समुन्नतेत्यादिः—समुन्नतः = बहिर्निःसृतः यः घनस्तनस्तबकः = निबिडपयोधरगुच्छः तं चुम्बतीति = स्पृशतीति समुन्नतघनस्तनस्तबकचुम्बि तादृशं यत् तुम्बीफलम् = वर्तुलाकारोऽधस्तलभागः यस्याः सा तादृशी क्वणन्ती = शब्दायमाना मधुरा = आह्लादिका वीणा = वल्लकी यस्याः सा तया; तादृश्या विबुधलोकवामभ्रुवा—विबुधलोकस्य = देवलोकस्य, स्वर्गस्येत्यर्थः, वामभ्रुवा = ललनया, हरकिरीटकोटीत्यादिः—हरस्य = शिवस्य किरीटकोटौ = मुकुटाग्रे स्फुरन्ती = प्रकाशमाना या तुषारकरस्य = चन्द्रस्य कन्दली = कला तस्याः किरणपूरवत् = मयूखसमूहवत् गौरम् = शुभ्रम्, त्वदीयम् = तवेत्यर्थः, यशः = कीर्तिः, उपगीयते = उपश्लोक्यते। अनेनेदं प्रतीयते त्रिलोकीतलमेव त्वद्यशसा धवलितं न केवलं पृथिवीतलमेवेति भावः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। पृथ्वी वृत्तम् ॥ ६९ ॥

अन्वयः—संरम्भोद्रिक्तनक्तंसमयदशमुखोच्चण्डदोर्दण्डहेलाकैलासः, सप्तलोकीजयमुदितमनोजन्मवादित्रशङ्खः, लोलाक्षीगण्डपालीलवणिमजलधेः, उद्गतः, फेनपिण्डः, विरहिणाम्, दत्तशङ्कः, शशाङ्कः, व्योमावकाशम्, विशति—(इति) पश्य ॥ ७० ॥

संरम्भेति—संरम्भेत्यादिः—संरम्भे = प्रारम्भे, सान्ध्यसमये इत्यर्थः, उद्रिक्तः = प्रकटितः यो नक्तंसमयः = रात्रिकालः स एव दशमुखः = रावणः तस्य उच्चण्डैः = प्रचण्डैः दोर्दण्डैः = भुजदण्डैः हेलायाः = लीलायाः कैलासः = कैलासपर्वतः, सप्तलोकीजयमुदितमनोजन्मवादित्रशङ्खः—सप्तलोक्याः = भूरादिसप्तभुवनानाम् जयेन=विजयेन मुदितः = प्रसन्नो यो मनोजन्मा = कामदेवः तस्य वादित्रशङ्खः = जयसूचको वादनशीलः शङ्खः, लोलाक्षीगण्डपालीलवणिमजलधेः—लोलाक्ष्याः = मृगलोचनायाः या गण्डपाली=कपोल-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—अयि लङ्काधिपति (विभीषण), आपने भी किष्किन्धा के अधिपति (सुग्रीव) के ही मत का समर्थन किया है। (फिर देखकर प्रसन्नतापूर्वक सुग्रीव के प्रति)।

आरम्भ में प्रकट रात्रि-समय रूप दशमुख के प्रचण्ड बाहुदण्डों की लीला का कैलास, सातों लोकों की विजय से प्रसन्न कामदेव का वाद्यशङ्ख, मृगनयनी स्त्रियों के कपोल-स्थल रूप सागर का निकला हुआ फेनपिण्ड, विरहियों को सशङ्कित करनेवाला, (यह) चन्द्रमा आकाश-प्रदेश में प्रवेश कर रहा है—(इसे) देखो ॥ ७० ॥

(देखकर, अपने आप)

'यह चन्द्रमा अत्रि के नेत्र से उत्पन्न हुआ है'—ऐसा सोचना, ज्ञान के परिचय में पराधीनमनवालों का (अर्थात् ज्ञानियों का) यह कैसा भ्रम है ? निश्चय ही अमृत का आधार वह (चन्द्र) रति के लाल अधर के अमृतरस के सींचने से कोमल कामदेव के नेत्र से उत्पन्न हुआ है ॥ ७१ ॥

विशेष—रतिबिम्बाधर······नयनात्—स्त्री एवं पुरुष काममिश्रित प्रेम के आवेग में परस्पर अधरों का चुम्बन तो करते ही हैं किन्तु नेत्रों के चुम्बन को भी वे करते हैं। इसका अपना अलग ही माधुर्य है ॥ ७१ ॥

लक्ष्मण—आर्ये सीते, देखिये देखिये—

स्थली एव लवणिमजलधिः सागरः तस्य, उद्गतः=प्रादुर्भूतः, फेनपिण्डः = डिण्डीरपिण्डः, विरहिणाम् = वियोगिनाम्, दत्तशङ्कः—दत्ता = समर्पिता शङ्का = भीतिः येन तादृशः, शशाङ्कः = चन्द्रः, व्योमावकाशम = आकाशरन्ध्रम्, विशति = प्रविशति—(इति = एतत्), पश्य = अवलोकय। अत्र रूपकमलङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ७० ॥

अन्वयः—अयम्, रजनीवल्लभः, अत्रेः, नेत्रात्, अजनि; इति, प्रज्ञापरिचयपराधीनमनसाम्, अयम्, कः, भ्रमः ? खलु, सुधानाम्, आधारः, सः, रतिबिम्बाधरसुधारसासेकस्निग्धात्, पुष्पधनुषः, नयनात्, अजनि ॥ ७१ ॥

अयमिति। अयम् = एषः, आकाशे दृश्यमान इत्यर्थः, रजनिवल्लभः = निशापतिश्चन्द्रः, अत्रेः = अत्रिनाम्नः महर्षेः, नेत्रात्=लोचनात्, अजनि = जातः, इति = इत्थम्, प्रज्ञापरिचयपराधीनमनसाम्—प्रज्ञा = धीः तस्याः परिचये = संस्तवे पराधीनम्= परवशम् मनः = चेतः येषां तेषाम्, प्रकृत्यैव नूतनपदार्थान्वेषणे दत्तचित्तानामित्यर्थः, अयम् = एषः, कः = कीदृशः, भ्रमः = भ्रान्तिः खल्विति निश्चये, सुधानाम् = अमृतानाम्, आधारः = आकरः, सः = दूरस्थः स चन्द्रः, रतिबिम्बाधरसुधारसासेकस्निग्धात्—रतेः = कामपत्न्याः यो बिम्बाधरः—बिम्बम् = बिम्बफलमिव अधरः = ओष्ठः तस्य सुधारसः = अमृतद्रवः तेन यः आसेकः = सम्यक् सिञ्चनम् तेन स्निग्धात् = कोमलात् पुष्पधनुषः = कामदेवस्य, नयनात् = नेत्रात्, अजनि = उत्पन्नः। इत्यस्मिन्महर्षेरत्रेर्नेत्रान्नायमुत्पन्नोऽपि तु प्रेयसीप्रेमरसस्निग्धात् कामनेत्रादिति भावः। अन्यथैवंविधं कामोत्तेजकत्वमसम्भवमस्मिन्निति। अपह्नुतिरलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ ७१ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

आनन्दं कुमुदादीनामिन्दुः कन्दलयन्नयम् ।
लङ्घयत्यम्बराभोगं हनूमानिव सागरम् ॥ ७२ ॥

सीता—अये सुलक्षण लक्ष्मण, स पुनरिदानीं क्व रघुकुलकुटुम्बसन्तापशमनचन्दनः पवननन्दनः ।

[अये सुलक्खण लक्खण, सो उण दाणीं कहिं रहुउलकुडुम्बसन्तावसमणचन्दणो पवणणन्दणो ।]

लक्ष्मणः—आर्ये, स एव रामचन्द्रेण बन्धुमानन्दयितुमयोध्यायां प्रहितः ।

सीता—तदस्माभिः किमिति विलम्ब्यते ।

[ता अह्मेहिं किंति विलम्बीअदि ।]

(रामो विभीषणमुखमालोकते)

विभीषणः—(निर्गत्य प्रविश्य च) इदं तत्पुष्पकाभिधानं विमानरत्नमारुह्यताम् ।

(सर्वे विमानावरोहणं नाटयन्ति)

रामः—(सकौतुकम्) अये, तदिदं विमानरत्नं यत्किल त्रिभुवनैकवीरः कुबेरानुजः कुबेरादाजहार ।

लक्ष्मणः—(सामर्षम्) कथमयं किष्किन्धामाहिष्मतीपतिभ्यः समभागविभक्तलक्ष्मीकोऽपि त्रिभुवनैकवीर इति व्यपदिश्यते ।

रामः—(विहस्य) वत्स, एवमेतत् ।

ताद्दक्कठोरभुजयन्त्रनिपीडनेन
निःशब्दतामुपगतैर्दशकण्ठकण्ठैः ।
यत्कीर्तिघोषणमकारि चतुःसमुद्र-
वेलासु किं स वचसां विषयः कपीन्द्रः ॥ ७३ ॥

अपि च—

अन्वयः—अयम्, इन्दुः, कुमुदादीनाम्, आनन्दम्, कन्दलयन्; हनूमान्, सागरम्, इव; अम्बराभोगम्, लङ्घयति ॥ ७२ ॥

आनन्दमिति । अयम् = एषः, इन्दुः = चन्द्रः, कुमुदादीनाम् = कैरवचकोरादीनाम्, हनूमतः पक्षे कुमुदादिवानराणाम्, आनन्दम्=हर्षम्, कन्दलयन्=उत्पादयन्; हनूमान्= वायुपुत्रः, सागरमिव = समुद्रमिव; यथा हनूमान् सागरं लङ्घितवान् तथैवेत्यर्थः, अम्बराभोगम्—अम्बरस्य = आकाशस्य आभोगम् = विस्तारम्, लङ्घयति = अतिक्रामति । उपमाऽलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ७२ ॥

सीतेति । रघुकुलकुटुम्बसन्तापशमनचन्दनः—रघुकुलस्य = रघुवंशस्य कुटुम्बः = जनसमूहः तस्य सन्तापस्य = दुःखस्य शमने = नाशने चन्दनः = मलयजतुल्यः ॥

अन्वयः—ताद्दक्कठोरभुजयन्त्रनिपीडितेन, निःशब्दताम्, उपगतैः, दशकण्ठकण्ठैः, चतुःसमुद्रवेलासु, यत्कीर्तिघोषणम्, अकारि; सः, कपीन्द्रः, किम्, वचसाम्, विषयः ॥ ७३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यह चन्द्रमा कुमुद (चन्द्रमा के पक्ष में कैरव तथा हनूमान् के पक्ष में कुमुद वानर) आदि के आनन्द को उत्पन्न करते हुए, हनूमान् ने जैसे सागर को पार किया था उसी तरह, आकाश के आयाम को लांघ रहा है ॥ ७२ ॥

सीता—सुन्दरलक्षणों से सम्पन्न हे लक्ष्मण, रघुकुल के कुटुम्ब के (व्यक्तियों के) सन्ताप को शमन करने में चन्दन के समान वे वायुपुत्र (हनूमान्) सम्प्रति कहाँ है।

लक्ष्मण—आर्ये, वे हनूमान् सम्प्रति रामचन्द्र के द्वारा बन्धु (भरत) को आनन्दित करने के लिए अयोध्या भेजे गये हैं।

सीता—तो हम लोगों के द्वारा क्यों विलम्ब किया जा रहा है ?

(राम विभीषण का मुख देखते हैं)

विभीषण—(निकल कर और फिर प्रवेश करके) जगत्प्रसिद्ध इस पुष्पक नामक विमान रत्न पर चढ़ा जाय।

(सभी लोग विमान पर चढ़ने का अभिनय करते हैं)

राम—(कौतुक के साथ) अये, यह वह विमानरत्न है जिसे कि त्रिभुवन का अप्रतिम वीर, कुबेर का लघुभ्राता (रावण) कुबेर से छीन लिया था ?

लक्ष्मण—(क्रोध के साथ) क्या यह (रावण) किष्किन्धापति (बाली) और महिष्मतीपति (कार्तवीर्य) के द्वारा समान रूप से (वीरता की) लक्ष्मी का विभाग कर लिए जाने पर भी त्रिभुवन का अप्रतिम वीर कहा जा रहा है ? (अर्थात् वाली और कीर्तवीर्य जैसे समान योद्धाओं के होने पर भी क्या इसे त्रिभुवन का सर्वश्रेष्ठ वीर कहा जा रहा है ?)।

राम—(जोर से हँसकर) वत्स, यह ऐसा ही है।

वैसे कठोर बाहु-पाश के द्वारा दबोचने से शब्दहीन होनेवाले रावण के कण्ठों ने चारों सागरों की तट भूमियों में जिसकी कीर्ति की घोषणा की, वह कपिराज (वाली) क्या वचनों का विषय हो सकता है ? (अर्थात् वचनों से उसकी कीर्ति का वर्णन सम्भव नहीं है) ॥ ७३ ॥

और भी—

वालेरुत्कर्षं सूचयन्नाह—तादृगिति। तादृक्कठोरभुजयन्त्रनिपीडितेन—तादृशयोः = जगत्प्रसिद्धयोः कठोरयोः = अतिदृढयोः भुजयोः = बाह्वोः यत् यन्त्रम् = पाशः तेन निपीडितेन = बलात्पाशनेन, वालिकृतेन, निःशब्दताम् = शब्दोच्चारणशक्तिशून्यताम्, उपगतैः = प्राप्तैः, दशकण्ठकण्ठैः = दशवदनवदनैः, चतुःसमुद्रवेलासु—चतुःसमुद्राणाम् = चतुःसागराणाम् वेलासु = तटप्रदेशेषु, यत्कीर्तिघोषणम्—यस्य = वालिनः कीर्तेः = यशसः घोषणम् = उच्चैः कथनम्, अकारि = कृतम्; सः = तादृशः, कपीन्द्रः = वानराधिपतिः वाली, किमिति काकुप्रश्ने, वचसाम् = वाणीनाम्, विषयः = गोचरः ? वाली तु वचसामतीत एव अतो न गण्यते स इति भावः। विरोधाभासालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ७३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

कोपप्रदीप्तनिजलोचनदीपवह्नि-
निर्भिन्नसान्द्रतिमिरे स दशाननोऽपि ।
काराकुटीरकुहरे वसति स्म यस्य
सोऽप्येष हैहयपतिर्विषयो न वाचाम् ॥ ७४ ॥

किन्तु परिभावय वत्स,

यस्य द्राक्करवालकृत्तशिरसः कण्ठालवालस्थलीं
चूडाचन्द्रमसं निपीड्य निबिडं सिञ्चन्सुधानिर्झरैः ।
स्वां मेने शशिखण्डमण्डन इति ख्यातिं कृतार्थां हरः
पन्थानं दशकन्धरः स च कथङ्कारं गिरां गाहते ॥ ७५ ॥

(निर्वर्ण्य) अये, किमुच्यतेऽस्य खलु त्रिकूटगिरिशिखरकण्टीरवस्य दशकण्टस्य लोकोत्तराणि चरितानि ।

यद्दोःशायिनि चन्द्रशेखरगिरौ भारावतारोन्नम-
न्नागाधीशफणावलीमणिरुचां पूरे समुन्मीलति ।
जातास्तुल्यमकालबालतपनाताम्राश्चतस्रो दिशो
देवस्यापि रुषा तुषारकिरणोत्तंसस्य तिस्रो दृशः ॥ ७६ ॥

अन्वयः—यस्य, कोपप्रदीप्तनिजलोचनदीपवह्निनिर्भिन्नसान्द्रतिमिरे, काराकुटीरकुहरे, सः, दशाननः, अपि, वसति स्म; सः, एषः, हैहयपतिः, अपि, वाचाम्, विषयः, न ॥७४॥

कार्तवीर्यस्य वीर्यातिशयं वर्णयन्नाह—कोपेति । यस्य = हैहयपतेः, कोपप्रदीप्तनिजलोचनदीपवह्निनिर्भिन्नसान्द्रतिमिरे—कोपेन = क्रोधेन प्रदीप्ते = प्रज्वलिते लोचने = नेत्रे एव दीपौ = प्रदीपौ तयोर्यो वह्निः = ज्वाला तेन निर्भिन्नम् = विदारितम् सान्द्रम् = निविडम् तिमिरम् = अन्धकारः यस्मिन् स तस्मिन्, काराकुटीरकुहरे—काराकुटीरस्य = कारागृहस्य कुहरे = गह्वरे, सः = जगदेकवीरः, दशाननः=दशकण्टः, अपि = का कथाऽन्येषामित्यपिना ध्वन्यते, वसति स्म = निवासं चकार; सः=तादृशः, एषः=सम्प्रत्येव त्वया कीर्तितः. हैहयपतिः = कार्तवीर्यः, अपि. वाचाम् = वचसाम्, विषयः=गोचरः, न = न वर्तते । कार्तवीर्योऽपि स्वसामर्थ्यविषये वाणीविषयविरहित एवेति भावः । अतिशयोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तमिति ॥ ७४ ॥

अन्वयः—द्राक्, करवालकृत्तशिरसः, यस्य, कण्ठालवालस्थलीम्, चूडाचन्द्रमसम्, निपीड्य, सुधानिर्झरैः, निबिडम्, सिञ्चन्, हरः, स्वाम्, शशिखण्डमण्डनः, इति, ख्यातिम्, कृतार्थाम्, मेने; सः, दशकन्धरः, च, गिराम्, पन्थानम्, कथङ्कारम्, गाहते ? ॥७५॥

रावणस्य वीर्यातिशयं वर्णयन्नाह—यस्य द्रागिति । द्राक् = झटिति, करवालकृत्तशिरसः—करवालेन = स्वखड्गेन कृत्तानि = खण्डितानि, शरीरात्पृथक्कृतानीत्यर्थः, शिरांसि = मस्तकानि येन स तस्य, यस्य=रावणस्येत्यर्थः, कण्टालवालस्थलीम्—कण्ठाः= गलाः एव आलवालानि = आवापाः तेषां स्थलीम् = भूमिम्, स्थानमित्यर्थः, चूडाचन्द्रमसम्—चूडायाम् = मौलौ स्थितं चन्द्रमसम् = चन्द्रम, निपीड्य = निष्पीडयित्वा,

In Public domain. Digitization: Muthulakshmi Research Academy

जिसके, कोप से प्रज्वलित [illegible]
से रहित कारागार के भीतर जगत् के अद्वितीय योद्धा रावण ने भी वास किया था; वे
यह कार्तवीर्य भी वचनों (के द्वारा वर्णन) के विषय नहीं हैं ॥ ७४ ॥

किन्तु लघुबन्धु, सोचो (तो)—

शीघ्र ही तलवार से (अपने) शिरों को काटनेवाले जिस (रावण) के कण्ठरूप
थाला की जमीन को (क्यारी की भूमि को) मस्तक के चन्द्रमा को निचोड़कर अमृत
के झरनों से घने रूप से सींचते हुए शङ्कर अपनी 'चन्द्रशेखर' इस प्रसिद्धि को सफल
समझे। वह दशानन भी वाणी का विषय कैसे हो सकता है ? ॥ ७५ ॥

(देखकर) अये, त्रिकूट पर्वत की चोटी के सिंह इस दशकण्ठ के अद्भुत चरितों
को क्या कहा जाय ?

शिवपर्वत (कैलास) के जिस (रावण) की बाहुओं के ऊपर स्थित होने पर
भार के उतरने से उठनेवाली शेषनाग की फणाओं की पंक्ति की मणिओं की कान्ति के
समूह के चारों ओर फैलने पर चारों दिशाएँ (तथा) क्रोध से भगवान् शशाङ्क-
शेखर (शङ्कर) की तीनों आँखें एक ही समय में, असमय में ही उदित प्रातःकालीन
सूर्य के समान, किञ्चित् रक्त वर्ण हो गयीं ॥ ७६ ॥

विशेष—प्राइमरी के बच्चों से सवाल पूछा जाता है—'भोंदूवीर का वजन एक मन
है और उनके पास आधा मन सामान भी है। वे अपनी घोड़ी पर बैठे तथा अपना
सामान अपने शिर पर रक्खे हैं। तो बतलाओ घोड़ी पर कितना बोझा है ? सामान्यमति
बालक कह उठता है—एक मन। और उनका सामान ? वह तो भोंदूवीर के ऊपर है।
ठीक यही बात जयदेवजी की है। रावण ने कैलास उठा लिया तो शेषनाग का भार
हल्का हो गया, जब कि रावण स्वयं जमीन पर ही स्थित है ॥ ७६ ॥

सुधारनिर्झरैः = अमृतनिस्यन्दैः, निबिडम्=सान्द्रम्, यथा स्यात्तथा, सिञ्चन्=सेकं कुर्वन्,
हरः = शिवः, स्वाम् = स्वसम्बन्धिनीम्, शशिखण्डमण्डनः—शशिनः = चन्द्रमसः खण्डः =
कला मण्डनम् = आभूषणम् यस्य सः, इति=एतादृशीम्, ख्यातिम् = प्रसिद्धिम्, कृता-
र्थाम्=सफलाम्, मेने = बुबुधे। सः=तादृशः, दशकन्धरः = दशाननः, च=अपि, गिराम्=
वाणीनाम्, पन्थानम् = मार्गम्, कथङ्कारम् = केन प्रकारेण, गाहते = प्रविशति, आरोह-
तीत्यर्थः। राक्षसराजो दशाननोऽपि वर्णितुमशक्य इति भावः। अत्र रूपकमलङ्कारः।
शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७५ ॥

निर्वर्ण्येति। त्रिकूटगिरिशिखरकण्ठीरवस्य—त्रिकूटगिरेः = त्रिकूटपर्वतस्य शिखरस्य =
शृङ्गस्य कण्ठीरवः = सिंहः तस्य। लोकोत्तराणि—लोकात् = जनसमवायात् = उत्तराणि =
उत्कृष्टानि, चरितानि = चरित्राणि, कार्याणीत्यर्थः ॥

अन्वयः— चन्द्रशेखरगिरौ, यद्दोःशायिनि, (सति), भारावतारोन्नमन्नागाधीश-
फणावलीमणिरुचाम्, पूरे, समुन्मीलति, चतस्रः, दिशः, रुषा, देवस्य, तुषारकिरणोत्तंसस्य,
तिस्रः, दृशः, तुल्यम्, अकालबालतपनाताम्राः, जाताः ॥ ७६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मणः—आर्य,

एष मे मनसि भासतेऽधुना मूर्तिमानिव मनोरथो रथः ।
नास्ति नो यदधिरोहलीलया दूरमागतवतामपि श्रमः ॥ ७७ ॥

रामः – एवमेतत् । तथाहि

उल्लङ्घ्य नीरधिमतीत्य च दण्डकानि
नद्यौ च मेकलकलिन्दसुते व्यतीत्य ।
प्राप्ताः शिखण्डिशतखण्डितशाखिषण्ड-
मेते वयं शिखरिणं ननु चित्रकूटम् ॥ ७८ ॥

सीता—(तिर्यग्विलोक्य) अहह कलिन्दनन्दिनि, सत्यप्रसादासि यत्पुनरपि निजकुटुम्बस्य दत्तदर्शनासि ।

[अहह कलिन्दणन्दिणि, सच्चप्पसादासि जं पुणोवि णिअकुडुम्बस्स दिण्णदंसणासि ।]

रामः—अयि तदिदं निर्मुक्तविरोधश्वापदं भगवतो भारद्वाजस्याश्रमपदम् ।

लक्ष्मणः—एवमेतत् । अत्र हि

व्याजृम्भमाणवदनस्य हरेः करेण
कर्षन्ति केशरसटाः कलभाः किलैके ।
अन्ये च केसरिकिशोरकपीतमुक्तं
दुग्धं मृगेन्द्रवनितास्तनजं पिबन्ति ॥ ७९ ॥

पुना रावणस्य पराक्रमं वर्णयन्नाह—यद्दोःशायिनीति । चन्द्रशेखरगिरौ—चन्द्रशेखरस्य = शङ्करस्य गिरौ = पर्वते कैलासपर्वते इत्यर्थः, यद्दोःशायिनि—यस्य = रावणस्य दोःशायिनि = करतलस्थिते, (सति = जाते), भारावतारोन्नमन्नागाधीशफणावलीमणिरुचाम्—भारस्य = कैलासजन्यगुरुत्वस्य अवतारात् = अपसारणात् उन्नमन्ती = ऊर्ध्वं गच्छन्ती या नागाधीशस्य = शेषस्य फणावली = फणपंक्तिः तस्यां ये मणयः = रत्नानि तेषां रुचाम् = कान्तीनाम्, रावणेन कैलासोत्तोलने शेषस्य भारे लघुतेति वार्तोपहासप्रदैव, धृतकैलासस्य रावणस्याऽपि पृथिव्यामेव स्थितत्वात्, पूरे = प्रवाहे, समुन्मीलति = विकसति, चतस्रः = चतुःसंख्यकाः, दिशः = काष्ठाः; तथा रुषा = क्रोधेन, देवस्य = पूज्यस्य, तुषारकिरणोत्तंसस्य—तुषारकिरणः = चन्द्रः उत्तंसः = शिरोभूषणम् यस्य स तस्य, तिस्रः = त्रिसंख्यकाः, दृशः = नेत्राणि, तुल्यम् = समकालमेव, अकालबालतपनाताम्राः—अकाले = अनवसरे बालतपनः = अचिरोद्गतसूर्यः इव आ = ईषत् ताम्राः = रक्तवर्णाः, जाताः = बभूवुः । अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः—अधुना, एषः, रथः, मे, मनसि, मूर्तिमान्, मनोरथः, इव, भासते; यदधिरोहलीलया, दूरम्, आगतवताम्, अपि, नः, श्रमः, नास्ति ॥ ७७ ॥

विमानवेगं प्रशंसन्नाह—एष म इति । अधुना = सम्प्रति, एषः = अयम्, रथः = विमानम्, मे = मम, मनसि = चेतसि, मूर्तिमान् = शरीरधारी; मनोरथः = अभिलाषा,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

लक्ष्मण – आर्य,

सम्प्रति यह रथ मेरे मन में शरीरधारी मनोरथ की तरह प्रतीत हो रहा है। जिस पर चढ़ने की लीला से दूर तक चले आये हुए भी हम लोगों को थकान नहीं है ॥७७॥

राम—यह ऐसी ही बात है। जैसे कि—

सागर को पार कर दण्डकारण्य को लाँघकर गङ्गा-यमुना नदियों को पार कर यह हम लोग सैकड़ों मयूरों के द्वारा दलित वृक्ष-समूहवाले चित्रकूट पर्वत पर आ गये हैं ॥ ७८ ॥

सीता—(तिरछे देखकर) अहह यमुने, अनुग्रहवाली हो, जो कि तुमने अपने कुटुम्ब को पुनः दर्शन दिया है।

राम—अरे, भगवान् भारद्वाज का यह वह आश्रम है (जहाँ कि) जङ्गली जानवर परस्पर विरोध छोड़कर (निवास करते हैं)।

लक्ष्मण—यह ऐसा ही है। यहाँ तो—

कुछ गजशावक अपनी सूँड़ से जँभाई लेते हुए सिंह की गर्दन के बालों को खींच रहे हैं। तथा दूसरे (गजशावक) सिंह के बच्चों के द्वारा पीकर छोड़े गये सिंहनी के स्तन से निर्गत दूध को पी रहे हैं ॥ ७९ ॥

इव = यथा, भासते = प्रतीयते; यदधिरोहलीलया—यस्मिन् = विमाने अधिरोहस्य = आरोहणस्य लीलया = विलासेन, दूरम् = विप्रकृष्टम्, आगतवताम् = आगतानाम्, अपि, नः = अस्माकम्, श्रमः = श्रान्तिः, नास्ति = न वर्तते। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। रथोद्धता वृत्तम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः—नीरधिम्, उल्लङ्घ्य; दण्डकानि, च, अतीत्य; मेकलकलिन्दसुते, नद्यौ, च, व्यतीत्य; एते, वयम्, शिखण्डिशतखण्डितशाखिषण्डम्, चित्रकूटम्, शिखरिणम्, प्राप्ताः, ननु ॥ ७८ ॥

उल्लंघ्येति। नीरधिम् = सागरम्, उल्लङ्घ्य = उत्तीर्य, दण्डकानि = दण्डकवनानि अतीत्य = व्यतीत्य, मेकलकलिन्दसुते = गङ्गायमुने, नद्यौ = सरितौ, च = अपि, व्यतीत्य = पारङ्कृत्वा, एते = इमे, वयम् = रामादयः, शिखण्डिशतखण्डितशाखिषण्डम्—शिखण्डिशतेन = मयूरशतेनेत्यर्थः खण्डितानि = दलितानि शाखिषण्डानि = वृक्षसमूहाः यस्मिन् तं तादृशम्, चित्रकूटम् = चित्रकूटनामानम्, शिखरिणम् = पर्वतम्, प्राप्ताः = आगताः, नन्विति निश्चये। वसन्ततिलका वृत्तम ॥ ७८ ॥

अन्वयः—एके, कलभाः, करेण व्याजृम्भमाणवदनस्य, हरेः, केसरसटाः, कर्षन्ति, किल; अन्ये, च, केसरिकिशोरकपीतमुक्तम्, मृगेन्द्रवनितास्तनजम्, दुग्धम्, पिबन्ति ॥ ७९ ॥

श्वापदानां निर्मुक्तविरोधत्वं प्रकटयन्नाह—व्याजृम्भमाणेति। एके=केचन, कलभाः= गजशावकाः, करेण = शुण्डादण्डेन, व्याजृम्भमाणवदनस्य—व्याजृम्भमाणम् = व्यादानकाले विवृतम् वदनम् = आननम् यस्य स तस्य, हरेः = सिंहस्य, केसरसटाः = गललो-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अपि च—

क्रीडन्माणवकाङ्घ्रिताडनशतैरुज्जागरस्य क्षणं
शार्दूलस्य नखाङ्कुरेषु कुरुते कण्डूविनोदं मृगः।
चञ्चच्चन्द्रशिखण्डितुण्डघटनानिर्मोकनिर्मोचितः
किञ्चायं पिबति प्रसुप्तनकुलश्वासानिलं पन्नगः ॥ ८० ॥

रामः—अये, कथमयं सम्प्राप्त एव चक्रवाकरमणीसंरम्भसमयः प्रभातसमयः। तथाहि।

एते केतकधूलिधूसररुचः शीतद्युतेरंशवः
प्राप्ताः सम्प्रति पश्चिमस्य जलधेस्तीरं जराजर्जराः।
अप्येते विकसत्सरोरुहवनीहृत्कपातसंभाविताः
प्राचीरागमुदीरयन्ति तरणेस्तारुण्यभाजः कराः ॥ ८१ ॥

लक्ष्मणः—(सकौतुकम्)

सद्यः संघटमानकोकमिथुनव्याजेन पीनस्तन-
द्वन्द्वव्यञ्जितयौवनाज्ज्वलरुचो निर्माय दिक्कन्यकाः।
दुर्दैवाक्षरमालिकामिव झगित्याकृष्य भृङ्गावलीं
लक्ष्मीमम्बुजिनीजनस्य तनुते देवास्त्वषामीश्वरः ॥ ८२ ॥

मानि, कर्षन्ति = आकर्षन्ति; किल, अन्ये = इतरे, च = अपि, केशरिकिशोरकपीतमुक्तम्—केशरिणः = सिंहस्य किशोरकैः = शावकैः पूर्वं पीतम् = पानं कृतं पश्चान्मुक्तम् = त्यक्तम्, मृगेन्द्रवनितास्तनजम्—मृगेन्द्रस्य = सिंहस्य वनिता = स्त्री तस्याः स्तनजम् = पयोधरक्षरितम्, दुग्धम् = स्तन्यम्, पिबन्ति = धयन्ति। स्वाभाविकवैरा जन्तवोऽपि वैरं विहाय स्नेहेन निवसन्तीति भावः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः—मृगः, क्रीडन्माणवकाङ्घ्रिताडनशतैः, उज्जागरस्य, शार्दूलस्य, नखाङ्कुरेषु, क्षणम्, कण्डूविनोदम्, कुरुते। किञ्च, चञ्चच्चन्द्रशिखण्डितुण्डघटनानिर्मोकनिर्मोचितः, अयम्, पन्नगः, प्रसुप्तनकुलश्वासानिलम्, पिबति ॥ ८० ॥

क्रीडन्माणवकेति। मृगः = हरिणः, क्रीडन्माणवकाङ्घ्रिताडनशतैः—क्रीडन्तः = खेलन्तः ये माणवकाः = मुनिबालकाः तेषाम् अङ्घ्रिताडनशतैः = चरणप्रहारशतैः, उज्जागरस्य = त्यक्तनिद्रस्य, शार्दूलस्य = सिंहस्य, नखाङ्कुरेषु = नखराग्रभागेषु, क्षणम् = किञ्चित्कालम्, कण्डूविनोदम् = खर्जनापनोदम्, कुरुते = विदधाति। निजाङ्गानि कण्डूयतीत्यर्थः। किञ्च=तथा, चञ्चच्चन्द्रशिखण्डितुण्डघटनानिर्मोकनिर्मोचितः— चञ्चन् = चलन् चन्द्रः = पुच्छे चन्द्राकारो मेचकः यस्य स तस्य तथाभूतस्य शिखण्डिनः = मयूरस्य तुण्डघटनया = चञ्चुसंयोगेन, चञ्चुसाहाय्येनेत्यर्थः, निर्मोकात् = कञ्चुकात् निर्मोचितः = पृथक्कृतः, अयम् = एषः, पन्नगः = सर्पः, प्रसुप्तनकुलश्वासानिलम्—प्रसुप्तः = शयनङ्गतः यो नकुलः = बभ्रुः तस्य श्वासानिलम् = श्वासवायुम्, पिबति = पीतङ्करोति, श्वासानिलस्य पानङ्करोतीत्यर्थः। प्रकृत्या वैरिणोऽपि वैरं विहायाऽऽत्मीयतयाऽत्र निवसन्तीति भावः। एतेन भारद्वाजस्य तपश्चरणप्रभावं सूच्यते। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy
और भी—

हरिण खेलते हुए मुनि-बालकों के द्वारा सैकड़ों चरण-प्रहारा से जगे हुए सिंह के नखाङ्कुरों में कुछ क्षणों तक (अपनी) खुजली मिटा रहा है। उसी तरह चञ्चल पंख के चन्द्रबिन्दुवाले मयूर की चोंच के सहारे केंचुली छोड़े हुए यह सर्प सोये हुए नेवले के श्वास-वायु को पी रहा है ॥ ८० ॥

राम—अरे, चक्रवाक (चकवा नामक पक्षी) की स्त्रियों की क्रीडा का समय यह प्रातःकाल क्या आ ही गया ? जैसे कि—

केतकपुष्प के पराग के समान धूसर कान्तिवाली चन्द्रमा की ये किरणें वृद्धावस्था से जर्जर होकर सम्प्रति पश्चिम सागर के तट को पहुँच गयी हैं। खिलती हुई कमल श्रेणी के दृष्टि-पात से सत्कार की गयी सूर्य की ये तरुण किरणें भी प्राची (पूर्व दिशारूपी नायिका) के राग (लालिमा और अनुराग) को बढ़ा रही हैं ॥ ८१ ॥

लक्ष्मण—(उत्कण्ठापूर्वक)

भगवान् सूर्य शीघ्र ही (परस्पर) मिलनेवाले चक्रवाकों की जोड़ी के बहाने विशाल स्तनों की जोड़ी से सूचित यौवन से प्रकाशित कान्तिवाली दिशारूप कन्याओं का निर्माण करके (ललाट में) दुर्भाग्य की अक्षर-पंक्ति की तरह भ्रमरों की श्रेणी को सद्यः खींच कर (अर्थात् हटा कर) कमलिनी-जन की लक्ष्मी का विस्तार कर रहे हैं ॥ ८२ ॥

राम इति। चक्रवाकरमणीसंरम्भसमयः—चक्रवाकानाम् = कोकानाम् रमण्यः = वध्वः तासां संरम्भस्य = क्रीडायाः, वस्तुतस्तु कामक्रीडायाः इत्यर्थः, समयः = कालः ॥

अन्वयः—केतकधूलिधूसररुचः, शीतांशुद्युतेः, एते, अंशवः, जराजर्जराः, (सन्तः), सम्प्रति; पश्चिमस्य, जलधेः, तीरम्, प्राप्ताः; विकसत्सरोरुहवनीदृक्पातसम्भाविताः, तरणेः, तारुण्यभाजः, एते, कराः, अपि, प्राचीरागम्, उदीरयन्ति ॥ ८१ ॥

चन्द्रस्यास्ताचले सूर्यस्योदयगिरौ प्राप्तिं वर्णयन्नाह—एत इति। केतकधूलिधूसररुचः—केतकानाम् = केतकपुष्पाणाम् धूलिवत् = परागवत् धूसरा = धूम्रा रुक् = कान्तिः येषां ते तथाभूता, शीतांशुद्युतेः = चन्द्रस्य, एते = पश्चिमायां दिशि वर्तमानाः, अंशवः = किरणा, जराजर्जराः—जरया = वृद्धावस्थया जर्जराः = क्षीणाः, सन्तः, सम्प्रति = अस्मिन् क्षणे, पश्चिमस्य = पश्चिमदिक्स्थितस्य, जलधेः = सागरस्य, तीरम् = तटम्, प्राप्ताः = गताः; अस्तोन्मुखश्च चन्द्रः सम्प्रतीति भावः; विकसत्सरोरुहवनीदृक्पातसम्भाविताः—विकसन्ती = विकासं प्राप्नुवन्ती या सरोरुहवनी = कमलश्रेणी तस्याः दृक्पातेन = अवलोकनेन सम्भाविताः = सत्कृताः, तरणेः = सूर्यस्य, तारुण्यभाजः—अचिरोद्गता इत्यर्थः, एते = पूर्वस्यां दिशि दृग्गोचरीभूताः, कराः = अंशवः, अपि = च, प्राचीरागम्—प्राच्याः = पूर्वदिशः, नायिकारूपाया इत्यर्थः, रागम् = रक्ताभाम् अनुरागञ्चाऽपि, उदीरयन्ति = वर्द्धयन्तीत्यर्थः। सूर्यः उदयाचलमधिगतः इति भावः। अत्र समासोक्तिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८१ ॥

अन्वयः—देवः, त्विषाम्, ईश्वरः, सद्यः, संघटमानकोकमिथुनव्याजेन, पीनस्तन-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सुग्रीवः—विभीषण, पश्य पश्य ।

उन्मीलन्ति निशानिशाचरवधूनिर्वासनामान्त्रिकाः
सायं सालससुप्तपङ्कजवनप्रोद्बोधवैतालिकाः ।
फुल्लत्पङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गावली-
झाङ्कारप्रणवोपदेशगुरवस्तीव्रद्युतेरंशवः ॥ ८३ ॥

विभीषणः—एवमेतत् । तथाहि—

आयान्त्या दिवसश्रियः पदतलस्पर्शानुभावादिव
व्योमाशोकतरोर्नवीनकलिकागुच्छः समुज्जृम्भते ।
आतन्वन्नवतंसविभ्रममसावाशाकुरङ्गीदृशा-
मुन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः समुद्भासते ॥ ८४ ॥

द्वन्द्वव्यञ्जितयौवनोज्ज्वलरुचः, दिक्कन्यकाः, निर्माय, दुर्दैवाक्षरमालिकाम्, इव, भृङ्गावलीम्, झगिति, आकृष्य, अम्बुजिनीजनस्य, लक्ष्मीम्, तनुते ॥ ८२ ॥

सद्य इति । देवः=द्योतनशीलः, त्विषाम्=कान्तीनाम्, ईश्वरः=पतिः, सद्यः=झटिति, संघटमानकोकमिथुनव्याजेन—संघटमानानि=संपुज्यमानानि यानि कोकमिथुनानि=चक्रवाकद्वन्द्वानि तेषां व्याजेन=कपटेन, पीनस्तनद्वन्द्वव्यञ्जितयौवनोज्ज्वलरुचः—पीनानाम्=स्थूलानाम् स्तनानाम्=पयोधराणाम् द्वन्द्वैः=मिथुनैः व्यञ्जितम्=व्यक्तीकृतम् यत् यौवनम्=तारुण्यम् तेन उज्ज्वला=प्रकाशमाना रुक्=कान्तिः यासां तास्तादृशीः, दिक्कन्यकाः—दिशः=काष्ठाः एव कन्यकाः=युवत्यः ताः, निर्माय=विधाय; दिक्कन्यकानां चक्रवाकरूपं स्तनयुगलं व्यक्तीकृत्येत्यर्थः; दुर्दैवाक्षरमालिकाम्—दुर्दैवस्य=दुर्भाग्यस्य अक्षरमालिकाम्=वर्णावलीम्, इव=यथा, भृङ्गावलीम्=भ्रमरश्रेणीम्, कमलाभ्यन्तरे स्थितां भ्रमरपंक्तिमित्यर्थः, झगिति=झटिति, आकृष्य=दूरीकृत्य, अम्बुजिनीजनस्य=कमलिनीजनस्य, लक्ष्मीम्=शोभाम्, तनुते=विस्तारयति । आगते च सूर्ये कमलवनं विकसितं भ्रमरगणश्च ततो निर्गतं जायते इत्यभिप्रायः । अत्र कैतवापह्नुतेरुत्प्रेक्षायाश्च मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८२ ॥

अन्वयः—निशानिशाचरवधूनिर्वासनामान्त्रिकाः, सायम्, सालससुप्तपङ्कजवनप्रोद्बोधवैतालिकाः, फुल्लत्पङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गावलीझाङ्कारप्रणवोपदेशगुरवः, तीव्रद्युतेः, अंशवः, उन्मीलन्ति ॥ ८३ ॥

उन्मीलन्तीति—निशानिशाचरवधूनिर्वासनामान्त्रिकाः—निशा=रात्रिः एव निशाचरवधूः=निशाचरी, कृष्णवर्णत्वात्साम्यम्, तस्याः निर्वासनायाम्=अपसारणायाम् मान्त्रिकाः=मन्त्रज्ञाः, यथा मन्त्रज्ञा मन्त्रादिप्रयोगैः राक्षसीमपसारयन्ति तथैव सूर्यकरा निशामपि जगतो निःसारयन्ति; सायम्=सायङ्कालादित्यर्थः, सालससुप्तपङ्कजवनप्रोद्बोधवैतालिकाः—सालसम्=सतन्द्रं यथा स्यात्तथा सुप्तम्=निद्राणम् यत् पङ्कजवनम्=कमलवनम् तस्य प्रोद्बोधे=प्रबोधने वैतालिकाः=स्तुतिपाठकाः, यथा स्तुतिपाठकाः सुप्तं

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सुग्रीव—विभीषण, देखिये-देखिये—

रात्रिरूप राक्षसी को दूर भगाने में मान्त्रिक (मन्त्र-तन्त्र से भूत-प्रेत आदि भगाने-वाले व्यक्ति), सायङ्काल से ही आलस्यपूर्वक सोये हुए कमल-वन को जगाने (विक-सित करने) में स्तुति-पाठक (भाँट एवं चारण), विकसित होते हुए कमलों की कली के भीतर गह्वर से निकलनेवाली भ्रमर-पंक्ति के गुञ्जनरूप ओङ्कार के उपदेश (देने में) गुरु (अर्थात् गुञ्जन के लिए प्रेरणा करनेवाले), सूर्य के मयूख प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ८३ ॥

विभीषण—यह ऐसा ही है। जैसे कि—

आती हुई दिन-लक्ष्मी के मानो चरण-तल के स्पर्श के प्रभाव से आकाशरूपी अशोक वृक्ष का नवीन कलियों का गुच्छ (रूप यह सूर्य) प्रकाशित हो रहा है। यह उदित होते हुए बाल सूर्य की किरणों का समूह, दिशारूप सुन्दरियों के आभूषण के विलास को बढ़ाते हुए उद्भासित हो रहा है ॥ ८४ ॥

राजानं प्रबोधयन्ति तथैव सूर्यकरा अपि मुकुलितं कमलवनं प्रबोधयन्तीति भावः। फुल्लत्पङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गावलीझाङ्कारप्रणवोपदेशगुरवः—फुल्लन्ति = विकसन्ति यानि पङ्कजानि = कमलानि तेषां कोशगर्भाः = मुकुलाभ्यन्तराणि एव कुहराणि = गह्वराणि तेभ्यः प्रोद्भूता = निर्गता या भृङ्गावली = भ्रमरश्रेणी तस्याः झाङ्कारः = गुञ्जनम् एव प्रणवः = ओङ्कारः तस्योपदेशे गुरवः = शिक्षकाः; यथा गुरवः शिष्यान् प्रणवोच्चारणाय प्रेरयन्ति तथैव सूर्यकिरणाः अपि भ्रमरान् प्रबोध्य झाङ्कृतिकरणाय प्रेरयन्तीति भावः। तादृशाः तीव्रद्युतेः = सूर्यस्य, अंशवः = कराः, उन्मीलन्ति = प्रादुर्भवन्ति। अत्र रूपका-लङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमिति ॥ ८३ ॥

अन्वयः—आयान्त्याः, दिवसश्रियः, पदतलस्पर्शानुभावात्, इव, व्योमाशोकतरोः, नवीनकलिकागुच्छः, समुज्जृम्भते; असौ, उन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः, आशाकुरङ्गी-दृशाम्, अवतंसविभ्रमम्, आतन्वन्, समुद्भासते ॥ ८४ ॥

आयान्त्या इति। आयान्त्याः = आगच्छन्त्याः, दिवसश्रियः—दिवसस्य = दिनस्य श्रियः = शोभायाः, पदतलस्पर्शानुभावात्—पदतलेन = चरणतलेन यः स्पर्शः = प्रहारः तस्य अनुभावात् = प्रभावात्, इव, व्योमाशोकतरोः—व्योम = आकाशम् एव अशोक-तरुः = वञ्जुलवृक्षः ('वकुलो वञ्जुलोऽशोके' इत्यमरः) तस्य, नवीनकलिकागुच्छः = अचिरोद्गतपुष्पस्तवकः, पुष्पस्तवकरूपारुणदिवाकरः इत्यर्थः, समुज्जृम्भते = प्रादुर्भवति। असौ = एषः, उन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः—उन्मीलन् = निर्गच्छन् यः तरुणः = बाल इति भावः प्रभाकरः = सूर्यः तस्य करस्तोमः = अंशुजालम्, आशाकुरङ्गीदृशाम्—आशाः = दिशः एव कुरङ्गीदृशः तासाम्, अवतंसविभ्रमम्—अवतंसस्य = आभूषणस्य विभ्रमम् = विलासम्, आतन्वन् = विस्तारयन्, समुद्भासते = प्रकाशते। आकाशा-शोकस्य कलिकागुच्छ इव प्रतीयमानः तथा आशाकुरङ्गीदृशामाभूषणशोभां जनयन् सूर्यः उदेतीति भावः। अत्रोत्प्रेक्षारूपकयोः संसृष्टिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सुग्रीवः—विभीषण, पश्य पश्य ।

उन्मीलन्ति निशानिशाचरवधूनिर्वासनामान्त्रिकाः
सायं सालससुप्तपङ्कजवनप्रोद्बोधवैतालिकाः ।
फुल्लत्पङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गावली-
झाङ्कारप्रणवोपदेशगुरवस्तीव्रद्युतेरंशवः ॥ ८३ ॥

विभीषणः—एवमेतत् । तथाहि—

आयान्त्या दिवसश्रियः पदतलस्पर्शानुभावादिव
व्योमाशोकतरोर्नवीनकलिकागुच्छः समुज्जृम्भते ।
आतन्वन्नवतंसविभ्रममसावाशाकुरङ्गीदृशा-
मुन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः समुद्भासते ॥ ८४ ॥

द्वन्द्वव्यञ्जितयौवनोज्ज्वलरुचः, दिक्कन्यकाः, निर्माय, दुर्दैवाक्षरमालिकाम्, इव, भृङ्गावलीम्, झगिति, आकृष्य, अम्बुजिनीजनस्य, लक्ष्मीम्, तनुते ॥ ८२ ॥

सद्य इति । देवः = द्योतनशीलः, त्विषाम् = कान्तीनाम्, ईश्वरः = पतिः, सद्यः = झटिति, संघटमानकोकमिथुनव्याजेन—संघटमानानि = संपुल्यमानानि यानि कोकमिथुनानि = चक्रवाकद्वन्द्वानि तेषां व्याजेन = कपटेन, पीनस्तनद्वन्द्वव्यञ्जितयौवनोज्ज्वलरुचः—पीनानाम् = स्थूलानाम् स्तनानाम् = पयोधराणाम् द्वन्द्वैः = मिथुनैः व्यञ्जितम् = व्यक्तीकृतम् यत् यौवनम् = तारुण्यम् तेन उज्ज्वला = प्रकाशमाना रुक् = कान्तिः यासां तास्तादृशीः, दिक्कन्यकाः—दिशः = काष्ठाः एव कन्यकाः = युवत्यः ताः, निर्माय = विधाय; दिक्कन्यकानां चक्रवाकरूपं स्तनयुगलं व्यक्तीकृत्येत्यर्थः; दुर्दैवाक्षरमालिकाम्—दुर्दैवस्य = दुर्भाग्यस्य अक्षरमालिकाम् = वर्णावलीम्, इव = यथा, भृङ्गावलीम् = भ्रमरश्रेणीम्, कमलाभ्यन्तरे स्थितां भ्रमरपंक्तिमित्यर्थः, झगिति = झटिति, आकृष्य = दूरीकृत्य, अम्बुजिनीजनस्य = कमलिनीजनस्य, लक्ष्मीम् = शोभाम्, तनुते = विस्तारयति । आगते च सूर्ये कमलवनं विकसितं भ्रमरगणश्च ततो निर्गतं जायते इत्यभिप्रायः । अत्र कैतवापह्नुतेरुत्प्रेक्षायाश्च मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८२ ॥

अन्वयः—निशानिशाचरवधूनिर्वासनामान्त्रिकाः, सायम्, सालससुप्तपङ्कजवनप्रोद्बोधवैतालिकाः, फुल्लत्पङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गावलीझाङ्कारप्रणवोपदेशगुरवः, तीव्रद्युतेः, अंशवः, उन्मीलन्ति ॥ ८३ ॥

उन्मीलन्तीति—निशानिशाचरवधूनिर्वासनामान्त्रिकाः—निशा = रात्रिः एव निशाचरवधूः = निशाचरी, कृष्णवर्णत्वात्साम्यम्, तस्याः निर्वासनायाम् = अपसारणायाम् मान्त्रिकाः = मन्त्रज्ञाः, यथा मन्त्रज्ञा मन्त्रादिप्रयोगै राक्षसीमपसारयन्ति तथैव सूर्यकरा निशामपि जगतो निःसारयन्ति; सायम् = सायङ्कालादित्यर्थः, सालससुप्तपङ्कजवनप्रोद्बोधवैतालिकाः—सालसम् = सतन्द्रं यथा स्यात्तथा सुप्तम् = निद्राणम् यत् पङ्कजवनम् = कमलवनम् तस्य प्रोद्बोधे = प्रबोधने वैतालिकाः = स्तुतिपाठकाः, यथा स्तुतिपाठकाः सुप्तं

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सुग्रीव—विभीषण, देखिये-देखिये—

रात्रिरूप राक्षसी को दूर भगाने में मान्त्रिक (मन्त्र-तन्त्र से भूत-प्रेत आदि भगाने-वाले व्यक्ति), सायङ्काल से ही आलस्यपूर्वक सोये हुए कमल-वन को जगाने (विकसित करने) में स्तुति-पाठक (भाँट एवं चारण), विकसित होते हुए कमलों की कली के भीतर गह्वर से निकलनेवाली भ्रमर-पंक्ति के गुञ्जनरूप ओङ्कार के उपदेश (देने में) गुरु (अर्थात् गुञ्जन के लिए प्रेरणा करनेवाले), सूर्य के मयूख प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ८३ ॥

विभीषण—यह ऐसा ही है। जैसे कि—

आती हुई दिन-लक्ष्मी के मानो चरण-तल के स्पर्श के प्रभाव से आकाशरूपी अशोक वृक्ष का नवीन कलियों का गुच्छ (रूप यह सूर्य) प्रकाशित हो रहा है। यह उदित होते हुए बाल सूर्य की किरणों का समूह, दिशारूप सुन्दरियों के आभूषण के विलास को बढ़ाते हुए उद्भासित हो रहा है ॥ ८४ ॥

राजानं प्रबोधयन्ति तथैव सूर्यकरा अपि मुकुलितं कमलवनं प्रबोधयन्तीति भावः। फुल्लत्पङ्कजकोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गावलीझाङ्कारप्रणवोपदेशगुरवः—फुल्लन्ति = विकसन्ति यानि पङ्कजानि = कमलानि तेषां कोशगर्भाः = मुकुलाभ्यन्तराणि एव कुहराणि = गह्वराणि तेभ्यः प्रोद्भूता = निर्गता या भृङ्गावली = भ्रमरश्रेणी तस्याः झाङ्कारः = गुञ्जनम् एव प्रणवः = ओङ्कारः तस्योपदेशे गुरवः = शिक्षकाः; यथा गुरवः शिष्यान् प्रणवोच्चारणाय प्रेरयन्ति तथैव सूर्यकिरणाः अपि भ्रमरान् प्रबोध्य झाङ्कृतिकरणाय प्रेरयन्तीति भावः। तादृशाः तीव्रद्युतेः = सूर्यस्य, अंशवः = कराः, उन्मीलन्ति = प्रादुर्भवन्ति। अत्र रूपकालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमिति ॥ ८३ ॥

अन्वयः—आयान्त्याः, दिवसश्रियः, पदतलस्पर्शानुभावात्, इव, व्योमाशोकतरोः, नवीनकलिकागुच्छः, समुज्जृम्भते; असौ, उन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः, आशाकुरङ्गीदृशाम्, अवतंसविभ्रमम्, आतन्वन्, समुद्भासते ॥ ८४ ॥

आयान्त्या इति। आयान्त्याः = आगच्छन्त्याः, दिवसश्रियः—दिवसस्य = दिनस्य श्रियः = शोभायाः, पदतलस्पर्शानुभावात्—पदतलेन = चरणतलेन यः स्पर्शः = प्रहारः तस्य अनुभावात् = प्रभावात्, इव, व्योमाशोकतरोः—व्योम = आकाशम् एव अशोकतरुः = वञ्जुलवृक्षः ('वकुलो वञ्जुलोऽशोके' इत्यमरः) तस्य, नवीनकलिकागुच्छः = अचिरोद्गतपुष्पस्तवकः, पुष्पस्तवकरूपारुणदिवाकरः इत्यर्थः, समुज्जृम्भते = प्रादुर्भवति। असौ = एषः, उन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः—उन्मीलन् = निर्गच्छन् यः तरुणः = बाल इति भावः प्रभाकरः = सूर्यः तस्य करस्तोमः = अंशुजालम्, आशाकुरङ्गीदृशाम्—आशाः = दिशः एव कुरङ्गीदृशः तासाम्, अवतंसविभ्रमम्—अवतंसस्य = आभूषणस्य विभ्रमम् = विलासम्, आतन्वन् = विस्तारयन्, समुद्भासते = प्रकाशते। आकाशाशोकस्य कलिकागुच्छ इव प्रतीयमानः तथा आशाकुरङ्गीदृशामाभूषणशोभां जनयन् सूर्यः उदेतीति भावः। अत्रोत्प्रेक्षारूपकयोः संसृष्टिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—प्रिये,

एतत्तर्कय चक्रवाकसुदृशामाश्वासनादायिनः
प्रौढध्वान्तपयोधिमग्नजगतीदत्तावलम्बोत्सवाः ।
दीप्तांशोर्विकसन्ति दिङ्मृगदृशां काश्मीरपङ्कोदक-
व्यात्युक्षीचतुराः सरोरुहवनश्रीकेलिकाराः कराः ॥ ८५ ॥

(अपवार्य) पश्य पश्य ।

शिथिलयति सरागो यावदर्को नलिन्याः
कमलमुकुलनीवीग्रन्थिमुद्रां करेण ।
प्रविकसदलिमाला गुञ्जितैर्मञ्जुशब्दा
जनयति मुदमुच्चैः कामिनां कामिनीव ॥ ८६ ॥

सीता—(विहस्य विलोक्य च) कथमयमुन्मीलित एव ।
[कहं इमो उम्मीलिदो जेव्व ।]

पूर्वगिरिपद्मरागः प्रकटीकृतनयनशीतलस्वभावः ।
कुङ्कुमकृताङ्गरागो नलिनीजनवल्लभो देवः ॥ ८७ ॥
[पुव्वगिरिपोम्मरायो पअडीकिदणअणशीअलसहाओ ।
कुङ्कुमकिअङ्गराओ णलिणीजणवल्लहो देवो ॥]

अन्वयः—चक्रवाकसुदृशाम्, आश्वासनादायिनः, प्रौढध्वान्तपयोधिमग्नजगतीदत्तावलम्बोत्सवाः, दिङ्मृगदृशाम्, काश्मीरपङ्कादकव्यात्युक्षीचतुराः, सरोरुहवनश्रीकेलिकाराः, दीप्तांशोः, कराः, विकसन्ति, एतत्, तर्कय ॥ ८५ ॥

एतदिति । चक्रवाकसुदृशाम्—चक्रवाकानाम् = कोकानाम् सुदृशः = सुन्दर्यः तासाम्, आश्वासनादायिनः = आश्वासकाः, आनन्ददायिन इत्यर्थः, प्रौढध्वान्तपयोधिमग्नजगतीदत्तावलम्बोत्सवाः—प्रौढः = सूचिभेद्यः, गाढः इत्यर्थः यो ध्वान्तः = अन्धकारः स एव पयोधिः = सागरः तत्र मग्ना = ब्रुडिता या जगती = संसारः तस्यै दत्तः = समर्पितः अवलम्बस्य = साहाय्यस्य उत्सवः = आनन्दः यैस्ते तादृशाः, दिङ्मृगदृशाम्—दिशः = आशाः एव मृगदृशः = हरिणलोचनाः तासाम्, काश्मीरपङ्कादकव्यात्युक्षीचतुराः—काश्मीरम् = कस्तूरिका तस्य पङ्कादकेन = चूर्णमिश्रितसलिलेन व्यात्युक्षी = जलक्रीडा तस्यां चतुराः = निपुणाः, पर्याप्ता इति यावत्, सरोरुहवनश्रीकेलिकाराः—सरोरुहवनस्य = कमलवनस्य श्रिया = शोभया केलिकाराः = क्रीडाकराः, दीप्तांशोः = सूर्यस्य, कराः = अंशवः, विकसन्ति = प्रसरन्ति, इति = एतत्, तर्कय = विचारय । उत्प्रेक्षारूपकयोः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८५ ॥

अन्वयः—सरागः, अर्कः, करेण, यावत्, नलिन्याः, कमलमुकुलनीवीग्रन्थिमुद्राम्, शिथिलयति; (तावत्), मञ्जुशब्दा, प्रविकसदलिमाला, (सा), गुञ्जितैः; कामिनी, कामिनामिव, उच्चैः, मुदम्, जनयति ॥ ८६ ॥

शिथिलयतीति । सरागः—रागेण = लौहित्येन (पक्षे—अनुरागेण) सहितः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—प्रिये,

चक्रवाकियों को ढाढस दिलानेवाले, गाढ़े अन्धकाररूपी सागर में निमग्न संसार को आलम्बन (सहारा) का आनन्द प्रदान करनेवाले, दिशारूप सुन्दरियों के कस्तूरी से मिश्रित जल से जल-क्रीडा करने में निपुण (पर्याप्त), कमल-वन की शोभा के साथ केलि (काम-क्रीडा) करनेवाले, सूर्य के मयूख चारों ओर फैल रहे हैं—ऐसा सोचो ॥ ८५ ॥

(अलग से) देखो-देखो—

(१) किञ्चित् लाल सूर्य किरण से जभी कमललता की कमल-कलीरूप साडी की गाँठ को खोलता है (विकसित करता है); (तभी) मनोहर ध्वनिवाली, (भीतर से निकल कर बाहर) उड़नेवाली भौंरों की पंक्ति से युक्त (वह) गुञ्जारों से, जैसे—कामिनी कामुकों की प्रसन्नता को व्यक्त करती है उसी तरह, (सूर्य की) अतिशय प्रसन्नता को प्रकट कर रही है ॥ ८६ ॥

(२) अनुराग से युक्त अर्क (नामक कोई नायक) हाथ से जभी नलिनी (नामक नायिका) की कमलकली के समान साड़ी की गाँठ को ढीली करता है तभी मनोहर शब्द करनेवाली, प्रसन्न सखियों से घिरी हुई (वह) मधुर शब्दों से, कमलिनी जैसे सूर्य की प्रसन्नता को प्रकट करती है उसी तरह, कामुकों की अतिशय प्रसन्नता को प्रकट कर रही है ॥ ८६ ॥

सीता—(हँस कर तथा देख कर)

उदयाचल के पद्मरागमणि, नेत्रों के शीतल स्वभाव को प्रकट करनेवाले, कुङ्कुम से अङ्गराग किये हुए, कमलिनी-जनों के प्रिय (यह) भगवान् (क्या उदित ही हो गये) ? ॥ ८७ ॥

सरागः=रक्तवर्णः, (पक्षे—अनुरागयुक्तः), अर्कः = सूर्यः, (पक्षे—कश्चिन्नायकः), करेण = किरणेन (पक्षे—हस्तेन), यावत् = यदैवेत्यर्थः, नलिन्याः = कमललतायाः (पक्षे—नलिनीनायिकायाः), कमलमुकुलनीवीग्रन्थिमुद्राम्—कमलमुकुलमेव = कमल-कुड्मलमेव या नीवीग्रन्थिमुद्रा = कटिवस्त्रबन्धनग्रन्थिमुद्रा, (पक्षे—कमलमुकुलमिव नीवीग्रन्थिमुद्रा) ताम् , शिथिलयति=विकाशयति (पक्षे—श्लथयति), (तावत् = तदैवेत्यर्थः), मञ्जुशब्दा—मञ्जुः=मनोहारी शब्दः = कण्ठध्वनिः यस्याः सा मधुर-वाणीत्यर्थः, एकत्र मधुकरगुञ्जनैः मञ्जुशब्दत्वमपरत्र कण्ठेनैव, प्रविकसदलिमाला—प्रविकसन्ती=बहिरागच्छन्ती अलिमाला=भ्रमरपङ्क्तिः यस्याः सा तादृशी, (पक्षे—प्रविकसन्ती = हर्षं गच्छन्ती अलिमाला = सखिसमवायः यस्याः सा तादृशी), सेति शेषः, गुञ्जितैः = गुञ्जनैः, भ्रमरशब्दैरित्यर्थः, (पक्षे—मधुरध्वनिभिः); कामिनी = रमणी, कामिनामिव = कामुकानामिव; उच्चैः = पर्याप्तम् , मुदम् = प्रसन्नताम् , जनयति = प्रकटयति । अत्रोपमारूपकसमासोक्तीनां सङ्करः । मालिनी वृत्तम् ॥ ८६ ॥

अन्वयः—दूर्वगिरिपद्मरागः, प्रकटीकृतनयनशीतलस्वभावः, कुङ्कुमकृताङ्गरागः, नलिनीजनवल्लभः, (अयम्), देवः (कथम् , उन्मीलितः, एव) ॥ ८७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

रामः—(प्रकाशम्) अये जानकि, पश्य पश्य ।

तरलतरतरङ्गभङ्गहेलाबहलविलासविलोलहंसमाला ।
अमरपुरतरङ्गिणीयमम्बा सुरनरमङ्गलकारिणी न दूरे ॥ ८८ ॥

(सीता सहर्षं तदेव पठति संस्कृतं प्राकृतं च)

रामः—(सहर्षम्) वत्स लक्ष्मण, इयमदूरे रघुकुलमङ्गलाङ्कुरप्ररोहकेदारधरणीतरङ्गिणी सरयूः । इयं च सरयूतरङ्गशीकरशीतलीकृतपरिसरा नगरीसीमन्तमणिरयोध्या ।

लक्ष्मणः—(सहर्षम्) अयमसौ भरतानुयातस्त्वदभिषेककृतमतिर्भगवानरुन्धतीपतिः ।

दिलीपकुलमाणिक्यं सकलाशाविकासकम् ।
आविर्भवन्तं भास्वन्तं भवन्तं संप्रतीक्षते ॥ ८९ ॥

ते पुष्पकादवतरामः ।

रामः—वत्स, प्रतीक्षस्वैव तावत्सुलभसकलमण्डलालोकमाखण्डलाशामण्डनं भगवन्तं चण्डमरीचिं नमस्यामः । (अञ्जलिं बध्वा)

पूर्वगिरीति । पूर्वगिरिपद्मरागः—पूर्वगिरौ = उदयाचले पद्मरागः = पद्मरागमणिः, पद्मरागमणितुल्य इति भावः, प्रकटीकृतनयनशीतलस्वभावः—प्रकटीकृतः = प्रकाशितः नयनयोः = नेत्रयोः शीतलः = सार्थकत्वादनुकूलः स्वभावः = प्रकृतिः येन स तादृशः, कुङ्कुमकृताङ्गरागः—कुङ्कुमेन = केशरेण कृतः = विहितः अङ्गरागः = शरीरलेपनं येन सः, = प्रत्यग्रोदितस्य सूर्यस्य पीतवर्णत्वादियमुक्तिः, नलिनीजनवल्लभः–नलिनीजनानाम् = कमलिनीजनानाम् वल्लभः = प्रियः, (अयम् = एषः), देवः = भगवान् , (कथम् = किम्, उन्मीलितः = निर्गतः, एव) ? 'कथमयमुन्मीलित एवेति पूर्वेण सम्बन्धः !' आर्या वृत्तम् ॥ ८७ ॥

अन्वयः—तरलतरतरङ्गभङ्गहेलाबहलविलासविलोलहंसमाला, सुरनरमङ्गलकारिणी, इयम्, अम्बा, अमरपुरतरङ्गिणी, दूरे, न, (वर्तते) ॥ ८८ ॥

गङ्गामुद्दिश्याह—तरलतरेति । तरलतराः = अतिचञ्चलाः ये तरङ्गाः = लहर्यः तेषां भङ्गहेलायाम् = भङ्गक्रीडायाम् बहलविलासेन = प्रचुरविलसनेन विलोला = बहुचञ्चला हंसमाला = हंसश्रेणी यस्या सा, सुरनरमङ्गलकारिणी—सुराः = देवाः नराः = मानवाः तेषां मङ्गलकारिणी = कल्याणकारिणी, इयम् = एषा, अम्बा = माता, अमरपुरतरङ्गिणी = सुरनदी, गङ्गेत्यर्थः, दूरे = विप्रकृष्टदेशे, न = न वर्तते इति क्रियाशेषः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ८८ ॥

इयम् इति । रघुकुलमङ्गलाङ्कुरप्ररोहकेदारधरणीतरङ्गिणी—रघुकुलस्य = रघुवंशस्य यो मङ्गलाङ्कुरः = कल्याणप्ररोहः तस्य प्ररोहाय = उत्पत्त्यै केदारधरणी = क्षेत्रभूमिः तस्याः तरङ्गिणी = नदी सिञ्चनकरी अतो वृद्धिकरी च । सरयूतरङ्गशीतलीकृतपरिसरा—सरयूतरङ्गैः = सरयूलहरीभिः शीतलीकृतः = शीतीभूतः परिसरः = प्रान्तभागः यस्याः सा,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

राम—(प्रकट रूप में) अये सीते, देखो—

अत्यन्त चञ्चल तरङ्गों की टूटने की क्रीडा में प्रचुर विलास के साथ चपल हंसों की श्रेणी से युक्त, देवों तथा मानवों की कल्याण करनेवाली यह माँ गङ्गा (अब) दूर नहीं (है) ॥ ८८ ॥

(सीता राम के द्वारा कहे गये उसी संस्कृत पद्य तथा अपने द्वारा कहे गये उसी प्राकृत पद्य को भी पढ़ती हैं)।

राम—(प्रसन्नता के साथ) वत्स लक्ष्मण, रघुकुल के कल्याण के अङ्कुर की उत्पत्ति की क्षेत्रभूमि (खेत की जमीन) की नदी यह सरयू पास में ही है। और यह सरयू की लहरियों से शीतल पार्श्वभागवाली नगरियों की मध्यमणि (अर्थात् नगरी-श्रेष्ठ) अयोध्या है।

लक्ष्मण—(प्रसन्नता के साथ) भरत से अनुगत तथा आपके अभिषेक की इच्छा से सम्पन्न (यह) पूज्य वशिष्ठ—

दलीप वंश के मणि, सकल दिशाओं को (अपने तेज से) विकसित करनेवाले, उदित होते हुए सूर्य के समान आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ८९ ॥

अतः (हम लोग) पुष्पक (विमान) से उतरें।

राम—वत्स, रुको यहीं सर्वप्रथम सम्पूर्ण मण्डल से सुलभ दर्शनवाले (अर्थात् पूरे मण्डल के साथ दिखलाई पड़नेवाले), पूरब दिशा (रूपी नायिका) के आभूषण, भगवान् सूर्य को (हम लोग) प्रणाम करेंगे। (हाथ जोड़ कर)—

नगरीसीमन्तमणिः—नगरीणाम् = पुरीणाम् सीमन्तमणिः = मध्यमणिः, ललाम-भूतेत्यर्थः ॥

अन्वयः—दिलीपकुलमाणिक्यम्, सकलाशाविकासकम्, आविर्भवन्तम्, भास्वन्तम्, भवन्तम्, सम्प्रतीक्षते ॥ ८९ ॥

दिलीपकुलमिति । दिलीपकुलमाणिक्यम्—दिलीपकुलस्य = रघुवंशस्य माणिक्यम् = मणिम्, रघुकुलश्रेष्ठमिति भावः, सकलाशाविकासकम्—सकलानाम् = सर्वासाम् आशानाम् = दिशाम् विकासकम् = पूरकम्, स्वतेजोभिरिति शेषः, आविर्भवन्तम् = उद्यन्तम्, भास्वन्तम् = सूर्यम्, भवन्तम् = त्वाम्, सम्प्रतीक्षते = धैर्येण त्वन्मार्गमवलोकयतीति। अत्र श्लेषोऽलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ८९ ॥

राम इति। सुलभसकलमण्डलालोकम्—सुलभः = सुप्राप्यः सकलस्य = सम्पूर्णस्य मण्डलस्य = बिम्बस्य आलोकः = दर्शनम् यस्य स तम्, आखण्डलाशामण्डनम्—आखण्डलस्य = इन्द्रस्य, इन्द्रसम्बन्धिनीत्यर्थः, या आशा = दिक् तस्याः मण्डनम् = आभूषणम्, चण्डमरीचिम्—चण्डाः = तीक्ष्णाः मरीचयः = अंशवः यस्य तम् ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्राचीकुङ्कुमतिलकं पूर्वाचलशेखरैकमाणिक्यम् ।
त्रिभुवनगृहैकदीपं वन्दे लोकैकलोचनं देवम् ।। ९० ।।

(नेपथ्ये)

अये वत्स रामभद्र ।

रामः—अहो अद्भुतम् ।

विकासयन्ती नितरां पद्मानीव मनांसि नः ।
प्रभेव भारती कापि भानुबिम्बाद्विजृम्भते ।। ९१ ।।

(नेपथ्ये)

यशःपूरं दूरं तनु सुतनुनेत्रोत्पलवनी-
तमस्तन्द्राचण्डातप तप सहस्राणि शरदाम् ।
इयं चास्तां युष्मद्गुणकथनपीयूषपटल-
श्रितासङ्गा नन्दत्सुरनरभुजङ्गा त्रिजगती ॥ ९२ ॥

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

(पुनर्नेपथ्ये)

अन्यच्च ते किमाशास्महे ।

सुग्रीवः—अये तात दिनकर, परिपूर्णमनोरथ एव रामभद्रः । अनेन हि

अन्वयः—प्राचीकुङ्कुमतिलकम्, पूर्वाचलशेखरैकमाणिक्यम्, त्रिभुवनगृहैकदीपम्, लोकैकलोचनम्, देवम्, वन्दे ॥ ९० ॥

सूर्यं नमस्करोति—प्राचीमिति । प्राचीकुङ्कुमतिलकम्—प्राच्याः = पूर्वदिशः, प्राचीनायिकायाः इत्यर्थः, कुङ्कुमस्य = केसरस्य तिलकम् = विशेषकम्, उद्यतः सूर्यस्य पीतवर्णत्वादियमुक्तिः, पूर्वाचलशेखरैकमाणिक्यम्—पूर्वाचलस्य = उदयगिरेः शेखरस्य = शृङ्गस्य एकम् = अपूर्वम् माणिक्यम् = मणिम्, त्रिभुवनगृहैकदीपम्—त्रिभुवनम् = त्रिलोकी एव गृहम् = भवनम् तस्य दीपम् = प्रदीपम्, लोकैकलोचनम्—लोकस्य = जगतः एकम् = अद्वितीयम् लोचनम् = नेत्रम्, नेत्रदर्शनसामर्थ्यप्रदानत्वादियमुक्तिः, देवम् = द्योतनशीलं सूर्यम्, वन्दे = प्रणमामि । अत्र रूपकालङ्कारः । गीतिर्वृत्तमिति ।। ९० ।।

अन्वयः—पद्मानि, इव, नः, मनांसि, नितराम्, विकासयन्ती, काऽपि, भारती, प्रभा, इव, भानुबिम्बात्, विजृम्भते ।। ९१ ।।

विकासयन्तीति । पद्मानि = कमलानि, इव = यथा, नः = अस्माकम्, मनांसि = चेतांसि, नितराम् = अत्यन्तम्, विकासयन्ती = आह्लादयन्ती, काऽपि = काप्यनिर्वचनीयेत्यर्थः, भारती = वाणी, प्रभा = कान्तिः, इव = यथा, भानुबिम्बात्—भानोः = सूर्यस्य बिम्बात् = मण्डलात्, विजृम्भते = प्रादुर्भवति । सूर्यमण्डलान्निर्गता कान्तिर्यथा

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पूरब दिशा (रूपी नायिका) के कुङ्कुम के तिलक, उदयाचल की चोटी के अपूर्व मणि, त्रिभुवन रूप घर के एकमात्र दीपक, जगत् के अद्वितीय नेत्र भगवान (सूर्य) की वन्दना कर रहा हूँ ॥ १० ॥

(पर्दे के पीछे)

अये वत्स रामभद्र,

राम—कमलों के समान हमारे मन को अतिशय प्रफुल्लित करती हुई अनिर्वचनीय वाणी, प्रभा की तरह, सूर्य के मण्डल से प्रादुर्भूत हो रही है ॥ ११ ॥

हे सुन्दरियों के नेत्र-कमलों की श्रेणी की तम-तन्द्रा में सूर्य (अर्थात् सुन्दरियों के नेत्र-कमलों को विकसित करने में सूर्य रूप हे रामचन्द्र), यश-समूह को दूर-दूर तक फैलाओ; हजार वर्षों तक तेजस्वी बनो; यह त्रिलोकी आपके गुणों के प्रशंसा रूप अमृत-समूह से व्याप्त अन्तरालवाली तथा आनन्द का अनुभव करनेवाले देवों, मानवों तथा भुजङ्गों से युक्त बने ॥ १२ ॥

राम—(मैं) अनुगृहीत हूँ।

(फिर पर्दे के पीछे)

और क्या आपके लिए आशा करें ?

सुग्रीव—हे तात सूर्य, रामचन्द्र सब तरह से पूर्ण मनोरथवाले हैं। इनके द्वारा तो—

कमलानि प्रबोधयति तथैव ततो निर्गतेयं वाणी नो मनांसि विकासयतीति भावः। उपमाऽलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे सुतनुनेत्रोत्पलवनीतमस्तन्द्राचण्डातप, यशःपूरम्, दूरम्, तनुः शरदाम्, सहस्राणि, तप; इयम्, त्रिजगती, युष्मद्गुणकथनपीयूषपटलश्रितोत्सङ्गा, नन्दत्सुरनरभुजङ्गा, आस्ताम् ॥ १२ ॥

सूर्यमण्डलादाशीरुक्तिः—यशः पूरमिति। हे सुतनुनेत्रोत्पलवनीतमस्तन्द्राचण्डातप—सुतनूनाम् = सुन्दरीणाम् नेत्राणि = लोचनानि एव उत्पलानि तेषां वनी = श्रेणी तस्याः या तमस्तन्द्रा = सङ्कोचनिद्रा तत्र चण्डातपः = सूर्यः तत्सम्बुद्धौ, यशःपूरम्—यशसः = कीर्तेः पूरम् = प्रवाहम्, दूरम् = विप्रकृष्टम्, तनु = विस्तारय; शरदाम् = सम्वत्सराणामित्यर्थः, सहस्राणि, तप = तेजसा प्रकाशितो भव; इयम् = एषा, त्रिजगती = त्रिलोकी, युष्मद्गुणकथनपीयूषपटलश्रितोत्सङ्गा—युष्माकम् = भवताम् गुणानाम् = सद्भावानाम् कथनम् = कीर्तनम् एव पीयूषपटलः = अमृतसमूहः तेन श्रितः = आश्रितः उत्सङ्गः = अङ्कः यस्याः सा तादृशी, तथा नन्दत्सुरनरभुजङ्गा—नन्दन्तः = आनन्दमनुभवन्तः सुराः = देवाः नराः = मनुष्याः भुजङ्गाः = नागजातिविशेषाः यस्या सा तादृशी, आस्ताम् = भवेत्। वृत्त्यनुप्रासालङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ १२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

प्राप्ता निर्भरमुन्नतिर्निजगुणैराज्ञा पितुः पालिता
सुग्रीवश्च विभीषणश्च परमां राज्यश्रियं प्रापितौ ।
सङ्ग्रामे दशकन्धरः सुररिपुर्नीतो यशःशेषतां
दृष्टो बन्धुजनश्च हर्षविगलद्बाष्पोल्लसल्लोचनः ॥ ९३ ॥

तथापीदमस्तु ।

आबालाद्वदनाम्बुजे तनुभृतां सारस्वतं जृम्भतां
देवे कौस्तुभधाम्नि चन्द्रमुकुटेऽद्वैता मतिः खेलतु ।
वाग्देव्या सह मुक्तवैशसरसा देवी च दीव्यादियं
शेषस्येव फणाञ्चलेषु सततं लक्ष्मीः सतां सद्मसु ॥ ९४ ॥

रामः—तदागच्छत । पुष्पकादवतीर्य गुरुं बन्धुजनं पौरांश्चानन्दयामः ।

(इति सर्वे पुष्पकादवतरन्ति)

जायन्तामविरामरामचरितक्रीडाभिरामाः सता-
मुन्मीलन्नवमालिकाविरचितस्रग्दामरम्या गिरः ।
याः कण्ठेऽपि निवेश्य पेशलधियो रोमाञ्चलीलाञ्चिताः
कान्ताबाहुलताविलासमहिमाश्लेषांस्तृणं मन्वते ॥ ९५ ॥

अन्वयः—पितुः, आज्ञा, पालिता; निजगुणैः, निर्भरम् , उन्नतिः, प्राप्ता; सुग्रीवः, च, विभीषणः, च, परमाम् , राज्यश्रियम् , प्रापितौ; सुररिपुः, दशकन्धरः, संग्रामे, यशः-शेषताम् , नीतः; हर्षविगलद्बाष्पोल्लसल्लोचनः, बन्धुगणः, च, दृष्टः ॥ ९३ ॥

प्राप्तेति । अनेनेति गद्यभागादध्याहार्यम् , पितुः = जनकस्य, दशरथस्येत्यर्थः, आज्ञा = आदेशः, पालिता = पूरिता; निजगुणैः = स्वसद्वृत्तैः, निर्भरम् = सातिशयं यथा तथा, उन्नतिः = अभ्युदयः, प्राप्ता = अधिगता; सुग्रीवः = सुग्रीवनामा सूर्यपुत्रः वानरः इत्यर्थः, च = तथा, विभीषणः = रावणानुजः, च = अपि, परमाम् = उत्कृष्टाम् , राज्य-श्रियम् = राज्यलक्ष्मीम् , प्रापितौ = गमितौ; सुररिपुः = देवशत्रुः, दशकन्धरः = दशग्रीवो रावणः इत्यर्थः, संग्रामे = युद्धे, यशःशेषताम—कीर्तिमात्रेणावशिष्टतामित्यर्थः, नीतः = प्रापितः; हर्षविगलद्बाष्पोल्लसल्लोचनः—हर्षेण = मिलनजन्येन प्रसन्नतया विगलत् = प्रवह-मानम् यद्बाष्पम् = अश्रु तेन उल्लसती = दीप्यमाने, पूरिते इत्यर्थः, लोचने = नेत्रे यस्य स तादृशः, बन्धुगणः = स्वजनः, च = अपि, दृष्टः = अवलोकितः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ९३ ॥

अन्वयः—आबालात् , तनुभृताम् , वदनाम्बुजे, सारस्वतम् , जृम्भताम् ; देवे, कौस्तुभधाम्नि, चन्द्रमुकुटे, अद्वैता, मतिः, खेलतु; वाग्देव्या, सह, मुक्तवैशसरसा, इयम् , लक्ष्मीः, शेषस्य, फणाञ्चलेषु, देवी, इव, सताम् , सद्मसु, सततम् , दीव्यात् ॥ ९४

श्लोकद्वयं भरत आह—आबालादिति । आबालात् = भावप्रधाननिर्देशेन बाल्या-वस्थात प्रारभ्य अथवा शिशोरारभ्येत्यर्थः, तनुभृताम् = प्राणिनाम् , वदनाम्बुजे = मुख-कमले, सारस्वतम्—सरस्वत्याः इदं सारस्वतम् = शास्त्रम् , वाङ्मयमिति यावत् , जृम्भ-ताम् = वर्धताम् । देवे = भगवति, कौस्तुभधाम्नि = कौस्तुभमणिधारके विष्णौ इत्यर्थः,

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पिता की आज्ञा पाली गयी, अपने गुणों के माध्यम से अतिशय अभ्युदय प्राप्त किया गया, सुग्रीव और विभीषण भी अतिश्रेष्ठ राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कराये गये, देव-शत्रु रावण युद्ध में कीर्तिशेष बना डाला गया (अर्थात् मार डाला गया) तथा (पुन-मिलन से होनेवाली) प्रसन्नता के कारण प्रवहमान अश्रु-जल से पूर्ण नेत्रवाले बन्धुजन भी देखे गये ॥ ९३ ॥

तो भी यह हो—

बालकों से लेकर (सभी) प्राणियों के मुख-कमल में शास्त्र समृद्ध हो (अर्थात् सभी प्राणी शास्त्रों का अभ्यास करें)। भगवान् विष्णु तथा शङ्कर में (प्राणियों की) अभेद बुद्धि क्रीडा करे (अर्थात् अभेद बुद्धि हो)। सरस्वती देवी के साथ द्रोह का परित्याग कर यह लक्ष्मी, शेषनाग के फणों के प्रान्त भागों में पृथिवी की तरह, सज्जनों के घरों में निरन्तर निवास करें ॥ ९४ ॥

राम—तो आओ। पुष्पक (विमान) से उतर कर गुरु (वशिष्ठ) को, बन्धु-जनों को तथा नगर-निवासियों को आनन्दित करें।

(इस तरह सभी पुष्पक विमान से उतरते हैं)

विकसित होती हुई नवमल्लिका (नेवारी) (के पुष्पों) से बनायी गयी माला की लड़ी की तरह मनोहर सज्जनों की वाणियाँ रामचरित की अनन्त क्रीडाओं से रमणीय बनें। कोमल बुद्धिवाले सहृदय जिन (वाणियों) को कण्ठ में रख कर भी रोमाञ्च की लीला से युक्त होते हुए (अर्थात् रोमाञ्चित होते हुए) प्रिया की बाहुलताओं के द्वारा विलास की महिमा के साथ किये गये आलिङ्गनों को (अर्थात् प्रिया के द्वारा अपनी बाहुओं से कस कर किये गये आलिङ्गनों को) तृण के समान मानते हैं ॥ ९५ ॥

विशेष—कण्ठेऽपि निवेश्य—इसका भाव यह है कि सज्जनों की वाणियों को केवल पढ़ कर भी इतना आनन्द आता है कि सहृदय उसके सामने वल्लभा के द्वारा स्वयं बढ़ कर किये गये आलिङ्गन को भी तृण समझते हैं। और यदि सज्जनों की इन वाणियों का अर्थ भी हृदयङ्गम कर लिया जाय तो निश्चय ही उससे प्राप्त होनेवाला आनन्द अवर्णनीय होता है ॥ ९५ ॥

तथा चन्द्रमुकुटे = शिवे, अद्वैता = अभिन्ना, मतिः = बुद्धिः, खेलतु = क्रीडतु। शैवेषु वैष्णवेषु च मा भूत् कलहः इति भावः। वाग्देव्या = वाण्या, सह = साकम्, मुक्तवैश-सरसा—मुक्तः = त्यक्तः वैशसस्य = विरोधस्य रसः = भावः यया सा तादृशी, इयम् = एषा, लक्ष्मीः = श्रीः; शेषस्य = अनन्तस्य सर्पराजस्येत्यर्थः फणाञ्चलेषु = फणप्रान्तेषु, देवी = शांतनशीला पृथिवी, इव = यथा; सताम् = सज्जनानाम्, सद्मसु = गृहेषु, सत-तम् = निरन्तरम्, दीव्यात् = शोभिता स्यात्। यथा शेषस्य फणेषु पृथिवी स्थिरा वर्तते तथैव सतां गृहेषु लक्ष्मीरपि सरस्वत्या सह तिष्ठत्विति भावः। अत्रोपमालङ्कारः। शार्दूल-विक्रीडितं वृत्तम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—उन्मीलन्नवमालिकाविरचितस्रग्दामरम्याः, सताम्, गिरः, अविरामराम-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति सप्तमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

चरितक्रीडाभिरामाः, जायन्ताम् । पेशलधियः, याः, कण्ठे, निवेश्य, अपि, रोमाञ्चलीलाञ्चिताः, (सन्तः), कान्ताबाहुलताविलासमहिमाश्लेषान् , तृणम् , मन्वते ॥ ९५ ॥

जायन्तामिति । उन्मीलन्नवमालिकाविरचितस्रग्दामरम्याः—उन्मीलन्त्यः = विकसन्त्यः याः नवमालिकाः = नवमल्लिकापुष्पाणीत्यर्थः ताभिर्विरचितानि = निर्मितानि, गुम्फितानीत्यर्थः, स्रग्दामानि = पुष्पमालाः तद्वद्रम्याः, सताम् = सज्जनानाम् , गिरः = वाण्यः, अविरामरामचरितक्रीडाभिरामाः—अविरामाः = अविश्रान्ताः याः रामचरिते = श्रीरामचरित्रे क्रीडाः = लीलाः ताभिः अभिरामाः = मनोहराः, जायन्ताम् = सन्तु । पेशलधियः पेशला = कोमला, काव्यार्थग्राहिणीत्यर्थः, धीः = बुद्धिः येषान्ते, सहृदयाः इत्यर्थः, याः = सतां गिरः, कण्ठे = गले, निवेश्य = स्थाप्य, अपि = अर्थमज्ञात्वा केवलं शब्दतो ज्ञात्वाऽपि त्वपिना ध्वन्यते, रोमाञ्चलीलाञ्चिताः—रोमाञ्चलीलया = हर्षपुलकोद्गमविलासेन अञ्चिताः = शोभिताः, सन्तः, कान्ताबाहुलताविलासमहिमाश्लेषान्—कान्तायाः = प्रियायाः बाहुलताभ्याम् = भुजवल्लीभ्याम् विलासमहिम्ना = विलासमहत्त्वेन कृतान् आश्लेषान् = गाढालिङ्गनानि, तृणम् = तृणवल्लघून् , मन्वते = अवगच्छन्ति । रामचरितगर्भा कथा प्रियालिङ्गनेभ्योऽप्यधिकतररमणीयेति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमिति ॥ ९५ ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां प्रसन्नराघवव्याख्यायां रमाख्यायां सप्तमोऽङ्कः ॥

ग्रामोऽस्ति गम्भीरपुरं मीरजापुरमण्डले ।
विन्ध्यक्षेत्राञ्चिते यत्र त्रिपाठिब्राह्मणान्वये ॥ १ ॥
जातो रामसुमेराह्वो बुधः परमधार्मिकः ।
तस्य भार्याऽञ्जनानाम्नी शङ्करस्य सती यथा ॥ २ ॥
प्रासूत चतुरः पुत्रान् प्राणौपम्येन संस्मृतान् ।
येषां ज्येष्ठो रामरूपो दयाधर्मान्वितः सुधीः ॥ ३ ॥
त्रिवेणीशङ्करः ख्यातः पण्डितोऽस्ति द्वितीयकः ।
रमाशङ्करनामाऽहं टीकाकृत्तु तृतीयकः ॥ ४ ॥
वात्सल्यभाङ्नः सततं चतुर्थो हरिशङ्करः ।
सहायभूतः सर्वेषामेषां स्नेहानुबद्धितः ॥ ५ ॥
सोऽहं सम्प्रार्थये मूलं परमात्मानमीश्वरम् ।
हृदयग्राहिणी भूयात् कृतिः कान्ता विदां मम ॥ ६ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

(इस तरह सभी निकल गये)

॥ सप्तम अङ्क समाप्त ॥

॥ समाप्तेयं टीका ॥

— — — —

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

परिशिष्ट १

श्लोकानुक्रमणिका

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

—— ——

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

परिशिष्ट २

सुभाषित-पद्य-संग्रहः

अ

१-- अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभाणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः ।
निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णाऽऽलवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः ॥ १-११ ॥

आ

१—आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम् ।
गर्भस्थं केतकीपुष्पमामोदेनेव षट्पदाः ॥ १-४ ॥

२—आचान्तकान्तिरुचिद्रैर्मयूखैरहिमत्विषः ।
धूसराऽपि कला चान्द्री किं न बध्नाति लोचनम् ॥ ७-९ ॥

उ

१—उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते ।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ॥ ७-१ ॥

क

१—कृत्वा प्रबुद्धकमलामखिलां त्रिलोकी-
मम्भोनिधेर्विशति गर्भमसाविदानीम् ।
अन्तःप्रसुप्तहरिनाभिसरोजबोध-
कौतूहलीव भगवानरविन्दबन्धुः ॥ २-३२ ॥

ग

१—गुणग्रामाविसंवादि नामाऽपि हि महात्मनाम् ।
यथा सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः ॥ १-५ ॥

च

१—चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणाञ्च दृगञ्चले ।
नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ कस्य नाऽऽमोदते मनः ॥ १-१० ॥

न

१—न ब्रह्मविद्या न च राजलक्ष्मीस्तथा यथेयं कविता कवीनाम् ।
लोकोत्तरे पुंसि निवेद्यमाना पुत्रीव हर्षं हृदये करोति ॥ १-२३ ॥

२—न ज्ञातुं नाऽप्यनुज्ञातुं नेक्षितुं नाऽप्युपेक्षितुम् ।
सुजनःस्वजने जातं विपत्पातं समीहते ॥ ५-२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

३—निन्द्यन्ते यदि नाम मन्दमतिभिर्वक्राः कवीनां गिरः
स्तूयन्ते न च नीरसैर्मृगदृशां वक्राः कटाक्षच्छटाः ।
तद्वैदग्ध्यवतां सतामपि मनः किं नेहते वक्रतां
भत्ते किं न हरः किरीटशिखरे वक्रां कलामैन्दवीम् ॥ १–२० ॥

प

१—प्रायो दुरन्तपर्यन्ताः सम्पदोऽपि दुरात्मनाम् ।
भवन्ति हि सुखोदर्का विपदोऽपि महात्मनाम् ॥ ५–४१ ॥
२—प्रोषितवति रजनिकरे बन्धुतया न खलु कैरवाण्येव ।
म्लायन्ति किन्तु सहसा भुवनान्यपि तमसि मज्जन्ति ॥ ५–५ ॥

म

१—मुग्धस्य केलिविजितस्मरचापयष्टे-
रातन्वती रुचिमतीव सुधाकरस्य ।
रागोद्धुरा स्फुटमुदञ्चिततारकश्रीः
सन्ध्याविरस्ति ननु काऽऽपि पतिम्वरेव ॥ २–३१ ॥

य

१—यावन्नीरनिधेः प्रभातसमयः प्रोद्धृत्य लोकत्रयी-
माणिक्यं रविबिम्बमम्बरवणिग्वीथीपथे न्यस्यति ।
तावत्कर्तुमिवास्य मूल्यमुचितं पद्माकरेण स्वयं
लक्ष्मीर्लब्धविकासपङ्कजकरन्यस्ता पुरः स्थाप्यते ॥ ३–४ ॥

व

१—वार्ता च कौतुकवती विमला च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरङ्गनाभेः ।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार-
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ ॥ २–२ ॥

स

१—सुललितवदनामुदारवृत्तां कृतिमथवा युवतिं परस्य हृत्वा ।
तटमपि परमर्णवस्य गत्वा वद कतरः सुखभाजनं जनः स्यात् ॥ १–१७ ॥

ह

१—हारः कण्ठं विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु नः कज्जलं वा जलं वा ।
संपश्यामो ध्रुवमिह सुखं प्रेतभर्तुर्मुखं वा
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः ॥ ४–२३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

अभिज्ञानशकुन्तलम्	सुबोधचन्द्र पन्त
दशकुमारचरित (संपूर्ण)	विश्वनाथ झा
कादम्बरी (कथामुख)	रतिनाथ झा
काव्यदीपिका	परमेश्वरानन्द
किरातार्जुनीय (१–४ सर्ग)	जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
चन्द्रालोक	सुबोधचन्द्र पन्त
नागानन्द नाटक	संसारचन्द्र
प्रतिमानाटकम्	श्रीधरानन्द शास्त्री
नीतिशतक	जनार्दन शास्त्री
प्रसन्नराघव	रमाशंकर त्रिपाठी
बालचरित	कमलेशदत्त त्रिपाठी
भट्टिकाव्यम् (१–४ सर्ग)	रामअवध पाण्डेय
भट्टिकाव्यम् (५–८ सर्ग)	रामगोविन्द शुक्ल
मालविकाग्निमित्र	मोहनदेव पन्त
मेघदूत (संपूर्ण)	संसारचन्द्र
रघुवंश महाकाव्य (संपूर्ण)	धारादत्त शास्त्री
रत्नावलीनाटिका	रमाशंकर त्रिपाठी
वेणीसंहार	रमाशंकर त्रिपाठी
शान्तिस्वस्तिपाठः	सुषमा पाण्डेय
शिशुपालवध (१–४ सर्ग)	जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
शुनः शेषोपाख्यानाम्	सुषमा पाण्डेय
श्रुतबोधः	सुषमा पाण्डेय
स्वप्नवासवदत्त	जयपाल विद्यालंकार
साहित्यदर्पण	शालिग्राम शास्त्री
सौन्दरनन्दं महाकाव्यम्	सूर्यनारायण चौधरी
हितोपदेशे-मित्रलाभः	विश्वनाथ शर्मा

E-mail: mlbd@mlbd.com
Website: www.mlbd.com

₹ 475

Sanskrit Literature

ISBN 978-81-208-2658-8